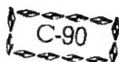
संस्कृत के सन्देश काव्य

मेघदूत और उसकी परम्परा का एक अध्ययन



डा० रामकुमार आचार्य, एम० ए०, पीएच० डी०,
संस्कृत प्राध्यापक, गवर्नमेन्ट कालेज, अजमेर

~~मूल्य १८=००~~
परिवर्धित मूल्य २२=००

लेखक तथा प्रकाशक
डा० रामकुमार आचार्य, एम० ए०, पीएच०डी०,
व्याकरणाचार्य,
प्राध्यापक, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
गवर्नमेन्ट कालेज, अजमेर

वर्तमान पता,
१७७, मुक्तानन्द नगर,
गोपालपुरा रोड, जय

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स० १९५७ में
पीएच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत शोधग्रन्थ

●

~~मूल्य २०=०० रु०~~
परिवर्धित मूल्य २२=००

सं० १९६३ ई०

— मुद्रक :—
श्री रामलाल गोयल
मैनेजर, आदर्श प्रेस,
अजमेर

सन्देशकाव्यान्यतिभानपूर्णा--
न्यतीव माधुर्यभृतानि सन्ति ।
तेषा यदालोचनमेतदस्ति
समर्प्यते संस्कृतभाग्जनेभ्यः ॥

यदत्र वैगुण्यमधिष्ठित स्यात्
तन्नैव विद्वद्भिरवेक्षणीयम् ।
ये चात्र सौन्दर्य कणाः विकीर्णाः
ते प्रीणयेयुः विदुषा मनांसि ॥

ये प्राक्तनाः संस्कृत काव्यकाराः
वियोग वार्ता रस कोविदाः वै ।
सन्देशकाव्यानि प्रणीतवन्तः
तेभ्यो मयेय क्रियते नमस्कृतिः ॥

संस्कृत

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स० १६५७ में पीएच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रन्थ में संस्कृत के सन्देशकाव्यों के उद्गम और विकास का वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रथम अध्याय में विस्तृत भूमिका दी गई है। इस भूमिका में सन्देश काव्यों के उद्गम, साधारण स्वरूप, शिल्पविधान, विभिन्न प्रवृत्तियां तथा अन्य संबद्ध विषयों का विवेचन किया गया है। यह भूमिका प्राचीन संस्कृत साहित्य के गम्भीर अध्ययन तथा विभिन्न सन्देश काव्यों के आलोचनात्मक परीक्षण द्वारा प्रस्तुत की गई है।

अन्य अध्यायों में २४ प्रतिनिधि सन्देश काव्यों का विशिष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन में सन्देश काव्य के रचयिता तत्तत् कवि विशेष का काल तथा जीवनवृत्त, काव्य की कथा और साहित्यिक समालोचना प्रस्तुत की गई है।

कवियों का कालनिर्णय संस्कृत साहित्य के विभिन्न इतिहासों तथा काव्यों की भूमिकाओं पर आश्रित है। कहीं २ स्वतन्त्र अनुसंधान भी किया गया है।

सन्देश काव्यों की साहित्यिक आलोचना संस्कृत साहित्य शास्त्र में निश्चित किये गये आलोचनासिद्धान्तों पर आश्रित है। प्रत्येक सन्देशकाव्य की स्वतन्त्र आलोचना के अतिरिक्त मेघसंदेश के साथ उसकी तुलनात्मक आलोचना भी की गई है। इस तुलनात्मक आलोचना में प्रत्येक सन्देशकाव्य की मेघसन्देश से समान तथा भिन्न बातों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। प्रायः प्रत्येक सन्देश-काव्य में मेघ-सन्देश के प्रभाव की खोज निकालने का भरपूर प्रयास किया गया है और इस तरह तत्तत् विशिष्ट पद्य, पंक्ति तथा वाक्यांश का मूल स्रोत खोज निकाला गया है।

संस्कृत साहित्य में यह सन्देशकाव्य बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृत साहित्य के विभिन्न स्वरूपों का प्रथम निदर्शन खोज निकालना बड़ा ही दुष्कर है। महाकाव्यों और नाटकों तक का प्रथम निदर्शन निश्चित करना सरल नहीं है। लेकिन सन्देश काव्यों के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। कालिदास का मेघसन्देश प्रथम सन्देश काव्य है। कविकुलगुरु की किसी अन्य रचना ने संस्कृत साहित्य को इतना प्रभावित नहीं किया जितना कि उनके मेघसन्देश ने और इस दृष्टि से मेघसन्देश नितान्त ही विलक्षण है। इस काव्य के अनुकरण पर समग्र देश में परवर्ती

कवियों द्वारा लगभग १०८ सन्देश काव्य लिखे जा चुके हैं। इस प्रकार मेघ सन्देश ने संस्कृत साहित्य में एक नई परम्परा को ही जन्म दिया है। संस्कृत साहित्य के इस सुन्दर किन्तु उपेक्षित अंग का व्यवस्थित अध्ययन नितान्त आवश्यक था। इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर, संस्कृत के सन्देश काव्यों का ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस कार्य के लिये ३४ प्रमुख सन्देश काव्यों को चुना गया है। इनमें से बहुत से तो अप्राप्य ही हैं। सारे देश भर में निरन्तर खोज के बाद उपलब्ध हो सके हैं।

इन ३४ सन्देशकाव्यों में, दो तो मूल सन्देशकाव्य हैं, दो मेघसंदेश के उत्तराख्यान हैं, आठ संदेशकाव्य जैनियों की साहित्यिक परम्परा से लिये गये हैं और अवशिष्ट २२ संदेशकाव्य साहित्यिक, धार्मिक तथा अन्य हिन्दु परम्पराओं से सम्बद्ध हैं। जैन सन्देशकाव्यों पर विचार करते हुये, इन काव्यों में मेघसंदेश की जो समस्यापूर्ति पाई जाती है, उसका भी यथोचित विवेचन किया गया है।

लेखक आशा करता है कि इस ग्रन्थ से संस्कृत के सन्देश काव्यों के व्यवस्थित तथा समीचीन अध्ययन में संस्कृत-जगत् को पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी, संस्कृत साहित्य में सन्देश काव्यों को उचित आदर का स्थान प्राप्त होगा और साथ ही सन्देशकाव्यों की तरह उनका यह ऐतिहासिक तथा समालोचनापरक विवेचन भी संस्कृतानुरागियों के लिये शाश्वत आनन्द का स्रोत रहेगा।

आदरणीय गुरुवर्य डा० सत्यनारायणजी पाण्डेय, एम० ए०, पीएच० डी०, अध्यक्ष, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, डी० एस० एस० डी० कालेज, कानपुर के प्रति लेखक अतीव कृतज्ञ है। श्रद्धेय पाण्डेयजी की प्रेरणा तथा सत्परामर्श से ही यह शोधग्रन्थ पूर्ण हो सका है।

स्वच्छ तथा शुद्ध मुद्रण के लिये आदर्श प्रेस, अजमेर के प्रबन्धकर्ता श्री रामलाल गोयल तथा अन्य कर्मचारिजन मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। यद्यपि पुस्तक के मुद्रण में बड़ी सावधानी रक्खी गई है, फिर भी, सम्भव है कि स्थान २ पर कुछ अशुद्धियाँ दृष्टिगोचर हों। आशा है कि विज्ञ पाठकों के रसास्वादन में इन अशुद्धियों से कोई व्याघात न होगा और वे अपनी उदारतावश इन्हें उपेक्षित ही कर देंगे।

गवर्नमेंट कालेज,
अजमेर
१० मार्च, १९६३

रामकुमार आचार्य

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

सन्देश-काव्यों का साधारण परिशीलन — पृष्ठ १–४६

द्वितीय अध्याय

प्रथम भाग—मूल सन्देश काव्य — पृष्ठ ५१–१५५

द्वितीय भाग—मेघ संदेश के उत्तराख्यान — पृष्ठ १३४–१५५

तृतीय अध्याय—जैन-सन्देश-काव्य — पृष्ठ १५७–२३६

चतुर्थ अध्याय—जैनेतर-सन्देश-काव्य पृष्ठ २३७-४७६

संस्कृत

संस्कृत के सन्देश काव्य



प्रथम अध्याय

सन्देश काव्यों का साधारण परिशीलन



सन्देश काव्यों का साहित्यिक स्वरूप—

इस विषय पर विवेचन करने से पूर्व यह अप्रासंगिक न होगा कि काव्य के स्वरूप तथा विभिन्न भेदों पर प्रथम विचार किया जाय। साधारणतया कवि की कृति को काव्य कहते हैं (कवेः कर्म काव्यम्)। कवि शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कोई कवृ वर्णे इस धातु से कवि शब्द को सिद्ध करते हैं (कवते वर्णयति कविः)। दूसरे कवृ धातु को पाणिनीय धातुपाठ में न देखकर और कवृ वर्णे इस धातु से कवरी आदि रूप ही सिद्ध होते देखकर 'कुङ् शब्दे' इस धातु से कवि शब्द को सिद्ध करते हैं।[1] निरुक्तकार यास्क ने कवि शब्द का अर्थ 'मेधावी' बताकर 'कविः क्रान्त दर्शनो भवति कवते र्वा' ऐसा इसको व्युत्पन्न किया है। कवते यह रूप वैदिक निघण्टु की गत्यर्थक धातुओं में पठित है।[2] 'ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः' इस न्याय से कवि शब्द का क्रान्तदर्शी या मेधावी अर्थ माना गया है। वैदिक निघण्टु में मेधावी शब्द के पर्यायों में कवि शब्द की भी गणना है।[3] अमरकोष में कवि और काव्य शब्द शुक्राचार्य के पर्याय हैं और कवि शब्द पण्डित अर्थ में भी दिया है।[5]

रामायण के रचयिता वाल्मीकि आदि-कवि कहाते हैं। इसका कारण यही है कि लौकिक संस्कृत का प्रथम काव्य अनुष्टुभ् छन्द में इन्हीं का लिखा हुआ है। बहुत संभव है कि तभी से कवि शब्द छन्द में रचना करने वाले विद्वानों के लिए रूढ हो गया हो।[6]

---

१ अमरकोष की क्षीर स्वामी की टीका।

२ अमरकोष की रामाश्रमी टीका।

३ वैदिक निघण्टु २।१४

४ वैदिक निघण्टु ३।१५। इस पर टीका करते हुए स्कन्द स्वामी ने भी 'कामते कवतेर्वा गतिकर्मण इति रूपम्' ऐसा लिखा है। कवि शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए उवट ने भी 'कामते कवतेश्च इन् सर्वधातुभ्य (उ० ४,११४) इतीन्प्रत्ययः। कामतेर्मकारस्य वत्वं रेफलोपश्च बाहुलकात्। क्रान्तमस्यास्तीति मत्वर्थीयस्य लुक्। कविः क्रान्तदर्शनः। अतीतानागत विप्रकृष्ट विषयं युगपत् ज्ञानं यस्य स क्रान्तदर्शनः' ऐसा लिखा है।

५ शुक्रो दैत्यगुरुः काव्य उशना भार्गवः कविः—व्योमादिवर्ग—२६। धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः—ब्रह्मवर्ग—५।

६ कवि शब्द की अन्य व्युत्पत्तियां इस प्रकार हैं। कवयति इति कविः, तस्य कर्म काव्यम् विद्याधर। कौति शब्दायते विमृशति रसभावानिति कविः, तस्य कर्म काव्यम् भट्टगोपाल।

साहित्य शास्त्र में काव्य पुरुष[1] की कल्पना कर शब्द और अर्थ को उसका शरीर तथा रस, रीति, वक्रोक्ति या ध्वनि को उसकी आत्मा माना है। काव्य के गुण काव्य की आत्मा के गुण और अलकार शब्द और अर्थ रूपी शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले आभूषण बताए गए हैं। जिस प्रकार किसी पुरुष की कल्पना उसके शरीर के बिना नहीं हो सकती उसी प्रकार किसी काव्य की कल्पना भी उसके शब्द और अर्थ रूपी शरीर के बिना नहीं हो सकती। इसीलिए सभी साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के लक्षण में शब्दार्थ का सन्निवेश किया है। भामह आदि प्राचीन आचार्यों ने शब्द और अर्थ को ही काव्य कहा है। शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् (काव्यालकार १।१६।) ही भामह का काव्य लक्षण है। दण्डी ने काव्य का लक्षण बताते हुए कहा है–शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्नापदावलि' काव्यादर्श १।१० अग्नि पुराण में भी काव्य का लक्षण 'इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावलि काव्यम्, स्फुटदलकार गुणवद्दोष-वर्जितम्' ।३३६।६ ७। बतलाया गया है। रुद्रट ने तो 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' (काव्यालकार) ऐसा स्पष्ट ही कहा है। वक्रोक्तिजीवितकार ने 'शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनि । बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि' ऐसा लक्षण दिया है। 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुन क्वापि' यह काव्यप्रकाशकार मम्मट का मत है। हेमचन्द्र ने भी 'अदोषौ-सगुणौ सालकारौ-च शब्दार्थौ काव्यम्' (काव्यानुशासन पृ०-१६) ऐसा ही लक्षण दिया है। वाग्भट ने अपने काव्यालकारसूत्र में शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्राय सालकारौ च काव्यम् यह लक्षण किया है। विद्यानाथ ने अपने प्रतापरुद्रयशोभूषण में गुणालकार सहितौ दोष वर्जितौ शब्दार्थौ काव्य काव्यविदोविदु ऐसा कहा है। विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्' ऐसा लक्षण किया है। जगन्नाथ पण्डितराज ने भी शब्द को प्रधानता देते हुए 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम्' ऐसा काव्य का लक्षण किया है। इन विभिन्न लक्षणों का साराश यही है कि बाह्य तथा मानव प्रकृति के दृश्यों द्वारा भावुक आत्माओं में उत्पन्न उच्च विचारों तथा उदात्त भावनाओं का सरस और सुन्दर शब्दों में व्यक्तीकरण ही कविता अथवा काव्य है।

काव्य के दृश्य और श्रव्य ये दो प्रधान भेद हैं। दृश्य काव्य में नाटकों की गणना की जाती है। श्रव्य काव्य के पद्य, गद्य और मिश्र यह तीन भेद माने गए हैं। पद्य काव्य प्राय रामायण और महाभारत के अनुकरण पर ही लिखे गए हैं। इन पद्य काव्यों को भी साहित्य शास्त्रियों ने महाकाव्य, खड काव्य और मुक्तक इत्यादि भेदों में विभाजित किया है। दण्डी के काव्यादर्श में महाकाव्य के निम्न लक्षण दिए हुए हैं—

१ राजशेखर की काव्य मीमासा, तृतीय अध्याय।

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥
इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
चतुर्वर्ग फलोपेतं चतुरोदात्त नायकम् ॥
नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्कोदय-वर्णनैः ।
उद्यान-सलिल-क्रीडा-मधुपान-रतोत्सवैः ॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि ॥
अलंकृतमसंक्षिप्त रसभावनिरन्तरम् ।
सर्गैरनति विस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसंधिभिः ॥
सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तै रुपेतं लोक रञ्जकम् ।
काव्यं कल्पान्तर स्थायि जायते सदलंकृति ॥

काव्या–१.१४–१८.

विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में भी महाकाव्य के कुछ ऐसे ही लक्षण पाये जाते हैं —

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं चफलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
संध्यासूर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तु वन सागराः ।
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥
रणप्रयाणोपयम-मन्त्रपुत्रोदयादयः ।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥

साहित्य दर्पण ६ ३१५–३२५ ॥

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों में से कुछ ही लक्षण जिस काव्य में पाये जाए, उसे खण्डकाव्य कहते हैं। साहित्यदर्पण में कहा भी है—

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च ॥ ६. ३२८ ॥

यथा—मेघदूतादि।

साहित्य दर्पण में खण्ड काव्य के उदाहरण स्वरूप मेघदूत का नामोल्लेख कर यह बात भी निश्चित कर दी गई है कि शास्त्रीय दृष्टि से सन्देश काव्यों को खण्ड काव्य ही कहा जाना चाहिये।

वेदान्तदेशिक द्वारा प्रणीत हंससन्देश के टीकाकार ने हंससन्देश में नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु और उद्यान इत्यादि के कुछ २ वर्णन होने के कारण हंससन्देश को महाकाव्य बतलाया है। मेघसन्देश पर अपनी टीका में मल्लिनाथ ने भी 'अत्र काव्ये तत्र तत्र नगनगरार्णवादि वर्णन सद्भावाद् महाकाव्यत्वम्' ऐसा लिखा है, लेकिन यह ठीक नहीं है, क्योंकि 'सर्ग बन्धो महाकाव्यमुच्यते' के अनुसार सर्गबद्ध होना महाकाव्य की प्रमुख विशेषता है और इसी का इन काव्यों में अभाव है। अतः मेघसन्देश या अन्य सन्देशकाव्यों को खण्ड-काव्य ही मानना चाहिये।

कल्याणमल्ल यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से मेघदूत को महाकाव्य नहीं मानता है, फिर भी महाकवि कालिदास की रचना होने के कारण इस काव्य को महाकाव्य ही कहता है। उसका कथन है—

इह यद्यपि गिरि-नगर-सागर-सरित्-सरोवर-कमलाकर-वसन्तोत्सव-मलयानिल जलक्रीडा-पुष्पावचयोद्यास्तगमन वर्णनाना सर्गबन्धादीना च महा काव्य लक्षणानामभाव स्तथापिमहाकवि श्री कालिदास विरचितत्वात् इद महाकाव्यमुच्यते।

कविता की दृष्टि से यदि मेघसन्देश अथवा अन्य सन्देशकाव्यों को महाकाव्य कहा जाये तो किसी अंश तक भले ही अनुचित न हो, लेकिन शास्त्रीयदृष्टि से तो सन्देश काव्यों को खण्ड काव्य ही कहना होगा।

टीकाकार वल्लभदेव मेघदूत को केलिकाव्य मानते हैं तथा स्थिरदेव ने भी अपनी टीका में मेघदूत को क्रीडाकाव्य बताया है। लेकिन मेघदूत अथवा अन्य दूत काव्यों या सन्देशकाव्यों के लिए साहित्यशास्त्र में इस तरह का कोई पृथक् नाम निर्दिष्ट नहीं किया गया है। स्थिरदेव ने अपनी टीका में विभिन्न उदाहरणों द्वारा मेघदूत को महाकाव्य सिद्ध करने की भी चेष्टा की है। उसका कथन है ननु गिरि नगरादि वर्णन व्यतिरेकेण, कथमस्य महाकाव्यत्वम्। अत्रोच्यते। त्रिदिशा विशाला-लकादि नगरी-वर्णनम्। स्व सिन्धु निर्विन्ध्या सिप्रा प्रभृति समुद्र गामिनी-निगदनोपचारा-त्तत्प्रतिपादनम्। गिरीश शैलादि शैल श्लाघा। हस्ते लीला

कमल मित्यनेन घनसमय पुर सराणामृतुना निरूपणम्। यत्र स्त्रीणामेतेन चन्द्रोदय समर्थनम्। अध्यन्यस्मिजलधर तथा ताकस्याचिद्धवनवलमानित्याभ्या भानूदय निवेदनम्। विश्रान्त सन् 'तथा' तत्रागार मित्येताभ्याम् उद्यान-स्तुतिनिगदनम्। भर्तु कण्ठच्छवि रित्यतेन जल केलिकथनम्। यस्या यक्षा' इति मधुपानाभिधानम्। सभोगान्ते नीता रात्रिरिति सुरतस्य वर्णनम्। जालोद्गीर्णै' तथा दिङ् नागानामित्याभ्या मन्त्रचिन्ता। दूतो मेघ एव। मार्ग तावदिति प्रयाण कथनम्। ये त्वा इत्यनेन युद्ध प्रबोधनम्। शापान्त इति नायकाभ्युदय वर्णनम्। विप्रलम्भ कथयैव समर्थित। ता चावश्यमित्यनेन परयुद्देश। यस्य सयोगम् इति विवाह कथनम्। तत्र स्कन्दमिति कुमारकथनम्। एवमेतैर्नग-नगरी सागरर्तु चन्द्रार्कोदयोद्यान जलकेलि मधुपान सुरतमन्त्र दूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदय विवाह विप्रलम्भ कुमार वर्णनै विस्पष्टैरष्टादशभिरमीभि महाकाव्यलक्षणैरप लक्षित त्वादस्य महाकाव्यत्वम्। लेकिन स्थिरदेव का विचार ग्राह्य नहीं है, क्योंकि सर्गबन्धो महाकाव्यम्-सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तै सुसधिभि' के अनुसार महाकाव्य में कई सर्ग तथा विभिन्न छन्दों का होना अनिवार्य है। अत मेघसन्देश एक खण्डकाव्य ही है और इसी तरह सारे सन्देश काव्य भी खण्ड काव्य ही माने जायगे।

खण्ड काव्य तथा गीतिकाव्य

अंग्रेजी में खण्ड काव्य को Lyric Poetry कहते हैं। संस्कृत के खण्ड काव्य और अंग्रेजी की लिरिक कविता में यद्यपि स्वरूपत बहुत भेद है, तथापि कुछ सादृश्य अवश्य है। इसीलिए पाश्चात्य विद्वानों ने खण्डकाव्य को लिरिक कविता कहा है। इस प्रकार सन्देश काव्यों को दूसरे शब्दों में हम Lyric Poetry अथवा गीति काव्य भी कह सकते हैं। गीति काव्य प्राय' कोमल और मधुर भावों को लेकर सरस तथा सरल भाषा में लिखे जाते हैं और गाए जाने योग्य होते हैं। सन्देश काव्यों में भी प्राय' विरह का ही वर्णन होता है तथा प्रसाद-गुण गुम्फित वैदर्भी रीति में ही इनकी रचना की गई है। छन्द भी ऐसे ही प्रयुक्त किए गए हैं जो कोमल भावनाओं में संगीत का सम्मिश्रण करते हैं। अत सन्देश काव्यों को हम गीति काव्य भी कह सकते हैं। साथ में विरह वर्णन की प्रचुरता होने से यदि इन्हें विरह-काव्य कहा जाए तो भी अनुचित न होगा।

सन्देश काव्य अथवा दूत काव्य

विप्रलम्भ शृंगार तथा विरह की पृष्ठ भूमि को लेकर ही सन्देश काव्य लिखे गए हैं। विरह में दूत के द्वारा नायक या नायिका का अपनी प्रेयसी या अपने प्रिय के पास प्रणयसन्देश भेजना ही इन काव्यों का मुख्य विषय है। सन्देश का लक्षण भी प्राचीन ग्रन्थों में यही दिया हुआ है—सन्देशस्तु प्रोषितस्य स्ववार्ता प्रेषणं भवेत्। दूत का अर्थ भी अमरकोष में निम्नान्त स्पष्ट रूप से दिया हुआ है—स्यात्सन्देश हरो

दूत: । दूत द्वारा सन्देश प्रेषण ही इन काव्यों की मुख्य वस्तु है। इसी आधार पर यह काव्य सन्देश-काव्य अथवा दूत काव्य कहलाते हैं। दोनों का अर्थ एक ही है। मेघदूत अथवा मेघसन्देश दोनों समानार्थक ही हैं। इनकी व्युत्पत्ति तथा बाह्य रूप में ही केवल अन्तर है। मेघदूतम् (काव्यम्) को मेघश्चासौ दूतश्च मेघदूत, स एवाभेदोपचारात्तत्सज्ञम् काव्यम् इस प्रकार अथवा मेघदूत यस्मिन् काव्ये तत् मेघदूतम् इस प्रकार व्युत्पन्न किया जा सकता है। दूतान्त सभी काव्यों की व्युत्पत्ति इसी प्रकार होगी।[१] दक्षिण भारत तथा लका में इस प्रकार के काव्यों को सन्देश काव्य ही कहते हैं और इन काव्यों के अन्त में सन्देश शब्द ही पाया जाता है।[२] मल्लिनाथ ने भी अपनी टीका में मेघसन्देश शब्द का ही प्रयोग किया है। वास्तव में इस प्रकार के काव्यों का सौन्दर्य दूत की उपयुक्तता तथा सन्देश की भाव प्रवणता पर ही निर्भर है। अत दोनों ही नाम उपयुक्त हैं। फिर भी सन्देश की प्रधानता तथा सन्देशान्त नाम के अधिक मधुर लगने के कारण इन काव्यों को यहा सन्देश काव्य नाम से ही व्यवहृत किया गया है।

पशु-पक्षी तथा अन्य जड़ और चेतन पदार्थों का दूत कार्य मे उपयोग

वास्तव में दूत[३] शब्द राजनीति से सम्बन्ध रखता है। मनुस्मृति में दूत के लक्षण भी बताए गए हैं —

दूत चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्र विशारदम् ।
इगिताकार चेष्टज्ञ शुचि दक्ष कुलोद्गतम् ॥७॥६३॥
अनुरक्तश्शुचिर्दक्षस्स्मृतिमान्देशकालवित् ।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञ प्रशस्यते ॥७॥६४॥

आगे चलकर मनु फिर दूत की महत्ता का भी वर्णन करते हैं —

---

१ बगाल तथा उत्तर भारत के अन्य प्रान्तो में लिखे गए सभी काव्यों के अन्त में दूत शब्द पाया जाता है। यथा पवनदूतम्, मनोदूतम्, पिकदूतम्, हसदूतम् और पान्थदूतम् इत्यादि।

२ यथा हस सन्देश, पिकसन्देश, मयूर सदेश, कोकसन्देश इत्यादि दक्षिण में पाए जाते हैं। सिंहल भाषा में भी मयूर सन्देश और कोकिल सन्देश पाए जाते हैं। हंस सन्देश की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी —
हसस्य सन्देश अथवा हसाय उक्त सन्देश, हस सन्देश, स एवाभेदोपचारात्तत्सज्ञो ग्रन्थ। अन्य नामों की व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

३ दु गतौ + त = दूत। दुतानिभ्या दीर्घश्च (उणादिसूत्र) के द्वारा दु के उ को दीर्घ हो गया है।

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सधिविपर्ययौ ॥७।६५॥,
दूत एव हि सधत्ते भिनत्त्येव च सहतान्।
दूतस्तत्कुरुते कार्यं भिद्यन्ते येन वा न वा ॥७।६६॥

साहित्य क्षेत्र में यह शब्द राजनीति से ही आया है और दूत के कार्य की शृ गार रस में वही ही उपयोगिता मानी गई है। विशेषत दूत शब्द जब स्त्रीलिंग दूती बन जाता है, तो साहित्य में शृ गार रस के लिए कितने ही भावों में अनिवार्य हो जाता है। दूत पुरुष पक्ष से अथवा नायक पक्ष से सम्बन्ध रखता है, दूती नायिका पक्ष से। दूत नायक की ओर से नायिका के पास पहुँच कर नायिका की केवल मनःस्थिति का ही पता नहीं लगाता, नायिका के मन में प्रेमभाव को और भी उद्दीप्त करने का प्रयत्न करता है, नायिका को नायक से मिलने का सन्देश देता है और उसे संकेत स्थान का पता भी बताता है। नायिका के मान को भग कराने में भी वह सहायक होता है। साहित्य के रस शास्त्र में दूत का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रति भाव के परिपाक के लिए तथा शृ गार रस की मनोवैज्ञानिक स्थिति में सहायक होने के लिए दूत अपरिहार्य सा विदित होता है। शृ गार रस में अवलम्ब और आश्रय उभयाश्रित और उभयान्वित रहते हैं। नायक और नायिका में से दोनों एक दूसरे के लिए अवलम्ब और आश्रय दोनों ही होते हैं। अत रतिभाव की समग्र अवस्थिति के लिए नायक तथा नायिका दोनों में ही रति भाव जागृत होना चाहिए। इसलिए साहित्य में दूत की आवश्यकता मानी गई है। साहित्य दर्पण में दूत तथा दूतियों के तीन भेद भी बताए गए हैं —

निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा सन्देशहारक ।
कार्यप्रेष्य स्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथाविधा ॥३॥८७॥
उभयोर्भावमुन्नीय स्वय वदति चोत्तरम्।
सुश्लिष्टं कुरुते कार्यं निसृष्टार्थस्तु स स्मृत ॥३॥८८॥
मितार्थभाषी कार्यस्य सिद्धकारी मितार्थक ।
यावद्भाषितसन्देशहार सन्देश-हारक ॥३॥८९॥

इस प्रकार साहित्य में नायिका और नायक की ओर से दूत अथवा दूती का भेजा जाना सर्व विदित ही है। प्राय विरह की पूर्वराग और मान अवस्थाओं में दूत अथवा दूती का भेजा जाना दूसरे काव्यों में पाया जाता है, लेकिन सन्देश काव्यों में प्रवासजन्य विरह में ही दूत प्रेषण का व्यापार देखने में आता है। पूर्व राग में नायक या नायिका की दस काम दशाएँ बताई गई हैं —

अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुण कथनोद्वेग सप्रलापाश्च।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र काम दशा ॥सा०द०॥३॥१९०

इसी प्रकार प्रवास में भी प्रेमियों की ग्यारह दशाएं वर्णित की गई हैं —

अंगेष्वसौष्ठवं तापः पाण्डुता कृशताऽरुचिः ।
अधृतिः स्याद् नालम्बस्तन्मयोन्माद मूर्च्छना ॥
मृतिश्चेति क्रमादेकादश स्मरदशा इह ॥सा०द०॥३॥२०६॥

इन दशाओं में से उन्माद-दशा का स्वरूप साहित्यशास्त्रियों ने इस प्रकार बताया है :—[१]

चित्तसंमोह उन्मादः कामशोकभयादिभिः ।
अस्थान हास-रुदित गीत प्रलपनादिकृत् ॥३॥१६०॥
उन्मादश्चापरिच्छेदः श्चेतनाचेतनेष्वपि ॥३॥१८१॥

विरही जब विरह में उन्मत्त हो जाता है, तब उसे चेतन और अचेतन तथा पशु-पक्षी और मनुष्य का विवेक नहीं रहता। वह हर किसी के सामने हंसता, रोता, गाता तथा प्रलाप करता रहता है। ऐसी अवस्था में विरही नायक या नायिका का जिस किसी को भी दूत बनाकर अपने प्रिय के पास भेजना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। जब चेतन और अचेतन का ही विवेक न रहे, तब पशु पक्षियों तक से अपनी विरह वेदना का निवेदन करना कुछ भी अनुचित नहीं प्रतीत होता है। इसी लिए अधिकांश सन्देश काव्यों में पशु-पक्षी दूत बनाए गए हैं।[२] उन्माद की पूर्ण अवस्था तो तब और भी अधिक प्रकट होती है, जब हम पवन, चन्द्र, पदांक, तुलसी वृक्ष इत्यादि को भी दूत कार्य में लगा हुआ देखते हैं।[३] अन्त में यहां तक देखने में आता है कि मन, भक्ति तथा शील जैसे सूक्ष्म और भावात्मक पदार्थों को

---

१ विद्यानाथ—उन्मादस्तुल्यवृत्तित्वं चेतनाचेतनेष्वपि ।
भूपाल—उन्मादश्चित्तविभ्रान्तिः वियोगादिप्रणाशत ॥
वियोगजे तु चेष्टास्युर्धावनं परिदेवनम् ॥
असंबद्धप्रलपनं शयनं सहसोत्थितिः ।
अचेतनैस्सहालापो निर्निमित्त स्मितादयः ॥

२ यथा—वेदान्तदेशिक के पुत्र वरदाचार्य का हरिण-सन्देश, उद्दण्ड कवि का कोकिल-सन्देश, लक्ष्मीदास का शुक-सन्देश, विष्णुत्रात का कोकसन्देश, उदय-कवि का मयूर सन्देश, रुद्र न्यायपञ्चानन का भ्रमरदूत तथा विभिन्न कवियों के हंस सन्देश और हंस दूत।

३ यथा—धोयि कवि और वादि चन्द्र सूरि के पवनदूत, कृष्णनाथ न्यायपञ्चानन का वातदूत, विनय विजयगणि का इन्दुदूत तथा अन्य चन्द्रदूत काव्य। कृष्ण सार्वभौम का पदाकदूत। संस्कृत साहित्य परिषत् कलकत्ता के पुस्तकालय में विद्यमान वैद्यनाथ द्वारा लिखित तुलसीदूत। गोपेन्द्र नाथ गोस्वामी द्वारा प्रणीत पादपदूत।

भी दूत कार्य में नियुक्त किया गया है।[१] किसी किसी काव्य में पौराणिक पात्रों को भी यथा हनुमान और उद्धव को दूत कार्य सौंपा गया है।[२] भोलानाथ के पान्थदूत में मथुरा की ओर जाने वाले एक पथिक को ही गोपियों का दूत कल्पित किया गया है। इस प्रकार इन सन्देश काव्यों में विभिन्न पशु पक्षी तथा अन्य जड़ और चेतन पदार्थों को दूतकार्य में नियुक्त किया गया है। वास्तव में स्वयं कालिदास ने मेघ को दूत कल्पित कर परवर्ती कवियों के लिए एक नया मार्ग निर्दिष्ट कर दिया और यदि परवर्ती कवियों ने कुछ अन्य दूतों की भी कल्पना की, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वस्तुतः सन्देश काव्यों के रचयिता ये कवि भी उक्त प्रकार के दूत कल्पित करते समय उनकी असमर्थता से अवश्य ही परिचित थे तभी तो उन्होंने अपने काव्यों में किसी न किसी प्रकार अपने दूत के चुनाव का समर्थन किया है। स्वयं कालिदास ने भी लिखा है —

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥५॥

इसी प्रकार अन्य काव्यों में भी ऐसे स्थल देखने में आते हैं। यथा:-

१ युक्तायुक्तेष्वपिहि विदुषामर्थिना नो विवेकः ॥
(अज्ञात कवि का हंस सन्देश) ॥१॥५॥

२ न तस्या दोषोऽयं यदिह विहगं प्रार्थितवती
न कस्मिन् विभ्रम्भं दिशति हरिभक्ति प्रणयिता ॥
(रूप गोस्वामी का हंस दूत ॥८॥)

३ कन्दर्पेण व्यथित हृदयोन्मत्ततुल्या ययाचे
प्रज्ञाहीनं वचनरहितं निश्चलं श्रोत्रहीनम्
दौत्यं कर्तुं मुरहरपदो लक्ष्मणं पद्मलाक्षी ॥ (कृष्णस्य)
(पदाङ्कदूत ॥३॥)

४ दूतं मोहात्पवनमहह प्राहिणोद्दुष्टनेत्र
प्रायो मोहो भवति महिला बोधशून्यत्वहेतुः ॥
(वादिचन्द्र का पवनदूत ॥१॥५॥)

---

१ यथा—विष्णुदास का मनोदूत और तैलंग व्रजनाथ का मनोदूत तथा किसी जैन कवि का चेतोदूत। राजेन्द्र लाल मित्र के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची ३ पृ० २७ पर उल्लिखित काली प्रसाद का भक्तिदूत। चरित्र सुन्दर गणि का शीलदूत।

२ यथा—रूप गोस्वामी का उद्धव सन्देश और माधवशर्मन् का उद्धवदूत, नित्यानन्द आशुकवि का हनुमद्दूत।

४ विश्लेषेण क्षुभितमनसा मेघ शैल द्रु माद्यौ
याच्ञादैन्यं भवति किमुत क्वापि संवेदनार्हे ॥
(वेदान्तदेशिक का हंस सन्देश ॥११॥४॥)

अत पक्षियों तथा अन्यपदार्थों के दूत बनाने में अनौचित्य की कुछ भी शंका नहीं करनी चाहिये।

प्राचीन साहित्य में सन्देश काव्यों के प्रारम्भिक तत्व

कालिदास के मेघसन्देश की कथावस्तु तो सर्व विदित ही है। इस काव्य में एक विरही यक्ष मेघ के द्वारा अपनी प्रेयसी के पास प्रेम सन्देश भेजता है। कालिदास की इस विलक्षण और उदात्त कल्पना का क्या आधार था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी ऐसी कल्पना के कुछ चिह्न कालिदास से पूर्व प्राचीन साहित्य में हमें अवश्य उपलब्ध होते हैं। भारतीय साहित्य में ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। सर्वप्रथम इस वेद में पशुओं के दूत कार्य करने का उल्लेख मिलता है। बृहस्पति की गायों को बल नामक असुर के योद्धा पणिलोग जब अपहरण करके ले जाते हैं और उन्हें किसी गुफा में छिपा देते हैं, तब इन्द्र गायों की खोज करने के लिए सरमा नामक अपनी कुतिया को पणि लोगों के पास भेजते हैं। सरमा एक नदी को पार कर बलपुर पहुँचती है और वहा गुप्तस्थान में छिपाई हुई गायों को खोज निकालती है। इस अवसर पर पणि लोग सरमा को अपने पक्ष में करना चाहते हैं। पाठकों के परिचय के लिये ऋग्वेद का सरमापणि-संवाद यहा उद्धृत किया जा रहा है –
पणि लोग कहते हैं –

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्याऽसीत् कथं रसाया अतरः पयांसि ॥१॥

सरमा उत्तर देती है –

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरम् पयांसि ॥२॥

पणि लोग कहते हैं –

कीदृङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३॥

सरमा कहती है –

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥४॥

पणि लोग कहते हैं —

इमा गाव सरमे या ऐच्छ परिदिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अवसृजा दयुध्व्युताऽस्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥

सरमा उत्तर देती है —

असेन्या व पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्व सन्तु पापी ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पति र्व उभयानमृळात् ॥६॥

पणि लोग कहते हैं —

अयं निधि सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभि र्वसुभिर्न्यृष्ट ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकुपदमलकमाजगन्थ ॥७॥

सरमा प्रत्युत्तर देती है —

एह गमन्नृषय सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वा ।
त एतमूर्व विभजन्त गोनामथैतद्वच पणयो वमन्नित् ॥८॥

पणि लोग कहते हैं —

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अपते गवां सुभगे भजाम ॥९॥

सरमा उन्हें उत्तर देती है —

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोरा ।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीय ॥१०॥

दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तुमिनतीर्ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूढा सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्रा ॥११॥
ऋग्वेद मण्डल १०, अनुवाक ८, सूक्त १०८॥

इस संवाद से यह तो निश्चित ही है कि भारतीय साहित्य में पशुओं को दूत बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद (मं० ५, सू० ६१, मन्त्र सं० १७,१८,१९) में एक और कथा उपलब्ध होती है। इसमें श्यावाश्व ऋषि राजा रथवीति के पास उनकी पुत्री के प्रति अपने प्रणयसंदेश तथा विवाह प्रार्थना को रात्रि के द्वारा भेजते हैं।

ऋग्वेद के बाद बाल्मीकि रामायण में किष्किन्धा काण्ड के ४४ वें सर्ग में सीताजी की खोज करने के लिए सुग्रीव द्वारा हनुमानजी के भेजे जाने का वृत्तान्त तो सब लोग जानते ही हैं —

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमत्यर्थमुक्तवान् ॥१॥
तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥६॥

रामचन्द्रजी भी हनुमानजी को कार्यकुशल और पराक्रमी समझकर स्वनामांकित अगूठी सीताजी के अभिज्ञान के लिए हनुमानजी को देते हैं —

ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अंगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तप ॥१२॥

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥१३॥

अन्त में रामचन्द्रजी हनुमानजी से कहते भी हैं.—

अतिबलबलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रमविक्रमैरनल्पैः ।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व ॥१७॥

इसके बाद सुन्दर काण्ड के ३४ वें सर्ग में हनुमान् जी स्वयं सीताजी से कहते हैं —

अहं रामस्य सन्देशाद्देवि दूतस्तवागतः ।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥२॥

सीताजी के द्वारा सन्देह प्रकट करने पर रामचन्द्रजी के गुण और पराक्रम का वर्णन कर हनुमानजी फिर सीताजी से कहते हैं —

तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥३४॥

रामचन्द्रजी के स्वरूप, सीताजी के वियोग में उनकी दुरवस्था और अपनी यात्रा का वर्णन कर हनुमानजी फिर सीताजी को विश्वास दिलाते हैं —

अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम् ॥३५॥७२॥

अन्त में सीताजी भी हनुमान्जी को रामचन्द्रजी का दूत मान लेती है —

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छती ॥३५॥८४॥

'तदनन्तर हनुमान्‌जी सीताजी को फिर विश्वास दिलाते हैं और रामचन्द्रजी की अगूठी उन्हें दिखाते हैं—

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम् ॥३६॥२॥

प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥३६॥३॥

हनुमानजी के साथ सीताजी जब वापिस चलने के लिये प्रस्तुत नहीं होती हैं, तब वे उनसे कुछ अभिज्ञान मांगते हैं—

यदि नोत्सहसे यातुं मया सार्धमनिन्दिते।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् ॥३८॥१०॥

इस पर सीताजी हनुमान्‌जी से काकजयन्त की घटना का ॥५॥३८॥ उल्लेख करती हैं और अपनी दिव्य चूडामणि भी उन्हें देती हैं—

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥३८॥६६॥

इसके अतिरिक्त एक और छोटी सी घटना का भी सीताजी उल्लेख करती हैं—

मनः शिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः।
त्वया प्रणष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि ॥४०॥५॥

अभिज्ञान देने के बाद सीताजी अपनी ओर से रामचन्द्रजी को कुछ सन्देश भी भेजती हैं (सु० ४०)। सुग्रीव ने अपने प्रमुख वानरों को रावण और सीताजी की खोज में भेजते समय विभिन्न दिशाओं के मार्ग का भी वर्णन किया है (कि ४० ४३)।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में दूत द्वारा सन्देशप्रेषण, मार्गवर्णन तथा अभिज्ञान स्वरूप किसी वस्तु का देना अथवा किसी घटना का उल्लेख करना यह बातें पाई जाती हैं।[1]

---

१ इसके अतिरिक्त पंचवटी में सीताजी के अपहरण हो जाने पर उनके वियोग में उन्मत्त रामचन्द्रजी का विभिन्न वृक्षों, पर्वतों, पशुओं तथा गोदावरी नदी से सीताजी के सम्बन्ध में प्रश्न करना भी दूतकाव्यों के लिये पथ प्रदर्शक हो सकता है। इस प्रसंग के लिये देखिए-वा०-रा-अरण्य काण्ड-६१-६४ सर्ग।

रामायण के बाद महाभारत में भी दूतप्रेषण का वृत्तान्त कई प्रसगों में देखने में आता है। युधिष्ठिर का दूत रूप से श्रीकृष्ण जी को हस्तिनापुर में कौरवों की सभा में भेजना तो सर्व विदित ही है। इस घटना को हम भले ही विशुद्ध राजनैतिक मान लें, लेकिन वन पर्व के नलोपाख्यान (५३वा अध्याय) में आये हुए हस-दमयन्ती सवाद को तो निश्चित रूप से ही सन्देश काव्यों का पथ प्रवर्तक मानना पडेगा।[१] यह सवाद महाभारत में इस प्रकार है। एक दूसरे के रूप, गुण और योग्यता के निरन्तर सुनते रहने से नल और दमयन्ती परस्पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम करने लगते हैं। एक समय नल अपने मन में दमयन्ती का ध्यान करते करते ही अपने उद्यान में पहुच जाता है। वहा एक साथ हसों की एक टोली आती है। नल उसमें से एक हस को पकड लेता है। इस पर वह हस नल से कहता है–

ततोऽन्तरिक्षगो वाच व्याजहार नल तदा।
हन्तव्योऽस्मि न ते राजन् करिष्यामि तव प्रियम् ॥२०॥

दमयन्ती सकाशे त्वा कथयिष्यामि नैषध।
यथा त्वदन्य पुरुष न सा मस्यति कर्हिचित् ॥२१॥

एवमुक्तस्ततो हसमुत्ससर्ज महीपति।
ते तु हसा समुत्पत्य विदर्भानगमस्तत ॥२२॥

विदर्भं नगरीं गत्वा दमयन्त्यास्तदान्तिके।
निपेतुस्ते गरुत्मन्त सा ददर्श च तान्खगान् ॥२३॥

सा तानद्भुत रूपान्वै दृष्ट्वा सखिगणावृता।
हृष्टा ग्रहीतु खगास्त्वरमाणोपचक्रमे ॥२४॥

अथ हसा विससृपु सर्वत प्रमदावने।
एकैकशस्तदा कन्यास्तान्हसान्समुपाद्रवन् ॥२५॥

दमयन्ती तु य हस समुपाधावदन्तिके।
स मानुषीं गिर कृत्वा दमयन्तीमथाब्रवीत् ॥२६॥

दमयन्ति नलो नाम निषधेषु महीपति।
अश्विनो सदृशो रूपे न समास्तस्य मानुषा ॥२७॥

---

१ श्री वेदान्त देशिक ने अपने हस सन्देश में इस वृत्तान्त का उल्लेख किया है। अत यह निश्चित है कि उन्हें इस वृत्तान्त से अपने सन्देशकाव्य के लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

कन्दर्प इव रूपेण मूर्तिमानभवत्स्वयम् ।
तस्य वै यदि भार्या त्वं भवेथा वरवर्णिनि ॥२८॥

सफलं ते भवेज्जन्म रूपं चेदं सुमध्यमे ।
वयं हि देवगन्धर्व मनुष्योरग राक्षसान् ॥२९॥

दृष्टवन्तो न चास्माभिर्दृष्टपूर्वस्तथाविधः ।
त्वं चापि रत्नं नारीणां नरेषु च नलो वरः ॥३०॥

विशिष्टाया विशिष्टेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ।
एवमुक्ता तु हंसेन दमयन्ती विशाम्पते ॥३१॥

अब्रवीत्तत्र तं हंसं त्वमप्येवं नले वद ।
तथेत्युक्त्वाण्डजः कन्यां विदर्भस्य विशाम्पते ।

पुनरागम्य निषधान्नले सर्वं न्यवेदयत् ॥३२॥

इस हंस-दमयन्ती-संवाद के अतिरिक्त राजा नल का भी देवताओं के दूत के रूप में दमयन्ती के पास जाना सर्वविदित ही है।

महाभारत के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में भी कई स्थल ऐसे पाये जाते हैं जो कि निश्चित रूप से कई सन्देश काव्यों के आधार हैं। भागवत के दशम स्कन्ध के ३०वें अध्याय में इस प्रकार की कथा है। एक बार रास क्रीडा के प्रसंग में भगवान् कृष्ण के प्रेम को पाकर गोपियां कुछ अभिमान करने लगती हैं। उनके अभिमान को दूर करने की भावना से कृष्णजी अन्तर्धान हो जाते हैं। अकस्मात् अपने मध्य में कृष्ण को न पाकर गोपियां बड़ी दुःखित होती हैं और उनके विरह में उन्मत्त की तरह अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध, तुलसी, मल्लिका, यूथिका और आम्र इत्यादि वृक्षों से उनका पता पूछती फिरती हैं। इस प्रसंग को लेकर ही यह अध्याय प्रारम्भ होता है—

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥१॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥२॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥३॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥४॥

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।
नन्द सूनुर्गतो हृत्वा प्रेम हासावलोकनैः ॥५॥

कच्चित् कुरबकाशोक नाग पुन्नाग चम्पकाः
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥६॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालि कुलै बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥७॥

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥८॥

चूतप्रियालपनसासन-कोविदार-जम्ब्वर्क-बिल्व-बकुलाम्र कदम्ब-नीपाः ।
ये ऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥९॥

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहै र्विभासि ।
अप्यङ्घ्रि सम्भव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराह वपुषः परिरम्भणेन वा ॥१०॥

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्
तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसि कालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं
किं वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥१२॥

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः
नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥१४॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम् ।
तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्छकटायतीम् ॥१५॥

दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥१६॥

[illegible]

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन।
वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥

आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुकुर्वतीम्।
वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥

कस्यांचित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु।
कृष्णोऽहं पश्य गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २० ॥

आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहापरां नृप।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥ २१ ॥

तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम्।
चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥

बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले।
भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥

एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून्।
व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५ ॥

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः।
वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥

कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥

इस कथा प्रसंग के २४, २५ और २६ वें श्लोक के आधार पर ही श्रीकृष्ण सार्वभौम ने अपने पदाङ्कदूत काव्य की रचना की है। इसके अतिरिक्त गोपियों का अपनी विरहावस्था में वृन्दावन की लताओं और वृक्षों से कृष्ण के सम्बन्ध में पूछना भी अनेक दूत काव्यों का मार्गप्रवर्तक है।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ४६ वें अध्याय में भी सन्देश काव्य की कुछ रूपरेखा पाई जाती है। कृष्ण जब गोकुल से मथुरा आ जाते हैं और बहुत दिनों तक उन्हें गोकुल जाने का अवसर ही नहीं मिलता है तब वे नन्द और यशोदा के दुःख

को दूर करने तथा गोपियों को सान्त्वना देने के लिये अपने प्रिय मित्र उद्धव को गोकुल भेजते हैं। यह कथा भागवत में इस प्रकार है–

वृष्णीना प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयित सखा।
शिष्यो बृहस्पते साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तम ॥१॥

तमाह भगवान् श्रेष्ठ भक्तमेकान्तिन क्वचित्।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरि ॥२॥

गच्छोद्धव व्रज सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह।
गोपीना मद्वियोगाधि मत्सन्देशैर्विमोचय ॥३॥

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिका।
मामेव दयित प्रेष्ठमात्मान मनसा गता ॥४॥

ये त्यक्त लोक धर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥५॥

मयि ता प्रेयसा प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रिय।
स्मरन्त्योऽग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वला ॥६॥

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्राय प्राणान् कथचन।
प्रत्यागमनसन्देशैर्वल्लव्यो मे मदात्मिका ॥७॥

इत्युक्त उद्धवो राजन् सन्देश भर्तुराहत।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८॥

इस प्रकार उद्धव के गोकुल पहुँचने पर नन्द और यशोदा उनका बड़ा स्वागत करते हैं। उद्धव भी उन्हें कृष्ण भगवान् का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हैं तथा शीघ्र ही व्रज में कृष्णजी के पहुचने का आश्वासन भी देते हैं–

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युत।
प्रिय विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वता पति ॥३४॥

हत्वा कस रगमध्ये प्रतीप सर्वसात्वता
यदाह व समागत्य कृष्ण सत्य करोति तत् ॥३५॥

मा खिद्यत महाभागौ द्रक्ष्यथ कृष्णमन्तिके।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥३६॥

इस प्रकार नन्द और यशोदा के शोक को दूर कर उद्धवजी जब मथुरा जाने को उद्यत होते हैं तब कुछ गोपिया उनके रथ को रोक कर खड़ी हो जाती हैं। इसके आगे का कथा प्रसग दशम स्कन्ध के ४७ वें अध्याय में इस प्रकार है –

त वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥

शुचिस्मिताः कोऽयमपीव्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥२॥

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ।
भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥४॥

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ।
स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥५॥

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् ।
पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥६॥

निःस्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ।
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥७॥

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ।
दग्धं मृगास्तथारण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ।
कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः ।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ १० ॥

इसी अवसर पर कहीं से एक भ्रमर आ जाता है और कोई गोपी उसे कृष्ण का दूत समझ बैठती है। तदनन्तर वह उस भ्रमर से कहती है —

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।
प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुच-विलुलित-माला-कुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ।
परिचरति कथं तत्पादपद्मं नु पद्मा ।
ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥

किमिह बहु षडंघ्रे गायसि त्वं यदूना
मधिपतिमगृहाणामग्रतो न पुराणम् ।
विजयसख सखीना गीयता तत्प्रसग
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टा ॥ १४ ॥

दिवि भुवि च रसाया का स्त्रियस्तद्दुरापा
कपटरुचिर हास भ्रूविजृम्भस्य या स्यु ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्द ॥ १५ ॥

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेता किन्नु सन्धेयमस्मिन् ॥ १६ ॥

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपा स्त्रीजित कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् य-
स्तदलमसितसख्यै दुस्त्यजस्तत्कथार्थ ॥ १७ ॥

यदनुचरित—लीला—कर्ण—पीयूष—विप्रुट्—
सकृददन—विधूत—द्वन्द्व—धर्मा विनष्टा ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥ १८ ॥

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधाना
कुलिकरुतमिवाज्ञा कृष्णवध्वो हरिण्य ।
ददृशिम सकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र—
स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥

प्रियसख पुनरागा प्रेयसा प्रेषित किं
वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यज द्वन्द्वपार्श्वं
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधू साकमास्ते ॥ २० ॥

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ।
क्वचिदपि स कथा न किङ्करीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥ २१ ॥

गोपियों के इस कथन के बाद—

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शन लालसा
सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत् ॥२२॥

इत्यादि श्लोकों में उद्धवजी ने गोपियों की कृष्णभक्ति की बड़ी प्रशंसा की है और अन्त में उन्होंने गोपियों को कृष्णजी का सन्देश भी सुनाया है—

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।
यमादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः ॥२८॥

इसके बाद कृष्णजी के शब्दों में ही वे गोपियों को कृष्णजी का सन्देश सुनाते हैं –

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।
तथाहं च मनः प्राणभूतेन्द्रिय गुणाश्रयः ॥२९॥

आत्मन्येवात्मनाऽऽत्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ।
आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥३०॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तो गुणान्वयः ।
सुषुप्ति स्वप्न जाग्रद्भिः मायावृत्तिभिरीयते ॥३१॥

येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ।
तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥३२॥

एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् ।
त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥३३॥

यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ।
मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥३४॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ।
स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षिगोचरे ॥३५॥

मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥३६॥

कृष्णजी के इस सन्देश को सुनकर गोपियां उद्धवजी को कृष्णजी की विभिन्न कथायें और लीलायें सुनाती हैं। उद्धवजी भी कृष्ण की कथाओं और लीलाओं में ही प्रसन्न रहते हुए गोकुल में कई मास बिता कर तथा कृष्णजी के प्रति गोपियों का

सन्देश लेकर मथुरा वापिस लौट आते हैं। श्रीमद्भागवत के इस प्रसग के आधार पर ही श्री रूपगोस्वामी के उद्धव सन्देश तथा माधवकवीन्द्र के उद्धवदूत की रचना हुई है। उक्त प्रसग में भ्रमर को भी दूत कल्पित किया गया है। अत यह प्रसग रुद्र न्याय वाचस्पति के भ्रमरदूत तथा अन्य भृ ग दूतों का भी आधार है।

उपर्यु क्त प्रसग के अतिरिक्त भागवत में कुछ अन्य स्थलों में भी सन्देश काव्यों के प्रारम्भिक तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। दशम स्कन्ध के ६० वें अध्याय में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन किया गया है। कृष्णजी द्वारकापुरी में बड़े आमोद प्रमोद के साथ अपना जीवन बिताते हैं। शुकदेवजी उनके चरित्र का वर्णन करते हुए कहते है –

सुख स्वपुर्यां निवसन् द्वारकाया श्रिय पति ।
सर्वसम्पत्समृद्धाया जुष्टाया वृष्णि पु गवै ॥ १ ॥

स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभि ।
कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु, क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्यु भि ॥ २ ॥

नित्य सकुलमार्गायाम् मदच्युद्भिर्मतगजै ।
स्वलङ्कृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलै ॥ ३ ॥

उद्यानोपवनाढ्याया पुष्पितद्रुम राजिषु ।
निर्विशद्भृ गविहगै र्नादिताया समन्तत ॥ ४ ॥

रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभ ।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु । ५ ॥

प्रोत्फुल्लोत्पल कह्लार कुमुदाम्भोजरेणुभि ।
वासितामलतोयेषु कूजद्—द्विज—कुलेषु च ॥ ६ ॥

विजहार विगाह्याम्भो ह्रदिनीषु महोदय ।
कुचकु कुमलिप्ताग परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥

उपगीयमानो गन्धर्वै मृ दङ्गपणवानकान् ।
वादयद्भिर्मु दा वीणा सूतमागधवन्दिभि ॥ ८ ॥

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभि स्म रेचकै ।
प्रतिसिञ्चन् विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ६ ॥

ता क्लिन्न—वस्त्र—विवृतोरकुच प्रदेशा
सिञ्चन्त्य उद्धृत—बृहत्कवर—प्रसूना ।
कान्त स्म रेचक—जिहीरययोपगुह्य
जातस्मरोत्सवलस—द्वदना विरेजु ॥ १० ॥

कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्रक्
क्रीडाभिषङ्गधुत—कुन्तल—वृन्द—बन्ध ।
सिञ्चन् मुहु युवतिभि प्रतिषिच्यमानो
रेमे करेणुभिरिवेभपति परीत ॥ ११ ॥

नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ।
क्रीडालंकार वासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रिय ॥ १२ ॥

कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितै ।
नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गै स्त्रीणां किल हृता धिय ॥ १३ ॥

ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ।
चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदत शृणु ॥ १४ ॥

महिष्य ऊचुः

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोध ।
वयमिव सखि कच्चिद् गाढ निर्भिन्न चेता
नलिन नयन हासोदार लीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्
त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ।
दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां
किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् ॥ १६ ॥

भो भो सदा निष्टनसे उदन्वन्-
नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागर ।
किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छन
प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥

त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इन्दो
क्षीणस्तमो न निजदीधितिभि क्षिणोषि ।
कच्चिन्मुकुन्द गदितानि यथा वय त्वं
विस्मृत्य भो स्थगितगीरुपलक्ष्यसे न ॥ १८ ॥

किन्न्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ।
गोविन्दापाङ्ग निर्भिन्ने हृदीरयसि न स्मरम् ॥ १९ ॥

मेघ श्रीमस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनम्
श्रीवत्साङ्कम् वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्ध ॥
अत्युत्कण्ठ शवलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधारा
स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दु खदस्तत्प्रसग ॥२०॥

प्रियरावपदानि भाषसे मृतसञ्जीविकयानया गिरा।
करवाणि किमद्य ते प्रिय वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥२१॥
न चलसि न वदस्युदार बुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम्।
अपि बत वसुदेव नन्दनाङ्घ्रि वयमिव कामयसे स्तनै विधर्तुम् ।२२

शुष्यद्ध्रदा कर्शिता बत सिन्धुपत्न्य
सम्प्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तु ।
यद्वद् वय मधुपते प्रणयावलोक-
मप्राप्य मुष्टहृदया पुरुकर्शिता स्म ॥२३॥

हस स्वागतमास्यता पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरे कथाम्।
दूत त्वा नु विदाम कच्चिदजित स्वस्त्यास्त उक्त पुरा ॥
किं वा नश्चलसौहृद स्मरति त कस्माद्भजामो वयं।
क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ।२४।

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे।
क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमा गतिम् ॥ २५ ॥

उपर्युक्त प्रसग में महिषियों का उन्मत्त की तरह कुररी, चक्रवाकी, चन्द्रमा, मलयानिल, मेघ, कोकिल, पर्वत, नदियों और हस को सम्बोधन करना तथा कृष्णजी के सम्बन्ध में उनसे वार्तालाप करना परवर्ती कवियों को विभिन्न सन्देशकाव्य लिखने में अवश्य ही प्रेरक रहा होगा। श्री रूपगोस्वामी के हसदूत में भागवत का प्रभाव स्पष्ट ही दिखलाई देता है। इस काव्य की न केवल कथा ही प्रत्युत नाम भी भागवत के आधार पर है। परवर्ती कवियों ने चन्द्रमा, पवन, मेघ, कोकिल और हस जैसे ही सन्देश वाहक अपने काव्यों में नियुक्त किये हैं।

उपर्युक्त प्रसगों के अतिरिक्त श्रीमद् भागवत में एक और स्थल पर भी दूत द्वारा सन्देश प्रेषण का कार्य पाया जाता है। रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से निश्चित हो जाता है किन्तु रुक्मिणी इस विवाह सम्बन्ध को नहीं चाहती है। वह श्रीकृष्णजी से विवाह करना चाहती है। इसी प्रसग में विदर्भ से द्वारका को दूत के रूप में एक ब्राह्मण भेजा जाता है। यह कथा इस प्रकार है —

राजाऽसीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्रा कन्यैका च वरानना ॥१०॥५२॥२१॥

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तर ।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषा स्वसा सती ॥२२॥

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रिय ।
गृहागतैर्गीयमानास्त मेने सदृश पतिम् ॥ २३ ॥

ता बुद्धि लक्षणौ दार्य रूपशील गुणाश्रयाम् ।
कृष्णश्च सदृशीं भार्या समुद्वोढु मनो दधे ॥ २४ ॥

बन्धूनामिच्छता दातु कृष्णाय भगिनीं नृप ।
ततो निवार्य कृष्णद्विट् रुक्मी चैद्यममन्यत् ॥२५॥

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ।
विचिन्त्याप्त द्विज कञ्चित् कृष्णाय प्राहिणोद् द्रुतम् ॥२६॥

द्वारका स समभ्येत्य प्रतीहारै प्रवेशित ।
अपश्यदाद्य पुरुषमासीन काञ्चनासने ॥२७॥

दूत के पहुचने पर कृष्णजी उसका स्वागत-सत्कार करते हैं, कुशलमगल पूछते हैं तथा उसके आने का कारण भी जानना चाहते हैं। इसी समय ब्राह्मण श्रीकृष्ण को रुक्मिणी का सन्देश सुनाता है—

रुक्मिणी का कथन

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वताते
निर्विश्य कर्णविवरै हरतोऽङ्गतापम् ।

रूप दृशा दृशिमतामखिलार्थलाभम्
त्वय्यच्युते विशति चित्तमपत्रप मे ॥३७॥

का त्वा मुकुन्द महती कुलशील रूप
विद्यावयो द्रविण धामभिरात्म तुल्यम् ।

धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या-
काले नृसिंहनरलोकमनोऽभिरामम् ॥३८॥

तन्मे भवान् खलु वृत पतिरङ्ग जाया
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्रविभो विधेहि ।

मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥३९॥

पृतेष्ट दत्त नियम व्रत देवता
गुर्वर्चनादिभिरल भगवान् परेश ।

आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणि
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥४०॥

श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
गुप्त समेत्य पृतनापतिभि परीत ।

निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबल प्रसह्य
मा राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥४१॥

अन्त पुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धू स्
त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।

पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा
यस्या बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥४२॥

यस्याङ्घ्रि पङ्कजरज स्नपन महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।

यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसाद
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभि स्यात् ॥४३॥

रूक्मिणी के इस सन्देश को सुनकर श्रीकृष्णजी निश्चित समय पर विदर्भ देश में आ जाते हैं और पूर्व योजना के अनुसार रूक्मिणी को पार्वती के मन्दिर से रथ में बैठा कर ले जाते हैं। इस कथानक में दूत द्वारा पूर्वानुराग में सन्देश प्रेषण स्पष्ट ही है। इस कथा के आधार पर ही श्री लक्ष्मण-सूरि ने विप्र सन्देश नामक काव्य लिखा है।[1]

प्राचीन संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त भारतीय लोकगीतों में भी पत्नियों द्वारा पत्र भेजने की परम्परा के उदाहरण पाये जाते हैं। जब विरहिणी दूर देश में गये पति की याद कर उसे सन्देशा भेजने का विचार करती है, तब उसे कागा और अन्य पक्षी ही सहायक दिखलाई पड़ते हैं। वह कहती है –

केकरे हाथ चिठिया लिखि,
भेजू, केकरे हाथ सन्देश ?

[1] पूर्ण चन्द्रोदय प्रेस, तंजोर द्वारा प्रकाशित (१९०६)।

कागा के हाथ चिठिया लिखि
भेजूं, पछी हाथ सन्देश ।

बौद्धों के जातक साहित्य में चिड़ियों द्वारा सन्देश ले आने के कई मनोरंजक प्रसग देखने में आते हैं। कलण्डुक जातक (स० १२७) में एक तोते की ही कथा है। वाराणसी का एक सेठ अपने कलण्डुक नाम के दास की खोज करने के लिए अपने पालतू तोते को भेजता है। वह तोता भी दास का पता लगाकर अपने सेठ को वापिस सूचना देता है।

कामविलाप जातक (स० २९७) में शूली का दण्ड पाया हुआ एक व्यक्ति आकाश में उड़ते हुए एक कौवे को देखकर प्यारी भार्या के पास उसके द्वारा सन्देश भेजता है। यह कौवे से कहता है–

उच्चे सकुण डेमान पत्तयान विहंगम,
वज्जासि खोत्वं वामूरू चिर खोसा करिस्सति ॥

इद खो सा न जानाति असिं सत्तिंच ओड्डितम् ।
सा चण्डी काहति कोध त मे तपति नो इध ॥

एस उप्पल सन्नाहो निक्ख मुस्सीसके कत ।
कासिकच मुदु वत्थ तप्पतु धन कामिका ॥

कुतनि जातक (स० ३४३) में एक ऐसे पक्षी की कथा है, जो कोशल के राजा के यहा रहता था और राजा को दूत के समान सन्देश पहुँचाया करता था (सा फिर रञो दुतेय्य हारिका)। उस चिड़िया के दो छोटे बच्चे थे। एक बार कोशल राज ने एक पत्र देकर चिड़िया को किसी दूसरे राजा के पास भेजा। उसके बाहर चले जाने पर कुछ उपद्रवी लड़कों ने उसके बच्चों को मार डाला। लौटने पर चिड़िया ने कोशल राज से उसका बदला लिया और सदा के लिये वहा से चली गई।

महाउम्मग नामक एक दूसरे जातक (स० ५४६) में उत्तर पचाल की अत्यन्त सुन्दरी राजकुमारी 'पचाल चडी' का हाल मिलता है। पचाल तथा विदेह के राजाओं में उस समय गहरी शत्रुता चल रही थी। पचाल के राजा ने अपने शत्रु को नीचा दिखाने के लिये एक नई चाल चली। अपनी सुन्दरी पुत्री की प्रशसा में उसने कवियों से आकर्षक रचनायें निर्मित कराईं। इसके बाद सगीतज्ञों द्वारा कुछ पक्षियों के गले में घटिया बाध दी गईं। फिर इन पक्षियों को विदेह राजा के राज्य में भेजा गया। वहा ये पंचाल राजकुमारी के रूप-सौंदर्य का गायन अत्यन्त मधुर शब्दों में करते तथा यह भी गाते कि राज कन्या विदेहराज पर अनुरक्त है और उसे छोड़ किसी अन्य को वरण नहीं करना चाहती। पक्षियों के यह गीत राजधानी मिथिला

में यहा के राजा ने भी सुने। वह पंचाल की राजकुमारी पर मुग्ध हो गया। इस प्रकार पक्षियों के द्वारा पचाल नरेश ने मिथिला के राजा को फसाने में सफलता प्राप्त की।

प्राचीन काल में भारतीय पक्षियों की माग विदेशों में बहुत थी। यूनान और रोम वाले भारतीय तोतों को बहुत पसन्द करते थे। इनके अलावा तीतर, गरुड़, चकोर, बाज आदि पक्षी भी भारत से बडी सख्या में मंगाये जाते थे। यूनानी लेखकों ने इनकी चर्चा अपने लेखों में बहुत की है।

ईस्वी पहली या दूसरी शती में बनाई गई चाँदी की एक गोल तश्तरी एशिया माइनर के उत्तर पश्चिमी कोने में स्थित लेप्सक्स नामक स्थान से मिली है। यह इस समय वहा के स्ताम्बूल म्यूजियम में प्रदर्शित है। उस तश्तरी के बीच में भारत लक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति बनी है तथा उसके अगल बगल में अनेक भारतीय पशुओं तथा तोता, एवं चकोर पक्षियों का बडी सुन्दरता के साथ चित्रण किया गया है[1]।

उपर्युक्त प्रसगो से यह विदित होता है कि प्राचीन भारत में पक्षी भी बडे प्रशिक्षित होते थे तथा विदेशों में भी उनका बडा मूल्य मिलता था। समुद्र यात्रा करने वाले माँझियों के पास कुछ ऐसे प्रशिक्षित पक्षी भी होते थे, जो छोड देने पर समुद्रतट का पता लगाकर फिर जहाज पर वापस आ जाते थे। इस प्रकार ये दिशा काक पथप्रदर्शक का काम बड़ी कुशलता से किया करते थे।

पशु-पक्षियों के दूतकार्य तथा पथप्रदर्शन से भी, समवहै, परवर्ती कवियों को उन्हें सन्देशवाहक बनाकर विभिन्न सन्देशकाव्य लिखने की प्रेरणा मिली हो[2]।

सन्देश काव्य का शिल्प विधान

, जैसा कि सन्देशकाव्य शब्द से स्वय स्पष्ट है, इस प्रकार के काव्यों में प्राय किसी विरही नायक या नायिका के अपनी प्रेयसी या प्रिय के पास दूत द्वारा सन्देश

---

[1] दे 'नवनीत' हिन्दी मासिक मार्च १९५६ में श्रीकृष्णप्रसाद वाजपेयी क्यूरेटर, मथुरा म्यूजियम का 'पशु पक्षियों के दूत कार्य' लेख।

[2] मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत महाकाव्य में भी तोते के मुँह से पद्मावती का रूप वर्णन पाया जाता है। विरहिणी नागमती भी सब जीव जतुओं और पशु पक्षियों में सहानुभूति की भावना करती हुई कहती है--

पिउ सौं कहेहु सदेसडा, हे भौंरा, हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहि क धुवा हम्ह लाग।

सस्कृतकथासाहित्य के प्रमुख ग्रन्थ पंचतन्त्र और हितोपदेश में तो पशु पक्षियों को ही नायक मान कर कथायें लिखी गई हैं।

भेजे जाने की कल्पना की जाती है। संस्कृत साहित्य में विभिन्न प्रकार की रचनाओं के लिये आदर्श स्वरूप किसी ग्रन्थ का ढूंढ निकालना बड़ा ही कठिन है, लेकिन सन्देश काव्यों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। कालिदास का मेघ सन्देश संस्कृत साहित्य का प्रथम सन्देश काव्य है जिसके अनुकरण पर परवर्ती कवियों के द्वारा अनेक सन्देश काव्य लिखे गये हैं। कालिदास ने मेघ सन्देश में काव्यका जैसा विभाजन तथा कथावस्तु का जैसा तारतम्य रक्खा है, वह इतना मनोवैज्ञानिक तथा व्यवस्थित है कि बाद में सभी काव्यों में उसका पूर्णतया अनुकरण किया गया है।

सन्देश काव्यों में प्रायः दो भाग होते हैं – पूर्व भाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग में सर्वप्रथम नायक अथवा नायिका को विरही रूप में उपस्थित किया जाता है। तदनन्तर दूत का दर्शन, उसका स्वागत, उसकी प्रशंसा तथा उसकी शक्ति का वर्णन किया जाता है। फिर उससे सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना के साथ २ गन्तव्य स्थान तक का मार्ग वर्णित किया जाता है। इस प्रकार मार्ग वर्णन करते २ पूर्व भाग समाप्त हो जाता है। तदनन्तर उत्तर भाग में गन्तव्य नगरी का वर्णन, प्रिय या प्रेयसी के निवासस्थान का वर्णन और फिर नायिका अथवा नायक की विभिन्न चेष्टाओं और विरहावस्थाओं की सभावना की जाती है। इसके बाद उचित स्थल तथा अवसर देख कर सन्देश सुनाने की प्रार्थना की जाती है। सन्देश के बाद सन्देशवाहक की सत्यता प्रमाणित करने के लिए प्रेमियों के अन्तरंग जीवन की कोई गुप्त घटना भी अभिज्ञान स्वरूप वर्णित की जाती है। अन्त में सन्देश वाहक के प्रति शुभकामना के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

कालिदास ने अपने काव्य में ऐसा ही विषय क्रम रक्खा है। बाद में और कवियों ने इसी क्रम का पालन किया है। किसी २ काव्य में कोई बात कम भले ही हो, लेकिन उपर्युक्त विषय के अतिरिक्त और कोई नवीन वस्तु देखने में नहीं आती है।[1] कालिदास ने अपने सन्देश-काव्य के द्वारा सन्देश काव्यों का एक नवीन ही शिल्प विधान निर्धारित कर दिया जो कि आगे चलकर परवर्ती कवियों के लिए एक आदर्श सा हो गया और उन्हें सन्देश काव्यों के लिखने में मार्ग प्रदर्शन करता रहा।

सन्देश काव्यों पर प्राचीन साहित्य शास्त्रियों की सम्मति

मेघसन्देश का संस्कृत साहित्य पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा है। सर्व प्रथम भवभूति के मालतीमाधव नाटक में इसका कुछ प्रभाव उपलब्ध होता है। इस नाटक में विरही माधव मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रेयसी मालती के पास भेजता है –

---

[1] सन्देश काव्यों में मंगलाचरण प्रायः नहीं होता है लेकिन किसी किसी कवि ने अपने काव्य में मंगलाचरण भी किया है। यथा उदय-कवि का मयूर-सन्देश और रूपगोस्वामी का हंसदूत।

माधव – तत्कमत्र विपिने प्रियावार्ताहर करोमि ।
(विलोक्य) साधु साधु ।

फलभर परिणाम श्याम जम्बू निकु ज
स्खलन तनु तरगामुत्तरेण स्रवन्तीम् ।
उपचितधनमाल प्रौढतापिच्छनील
श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाह ॥२४॥

(सरभसमुत्थायोन्मुख कृताञ्जलि ।)

कच्चित् सौम्य प्रियसहचरी विद्युदालिंगति त्वा ?
आविर्भूत प्रणय सुमुखाश्चातका वा भजन्ते ?
पौरस्त्यो वा सुखयति मरुत् साधु सवाहनाभि ?
बिभ्रद् बिभ्रत् सुरपतिधनुर्लम्म लक्ष्मीं तनोति ॥२५॥

(आकर्ण्य) अये । अय प्रतिरवभरितकन्दरानन्दितोत्कण्ठनीलकण्ठकलके कानुबन्धिना मन्द्रहुङ्कृतेन मामनुमन्यते, यावदभ्यर्थये । भगवन् ! जीमूत !

दैवात् पश्ये जगति विचरन्निच्छया मत्प्रिया चेत्
आश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थाम् ।
आशा तन्तु र्न च कथयताऽत्यन्तमुच्छेदनीय
प्राणत्राण कथमपि करोत्यायताक्ष्या स एक [1] ॥२६॥

(मा० मा० नवम अक)

---

[1] इस स्थल में मेघ सन्देश का भावानुकरण ही नहीं किया गया है, प्रत्युत श्लोक स० २५ २६ में मन्दाक्रान्ता छन्द का भी प्रयोग किया गया है । श्लोक स०२५ के 'कच्चित् सौम्य' की मेघसन्देश की

कच्चित् सौम्य व्यवसितमिद बन्धुकृत्य त्वयामे

इस पक्ति के प्रारम्भिक पदों से तुलना की जा सकती है तथा श्लोक स० २६ की अन्तिम दो पक्तिया मेघसन्देश की

आशाबन्ध कुसुम सदृश प्रायशो ह्यङ्गनानाम् ।
सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रुणद्धि ॥१॥१०॥

पक्तियों से समानता रखती हैं ।

इसके बाद वीरेश्वर का वाङ्मण्डनगुण-दूत काव्य, जम्बूकवि का चन्द्रदूत तथा धोयि कवि का पवनदूत यह काव्य मेघसन्देश के सर्वप्राचीन अनुकरण के रूप में उपलब्ध होते हैं। सम्भव है कि इन काव्यों से पूर्व भी कुछ सन्देश काव्य लिखे गये हों और वे बड़े लोकप्रिय रहे हों। इस प्रकार के काव्य या तो सर्वथा लुप्त हो गये हैं या वे किसी ग्रन्थ भण्डार में किसी अन्वेषक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ईसवी सातवीं शताब्दी के अन्त या आठवीं के प्रारम्भ में हुए प्रसिद्ध अलंकारशास्त्री आचार्य भामह के काव्यालंकार से अप्रत्यक्ष रूप से कुछ प्राचीन अन्य सन्देशकाव्यों की सत्ता का भी प्रमाण प्राप्त होता है। आचार्य भामह ने सन्देश काव्यों को कुछ अनुचित ही माना है। अपने काव्यालंकार में अयुक्तिमत् दोष का विचार करते हुए उन्होंने लिखा है–

> अयुक्तिमद्यथा दूता जलभृन्मारुतेन्दवः ।
> तथा भ्रमर-हारीत चक्र वाक शुकादयः ॥४२॥
> अवाचोऽव्यक्तवाचश्च दूरदेशविचारिणः ।
> कथं दौत्यं प्रपद्येरन्निति युक्त्या न युज्यते ॥४३॥
> यदि चोत्कण्ठया यत्तदुन्मत्त इव भाषते ।
> तथा भवतु भूम्नेदं सुमेधोभिः प्रयुज्यते ॥४४॥

प्रथमपरि० युक्तायुक्तविचार प्रकरण

भामह के इस अवतरण से यह तो निश्चित ही है कि उनके समय में भी कालिदास के मेघसन्देश के अनुकरण पर कई सन्देश काव्य लिखे जा चुके थे। इसके अतिरिक्त यह अवतरण सन्देश-काव्यों के सम्बन्ध में प्राचीन साहित्यशास्त्रियों के दृष्टिकोण को भी सामने रखता है। यों तो किसी अन्य आचार्य ने सन्देशकाव्यों पर स्पष्ट रूप से कहीं भी अपना कोई मत प्रकट नहीं किया है। केवल धारेश्वर श्री भोजदेव ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में प्रबन्ध विषयक युक्ति के प्रसंग में मेघसन्देश का उद्धरण दिया है –

> प्रबन्धव्यापि वस्तु यपरं हेतुस्तु प्रबन्धविषया युक्तिर्भवति ।
>
> सा यथा–
>
> धूम ज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः ।

इत्यादि। ॥द्वितीय परिच्छेद, ४१॥

तर्क की दृष्टि से सन्देश काव्यों की सारी योजना ही साहित्यशास्त्रियों के लिए भले ही असंगत प्रतीत हो, लेकिन इन काव्यों के साहित्यिक सौन्दर्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। वस्तुतः इन काव्यों का सौन्दर्य मेघ, पवन, चन्द्र, शुक, कोकिल और मयूर जैसे प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण सन्देशवाहकों पर ही निर्भर है।

सन्देश काव्यों के रचयिता भावुक कवि अपने सन्देशवाहकों की अपूर्णताओं से पूर्ण परिचित थे। इसीलिए तो प्राय प्रत्येक काव्य में उन्होंने किसी न किसी प्रकार सन्देशवाहक की क्षमता और योग्यता का समर्थन किया है। विरह की तीव्रता में मनुष्य का चेतन और अचेतन का ज्ञान नष्ट हो जाता है और उस अवस्था में अचेतन मेघ, चन्द्र और पवन इत्यादि तथा शुक, कोकिल और मयूर इत्यादि पक्षियों को दूतकार्य में नियुक्त करना साहित्यिक दृष्टि से कुछ भी अनुचित नहीं है। प्रत्युत इसमें कवि की कल्पना का उत्कर्ष ही है। साहित्यदर्पण में श्री विश्वनाथ ने उन्माद का लक्षण बताते हुए लिखा है–

अथोन्माद

चित्तसमोह उन्माद' काम शोकभयादिभि ।
अस्थान हास रुदित गीत प्रलपनादिकृत् ॥३१॥१६०॥

इसके बाद उदाहरण-स्वरूप उन्होंने स्वरचित एक श्लोक भी प्रस्तुत किया है–

भ्रातर्द्विरेफ भवता भ्रमता समन्ता-
त्प्राणाधिका प्रियतमा मम वीक्षिता किम् ।

(झंकारमनुभूय सानन्दम्)

ब्रूषे किमोमिति सखे कथयाशु तन्मे
किं किं व्यवस्यति कुतोऽस्ति च कीदृशीयम् ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाद में साहित्य शास्त्रियों द्वारा विरहजन्य उन्मादावस्था में भ्रमर इत्यादि को सम्बोधन करना कुछ भी अनुचित नहीं माना गया है और सन्देश काव्यों को साहित्यिक दृष्टि से दोषपूर्ण भी नहीं कहा गया है।

सन्देश काव्यो का शृंगारिक स्वरूप

सन्देश काव्यों के विभिन्न पक्षों पर उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य विरह की ही पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गए हैं। उन प्राचीन ग्रन्थों में भी जिनमें कि सन्देश काव्यों के आदि तत्त्व पाए जाते हैं, प्रेम अथवा विरह के प्रसग में ही दूत द्वारा सन्देश प्रेषण का वृत्तान्त उपलब्ध होता है। घटकर्पर काव्य तथा मेघ सन्देश जिनमें कि सन्देश काव्य का प्रारम्भिक और पूर्ण विकसित रूप क्रमश उपलब्ध होता है, विरह के ही प्रसग को लेकर लिखे गए हैं। मेघसन्देश के प्रथम तथा अन्तिम दोनों श्लोकों में विरह और विप्रयोग शब्द दृष्टिगोचर होते हैं तथा सारा काव्य विरह के ही वातावरण को प्रस्तुत करता है। मार्गवर्णन के प्रसंग में क्या नदिया, क्या पथिक वनिताए और क्या पर्वत-चोटिया सभी विरहिणी सी

वर्णित की गई हैं। नायिका की विरहावस्था के साथ २ सन्देश कथन में नायक की विरहावस्था भी वर्णित की गई है। इस प्रकार सारा काव्य, क्या बाह्य प्रकृति और क्या मानवप्रकृति दोनों के विरह वर्णन से ही ओतप्रोत है। कहीं २ शृंगार के संयोगपक्ष का भी वर्णन पाया जाता है। आगे चलकर पवनदूत, हससन्देश, मयूर सन्देश, कोकिल सन्देश, शुक सन्देश इत्यादि अन्य काव्य भी शृंगार रस के वातावरण में ही लिखे गए हैं। साहित्यशास्त्र में विरह में जितनी भी कामदशाएं बताई गई हैं, उन सब का सन्देश काव्यों में बड़ा क्रमिक और मनोवैज्ञानिक वर्णन प्राप्त होता है। विरह का जैसा सर्वांगीण वर्णन इन सन्देश काव्यों में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आता है। अत सन्देश काव्य अपने मूल रूप में शृंगाररसप्रधान ही हैं।

जैन सम्प्रदाय मे सन्देश काव्यों का धार्मिक रूप

आगे चलकर यह देखने में आता है कि जैन मनीषियों के द्वारा एक नवीन उद्देश्य को लेकर ही कुछ सन्देश काव्य लिखे गए हैं। शृंगार रस के वातावरण में चलने वाली काव्य परम्परा को उन्होंने अपनी प्रतिभा से धार्मिक रूप देकर एक नई दिशा की ओर मोड़ दिया है। त्याग प्रधान जीवन में पूर्ण विश्वास करने वाले जैन मुनियों ने अपनी संस्कृति के उच्च तत्वों तथा पार्श्वनाथ और नेमिनाथ जैसे महापुरुषों के जीवनचरित्र अपने सन्देश काव्यों में अंकित किये हैं। इस प्रकार अचलगच्छीय आचार्य मेरुतुंग ने नेमिनाथ के जीवनचरित्र को लेकर अपना जैन मेघदूत लिखा। कई जैन कवियों ने मेघदूत के अन्तिम पदों को लेकर समस्या पूर्ति-स्वरूप कई सन्देश काव्य लिखे हैं। आठवीं शताब्दी से ही ऐसे प्रयत्न आरम्भ हुये हैं। जिनसेन ने मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर तथा पार्श्वनाथजी के जीवनचरित को लेकर पार्श्वाभ्युदय काव्य लिखा है। उत्तरकालीन कवियों ने भी ठीक वैसा ही किया है। उन्होंने अपने गुरुओं को विज्ञप्तिपत्र लिखते समय सन्देश काव्यों में अपनी धार्मिक प्रगति का वर्णन किया है। इस प्रकार साहित्यिक सौन्दर्य के साथ २ दार्शनिक सिद्धान्त भी उनके काव्यों में पाये जाते हैं। विषय के अनुसार मन और शील जैसे दूत भी नियुक्त किये गये हैं। सन्देश काव्यों में जैन कवियों का यह प्रयोग सर्वथा नवीन है। जैन कवियों द्वारा रचित प्रमुख सन्देश काव्य निम्न लिखित हैं – विक्रमकवि का नेमिदूत, मेरुतुंग का जैनमेघदूत, चारित्र सुन्दरगणि का शीलदूत, किसी अज्ञात कवि का चेतोदूत, विनयविजयगणि का इन्दुदूत, मेघ विजय का मेघदूतसमस्यालेख तथा विमलकीर्तिगणि का चन्द्रदूत इत्यादि। इन सन्देश काव्यों में न केवल सदाचार और संयम का ही आदर्श स्थापित किया गया है, अपितु परमार्थ तत्त्व का भी निरूपण किया गया है। काव्य की भाषा में होने से यह परमार्थ निरूपण और भी सरस और सुगम हो गया है।

उत्तरकालीन भक्तिपरक तथा दार्शनिक सन्देशकाव्य

क्रमश: सन्देश काव्य भारतवर्ष में इतने लोकप्रिय हो गये कि उत्तरकालीन कवियों ने रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत के उदात्तचरित नायकों के जीवनवृत्त को लेकर कई सन्देशकाव्य लिखे। आचार्य वेदान्तदेशिक द्वारा रचित हंस सन्देश के कथानायक स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी हैं। हनुमानजी के सीताजी की खोजकर लंका से लौटने के बाद रामचन्द्रजी द्वारा एक हंस के हाथ सीताजी के पास अपने प्रणय सन्देश के भेजे जाने का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार रुद्रन्याय पंचानन के भ्रमरदूत काव्य में लंका से सीताजी का समाचार लेकर हनुमानजी के वापिस लौटने पर विरह-विधुर श्री रामचन्द्रजी द्वारा भ्रमर के हाथ सीताजी के पास प्रणय सन्देश भेजा गया है। श्रीकृष्णनाथन्याय-पंचानन भट्टाचार्य के वातदूत में भी सीताजी के द्वारा रामचन्द्रजी के पास वायु को दूत बनाकर अपनी दु:ख वार्ता पहुँचाई गई है। इन काव्यों में विरह वर्णन बड़ा सजीव और करुणापूर्ण है। प्राय: यह काव्य रामचन्द्रजी की भक्ति से प्रेरित होकर ही लिखे गये हैं, जैसा कि इन काव्यों के अन्तिम पद्यों से स्पष्ट होता है।[१]

श्री तैलंग व्रजनाथ ने महाभारत की द्रौपदीचीरहरण कथा के आधार पर *मनोदूत नामक अपना सन्देशकाव्य लिखा है। इस काव्य में दु:शासन द्वारा चीर* हरण किये जाने के अवसर पर असहाय द्रौपदी अपने मन को ही दूत बनाकर कृष्ण के पास अपना विनय सन्देश भेजती है। कवि ने द्रौपदी की असहायावस्था एक भक्त की असहायावस्था के समान ही चित्रित की है तथा श्रीकृष्ण की भक्त-वत्सलता और भक्त-परायणता पर विशेष प्रकाश डाला है। इस काव्य में जनता के लिए कृष्णभक्ति का दिव्य-सन्देश दिया गया है। दूसरे शब्दों में यह काव्य कृष्णपरक एक भक्तिकाव्य ही है। कवि ने काव्य के अन्त में कृष्णभक्ति की बड़ी महिमा बताई है–

१

I श्रेयसा प्राप्तिहेतुम्।
सीतारामव्यतिकरसखं हंस सन्देश रत्नम्
पश्यन्त्वन्त श्रवणमनघ चक्षुरुज्जीव्य सन्त ॥
(वे० दे० हं० स० २ ५०)

II शश्वत्कुर्याद् व्यसनजनिताशेषपापोपशान्तिम्।
तस्मै कुर्यान्निज गुण कथाराधितो रामचन्द्र ॥ भ्रमरदूत १२५ ॥

III अध्वश्रान्ति तव परिहरेच्चानुकम्पी प्रणामा–
ल्लब्धाशस्तं मम च जनयेद्द्वन्द्वमावाद्विमोचम् ॥ वातदूत १०० ॥

न तावच्चाचल्यं त्यजति च मनोवृत्तिविहगी ।
न यावच्छ्री कृष्ण स्मरणरससिन्धौ निपतति ॥१६४॥

स कोऽपि श्रीगोपीजन हृदयहारी प्रतिदिनम्
सदा ध्येयो नान्य' प्लवइह भवाम्भोधि तरणे ।
यदीयं नामेदं जगदघभिदा-दीक्षितमहो
स्मरन्भक्त' प्रेमामृतरसनिमग्नो विजयते ॥१६६॥

कुछ कवियों ने श्री मद्भागवत के आधार पर भी कई सन्देश काव्य लिखे हैं। इनमें श्री रूपगोस्वामिन् का हंसदूत और उद्धव सन्देश, माधवकवीन्द्र का उद्धवदूत तथा श्रीकृष्ण-सार्वभौम का पदाकदूत प्रमुख हैं। इन सब कवियों ने कृष्णभक्ति से ही प्रेरित होकर कृष्ण की जीवनलीलाओं का प्रकारान्तर से अपने काव्यों में वर्णन किया है। श्री रूपगोस्वामिन् ने हंसदूत के आदि और अन्त में कृष्ण की बड़ी भाव पूर्ण स्तुति की है [1] तथा उद्धवसन्देश के अन्त में भी श्री कृष्णजी से ससार सागर से पार कर देने की प्रार्थना की है। [2] माधव-कवीन्द्र ने भी अपने उद्धवदूत को कृष्ण के लिये उपहार-स्वरूप अर्पित किया है। [3] श्रीकृष्ण सार्वभौम ने भी श्रीकृष्ण के चरणकमलों को हृदय में धारण करते हुए अपना पदाकदूत लिखा है। [4]

उपर्युक्त काव्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य काव्य भी श्रीकृष्ण की कथा को लेकर लिखे गए हैं। इनमें रुद्रन्याय पंचानन का पिकदूत तथा भोलानाथ का पान्थदूत विशेषतया उल्लेखनीय हैं। पिकदूत में राधा ने पिक के द्वारा मथुरा में कृष्ण के पास अपना विरहसन्देश भेजा है। पान्थदूत में भी गोकुल से मथुरा जाते हुये एक पथिक को दूत बनाकर कृष्ण के पास किसी गोपी ने अपना सन्देश भेजा है। शतावधान-

---

१ I दुकूल बिभ्राणो दलित हरि-ताल द्युति-हर
जपापुष्पश्रेणी रुचि रुचिर पादाम्बुजतल ।
तमालश्यामांगो दरहसित-लीलाचितमुख
परानन्दाभोग' स्फुरतु हृदि मे कोऽपि पुरुष ॥ हंसदूत १ ॥

II प्रबन्धोऽयं बन्धोरखिलजगतां तस्य सरसां
प्रभोरन्त सान्द्रां प्रमदलहरीं पल्लवयतु ॥ हंसदूत १४२ ॥

२ स श्रीकृष्णस्तरुणकरुणस्तारयेद्वो भवाब्धिम् ॥ उद्धव स १३१॥

३ राधाबन्धोरुपहृतमिति प्रेममाध्वीकमेतत्
निर्विघ्नेन श्रवणपुटकै पुण्यवन्त पिबन्तु ॥ उद्धवदूत १४० ॥

४ शाके सायक-वेद षोडशमिते श्रीकृष्णशर्मार्पयन्
आनन्द-प्रद-नन्द-नन्दन पद द्वन्द्वारविन्दं हृदि ।
चक्रे कृष्ण पदाक-दूत-रचनं विद्वन्मनोरंजनम् ॥४६॥

कवि के भृंगदूत में भी एक गोपी भृंग के द्वारा कृष्ण के पास अपना विनयसन्देश भेजती है। इस काव्य में गोपी के कृष्ण प्रेम की उत्कटता व्यक्त की गई है। मानवीय प्रेम के स्थान पर इस काव्य में दिव्य प्रेम का चित्रण किया गया है। वैष्णवों के भक्ति-साहित्य में इस काव्य का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

महाप्रभु श्री चैतन्य के मातुलवर्य श्री विष्णुदास द्वारा रचित मनोदूत भी एक महत्वपूर्ण सन्देश काव्य है। इसमें कवि ने मन के द्वारा श्रीकृष्णजी के पास अपनी करुण प्रार्थना पहुँचाई है। सांसारिक प्रलोभनों, कष्टों और दुर्गों में फंसे हुये मनुष्यों की असहायावस्था का इस काव्य में बड़ा कारुणिक चित्र अंकित किया गया है तथा श्रीकृष्णजी की शरण में जाने के लिये मनुष्यों को प्रेरित किया गया है। इस काव्य में शृंगार रस का नितान्त अभाव है और शान्त रस की ही पवित्र धारा आदि से अन्त तक प्रवाहित हो रही है। भक्तिपरक सन्देश काव्यों में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है।

यहां पर श्री गोपेन्द्र नाथ गोस्वामी द्वारा प्रणीत पादपदूत काव्य का उल्लेख करना अनुचित न होगा। इस काव्य में महाप्रभु श्री चैतन्य की धर्मपत्नी श्री विष्णु प्रिया ने अपने घर में स्थित निम्ब वृक्ष को दूत बनाकर श्री महाप्रभु के पास नीलशैल पर भेजा है। यह काव्य भी कृष्णभक्ति से ओतप्रोत है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के पूर्णसरस्वती द्वारा रचित हंस सन्देश में एक भक्त स्त्री द्वारा हंस के हाथ श्रीकृष्ण के पास वृन्दावन में अपना सन्देश भेजा गया है। इस काव्य में प्रेम के दिव्यस्वरूप को ही चित्रित किया गया है तथा कृष्ण से भक्ति की ही प्रार्थना की गई है।

भक्तिपरक सन्देश काव्यों के अतिरिक्त कुछ सन्देश काव्य दार्शनिक भी पाए जाते हैं। इस प्रसंग में किसी अज्ञात कवि द्वारा विरचित हंस सन्देश विशेषतया उल्लेखनीय है। इस काव्य में माया के बन्धन में फंसकर तथा कर्मों के मोह में पड़कर शिवजी की भक्ति से विरहित किसी पुरुष द्वारा अपने मन रूपी हंस को दूत बनाकर शिवलोक में शिवभक्ति के पास भेजा गया है। वेदान्त, योग और शैवदर्शन के सिद्धान्त ही इस काव्य में प्रतिपादित किए गए हैं तथा इस काव्य का विषय नितान्त दार्शनिक ही है।[1]

---

१ डा० जे० बी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित वीरेश्वर के वाङमण्डन गुणदूत काव्य का विषय सर्वथा भिन्न ही है। इस काव्य में कवि ने अपने मृत्तगुण को दूत बनाकर कालीभित्ति के राजा भीमसेन के पास राजाश्रय पाने के विचार से भेजा है। विषय की दृष्टि से यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। काकदूत नामक एक अन्य दूत काव्य में कारागार में पड़ा हुआ ब्राह्मण काक के द्वारा अपनी प्रेयसी कादम्बरी के पास सन्देश भेजता है। नैतिकता की शिक्षा देने के उद्देश्य से समाज पर लिखा हुआ यह एक व्यंग्य काव्य है (दे० एम० कृष्णमाचारीयर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३६५)।

सन्देश काव्यों से देश का भौगोलिक तथा सामाजिक परिज्ञान

सन्देश काव्य के शिल्प विधान से यह तो स्पष्ट ही है कि इन काव्यों में मार्ग वर्णन भी रहता है। वाल्मीकि रामायण में हनुमानजी तथा अन्य वानरों को सीताजी की खोज में किष्किन्धा नगरी से बाहर भेजते समय मार्ग वर्णन किया ही गया है। कालिदास ने अपने सन्देश काव्य में रामगिरि से अलका तक का मार्ग वर्णित कर उत्तरीय भारत का बड़ा भव्य चित्र प्रस्तुत किया है।

प्राचीन उज्जयिनी, विदिशा, दशपुर तथा दशार्ण देश का प्राचीन वैभव मेघसन्देश के अतिरिक्त अब और कहां देखने को मिल सकता है। वामन भट्ट बाण के हंसदूत में मलय पर्वत माला (ट्रावनकोर पर्वतमाला) से अलका तक का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रसग में ताम्रपर्णी नदी, मदुरा नगर, कावेरी नदी श्रीरगम्, चोलदेश, अरुणाचल, काञ्ची, कालहस्तिमंदिर, कनकमुखरी नदी, कृष्णावेणी नदी, तु गभद्रा, गोदावरी, पचवटी, विन्ध्याचल, सरयू तथा गण्डकी नदी और क्रौंचपर्वत का बड़ा रमणीय वर्णन किया गया है।

धोयी कवि के पवनदूत में मलय पर्वत माला से राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयनगर (बगाल) तक का मार्ग वर्णित किया गया है। मलयपर्वत से पाण्ड्यदेश, ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित उरगपुर, सेतुबन्ध रामेश्वर, काञ्ची पुर, कावेरी, माल्यवान् पर्वत, पचाप्सर नामक झील, आन्ध्र देश, गोदावरी नदी, कलिंग नगरी, विन्ध्यप्रदेश, नर्मदा नदी, ययाति नगरी, सुह्मदेश, त्रिवेणी तदनन्तर विजयपुर-इस प्रकार मार्ग का क्रम बताया गया है। इस काव्य से दक्षिण भारत से बगाल तक के आने जाने के तत्कालीन नियमित मार्ग का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है

वेदान्तदेशिक के हस सन्देश में माल्यवान् पर्वत से लका तक के मार्ग का अच्छा परिचय मिलता है। माल्यवान् पर्वत से अञ्जनाद्रि (वेंकटाद्रि), कनकमुखरी नदी, तुण्डीर देश, सत्यव्रत क्षेत्र, काञ्चीपुर, वेगा नदी, हस्तिशैल, चोल देश, श्वेतशैल, कावेरी, श्रीरगधाम, पाण्ड्य देश, वृषभाद्रि, ताम्रपर्णी नदी, मलयाचल, समुद्रतट, समुद्र के मध्य में स्थित सुवेल पर्वत और वहां से फिर लका इस प्रकार मार्ग का निर्देश किया गया है।

लक्ष्मीदास के शुकसन्देश में रामेश्वरम् से गुणकापुर (तृक्कणामतिलकम्) तक के भूभाग का बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है। सेतुबन्ध रामेश्वर से समुद्रतट होते हुए ताम्रपर्णी नदी, पाण्ड्य राजाओं की राजधानी मणलूर नगरी (मानालोर), सह्यपर्वत, केरल-देश, स्यानन्दूर (त्रिवेन्द्रम्), कूपक राजाओं की नगरी कुलपुरी, कोलम्बदेश (क्विलान), वल्लभग्राम (तिरुवल्ल), चिम्बली नगरी (चेम्पनाट), चिम्बली राजाओं का स्कन्धावार, सिन्धु द्वीप (कतल तुरुत्त), कुरूला नदी

(मुत्वात्तुपुरूं), सुब्रह्मण्यमन्दिर, पशुपतिक्षेत्र, चूर्णीनदी (अल्वेय या पेरियार), केरलराजाओं की राजधानी माहोदयपुरी (तिरुवचिक्कुलम्) तदनन्तर गुणकापुरी (तन्कणामतिलकम्) –इस प्रकार रामेश्वरम् से गुणकापुरी तक का मार्गक्रम निर्दिष्ट किया गया है।

लक्ष्मीदास के शुकसन्देश में केरलदेश के दक्षिण भूभाग का वर्णन पाया जाता है। उद्दण्ड शास्त्री के कोकिल सन्देश में केरल देश के उत्तरीय भाग काची नगरी से जयन्तमगल (आधुनिक चेन्नमगल) तक के प्रदेश का बड़ा ही कवित्वमय वर्णन किया गया है। काची नगरी कम्पा नदी क्षीरसिन्धु नदी (पालार)–चोलदेश शिव क्षेत्र–कावेरी–होसलदेश–लक्ष्मीनारायणपुर–सह्यपर्वत–केरलदेश–वाङ्मयी–नदी पुरली (कोट्टयम्) के राजाओं की राजधानी–शम्बरदेश कोलदेश–कुक्कुटक्रोड (कालीकट)– प्रकाशदेश (वेट्टत्तुनाट)–श्वेतारण्य (तृप्रंगोट्)–निलानदी–नेत्रनारायणीय ब्राह्मणों का देश रत्नखल देश (पोर्कल)–वृषपुरी (तृश्शूर)–सगमग्राम (इरिंगा लक्कुट)– कुरुम्बवन अञ्जनखलपुरी (तिरुवचिक्कुल)—चूर्णीनदी–जयन्त मगल इस प्रकार काची से जयन्तमगल तक का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है।

वासुदेवकवि के भृगसन्देश, विष्णुत्रात के कोकसन्देश और पूर्ण सरस्वती के हस सन्देश में भी दक्षिण भारत के विभिन्न भूभागों का पर्याप्त वर्णन मिलता है। उदयकवि के मयूर सन्देश में स्यानन्दूर (त्रिवेन्द्रम्) से अन्तकर (त्रिचूर के पास कोई ग्राम) तक का भूभाग वर्णित किया गया है। स्यानन्दूर (त्रिवेन्द्रम्) से समुद्र तट होते हुए वरकल क्षेत्र (वरकल)–कूपक राजाओं की राजधानी कोलम्ब नगरी (किलान)–पूगुदी प्रदेश (आधुनिक कायन्कुलम्) में स्थित करिटयूर नगर वल्लभ क्षेत्र (तिरुवल्ल)–मणिकण्ठ मन्दिर–पचुला नदी कीर्तिमद्ग्राम सिन्धु द्वीप (कटत्तु कत्तु)- कुरला नदी–रविपुर–ग्राम (त्रिपुणीतीर्थ) शिवमन्दिर–वाल्यक्षोणी देश की राजधानी- अभिनवकुरम्बमन्दिर–चूर्णी नदी माहोदयपुरी अजनाक्षेत्र (तिरुवचिक्कुलम्)- गुणकापुरी–सगमग्राम कुलीपिनीवापी–वृषपुर (त्रिचुर) का शिवमन्दिर श्वेतरथेय (वेंकिट–न्नुग्राम)–ब्रह्मक्षेत्र (ब्रह्मक्कुलम्) सितगरुत्तीर (श्वेतच्छदतटअन्तकर)–इस प्रकार एक विस्तृत भूभाग का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है। दक्षिण भारत के प्राचीन नगरों, नदियों तथा विशिष्ट मन्दिरों का यथास्थान इस काव्य में पर्याप्त वर्णन मिलता है। भूगोल के विद्वानों के लिए दक्षिण भारत में लिखे गए यह सन्देश काव्य बड़ा महत्त्व रखते हैं। मध्य काल की भौगोलिक स्थिति के अध्ययन करने में इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। इसके अतिरिक्त तत्तत् प्रदेश के प्राकृतिक उत्पादनों का भी हमें इन सन्देश काव्यों से ज्ञान प्राप्त होता है। भौगोलिक परिज्ञान के साथ साथ दक्षिण भारत के धर्म तथा वहा के जनजीवन की भी इन सन्देश काव्यों में तत्तत् स्थान पर झलक पाई जाती है।

श्री मेघविजय द्वारा प्रणीत मेघदूत-समस्यालेख में औरंगाबाद से द्वीपपुरी

(दीव बन्दर, गुजरात) तक के मार्ग का बड़ा ही सूक्ष्म परन्तु विशद विवरण प्राप्त होता है। नगरपुरी (औरंगाबाद) देवगिरि पर्वत तथा नगरी एलौर पर्वत-तुंगिला पर्वत तापी नदी भृगुपुर नर्मदानदी महीनदी सिद्धशैलशत्रुंजय नामक जैन तीर्थ-द्वीपपुरी (दीवबन्दर)-इस प्रकार औरंगाबाद से दीवबन्दर तक के मार्ग का क्रम निर्दिष्ट किया गया है। मार्ग में पड़ने वाले अनेक जैन मंदिरों और तीर्थ स्थानों का बड़ी श्रद्धा के साथ काव्य में वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार विनय विजयगणि के इन्दुदूत में योधापुर (जोधपुर) से सूरत तक का मार्ग वर्णित किया गया है। योधापुर (जोधपुर)-सुवर्णगिरि श्री महावीर और श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिर-जालन्धर नगर (जालोर)-रोहिणी नगरी (सिरोही)-अर्बुद पर्वत (माउन्ट आबू) अचल पर्वत श्रीकुमारपाल राजा का जैन मंदिर-सरस्वती नदी के तट पर स्थित सिद्धपुर-साभ्रमती नदी (साबरमती नदी)-राजद्रंग (अहमदाबाद)-धाटपद्री नगरी (बड़ौदा) नर्मदानदी भृगुपुर (भडौंच)-तापी नदी-सूर्यपुर (सूरत)-इस प्रकार जोधपुर से सूरत तक का मार्गक्रम निर्दिष्ट किया गया है। मार्ग में आने वाले विभिन्न जैन तीर्थों तथा मन्दिरों का भी यथास्थान वर्णन किया गया है। इन दो काव्यों के मार्ग वर्णन से यह प्रतीत होता है कि देश के इस भूभाग में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। राजद्रंग (अहमदाबाद), भृगुपुर (भडौंच) और सूर्यपुर (सूरत) के वर्णन से इन नगरों की तत्कालीन सम्पन्नता का भी परिचय प्राप्त होता है। जैन मुनि पैदल ही यात्रा करते हैं। उनका भौगोलिक ज्ञान किताबी न होकर अनुभव जन्य होता है। इसलिए जैन सन्देश काव्यों का भौगोलिक दृष्टि से भी कम महत्त्व नहीं है।

बंगाली कवियों द्वारा रचित कृष्ण संबंधी सन्देश काव्यों में यद्यपि भौगोलिक वर्णन अधिक नहीं है, फिर भी इन काव्यों में व्रजभूमि (गोकुल से मथुरा) का बड़ा रम्य चित्र अंकित किया है। सोरों (उ०प्र०) के निकट रहने वाले शतावधान कवि के भृंगदूत में भी व्रज भूमि का सरस तथा श्रद्धापूर्ण वर्णन पाया जाता है।

इस प्रकार संस्कृत के सन्देश काव्य भारतवर्ष के भौगोलिक अध्ययन में बड़े सहायक हैं। इन काव्यों से देश के विभिन्न भूभागों में आने जाने के प्राचीन मार्गों तथा प्राकृतिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल तथा सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने वालों के लिए यह काव्य नितान्त उपादेय हैं।

सन्देश काव्यों की भाषा, शैली और छन्द

विप्रलम्भ शृंगार तथा भक्ति भावना को लेकर ही सन्देश काव्य लिखे गए हैं। इन काव्यों में जैसी कोमल और मधुर भावनाएं पाई जाती हैं, वैसी संस्कृत

यद्यपि इस प्रकार के प्रणयसन्देश का जन साधारण से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी सहृदय पाठक कवि के विचारों को हृदयगम कर अपने जीवन में उनका सदुपयोग कर ही सकते हैं। स्वय कालिदास ने ही यक्ष के द्वारा मनुष्यमात्र के लिए जीवन के चिरन्तन सत्य की ओर सकेत किया है। प्राय दुख के समय मनुष्य घबरा उठता है और हताश हो जाता है। ऐसे ही अवसर पर मेघसन्देश की यह पक्तिया—

कस्यात्यन्त सुखमुपनत दु खमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

दुख सागर में निमग्न प्रत्येक मनुष्य के लिए बड़ा साहस देने वाली हैं।

प्राय ऐसा देखा जाता है कि विरह में हर एक बड़ी निराशा का अनुभव करने लगता है और उसे प्रेम का दीप बुझता हुआ सा प्रतीत होने लगता है। ऐसे ही अवसर पर प्रेमदीप में स्नेहधारा बढानेवाली यह पक्तिया—

स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्वसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥

कितनी उपादेय हैं। मेघसन्देश के अतिरिक्त विरहपरक अन्य सन्देश-काव्यों में भी जीवन सम्बन्धी कुछ विशिष्ट अनुभूतिया देखने में आती हैं। कवियों ने अपने सन्देश काव्यों में तत्तत् स्थानों पर बडे गम्भीर विचार पाठकों के सम्मुख रखे हैं। विरह प्रधान काव्यों से हम यह भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि भोगपरायण जीवन की अपेक्षा निवृत्तिपरायण जीवन कहीं अधिक श्रेष्ठ है। विरह के बाद मिलन का माधुर्य कुछ और ही होता है। किसी कवि ने उचित ही कहा है–

सुख हि दु खान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।

इसके अतिरिक्त जैन कवियों ने अपने सन्देश काव्यों में निश्चित रूप से पाठकों के लिये कुछ विशिष्ट सन्देश दिया है। शृगार-परक सन्देश काव्यों का शान्तरस में पर्यवसान कर तथा श्री नेमिनाथ और श्री स्थूलभद्र जैसे महापुरुषों को अपने काव्य का नायक बनाकर इन कवियों ने पाठकों के समक्ष शान्त रस का आदर्श उपस्थित किया है। यह शान्त रस ही है जो मनुष्य को मानवधर्म की स्मृति कराता है तृष्णाओं का क्षय करता है और मानवहृदय में 'सर्वे भवन्तु सुखिन' की भावना उत्पन्न करता है। ससार में विश्व प्रेम की भावना ऐसे ही साहित्य से फैलती है। जैन मनीषियों के सन्देश काव्यों में इस प्रकार त्याग प्रधान जीवन का सन्देश छिपा हुआ है।

राम तथा कृष्ण के कथानकों को लेकर लिखे गए अन्य सन्देशकाव्य भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। स्वयं आचार्य वेदान्तदेशिक ने अपने काव्य को 'सदेशरत्न तथा 'श्रेयसा प्राप्तिहेतुम्' बतलाया है¹। कारण स्पष्ट ही है क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में श्री रामचन्द्रजी और श्री सीताजी के मिलन की कथा का वर्णन किया है। रामचन्द्रजी तथा सीताजी के भक्त पाठकों के लिए उनकी कथा का कीर्तन ही कल्याण कारक है।

रुद्रन्यायपञ्चानन का भ्रमरदूत भी रामायण की कथा से सम्बद्ध है। कवि ने इस काव्य को श्री रामचन्द्रजी के गुण कीर्तन के उद्देश्य से ही लिखा है। यह काव्य भी पाठकों को राम भक्ति की प्रेरणा देता है। इसी प्रकार श्रीकृष्णन्याय पञ्चानन का वातदूत भी राम कथा के कीर्तन द्वारा मोक्ष प्राप्ति का सन्देश बताता है।

भागवत की कथा के आधार पर जो सन्देश काव्य लिखे गए हैं, उनमें भी पाठकों के लिए एक विशिष्ट सन्देश छिपा हुआ है। गोपियों का विरह साधारण विरह नहीं है। दूसरे शब्दों में वह भक्त और भगवान् के विरह का प्रतीक है। कवियों ने कृष्ण कथा को सन्देश काव्यों के रूप में उपस्थित कर न केवल सन्देश-काव्य का विषय देन ही विस्तृत किया है, प्रत्युत उन काव्यों के द्वारा जनता को कृष्ण भक्ति का अमर सन्देश भी दिया है। शतावधान कवि के भ्रमरदूत में गोपिका के यह शब्द—

> दूरे तावत्स तव महिमा यत्र वेदान्तवाचो
> मन्दायन्ते प्रथितनपसा योगभाजां धियश्च।
> एतावन्मे कुतुकमतसीसूनभासि त्वदङ्घ्रौ
> कुर्यां नित्यं विषयविरता वाङ्मनःकायवृत्ती ॥११२॥

भक्त हृदय की प्रतिध्वनि ही है।

इसी प्रकार विष्णुदास के मनोदूत में भी कृष्ण भक्ति का पवित्र सन्देश पाया जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति कवि के यह वचन—

> ईहामहे नहि महेन्द्रपदं मुकुन्द
> मीतुर्महे चरणदैन्यमुपागतम् वा।
> आशा पुनस्तव पदाम्बुजवाधिवासाम्
> आशास्महे चिरमियं न कृशा यथा स्यात् ॥८०॥

---

¹ चिन्ता शाणोल्लिखितमसकृच्छ्रेयसां प्राप्तिहेतुम्।
सीतागमायनिकरसखं हंससन्देशरत्नम्
पश्यन्तु पन्नधरमणमनघचतुरकीय सन्त ॥ २ ॥ ४० ॥

देव त्वदीयचरणाम्बुजमधुव्रतेषु
त्वत्कीर्तिनामगुणगानदृढव्रतेषु ।
त्वन्न्यस्तजीवितधनेहितमानसेषु
प्रेमार्यवृत्तिषु कदानुचरीकरोमि ॥८६॥

किसी भी भावुक हृदय को भक्ति से परिप्लावित कर सकते हैं। इस प्रकार संस्कृत के सन्देश काव्यों में जन-साधारण के लिए भगवद्भक्ति तथा निवृत्तिपरायण जीवन का सन्देश छिपा हुआ है। राम और कृष्ण के चरित्र के आधार पर सन्देशकाव्यों को लिखकर कवियों ने भारतीय संस्कृति को पाठकों के समक्ष रखने का बड़ा ही स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रकार सन्देशकाव्य न केवल साहित्यिक प्रत्युत सांस्कृतिक दृष्टि से भी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। भक्ति के क्षेत्र में भी इन काव्यों ने जनता के लिए मार्ग प्रदर्शन किया है। मानवता के लिए जो पवित्र और कल्याणकर सन्देश इन काव्यों से उपलब्ध होता है, उसकी उपादेयता को कोई भी सहृदय और विज्ञ पाठक अस्वीकृत नहीं कर सकता।



❀ द्वितीय अध्याय ❀



प्रथम भाग—मूल-सन्देश-काव्य

[१] घटकर्पर कवि का सन्देश काव्य ।

[२] कालिदास का मेघ सन्देश ।

घटकर्पर कवि का सन्देश काव्य [वि० स० प्र० शतक]

इस कवि के वास्तविक नाम का कुछ भी पता नहीं है और न इसके जीवन के विषय में ही कुछ ज्ञात है। इसके विरचित सन्देश-काव्य का भी कोई विशेष नाम नहीं मिलता है। अपने काव्य के अन्त में इसने प्रतिज्ञा की है—

> भावानुरक्त वनिता सुरतै शपेयमालभ्यचाम्बु तृषित करकोशपेयम्,
> जीयेय येन कविना यमकै परेण तस्मै वहेयमुदकं घटकर्परेण ॥ २२।

अर्थात् जो कोई कवि यमक में मुझे परास्त कर देगा, उसके लिये मैं फूटे घड़े से पानी भरूँगा। सम्भव है कि इस पद्य में आये हुए घटकर्पर शब्द से ही कवि का घटकर्पर नाम पड़ गया हो और उसके काव्य को भी घटकर्पर काव्य कहा जाने लगा हो। विक्रमादित्य के नवरत्नों म भी घटकर्पर का नाम आता है—

> धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटकर्पर कालिदासा ।
> ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभाया रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

भारतीय जन श्रुति के अनुसार ईसा के पूर्व विक्रम नामक राजा की स्थिति काल्पनिक नहीं है। हाल की गाथा-सप्तशती में भी दानशील राजा विक्रम का उल्लेख मिलता है—

> संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम्,
> चलणेन विक्कमाइत्त चरिअ अनुसिक्खिअ तिस्सा ५ ६४
> संवाहनसुखरसतोषितेन ददता तव करे लाक्षाम्,
> चरणेन विक्रमादित्यचरितमनुशिक्षित तस्या ॥

हाल का समय स्मिथ की राय में सन् ६८ ई० के आस पास है। जब सन् ६८ ई० के ग्रन्थ में विक्रम का नाम पाया जाता है, तब सौ वर्ष पहिले उसकी स्थिति मानने में किसी प्रकार की शका नहीं होनी चाहिये। इसके 'शकारि' होने में भी कोई आपत्ति नहीं दीखती, क्योंकि ईसा से १५० वर्ष पूर्व आने वाले शकों का हाल इतिहास में भी पाया ही जाता है। सम्भवत यही उनका संहारक हो, अत ईसा से पूर्व विक्रम की सत्ता ऐतिहासिक प्रमाणित होती है। यह विक्रम पौराणिक गाथाओं का कल्पित नायक नहीं है, प्रत्युत इतिहास का सच्चा प्रभावशाली विजेता है। अत विक्रम की सभा के रत्न घटकर्पर कवि को विक्रम तथा कालिदास के समकालीन मानना ही उचित है। इस प्रकार घटकर्पर को ईसा पूर्व प्रथम शतक अथवा विक्रम प्रथम शतक में ही मानना चाहिए[१]।

---

१ इस विषय पर विशेष आलोचना के लिये श्री बलदेवप्रसाद उपाध्याय द्वारा रचित 'संस्कृत-कवि चर्चा' का कालिदास सम्बन्धी लेख देखिए।

मद्रास के टी. एस. नारायण शास्त्री ने रत्नावली नाटिका की अपनी भूमिका में एक नवीन विचार प्रतिपादित किया है। उनका कथन है कि घटकर्पर उपनामक धावक कवि का ही बाद में भास नाम हो गया था और यह भास ई० पू० छठी शताब्दी के प्रारम्भ में शासन करने वाले उज्जैन के श्री हर्ष विक्रमादित्य का समकालीन था। इस तरह घटकर्पर कवि और भास नाटककार इन दोनों को वे एक ही व्यक्ति मानते हैं। उनके इस विचार के मूलाधार राजशेखर के कविविमर्श तथा हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में पाये गये कुछ उद्धरण हैं। इन उद्धरणों के आधार पर ही वे कहते हैं कि धावक जन्म से धोबी था, उसने कई नाटक लिखे थे तथा उन्हीं में से कोई नाटक राजा हर्ष के हाथ बेच दिया होगा। मम्मट के काव्य प्रकाश में इसी वृत्तान्त का उल्लेख किया गया है। राजशेखर ने अपने कवि विमर्श में लिखा है

भासो रामिलसोमिलौ वररुचिश् श्रीसाहसाङ्कः कवि
मेंठो भारविकालिदासतरलास्कन्धस्सुबन्धुश्चय ।
दण्डी बाणदिवाकरौ गणपति कान्तश्च रत्नाकर
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वे वयम् ॥
कारण तु कवित्वस्य न सम्पन्नकुलीनता ।
धावकोऽपिहि यद्भास कवीनामग्रिमोऽभवत् ॥
आद्रौ भासेन रचिता नाटिका प्रियदर्शिका ।
निरीर्ष्यस्य रसज्ञस्य कस्य न प्रियदर्शना ॥
तस्य रत्नावली नून रत्नमालेव राजते ।
दशरूपककामिन्या वक्षस्यत्यन्तशोभना ॥
नागानन्द समालोक्य यस्य श्रीहर्षविक्रम ।
अमन्दानन्दभरितस्स्वसभ्यमकरोत्कविम् ॥
उदात्तराघवनूनमुदात्त रस गुम्भितम् ।
यद्वीक्ष्य भवभूत्याद्या प्राणिन्युर्नाटकानि वै ।
शोक पर्यवसानास्य नवाका किरणावली ।
माकन्दस्येव कस्यात्र प्रददाति न निर्वृतिम् ॥
भासनाटकचक्रेऽपि छेकै क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावक ॥

दण्डिन् के 'कवि हृदय' पर टीकास्वरूप अपने 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने भी लिखा है—

सम्प्रति परा काष्ठामारूढेनापि भासेन स्वकीयदशा न विस्मृता, यतोऽनेन पूर्व-चरित घटकर्परेणोदकवहनमेव प्रतिज्ञातम्, प्रतिज्ञा चेमामसहमाना परे कवय परिहसितुमनसो विक्रमार्कसभ्यमेव भास तज्जातिस्मारकघटकर्परनाम्ना व्यवजह्रु । क्रमेण च स एव व्यपदेशो भास महाकवेस्सुप्रसिद्धस्सम्पन्न ।

किन्हीं २ ग्रन्थों में घटकर्पर कवि का यह श्लोक—

एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्क
नूनं न दृष्टं कविनाऽपितेन दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ॥
नीतिसार-१७

भास का ही लिखा हुआ माना गया है।

श्री टी एस नारायण शास्त्री, वकील, हाईकोर्ट, मद्रास संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। उन्होंने अपनी "Age of Shankar" नामक पुस्तक में अपने पक्ष के समर्थन में निम्न युक्तियां प्रस्तुत की हैं—

१—श्री हर्ष के नाटकों से मिलती जुलती रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है-(क) रत्नावली तथा मालविकाग्निमित्र की कथा वस्तु में पर्याप्त समानता है और यदि मालविकाग्निमित्र को पहिले लिखा हुआ माना जाय तो यह बात कठिन से ही समझ में आती है कि अन्य दो नाटक क्यों लिखे गये। (ख) श्री हर्ष ने अपने नाटकों की कथा वस्तु कालिदास से नहीं ली है, बल्कि इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रचलित कुछ परम्पराओं और उपाख्यानों का जो कि बाद में गुणाढ्य की बृहत्कथा में समाविष्ट कर दिये गये, उपयोग किया है। इससे नाटकों का एक निश्चित पौर्वापर्य भी है तथा कुछ लोकप्रिय ऐतिहासिक व्यक्तियों को लेकर ही यह लिखे गये हैं। (ग) कालिदास ने केवल अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में ही अपने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है। पूर्ववर्ती कवियों तथा मेघदूत में उदयन की कथाओं का उल्लेख तभी कुछ सार्थक हो सकता है जबकि इसका यह आशय लिया जाए कि कवि ने उन्हीं ग्रन्थकारों का उल्लेख किया है जिनका कि वह किसी प्रकार अनुकरण कर रहा है।

२—बड़े बड़े लेखकों ने भी भास को महाकवि, महान् नाटककार तथा रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द तथा अन्य नाटकों का रचयिता माना है।

३—श्री हर्ष से उज्जैन का श्री हर्ष विक्रमादित्य ही समझा जाना चाहिए न कि कन्नौज का हर्षवर्धन। श्री हर्ष से कन्नौज का हर्षवर्धन समझने के कारण ही विद्वानों द्वारा यह भूल हुई है कि वे इन नाटकों को हर्षवर्धन की सभा के बाण या किसी अन्य कवि के द्वारा लिखा हुआ मानते हैं।

४—उज्जैन का यह श्री हर्ष ई० पू० छठी शताब्दी में ही रहा होगा, जैसा कि प्राचीन ग्रन्थों में उसके सम्बन्ध में आए हुए अनेक उल्लेखों से प्रमाणित होता है[1]।

---

१ ? कृष्णमाचारी का History of Classical Sanskrit Literature PP 554–555

लेकिन टी एस नारायण शास्त्री के इस मत से हम सहमत नहीं हैं। खेद का विषय तो यह है कि राजशेखर का कविविमर्श अब कहीं मिलता ही नहीं है और काव्यानुशासन में जैसा कि आजकल मुद्रित है, उक्त अवतरण पाया ही नहीं जाता है। संस्कृत साहित्य में कहीं भी भास के हर्ष का राजकवि होने का उल्लेख नहीं मिलता है। जब तक कोई और प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। मम्मट के काव्य प्रकाश में कहीं कहीं 'श्री हर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' यह भी पाठ भेद पाया जाता है। अत धावक और हर्ष का सम्बन्ध भी पूर्णतया निश्चित नहीं है। यदि घटकर्पर उपनामक धावक कवि कालिदास का समकालीन अथवा किंचित् पूर्व कालीन होता और उसे ही भास कहा जाता, तो कालिदास के समय तक उसका 'प्रथितयशसा भाससौमिलकविपुत्रादीनाम्' के मध्य में गिना जाना अधिक सगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि तत्कालीन प्रचार साधनों को देखते हुए 'प्रथितयशस्' होने में पर्याप्त समय चाहिये। इसके अतिरिक्त कालिदास ने अपने लिए 'वर्तमानस्य' विशेषण का प्रयोग किया है। इससे निश्चित होता है कि भास कालिदास से बहुत प्राचीन है तथा कालिदास के समकालीन घटकर्पर कवि से उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

इस काव्य के अतिरिक्त नीतिसार नामक एक अन्य लघु काव्य भी घटकर्पर कवि का लिखा हुआ माना जाता है। यह एक शिक्षात्मक काव्य है। इसमें केवल २१ ही श्लोक हैं तथा शंकर और सिंह का संवाद दिया गया है। कालिदास ने कुमार सभव के प्रथम सर्ग में हिमालय का वर्णन करते हुए लिखा है—

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ १ ३

कालिदास के इस विचार का खंडन करते हुए ही घटकर्पर कवि ने अपने नीतिसार में यह लिखा है—

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो बभाषे।
नूनं न दृष्टं कविनाऽपि तेन दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ॥ १७

इस श्लोक के आधार पर कालिदास और घटकर्पर के परस्परप्रतिस्पर्धी होने का तो निश्चय होता है लेकिन उनके पौर्वापर्य के सम्बन्ध में कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता।

काव्य का विषय

यह काव्य वर्षा ऋतु के वर्णन से प्रारम्भ होता है। इसमें कोई विशेष कथानक नहीं है। कवि ने वर्षा ऋतु के वर्णन के बाद एक प्रोषितभर्तृका स्त्री का वर्णन किया है। मेघ सन्देश में पति अपनी पत्नी के पास सन्देश भेजता है, लेकिन इस का

में पत्नी मेघ के द्वारा अपने प्रिय के पास सन्देश भेजती है। पत्नी के सन्देश में कवि ने उसकी विभिन्न विरहावस्थाओं का चित्रण किया है। हंसों की पंक्ति को मानसरोवर की ओर उड़ता हुआ तथा पिपासु चातक को जल की पुकार करता हुआ देखकर विरहिणी का भी हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। और वह भी अपने प्रिय के लिये तड़प उठती है—

हंसपंक्तिरपि नाथ सम्प्रति प्रस्थिता वियति मानसं प्रति।
चातकोऽपि तृषितोऽम्बु याचते दुःखिता मनसि सा प्रिया वते॥

विरहावस्था में मेघों का गरजना तथा मयूरों का कलरव सुनकर प्रोषितभर्तृका का हृदय अवसन्न हुआ जाता है, फिर भी प्रिय के गुणों का स्मरण कर वह किसी तरह अपने जीवन की रक्षा करती रहती है। कवि ने विरहिणी की चिन्ता और स्मृति का निम्नपद्यों में कैसा संश्लिष्ट वर्णन किया है—

मेघ शब्दमुदिता कलापिनः प्रोषिताहृदय शोकतापिनः।
तोयदागमकृशा च साऽद्यते दुर्धरेण मदनेन साद्यते॥

किं कृपाऽपि तव नास्ति कान्तया पाण्डुगण्डपतितालकान्तया।
शोकसागरजले निपातिता त्वद्गुणस्मरणमेव पाति ताम्॥१२॥

विरहिणी नायिका की प्रियदर्शन की अभिलाषा वर्षा ऋतु के द्वारा मार्ग के अवरुद्ध हो जाने पर और भी उत्कट हो जाती है। वह कहती है—

मार्गेषु मेघसलिलेन विनाशितेषु कामो धनुः स्पृशति तेन विना शितेषु।
गम्भीरमेघरसित व्यथिता कदाऽहं जह्या सखि प्रियवियोगजशोकदाहम्॥१४॥

प्रकृति की सौम्य रचनाएं भी विरहावस्था में विरहिणी को दुख ही पहुचाती है। कदम्ब और कुटज के कुसुमों को देखकर नायिका का हृदय और भी व्यथित हो जाता है और वह इन वृक्षों से प्रार्थना करते हुए कहती है —

नवकदम्ब शिरोऽवनताऽस्मिते
वसति ते मदन कुसुमस्मिते।
कुटज किं कुसुमैरुपहस्यते
प्रणिपतामि च दुःप्रसहस्य ते।१७।

तरुवर विनताऽस्मि ते सदाऽहम्
हृदयं मे प्रकरोषि किं सदाहम्।
तव कुसुमनिरीक्षणेऽपदेऽह
विसृजेयं सहसैव नीप देहम्।१८।

इस प्रकार इस काव्य में विरह का बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया गया है। भावों के उपयुक्त भाषा तथा छन्दों का प्रयोग कर कवि ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। २२ छन्दों के इस लघु काव्य में वियोगिनी, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के समिश्रण से बना हुआ उपजाति, वसन्ततिलका, मालभारिणी, रथोद्धता, पुष्पिताग्रा, इन्द्रवज्रा और द्रुतविलम्बित छन्दों के प्रयोग से भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार व्यक्त होता है। छन्दों के साथ २ यमक अलकार की भी कवि ने अपने काव्य में अपूर्व छटा दिखलाई है। प्रत्येक पद्य में यमक अलकार का प्रयोग किया गया है तथा सर्वत्र यह अलकार ऐसी सरलता के साथ प्रयुक्त किया गया है कि इसके कारण कविता में कहीं भी दुरूहता अथवा कृत्रिमता नहीं आने पाई है। यद्यपि उपर्युक्त कतिपय उद्धरणों में भी यमकालकार का प्रयोग हुआ है, फिर भी विशेष रूप से यमकालकार का सौन्दर्य पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कुछ अन्य उदाहरण देना अप्रासगिक न होगा। वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कवि लिखता है —

निचित खमुपेत्य नीरदैः प्रियहीना हृदयावनी रदैः ।
सलिलैर्निहित रजः क्षितौ रविचन्द्रावपि नोपलक्षितौ ॥१॥

हसा नदन्मेघभयाद्द्रवन्ति निशामुखान्यद्य न चन्द्रवन्ति ।
नवाम्बुमत्ताः शिखिनो नदन्ति मेघागमे कुन्दसमानदन्ति ॥२॥

मेघावृत निशि न भाति नभो वितार
निद्राऽभ्युपैति च हरि सुखसेवितारम् ।
सेन्द्रायुधश्च जलदोऽद्य रसन्निभानाम्
सरम्भमावहति भूधर-सन्निभानाम् ॥३॥

कवि का वर्षा वर्णन पाठकों के समक्ष वर्षा ऋतु का एक चित्र सा उपस्थित कर देता है। यमक अलकार के साथ २ प्रकृतिवर्णन में भावसौष्ठव भी भरा हुआ है। यमक अलकार के प्रयोग में अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करना कवि की केवल गर्वोक्ति ही नहीं है, बल्कि एक कठोर सत्य है। इस लघुकाव्य पर अनेक टीकाएं लिखी गई हैं। इसी से इसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

संस्कृत के सन्देश काव्यों में इस काव्य का प्रथम स्थान है। यह काव्य मेघ सन्देश से पहिले का ही लिखा हुआ है। इन दोनों काव्यों की कथा वस्तु एक सी ही है। केवल इतना ही अन्तर है कि घटकर्पर के काव्यमें पत्नी पति के पास मेघ को दूत बना कर भेजती है जब कि मेघसन्देश में पति अपनी पत्नी के पास मेघ को दूत बनाकर भेजता है। दोनों काव्यों में वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में ही दूत भेजा गया है। घटकर्पर काव्य में वियोग का समय बहुत थोड़ा है—वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ केवल तीन

महीने का ही वियोग पाया जाता है। इसके विपरीत मेघसन्देश में पूरे वर्ष भर का वियोग बताया गया है।

दोनों काव्यों में एक प्रमुख भेद यह भी है कि मेघ सन्देश में मार्ग-वर्णन के प्रसंग में विभिन्न पर्वतों, नदियों और नगरों इत्यादि का बड़ा सुन्दर वर्णन पाया जाता है, लेकिन घटकर्पर काव्य में इस तरह के मार्ग वर्णन का नितान्त अभाव है।

पंडित प्राणनाथ सरस्वती का विचार है कि सम्भवतः इस काव्य से ही मेघ को दूत बनाकर प्रिय के सन्देश को प्रेयसी के पास पहुंचाने का विचार कालिदास के ध्यान में आया हो। घटकर्पर है भी कालिदास का समकालीन। इसलिये ऐसा होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। इसके विपरीत घटकर्पर के काव्य को मेघ सन्देश के बाद का नहीं कह सकते। यदि घटकर्पर मेघ सन्देश को देखकर कोई काव्य लिखता, तो उसकी लेखनी से भी हमें अवश्य ही एक सर्वांगसम्पन्न सन्देश काव्य प्राप्त हुआ होता। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि घटकर्पर कवि का यह लघुकाव्य सर्वप्रथम सन्देशकाव्य है और सम्भव है कि कालिदास ने भी इस काव्य से कुछ प्रेरणा प्राप्त की हो।

यद्यपि नाम अथवा स्वरूप से यह काव्य सन्देशकाव्य जैसा नहीं प्रतीत होता है, लेकिन वस्तुतः यह सन्देशकाव्य ही है। केवल मेघसन्देश जैसे शिल्प विधान की ही इस में न्यूनता है। अतः सन्देश काव्यों के अनुशीलन में इसे भी सम्मिलित किया गया है। सन्देशकाव्य एक प्रकार का गीतिकाव्य है और २२ श्लोकों के इस लघुकाव्य में विभिन्न मधुर छन्दों का प्रयोग कर कवि ने इस काव्य को एक सफल गीतिकाव्य बना दिया है। इसके अतिरिक्त महाकाव्यों तथा मेघ-सन्देश काव्य के मध्य में भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों की ही दृष्टियों से यह काव्य एक अन्तरिम श्रृंखला का कार्य करता है। इस प्रकार संस्कृत सन्देश काव्यों के विकास के इतिहास में इस घटकर्पर काव्य के महत्व को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

यद्यपि कालिदास के मेघसन्देश से घटकर्पर काव्य का प्रभाव कुछ कम ही हो गया है, फिर भी इस काव्य ने उत्तरकालीन संस्कृत कवियों को बड़ा प्रभावित किया है। इस काव्य के माधुर्य पर मुग्ध होकर दक्षिण भारत में कृष्ण के पुत्र किसी मदन-कवि ने वि० सं० १६८० (सं० १६२३ ई०) में कृष्णलीला काव्य नामक ८४ श्लोकों का एक लघु काव्य लिखा।[१] इस काव्य में घटकर्पर काव्य के श्लोकों के प्रत्येक चरण को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। इस काव्य के चार श्लोकों में घटकर्पर-काव्य का एक श्लोक पूरा हो जाता है। यथा–

१ दे० इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, केटालाग आफ संस्कृत मैनस्क्रिप्ट्स (इंगलिश भाग) जिल्द ७, सं० १४६१। आंशिक रूप से कलकत्ता से डा० जे० बी० चौधरी द्वारा प्रकाशित।

हृष्टा नन्दे ग्रभयाद् द्रवन्ति नेदुस्तदा तत्र च मन्द्रवन्ति ।
वाद्यानि नन्दोऽपि ददौ बुधेभ्य प्रीतो धनं मार्गणमागधेभ्यः ॥ ५ ॥

दधीनि गोप्यो यहुसारवन्ति निशामुखान्यत्र च चन्द्रवन्ति ।
क्षिपन्तु काश्चिच्च तदाचचक्षु सिक्ता पुनश्चापिदधु स्वचक्षु ॥ ६ ॥

व्रजेऽवतीर्णे त्रिभानधीरं धरा च पूतं पवनोऽतिधीरम् ।
नवाम्बुमत्ता शिखिनो नदन्ति प्रभा नभोऽपिस्म घना नदन्ति ॥ ७ ॥

इतीन्दिरामन्दिरमागतोपा न पूतनामाह निभो सतोपा ।
न कोऽपि कोणे तु किमायदन्ति (० नदन्ति ?) मेघागमे कुन्दसमानदन्ति ॥८॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह सन्देशकाव्य एक लोकप्रिय काव्य रहा है साहित्यप्रेमियों ने इस पर अनेक टीकायें लिखी हैं तथा अपनी रचनाओं में इसका अनुकरण भी किया है।[1]



१ यह काव्य विदेशों में भी प्रकाशित हो चुका है। जी० एम० दर्श के जर्मन अनुवाद सहित वर्लिन से १८२८ ई० में, शेजी के फ्रेन्च अनुवाद सहित जर्नल एशियाटिक पेरिस, १८२३, भाग २, पृ० ३६ में प्रकाशित, जर्मन अनुवाद सहित होफर द्वारा Indische Geschichte vol II पृ० १२६ इत्यादि में प्रकाशित तथा वोहलन द्वारा Das Alte Indien, Konigsberg, १८३०, ३८० इत्यादि पृष्ठों में प्रकाशित। ईंगलिंग का इण्डिया आफिस कैटालाग, भाग ७, पृ० १४२७ भी देखिए।

कालिदास का मेघसन्देश (वि० सं० प्रथम शतक)

कविकुलगुरु कालिदास के नाम से कौन भारतीय परिचित न होगा। न केवल भारतवर्ष में, बल्कि संसार में सर्वत्र ही कालिदास का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं का अनुवाद भी प्राय संसार की प्रत्येक सभ्य भाषा में हो चुका है। इतना होने पर भी इस विश्वकवि के काल, जन्मस्थान तथा जीवन वृत्त इत्यादि के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। ईसा के पूर्व की ८ वीं शताब्दी से लेकर ईसा के बाद की ११ वीं शताब्दी तक के विभिन्न समयों में विभिन्न विद्वानों द्वारा इस कवि का समय निर्धारित किया गया है। इसी तरह इस कवि के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बडा मतभेद है[१]।

महाकवि ने अपने सम्बन्ध में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। लेकिन उनके सम्बन्ध में भारत और लंका में कई किम्वदंतियां पाई जाती हैं। भारतवर्ष में यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि कालिदास लड़कपन में बडे मूर्ख थे। पढना लिखना तनिक भी न जानते थे। विद्यावती नामक एक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में हारकर कुछ पंडितों ने कालिदास के साथ बडी युक्ति से उसका विवाह करा दिया। परन्तु विद्यावती को जब पण्डितों की धूर्तता का पता लगा, तब वह बहुत दु:खित हुई और उसने उस मूर्ख को घर से निकाल दिया। कालिदास ने भगवती की बडी आराधना की और उन्हीं की कृपा से वह एक प्रतिभाशाली कवि बन गए थे। जब घर लौटे, तब किवाड बन्द पाया। उसके खुलवाने के अभिप्राय से कवि ने

---

(१) श्री हरप्रसाद शास्त्री का (Kalidasa, His home, Indian Antiquary XLVII, 264) कथन है कि मालवा में दशपुर कालिदास की जन्मभूमि थी। श्री ए सी चटर्जी के अनुसार (Kalidasa His Poetry and Mind, P 148) उज्जैन इसकी जन्मभूमि है। डा० भाउ दाजी (Literary Ramains, Calcutta) काश्मीर को कालिदास की जन्मभूमि मानते हैं। श्री मजुमदार के अनुसार (Home of Kalidasa, Indian Antiquary XLVII 264) विदर्भ कालिदास की जन्मभूमि है। दण्डिन् की अवन्तिसुन्दरीकथा का निम्नलिखित श्लोक भी उनके विचार का समर्थन करता है--

लिप्ता मधुद्रवेणासन्यस्य निर्विशषा गिर'।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम् ॥

कुछ लोग काली की उपासना वाली दन्तकथा तथा इसके नाम के आधार पर इसे बंगाली मानते हैं और नदिया में इसकी जन्मभूमि बताते हैं। कुछ मैथिल विद्वान् इसे मिथिलानिवासी भी मानते हैं।

संस्कृत में 'अनावृतकपाट द्वारं देहि' कहा। विदुषी पत्नी ने तुरन्त उत्तर दिया-'अस्ति कश्चित् वाग्विशेष'। कवि ने अपनी पत्नी के उत्तरभूत वाक्य के शब्दों से आरम्भ कर तीन काव्य बना डाले। 'अस्ति' शब्द से कुमारसम्भव, 'कश्चित्' से मेघदूत और 'वाग्' से रघुवंश बनाया।

लंकावासियों में भी कालिदास के विषय में एक किम्वदन्ती अत्यन्त प्रसिद्ध है। कहते हैं कि कालिदास ने सिंघल द्वीप के राजा कुमारदास के जानकीहरण महाकाव्य की खूब प्रशंसा की थी। इसे सुन कुमारदास ने कालिदास को सिंघल में बुलाया। कालिदास वहां गए और राजा के बड़े प्रेमपात्र बन गए। कालिदास, सुनते हैं, एक वैश्या के यहां आया जाया करते थे, जिसने कि अपने दरवाजे पर एक यह श्लोकार्थ लिख रखा था—

कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते।

कवि ने इसकी पूर्ति इस प्रकार कर दी —

बाले, तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम् ॥

कहा जाता है कि इसी सुन्दरी के कारण कालिदास मार डाले गए। कुमारदास इस घटना से अत्यन्त विचलित हुए और उन्होंने कवि की चिता पर आत्महत्या कर ली। अभी तक सिंघल द्वीप के दक्षिणी भाग में कालिदास की समाधि विद्यमान है। यह दन्त कथा भारत में प्रसिद्ध नहीं है परन्तु सिंघल के अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। [१]

जैसा कि प्रायः देखा जाता है कि जब लोग सत्य को भूल जाते हैं, तब अनेक दन्तकथायें प्रचलित हो जाती हैं। यह दन्तकथायें कभी कभी सच्ची भी होती हैं और कभी कभी नितान्त निराधार भी। कालिदास के सम्बन्ध में भी इस प्रकार अनेक दन्तकथायें पाई जाती हैं। [२] बल्लाल के भोज प्रबन्ध में भी कवि के सम्बन्ध में अनेक कथायें वर्णित की गई हैं।

कवि का समय

पहले कहा ही गया है कि कालिदास के समय के सम्बन्ध में इतिहास के विद्वानों में बड़ा मत भेद है। इन विभिन्न मतों को ही अब हम पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास करेंगे तथा उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कवि के जीवनकाल का निर्णय करने की चेष्टा करेंगे।

---

१ दे० नन्दर्गीकर का कुमारदास, पृ० ५।
२ दे० ग्रियर्सन, Traditions about Kalidasa Journal of the Asiatic Society of Bengal, XLVII, April

ई० ११ वीं शताब्दी का विचार

किसी समय विद्वानों में यह भी विचार प्रचलित था कि ईसा की ११ वीं शताब्दी में ही कभी कालिदास रहा होगा। इस विचार धारा के समर्थकों का कहना था कि कवि की रचनाओं में मुसलमान का पर्यायवाची यवन शब्द कई स्थान पर आता है और मुसलमान भारतवर्ष में ईसा की ७ वीं शताब्दी में सर्वप्रथम आये। अत कवि को ११ वीं शताब्दी में मानना अनुचित नहीं है। [१]

उपर्युक्त तर्क के आधार पर ११ वीं शताब्दी को ही प्रधानता दी जाये, इसका कोई प्रबल कारण हमें नहीं दिखलाई पड़ता है। दूसरे यवन शब्द का अर्थ भी कुछ निश्चित नहीं है। यह शब्द Ionian (और इसीलिए परम्परया यूनानी) से सम्बन्ध रखता है। यह तो ऐतिहासिक सत्य है ही कि सातवीं शताब्दी से बहुत पहले सिकन्दर के समय में यूनानी लोग भारतवर्ष में आये थे। ११ वीं शताब्दी की विचारधारा के पक्ष में एक दूसरा तर्क यह भी है कि कालिदास धारानगरी के राजा भोज का सभा कवि था और यह राजा धारानगरी में ११ वीं शताब्दी में ही शासन करता हुआ माना जाता है। अत कालिदास को ११वीं शताब्दी का मानना अनुचित नहीं है। लेकिन राजा भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में भामह के काव्यालंकार से कई उद्धरण दिये हैं तथा भामह ने अपने ग्रन्थ में कालिदास की रचनाओं से भी पद्य उद्धृत किये हैं। भामह का समय ईसवी पाचवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। अत यही निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास भामह से पूर्व अर्थात् ई० पञ्चम शतक से पूर्व ही रहा होगा। [२]

इसके अतिरिक्त श्री के० बी० पाठक और श्री जी० वी० वैद्य ने विक्रमोर्वशीय नाटक के ई० नवम शतक में किये गए एक कनाडी अनुवाद का भी उल्लेख किया है। इससे भी यह निष्कर्ष निकलता है कि यह नाटक नवम शतक से पूर्व भी रहा होगा।

---

१ इस विचारधारा के अध्ययन के लिये श्री कृष्णराव महादेव ओगलेकर का रघुवंशमहाकाव्य (भूमिका पृ० २३) देखिये।

२ यदि राजा भोज की सभा में भी किसी कालिदास की स्थिति मानी जाय, तो भी अनुचित नहीं है। लेकिन यह कालिदास रघुवंश, कुमारसम्भव, शकुन्तला, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीयम् और मेघदूत के रचयिता से भिन्न ही रहेगा। यों कालिदास हुए भी कई हैं। भोज प्रबन्ध के आधार पर बेन्टले ने (Asiatic Researches, VIII 243) भी कालिदास को ११वीं शताब्दी का माना है। लेकिन भोज प्रबन्ध ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। इसके अतिरिक्त भोज के समय में भी किसी अन्य कालिदास की सत्ता से हमें आपत्ति भी नहीं है।

इस प्रकार कालिदास के ई० ११ वीं शताब्दी में होने का विचार नितान्त निराधार है।

ईसवीं छठी शताब्दी का विचार

श्री आर सी दत्त ई० ५०० और ५५६ के बीच में कालिदास का समय निर्धारित करते हैं[1]। डा० भाउदाजी मातृगुप्त को ही कालिदास मानते हैं और ई० षष्ठ शतक के मध्य में काश्मीर के राजा हर्ष विक्रमादित्य के शासनकाल में ही कालिदास का समय निर्धारित करते हैं[2]। उनकी विचारधारा के आधार संक्षेप में ये हैं—[3]

(१) मातृगुप्त के काश्मीर के राजा होने की बात राजा विक्रम द्वारा कालिदास को अपना आधा राज्य दे देने की जनश्रुति से बिलकुल मेल खाती है।

(२) मातृगुप्त और कालिदास इन नामों के भिन्न होने के आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती, क्योंकि नाम भी प्राय उपाधियां होती हैं और मातृगुप्त को कालीगुप्त या कालिदास माना जा सकता है।

(३) राजतरंगिणी के लेखक ने अन्य कवियों का, यहां तक कि भवभूति का भी, उल्लेख किया है, लेकिन कालिदास का नाम भी नहीं लिया है।

(४) कालिदास काश्मीर अथवा उसके निकट के ही किसी प्रदेश का निवासी था, क्योंकि वहां ही के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन उसने मुख्यतया प्रस्तुत किये हैं।

(५) अपनी पत्नी और घर से वियुक्त हो जाने के कारण उत्पन्न अपनी भावनाओं का ही कालिदास ने मेघदूत में सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। पत्नी और गृह से वियुक्त होना मातृगुप्त के सम्बन्ध में भी सत्य माना जाता है।

(६) मातृगुप्त के सम्बन्ध में लिखा गया राजतरंगिणी का २५० वां पद्य ठीक वही भाव रखता है जो कि मेघदूत के ११३ वें पद्य में प्राय उन्हीं शब्दों में पाया जाता है।

---

१ दे० आर सी दत्त का Civilization in Ancient India भाग १, पृष्ठ ३५।

२ Literary Remains, 18 जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई, जिल्द ७, पृष्ठ १६, २०७ (भाउदाजी कालिदास को सेतु काव्य का लेखक मानते हैं)।

३ दे० आप्टे का Date of Kalidasa (Central Press Bombay) पृ० ८।

(७) विक्रम की मृत्यु के बाद जब प्रवरसेन काश्मीर की गद्दी पर बैठा, तब मातृगुप्त काशी चला गया। इसी समय प्रवरसेन की प्रार्थना से प्राकृत भाषा में उसने सेतु काव्य लिखा। जनश्रुति इस काव्य को कालिदास का ही लिखा हुआ मानती है। प्रतापेन्द्र, दण्डिन् और रामशर्मा भी इस काव्य को कालिदास का ही लिखा हुआ मानते हैं। जनश्रुति से यह भी ज्ञात होता है कि प्रवरसेन ने वितस्ता नदी पर नावों का एक पुल बनवाया था। सेतुकाव्य के सम्बन्ध में हुएन्त्साग के समकालीन बाण कवि ने भी हर्ष-चरित में इस प्रकार लिखा है:–

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥

(८) इस प्रकार मातृगुप्त और कालिदास का तादात्म्य निश्चित हो जाने पर कालिदास को प्रवरसेन और विक्रम के साथ ई० ६ठी शताब्दी में ही मानना चाहिये। भाउदाजी का यह भी कहना है कि हुएन्त्साग प्रवरसेन का अतिथि था।

लेकिन भाउदाजी का मत सर्वथा सगत नहीं है। मैक्समूलर ने इस मत को असगत ही बताया है। उसका कहना है कि चीनी यात्री प्रवरसेन का नहीं, बल्कि बालादित्य का अतिथि था। इसके अतिरिक्त राघवभट्ट ने शकुन्तला पर अपनी टीका में मातृगुप्त और कालिदास दोनों को भिन्न व्यक्ति ही मानकर उनके उद्धरण दिये हैं तथा मातृगुप्त द्वारा रचित एक ग्रन्थ का भी भरत के नाट्यशास्त्र पर टीका के रूप में उल्लेख किया है। क्षेमेन्द्र ने अपनी औचित्य विचार-चर्चा में भी कालिदास और मातृगुप्त को भिन्न व्यक्ति ही मानकर उनके उद्धरण दिये हैं। पीटरसन ने भी अपने Introduction to सुभाषितावलि, पृ ८६ में मातृगुप्त को मातृगुप्ताचार्य (अलकारशास्त्र का लेखक) माना है। भाउदाजी की विचारधारा का श्री एस पी पंडित (रघुवश की भूमिका ६८–७५), श्री नन्दर्गीकर (रघुवश की भूमिका ६८–७६) तथा मैक्समूलर ने भी (इण्डिया, १३३, ३१४) प्रबल युक्तियों के साथ खण्डन कर दिया है।

भाउदाजी के अतिरिक्त मैक्समूलर, फर्गुसन, कर्न तथा भाण्डारकर इत्यादि विद्वान् भी अन्य तर्कों के आधार पर कालिदास को ई० ६ ठी शताब्दी में ही रखने का प्रयत्न करते हैं। सर्वप्रथम फर्गुसन महाशय ने यह सिद्धान्त चलाया कि विक्रम संवत् का प्रवर्तक विक्रमादित्य उज्जैन का हर्ष विक्रमादित्य ही था और इसी ने ई० ५४४ में कारूर में म्लेच्छों को परास्त कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् चलाया तथा इस सवत् को प्राचीनता का रूप देने के लिये ६०० वर्ष पीछे कर दिया। इस प्रकार कालिदास का समय ई० ५४४ ही ठहरता है।[1]

[1] जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी (१८८०) On the Saka and Gupta Eras.

मैक्समूलर ने फर्गुसन के इस सिद्धान्त को ही लेकर अपनी Renaissance Theory चलाई है[१]। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य तर्क भी उसने प्रस्तुत किये हैं। मेघदूत के एक पद्य पर टीका करते हुए मल्लिनाथ ने दिङ्नाग और निचुल को कालिदास का समकालीन बताया है। मैक्समूलर इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए तथा दिङ्नाग को वसुबन्धु का शिष्य मानकर कालिदास को ई० छठी शताब्दी का ही मानते हैं। लेकिन यह पद्य कालिदास का ही लिखा हुआ है इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है[२]। यह पद्य क्षेपक भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त डा० मैकडानल का कहना है—दिङ्नाग को वसुबन्धु का शिष्य बताने वाली बौद्ध जनश्रुति भी कुछ प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि १६ वीं० शताब्दी तक तो इस जनश्रुति का कहीं पता ही नहीं लगता है। वसुबन्धु का ई० छठी शताब्दी में होना भी चीनी प्रमाणों के विरुद्ध है, क्योंकि चीन के प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि वसुबन्धु के ग्रन्थों का चीनी भाषा में ई० ४०४ में अनुवाद हुआ था। अत मैक्समूलर का यह तर्क उचित नहीं है।

इसके अतिरिक्त फर्गुसन की विचारधारा भी सत्य नहीं है। मि० फ्लीट की शिलालेख सम्बन्धी खोजों ने फर्गुसन के सिद्धान्त को नितान्त निराधार साबित कर दिया है। उनकी खोजों से यह निष्कर्ष निकलता है। ई० पूर्व ५७ का विक्रम

---

१. India, What can it teach us ? 281, 284

२ उपर्युक्त प्रसग में आया हुआ पद्य इस प्रकार है–

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।

स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्। मेघ ॥१॥१४॥

इस पद्य की टीका में मल्लिनाथ लिखता है—अत्रेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति रसिको निचुलो नाम महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायी परापादितानां कालिदास प्रबन्धदूषणानां परिहर्ता यस्मिन् स्थाने तस्मात् स्थानात् उदङ्मुखो निर्दोषत्वा दुन्नतमुखः पथि दिङ्नागानाम् दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्यास पूर्वकाणि दूषणानि परिहरन्—इत्यादि।

इस प्रसंग में आप्टे महाशय (Date of Kalidasa) का कहना है कि मल्लिनाथ की टीका किसी जनश्रुति के आधार पर ही है और यह जनश्रुति कालिदास को ई० पू० ५६ में राजा विक्रमादित्य की सभा का राजकवि बताने वाली जनश्रुति से बढ़कर नहीं हो सकती।

संवत ई० ५४४ में स्थापित होने के बजाय मालव संवत के नाम से ईसा के पूर्व एक शताब्दी अधिक से प्रचलित था। ई० ८०० के लगभग यह संवत् विक्रम संवत् के नाम से चलने लगा। शक (सीथियन) लोग भी छठी शताब्दी में पश्चिमी भारत से नहीं निकाले गये थे। गुप्त राजाओं ने पाचवीं शताब्दी में ही उन्हें पश्चिमी भारत से निकाल दिया था। छठी शताब्दी में जिन विदेशियों को भारत से निकाला गया था वे शक नहीं, हूण थे और उन्हें किसी विक्रमादित्य ने नहीं बल्कि विष्णुवर्धन ने परास्त किया था।

इसके अतिरिक्त डा० हार्नली इसी यशोधर्मन् को काश्मीर का हर्ष विक्रमादित्य समझते हैं।[१] उनका कहना है कि काश्मीर को जीतकर तथा हूणों को भारतवर्ष से निकालकर इसने मालव संवत् का नाम विक्रम संवत् रख दिया। यह मत भी भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि हूणों के पराजय करने पर भी यशोधर्मन् को शकाराति नहीं कहा जा सकता और न उसके शिलालेखों से किसी नवीन संवत् के स्थापन की घटना का पता लगता है। अत डा० हार्नली का मत भी मान्य नहीं है।

पाचवीं अथवा चौथी शताब्दी का मत

श्री के० बी० पाठक कालिदास को ई० पाचवीं शताब्दी का मानते हैं। उनका मत है कि कालिदास स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन था।[२] पाठक ने वल्लभदेव के निम्नलिखित श्लोक के पाठ को प्रामाणिक मानकर अपना मत निश्चित किया है —

> विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनै
> दुधुवुर्वाजिन स्कन्धाल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ॥ रघुवंश ४॥६७॥
>
> तत्र हूणावरोधाना भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
> कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम् ॥४॥६८॥

यहा सिन्धु शब्द के स्थान पर वल्लभदेव ने 'वक्षु' पाठ माना है। वक्षु शब्द पाठक की सम्मति में oxus (आक्सस) का संस्कृतीकरण है। अत इस पाठ को प्रामाणिक मानने से यह कहना पडता है कि रघु ने हूणों को आक्सस नदी (जो पामीर से निकल कर अरल सागर में गिरती है) के किनारे उनके भारत आगमन के पहिले

---

१ दे० Indian Antiquary, 1912, 256 और जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी (१९०३) ५४६ (१९०४) ६३६ तथा (१९०६) १००।

२ दे० के० बी० पाठक द्वारा संपादित मेघदूत की भूमिका तथा इंडियन एन्टिक्वेरी XLI, 265

ही हराया था। यह घटना ई० ४५५ से पूर्व की हो सकती है, क्योंकि तभी स्कन्दगुप्त के प्रबल प्रताप के सामने हार मान भग्न मनोरथ होकर हूणों को लौटना पड़ा था। स्कन्दगुप्त द्वारा हूणों के पराजित करने का उल्लेख गुप्तसंवत् १३६ (या ई० ४५५ ४५६) के जूनागढ़ के शिलालेख में भी मिलता है। इस प्रकार रघुवंश को कालिदास की प्रथम रचना मानकर पाठक ने उन्हें स्कन्दगुप्त का समकालीन माना है। इसके अतिरिक्त कालिदास को लंका के राजा कुमारदास (ई० ५१५ ५२४) का समकालीन मानकर पाठक उन्हें षष्ठ शतक के पूर्वार्ध अथवा ई० ५३२ के लगभग मानते हैं।[१] मेघदूत में आए हुए दिङ्नाग के उल्लेख को भी आधार मानकर पाठक ने कालिदास को ई० पांचवीं शताब्दी में ही रखने का आग्रह किया है।

श्री विजयचन्द्र मजुमदार ने कुछ अन्य प्रमाण देकर कालिदास को सम्राट कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (ई० ४१४ ४५५) तथा सम्राट स्कन्दगुप्त (ई० ४५५ ४६७) दोनों के समय में माना है।[२] उनका कहना है कि रघुवंश के प्रथम सर्ग के पांचवें श्लोक में[३] महाराजाधिराज की उपाधि धारण करने वाले समुद्रगुप्त की ओर कुछ संकेत पाया जाता है। रघुवंश के प्रथम सर्ग का बारहवां[४] श्लोक सम्राट समुद्रगुप्त के पुत्र सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (ई० ३७८ ४१४) की ओर संकेत करता है। रघुवंश के तृतीय सर्ग के २२ वें और ५५ वें श्लोक सम्राट कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (ई० ४१४-४५५) से सम्बन्ध रखते हैं[५]। इसी प्रकार रघुवंश के चतुर्थ सर्ग का ४३ वां श्लोक कुमारगुप्त प्रथम की महेन्द्रादित्य उपाधि का संकेत करता है।[६] रघुवंश के सप्तम सर्ग के प्रथम श्लोक में स्कन्द शब्द स्कन्दगुप्त (ई० ४५५ ४६७) की ओर संकेत करता है।[७] रघुवंश के १६ वें और १९ वें सर्गों में हूणों

१ जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई XIX, ३५।
२ जर्नल एशियाटिक सोसायटी बम्बई, १९०९, पृ० ७३१
३ आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥१॥५॥
४ तदन्वये शुद्धिमति प्रसूत शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दु क्षीरनिधाविव ॥१॥१२॥

५ पितुः प्रयत्नात्स समग्रसंपद् शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ॥३॥ ॥२२॥
हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ।
भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्किते स्वनामचिह्नं निचखान सायकम् ॥३॥ ॥५५॥

६ गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः।
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥४॥ ॥ ४३॥

७ अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्तां स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम्।
स्वसारमादाय विदर्भनाथः पुरप्रवेशाभिमुखो बभूव ॥७॥ ॥१॥

द्वारा स्कन्दगुप्त के हार जाने के बाद गुप्त साम्राज्य की दयनीय दशा का संकेत मिलता है। मेघदूत १४५ श्लोक में भी देवगिरि पर शत्रुओं का दमन करने के लिए रहने वाले स्कन्द पर पुष्पवर्षा करने का मेघ को आदेश दिया गया है। इसमें भी स्कन्दगुप्त की ओर ही संकेत मिलता है। डा० कीथ भी मजुमदार के विचार ही का समर्थन करते हैं।[1] उनका भी कथन है कि रघुवंश के चतुर्थ सर्ग के २६ वें श्लोक में गुप्त राजाओं का उल्लेख है तथा चतुर्थ सर्ग के ही ४२,५० और ६८ वें श्लोक में चन्द्रगुप्त द्वितीय का उल्लेख पाया जाता है।[2]

आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् भी कालिदास को किसी न किसी गुप्त सम्राट् के शासन काल में ही मानते हैं। प्राचीन भारत में गुप्त काल (ई० ३०० ६५० के लगभग) संस्कृत विद्या तथा भारतीय कलाओं के पुनरुत्थान के लिए प्रसिद्ध है। श्री वी०ए० स्मिथ का विश्वास है कि गुप्त राजाओं में प्रथम दो अथवा तृतीय राजा के शासन काल में ही कालिदास रहा होगा—

सम्राट् चन्द्रगुप्त	II	ई० ३५७-४१३
सम्राट् कुमारगुप्त	I	ई० ४१३-४५५
सम्राट् स्कन्दगुप्त		ई० ४५५-४८०

चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा स्कन्दगुप्त इन दोनों ने ही विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की थी। मि० स्मिथ का कथन है-यह बात असंभव नहीं है कि कालिदास की पहली रचनाएं ई० ४१३ से पहले चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में लिखी गई हों और बाद के ग्रन्थ कुमारगुप्त प्रथम (ई० ४१३-४५५) के शासनकाल में लिखे गए हों। हो सकता है कि कालिदास का सारा साहित्यिक जीवन कुमारगुप्त के शासन काल में ही रहा हो। यह बात भी असंभव नहीं है कि स्कन्दगुप्त के राजा होने के बाद भी कालिदास लिखता रहा हो। मि० स्मिथ का विचार है कि तीस साल से अधिक समय तक कालिदास का साहित्यिक जीवन रहा होगा।[3]

शकों के द्वारा भारतवर्ष पर किया गया प्रथम आक्रमण स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के द्वारा रोका गया था। लेकिन मन्दसोर के ई० ४७३ के वत्सभट्टि के शिलालेख में कालिदास के काव्य का अनुकरण देखकर स्मिथ और मेकडानल आदि विद्वानों ने कालिदास को वत्सभट्टि के शिलालेख के समय से प्राचीन अनुमान कर इसको

---

१ जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी, १६०६, ४३३ ६

२ स गुप्तमूलप्रत्यन्तं शुद्धपार्ष्णिरयान्वित ।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ॥४॥ ॥२६॥

३ दे० Early History of India पृ० ३०४ सं० १९१४

चन्द्रगुप्त द्वितीय (ई० ४००) का ही समकालिक माना है। ऐसा मानने से रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु का दिग्विजय समुद्रगुप्त के दिग्विजय से, कुमार सम्भव की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म से, विक्रमादित्य की उपाधि के उपलक्ष्य में विक्रमोर्वशीय नाटक की रचना, मल्लिनाथ के अनुसार कालिदास और बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग का समकालीनत्व, कालिदास के ग्रन्थों से अनुमित उस काल की शान्ति आदि प्राय सभी बातें संगत हो जाती है। इसके सिवाय इन्दुमती स्वयंवर में उपस्थित मगधराज के लिए जो उपमा या विशेषण[1] प्रयुक्त किए गए हैं उनसे भी चन्द्रगुप्त नाम की ध्वनि निकलती है। अन्य प्रमाणों के आधार पर भी बहुत से विद्वानों ने गुप्त राजाओं के काल में ही कालिदास का अस्तित्व माना है।[2]

परन्तु इस मत के अनुसार यह भी आपत्ति उठती है कि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक के लिए ५०० वर्ष पुराने शुंग वंश के अप्रसिद्ध राजा अग्निमित्र को ही नायक क्यों चुना। अश्वघोष और कालिदास के काव्यों में विशेष अनुकरण होने से यदि मान भी लिया जाए कि कालिदास ने ही अश्वघोष का अनुकरण किया तो उसने भाससौमिल्लकविपुत्रादि के साथ अश्वघोष का भी नामोल्लेख क्यों नहीं किया। रघुवंश के पाण्ड्य सम्राट् का कालिदास द्वारा ऐसा विस्तृत वर्णन क्यों किया गया है जब कि उस समय पाण्ड्य वंशीय राजाओं की अवनत अवस्था थी और पह्लव वंशीय राजाओं का साम्राज्य था। इसके अतिरिक्त कालिदास का गुप्तकाल में माना जाना गुप्त राजाओं के विक्रमादित्य उपाधि धारण करने पर ही आश्रित है। लेकिन गुप्त राजाओं से पूर्व भी मालवा में विक्रम संवत् के प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य का पता इतिहास से चलता है। महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य ने ही ई० पू० ५६ में यह विक्रम संवत् चलाया था। यह बात अब निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है।

ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी का विचार

सर विलियम जोन्स ने निम्नलिखित श्लोक—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह शंकु वेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासा।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

को आधार मानकर ई० पू० ५६ में विक्रम संवत् के संस्थापक राजा विक्रमादित्य ही की सभा का राजकवि कालिदास को माना है। हाल की गाथा सप्तशती

१ 'ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रि', 'इन्दु नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै' में चन्द्रमा तथा इन्दु शब्द चन्द्रगुप्त के द्योतक बतलाए हैं।

२ मैकडानल का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३२५।

में भी दानशील राजा विक्रम का उल्लेख पाया जाता है।[1] हाल का समय स्मिथ की राय में सन् ६८ ई० के आसपास है। जब ६८ ई० के ग्रन्थ में विक्रम का नाम पाया जाता है तब सौ वर्ष पहले उसकी स्थिति मानने में किसी प्रकार की विप्रपत्ति नहीं हो सकती। विक्रमादित्य ने म्लेच्छों का नाश किया—

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधा हरेरवतरिष्यत।
शकान्विनाश्य येनाद्यो कार्यभारो निवेशित॥

इसके अतिरिक्त मन्दसौर के शिलालेख के रचयिता वत्सभट्टि ने ऋतुसंहार के १,२,१०-११ तथा मेघदूत के ६५ श्लोकों का अपने शिलालेख में अनुकरण किया है। इससे यह निश्चित ही है कि कालिदास ई० ४७३ से पूर्व ही रहा होगा। बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द के लेखक अश्वघोष के काव्यों में कालिदास के काव्यों के समान स्तर भाव वाले बहुत से पद्य दृष्टिगोचर होते हैं। कालिदास ने प्राय वाल्मीकि तथा अन्य प्राचीन लेखकों से ही प्रेरणा प्राप्त की है और उसके विचार नितान्त मौलिक हैं। अश्वघोष में कवि की अपेक्षा दार्शनिक का अंश अधिक है। अत इस बात की अधिक सम्भावना हो सकती है कि अश्वघोष ने ही कालिदास के विचारों का अपनी रचनाओं में उपयोग किया हो। अश्वघोष कनिष्क का समकालीन था। अत ई० ७८ ही उसका रचनाकाल समझा जाना चाहिये। इस तरह कालिदास भी ई० ७८ पूर्व ही माना जायगा। डा० पीटर्सन भी इसी मत के समर्थक हैं। उनका कथन है—Kalidasa stands near the beginning of the Christian era, if indeed, he does not overtop it

कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक का नायक अग्निमित्र शुंगवंशीय पुष्यमित्र का पुत्र है। पतञ्जलि (ई० पू० १८८) ने पुष्यमित्र का अपने महाभाष्य में उल्लेख किया है। सी एम डफ ने (Chronology of India, Westminster) में पुष्यमित्र को ई० पू० १७८ का माना है। अत उसके पुत्र को नाटक का नायक बनाने से यही सिद्ध होता है कि कालिदास ई० पू० प्रथम शतक में ही हुआ होगा क्योंकि उस समय अग्निमित्र की कथाएं अवश्य प्रसिद्ध रही होंगी। ई० चतुर्थ या पंचम शतक में होने वाला कालिदास अपने समय के प्रसिद्ध राजाओं को छोड़कर

---

१ संवाहण सुह-रस तोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम्।
चलणेण विक्कमाइत्त चरिअं अणु सिक्खिदं तिस्सा ॥५॥ ॥६४॥
संवाहन सुख रस तोषितेन ददता तव करे लाक्षाम्।
चरणेन विक्रमादित्य चरित मनुशिक्षितं तस्या ॥ गाथा का संस्कृतानुवाद ॥

२ Buhler–Die Indischen Inschriften, P 18.

ई० पू० द्वितीय शतक के राजा को अपने नाटक के नायक के रूप में कभी नहीं चुन सकता। इसलिए कालिदास को विक्रम संवत् के आरम्भ में (ई० पू० प्रथम शतक) ही मानना आवश्यक हो जाता है।

प्रो० आप्टे[१] का मत है कि अश्वघोष का बुद्ध चरित कालिदास के रघुवंश के अनुकरण पर ही लिखा हुआ है।[१] इसके अतिरिक्त आन्तरिक साक्ष्य से भी कालिदास के ई० पूर्व में ही होने का निष्कर्ष निकलता है। शकुन्तला नाटक में चोरी के अपराध का दण्ड और उत्तराधिकार का नियम हमें प्रमाणस्वरूप प्राप्त होते हैं। बिना उत्तराधिकारी के मरने वाले धनमित्र वणिक् की मृत्यु की सूचना देने वाला नाटक के छठे अंक का अवतरण प्रो० आप्टे के अनुसार उस समय का निर्देश करता है जब कि मृत पुरुष को विधवा स्त्री को अपने पति की संपत्ति में कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त होता था। ऐसा समय ईसवी सदी से पहले ही पाया जाता है जब कि मनु, आपस्तम्ब और वसिष्ठ की ही स्मृतियां चलती थीं तथा बृहस्पति, शंख, लिखित और याज्ञवल्क्य की स्मृतियां नहीं चल पाई थीं। छठे अंक के प्रवेशक में रत्न की चोरी के अपराध में सूचित किया गया मृत्युदण्ड बड़ा कठोर सा प्रतीत होता है। विक्रमोर्वशीय में भी (आत्मनो वधमाहर्ता-५।१) ऐसे ही अभिप्राय का प्रसंग और इसके में आता है। सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ समय समय पर चोरी का दण्ड घटता रहा है। मनु और आपस्तम्ब बड़े कठोर दण्ड का विधान करते हैं। दण्ड के बदल में जुर्माने का विकल्प तो बाद में बृहस्पति की स्मृति में ही पाया जाता है। उपर्युक्त दो प्रमाणों से यही प्रतीत होता है कि कालिदास बृहस्पति से, जो प्राय ई० प्रथम शतक में ही माना जाता है, पूर्व के समय में रहा होगा।

इसके अतिरिक्त प्रो० आप्टे ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाया है कि कालिदास के ग्रन्थों में न्यायदर्शन का बिलकुल संकेत नहीं मिलता है। (रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के प्रथम श्लोक में (अथात्मन शब्दगुणं गुणज्ञ पदं विमानेन विगाहमान) आकाश के लिये शब्दगुण शब्द अवश्य आता है, लेकिन यह शब्द सांख्य दर्शन से भी लिया हुआ हो सकता है)। इससे भी वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि न्यायदर्शन के विकास से पहिले कालिदास रहा होगा।

उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त कविता की शैली भी विचार करने योग्य है। दण्डी, बाण, भवभूति तथा अन्य मध्ययुगीन लेखकों की रचनाओं में लम्बे समास, श्लेष अलंकार तथा अलंकृत शैली पाई जाती है। कालिदास की रचनाओं में वैदर्भी रीति ही अपनाई गई है और लम्बे समास इत्यादि नहीं हैं। इससे भी यह प्रतीत होता है कि कालिदास दण्डी इत्यादि से ६ या ७ शताब्दी पूर्व ही रहा होगा,

---

१ दे० आर एन आप्टे का Date of Kalidasa (Central Press, Bombay)

क्योंकि तत्कालीन प्रचार साधनों को देखते हुए साहित्यिक शैली में ऐसे महत्त्व पूर्ण परिवर्तन के लिए इतना समय तो चाहिए ही। अत यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास कम से कम ई० पू० प्रथम शतक में ही रहा होगा[1]।

कालिदास के काल के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि इस सम्बन्ध में मुख्य विचार दो ही हैं। प्रथम विचार कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में मानता है। इस विचार को हम भारतीय विचार भी कह सकते हैं, क्योंकि प्रो० ए. बी. कीथ के शब्दों में भारतवर्ष के बाहर इस विचार के समर्थक कम ही हैं[2]। दूसरा विचार कालिदास को ई० पचम या चतुर्थ शतक में मानता है। इस विचार को हम यूरोपियन विचार भी कह सकते हैं, क्योंकि कुछ भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त प्राय इस विचार के पोषक यूरोपियन विद्वान् ही हैं। यद्यपि समय के दृष्टिकोण से इन दोनों विचारों में बड़ा भेद है, लेकिन कालिदास को उज्जयिनी के किसी राजा विक्रमादित्य के (अनुमानत प्रथम) शासन काल में मानने में दोनों मत एक हैं। चूंकि ऐतिहासिकों ने गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाला प्रथम सम्राट् भूल से अब तक मान रखा है, अत कालिदास को भी वे उसी के आश्रय में मानते हैं। लेकिन चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही प्रथम विक्रमादित्य मानना प्रामाणिक नहीं है। प्रो० के० एम० शेम्बवनेकर ने इस मत का समूल खण्डन कर दिया है[3]।

कविता की शैली इत्यादि के बाह्य प्रमाणों से कालिदास का भास, रविकीर्ति तथा मन्दसौर शिलालेख के लेखक वत्सभट्टि से कई शताब्दी पूर्व होना ही निश्चित होता है। कवि की निश्चित तिथि का कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। लेकिन कवि की धार्मिक प्रवृत्तियां तथा उसके ग्रन्थों की भाषा सम्बन्धी विशेषताओं से ई० पू० प्रथम शतक का स्पष्ट सकेत मिलता है। गुप्तवंश के सब राजा वैष्णव थे

---

१ प्रो० एस रे ने १९०९–१० में पाए गए एक Bhitta Medallion की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। इस चित्र में आश्रमवासियों को राजा दुष्यन्त और उनके सारथि से हिरन न मारने की प्रार्थना करता हुआ बताया गया है। यह दृश्य शकुन्तला नाटक के प्रथम दृश्य से बिलकुल मिलता जुलता है। इस चित्र को शु ग काल (ई० पू० १८४ से ई० पू० ७२) का माना जाता है। प्रो० रे का कथन है कि कालिदास उक्त समय से पूर्व ही रहा होगा। अत इनके मतानुसार ई० पू० द्वितीय शतक कालिदास का समय स्थिर होता है।

२ दे० कीथ का संस्कृत ड्रामा, पृ० १४३

३ दे० Journal of Indian History, vol X, Part २ में A Puzzle in Indian Epigraphy नामक लेख।

लेकिन कालिदास निश्चित रूप से शैव था। कथा सरित्सागर में विक्रम संवत् का स्थापक विक्रमादित्य तथा उसका पिता महेन्द्रादित्य दोनों ही शिव के परम भक्त बताए गए हैं। सारे मालवा प्रान्त में शैवधर्म का ही अधिक प्रचार दीखता भी है। अतः यही बात अधिक तर्कसंगत प्रतीत होती है कि विष्णु धर्मावलम्बी गुप्त-राजाओं के शासनकाल में जबकि शैव धर्म का ह्रास हो रहा था, कालिदास को न मानकर शैव धर्मावलम्बी उन राजाओं के शासन काल में जबकि मालवा में शैवधर्म अपने उत्कर्ष पर था, माना जाय।

इसके अतिरिक्त भाषा के प्राचीन प्रयोग भी कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक का ही सिद्ध करते हैं। कुछ प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि कालिदास ऐसे समय में रहा होगा जब पाणिनीय व्याकरण का पूर्ण प्रचार न हुआ होगा। 'त पातथा प्रथममास पपात पश्चात्' (रघु० ६ ६१) और 'प्रभ्रंशया यो नहुष चकार' (रघु० १३ ३६) इत्यादि प्रयोगों को मल्लिनाथ ने अपाणिनीय बतलाया है, लेकिन इनसे पाणिनीय व्याकरण के अतिरिक्त किसी और व्याकरण के भी व्यवहार में रहने का प्रमाण मिलता है। इसके अलावा कुछ वैदिक तथा उत्तर वैदिक रूप भी जैसे बभूव[1] के लिए आस, कामयमान के लिए कामयान,[2] दत्तवान् के लिए दाश्वान्,[3] त्र्यम्बक के लिए त्रियम्बक[4] गुप्तयुग से कई शताब्दी के पूर्व के समझे जाने चाहिए। अतः कालिदास को बिना किसी कठिनाई के ई० पू० प्रथम शतक में रखा जा सकता है। यह समय ही ऐसा रहा होगा जब कात्यायन के वार्तिक तथा पतञ्जलि के महाभाष्य से सम्पन्न पाणिनीय व्याकरण व्यवहार में आता तो होगा, लेकिन इसका पूर्ण प्रभाव स्थिर न हो पाया होगा तथा भाषा में वैदिक या उत्तरवैदिक प्रयोग तब भी कुछ चलते रहे होंगे और पाणिनीय व्याकरण की प्रधानता के साथ साथ दूसरे व्याकरण भी प्रयोग में आते होंगे।

उपर्युक्त धार्मिक तथा भाषा सम्बन्धी प्रमाणों के अतिरिक्त मेघदूत में वत्सराज उदयन का उल्लेख भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है।[5] अवन्ति देश के वर्णन में कवि ने वहाँ के वृद्ध लोगों को वत्सराज उदयन की कथाओं में पारगत बताया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में उदयन की

---

१ तेनास लोक पितृमान् विनेत्रा। रघु० १४ २३॥

२ राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम्। रघु० १९ ५०।
किन्तु यादृशीतिहास निबन्धेषु कामयानानामवस्था श्रूयते। शकु० ३ अंक।

३ दाश्वान्सुपुत्राशिषमित्युवाच। रघु० १८ ७१॥

४ त्रियम्बक संयमिनं ददर्श। कुमा० ३ ४४।

५ प्राप्यावन्ती नुदयन कथा कोविद ग्राम वृद्धान्।

कथाएं वहीं प्रचलित थीं। चूंकि नायक की मृत्यु के बाद उसकी कथाएं बहुत समय तक नहीं चल सकतीं, अतः कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में ही जबकि मालव देश में उदयन की वीरता तथा प्रेम की कथाएं खूब प्रचलित रही हों, मानना युक्तियुक्त है। वत्सराज उदयन तथा कालिदास के मध्य में चार शताब्दी का ही अन्तराल अधिक सगत प्रतीत होता है। यदि कालिदास को ई० चतुर्थ शतक में रखा जाए तो हमें यह मानने को विवश होना पड़ेगा कि नौ शताब्दियों के बाद भी उदयन की कथाएं जीवित परम्पराओं के रूप में विद्यमान थीं। इसके अतिरिक्त ई० प्रथम शतक में गुणाढ्य ने अपनी बृहत्कथा द्वारा उदयन की कथाओं का देश भर में प्रचार कर दिया था। यदि कालिदास को ई० चतुर्थ शतक में माना जाय तो उस समय उदयन की कथाओं का केवल उज्जयिनी में ही सीमित रहना सगत नहीं प्रतीत होता है। बृहत्कथा के अन्तिम परिच्छेद में कालिदास के आश्रयदाता राजा विक्रमादित्य का ही वर्णन किया गया है। यदि कालिदास की रचनाओं में उसके आश्रयदाता की प्रच्छन्न रूप से कुछ भी प्रशसा या उसकी रचनाओं में उसके पात्रों तथा तत्कालीन नायक में सादृश्य बताने वाले कुछ भी प्रसग हो सकते हैं, तो उन सबका बृहत्कथा में वर्णित प्राचीन विक्रमादित्य से ही सम्बन्ध हो सकता है न कि इस उपाधि के धारण करने वाले किसी उत्तर कालीन राजा से। इन प्रशस्तियों और प्रसगों में कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनसे कालिदास का गुप्त राजाओं के समय में मानने का विचार बिल्कुल छिन्न भिन्न हो जाता है।

सर्व प्रथम विक्रमोर्वशीय नाटक को ही लीजिए। कालिदास ने अपने आश्रय दाता के नाम को अमर बनाने तथा उसकी प्रशसा करने के लिये ही इस नाटक का यह नाम रखा है। कथा सरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य के पिता का नाम महेन्द्रादित्य था। इन्द्र के अन्य बहुत से विशेषणों में से महेन्द्र का ही बार बार नाटक में प्रयोग कुछ रहस्य प्रकट करता है। इससे यह स्पष्ट ही प्रकट होता है कि युवावस्था में अपने आश्रयदाता वृद्ध राजा महेन्द्र का गुणगान करने के लिये यह शब्द बार बार प्रयुक्त किया गया है[1]। इन्द्र के पर्यायवाची अन्य शब्दों का भी प्रयोग इस नाटक में देखने में आता है लेकिन महेन्द्र शब्द की आवृत्ति विशेषतया उल्लेखनीय है। कुमारसभव के तृतीय सर्ग तथा शकुन्तला के ७ वें अक में इन्द्र का प्रसग होने पर भी इन्द्र के किसी भी नाम की आवृत्ति देखने में नहीं आती है। चूंकि महेन्द्र शब्द प्राय गद्य वाक्यों में ही आया है, अतः यह स्पष्ट ही है कि जान बूझकर इस शब्द का प्रयोग किया है न कि छन्द की विवशता से। महेन्द्र शब्द की आवृत्ति के अतिरिक्त नाटक में कुछ ऐसे वाक्य भी पाए जाते हैं जो कि बड़े महत्वपूर्ण हैं—

---

१ प्र० अं० में ६ बार, द्वि० अं० के विष्कम्भक में ४ बार और अंतिम अं० में चार बार महेन्द्र शब्द आया है।

१ किं प्रभाव दर्शिना महेन्द्रेण । प्र० अं०

२ दिष्ट्या महेंद्रोपकार पर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान् । प्र० अं०

३ युक्तमेतत् । अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः । प्र० अं०

४ सदृशं पुरुषान्तरविदो महेन्द्रस्य । तृ० अं०

५ प्रथम पुत्र दर्शनेन विस्मृताऽस्मि । इदानीं महेन्द्र सकीर्तनेन स्मारितः समयो मम हृदयमायासयति । प० अं०

रम्भे ! उपनीयतां स्वयं महेन्द्रेण सभृत कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेकः । पं० अं०

उपर्युक्त वाक्यों में तीसरा वाक्य तो निश्चित रूप से विक्रमादित्य की प्रशंसा में है ही। प्रथम और चतुर्थ उज्जयिनी के तत्कालीन राजा तथा विक्रमादित्य के पिता महेन्द्र की प्रशस्ति में है। द्वितीय वाक्य में पिता और पुत्र के संबंध का स्पष्ट निर्देश करते हुए कवि ने यह कहने का प्रयास किया है कि विक्रम के गौरव अथवा वीरकार्यों से महेन्द्र को शान्ति मिलती है। पांचवें वाक्य में तो कवि ने जान बूझकर ही महेन्द्र शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि पिछले श्लोक[1] के अनुसार पुरन्दर शब्द की ही आवृत्ति प्रसंग में उपयुक्त बैठती है। इसके अतिरिक्त इस वाक्य में कवि ने वृद्ध महेन्द्र के राज्यभार छोड़ने का भी यथा सूक्ष्म संकेत किया है। वास्तव में यह नाटक वृद्ध राजा महेन्द्र के राज्यभार से अवकाश प्राप्त करने तथा विक्रम के राज्याभिषेक होने के अवसर पर लिखा गया प्रतीत होता है[2]। उपर्युक्त छठे वाक्य में इसका भी कुछ संकेत स्पष्ट दीख रहा है। कथा सरित्सागर में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि वि० संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य का पिता महेन्द्रादित्य वास्तव में राज्यभार से मुक्त होकर वाराणसी चला गया था—

ततश्च यौवनस्थं तं विलोक्य प्राज्यविक्रमम् ।
अभिषिच्य सुतं राज्ये यथाविधि जनप्रियम् ॥
महेन्द्रादित्यनृपतिः सभार्यासचिवोऽपि सः
वृद्धो वाराणसीं गत्वा शरणं शिश्रिये शिवम् ॥

कथा १८० ४१ ६० ॥

---

१ अथाहं पुत्रिणामग्र्य सुपुत्रेण तवामुना ।
पौलोमीसंभवेनेव जयन्तेन पुरन्दर ॥ ५ ॥ १४ ॥

२ पुत्र के युवक हो जाने पर वृद्ध राजा का राज्य छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार कर लेना कवि का अपना आदर्श रहा है। तुलना कीजिए रघु० प्र० ८, सू० ७०, सप्तम ७१ इत्यादि।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि ने विक्रमोर्वशीय नाटक में अपने आश्रयदाता राजाओं (महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य) के जीवन की भी घटनाओं का दिग्दर्शन कराया है। इसी प्रकार रघुवंश में भी कुछ ऐसे कथा प्रसंग हैं जो महेन्द्र और विक्रम के जीवन की घटनाओं से नितान्त मिलते जुलते हैं। दिलीप का पहिले पुत्र हीन होना तथा बाद में वशिष्ठ की गौ के वरदान से पुत्र को प्राप्त करना ठीक उसी तरह है जिस प्रकार कथासरित्सार में महेन्द्रादित्य का पुत्रहीन होना और शिवजी की कृपा से विक्रमादित्य का प्राप्त करना वर्णित किया गया है। इसके बाद रघु की शिक्षा, अनेक राजकुमारियों से उसका विवाह, राजा होने के बाद उसका दृढ़ तथा उदार शासन और अन्त में उसका दिग्विजय यह सब घटनाएं कथासरित्सागर में वर्णित विक्रमादित्य के जीवन की घटनाओं से इतनी समानान्तर है कि पाठक को विवश हो कर यह मानना पड़ता है कि कालिदास ने अपने वर्तमान संरक्षक के जीवन का चित्र प्रस्तुत करने के लिए ही पौराणिक रघु का चरित्र चुना है। तुलना के लिए दोनों ग्रन्थों से कुछ पद्य उद्धृत किए जाते हैं —

१ यदा च तथाविधं वस्तु राजनि वर्धते। सौगतव्यतिरेकेण नास्ति कश्चिदनीश्वरः ॥	१ अनाय शुद्धान्तचराय शंसते कुमार जन्मामृत सम्मिताक्षरम्। अदेयमासीत्त्रयमेव भूपते शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥
२ उपनीतस्य विद्यासु गुरवो हेतुमात्रताम्। ययुस्तस्याभ्यासेन प्रादुरासंस्स्वयं तु ता ॥	२ विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम् अवन्ध्ययत्नाश्च बभूवुरत्र ते क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति ॥
३ आनान्तोपनतैर्दत्ता कन्या रूपवतीर्नृपैः। आजहार पिता तस्य तास्ता श्रिय इवापराः ॥	३ नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य सत्पतिं तमोनुदं दक्षसुता इवाबभुः।
४ सोऽपि तद्विक्रमादित्यो राज्यमासाद्य पैतृकम्। नभो भास्वानिवारेभे राजा प्रतपितुं क्रमात् ॥	४ स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ।

(कथा १८,१,४०,४४,४८,६१) (रघु० सू० १६,२६, ३३, च० १।)

उपर्युक्त प्रमाणों से यह बात बड़ी सरलता से समझ में आ सकती है कि कालिदास के संरक्षक महेन्द्र और विक्रम ही उज्जयिनी के प्राचीन और प्रसिद्ध राजा थे। गुप्त राजाओं ने तो उनके नाम को उज्जयिनी में अपनी राजधानी बनाने के बाद उपाधिस्वरूप ग्रहण किया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने जब विक्रमादित्य नाम उपाधिस्वरूप धारण किया तब उसके पुत्र कुमारगुप्त ने विक्रमादित्य के पिता महेन्द्रादित्य का ही नाम उपाधिस्वरूप धारण कर लिया। गुप्त राजाओं ने यह उपाधियां किसी उद्देश्य से ही धारण की होंगी। और यह

उद्देश्य यही हो सकता है कि उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाने के बाद गुप्त राजाओं ने यह देखकर कि मालव देश की जनता के हृदय में वहा के प्राचीन राजाओं महेन्द्र और विक्रम की स्मृतिया अब भी जागृत हैं तथा जनता उनके नाम को हर समय याद करती है, स्वय भी जनता को प्रसन्न करने के लिए यह नाम उपाधि स्वरूप धारण किये हों। यद्यपि चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम के सम्बन्ध में प्राचीन राजाओं के नाम का क्रम विपर्यस्त हो गया है, लेकिन स्कन्दगुप्त के पुन विक्रमादित्य उपाधि धारण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त राजाओं की यह केवल उपाधिया थी। अत यह बात नितान्त नि सन्दिग्ध है कि कथासरित्सागर में वर्णित राजा ही कालिदास के सरक्षक हैं, न कि गुप्त वश का कोई राजा। गुप्त राजाओं का परमभागवत तथा वैष्णव होना तो इतिहासप्रसिद्ध ही है। अत शैव मत का मानने वाला कालिदास शैवमतावलम्बी मालवा के प्राचीन राजाओं महेन्द्र और विक्रम के सरक्षण में ही हो सकता है। कथासरित्सागर में विक्रम सवत् के सस्थापक राजा का दूसरा नाम विषमशील दिया हुआ है न कि चन्द्र या स्कन्द। इस प्रकार के नाम की भिन्नता से भी विक्रम सवत के संस्थापक राजा के सम्बन्ध में कोई सदेह नहीं रह जाना चाहिये। अत आर्य धर्म के सरक्षक, पौराणिक गाथाओं के अमर नायक, विदेशियों को भारतभूमि से निकालने वाले तथा सस्कृत विद्या का उत्थान करने वाले और ई० पू० ५७ में उज्जयिनी में शासन करने वाले प्राचीन और अधिक यशस्वी विक्रमादित्य को ही कालिदास का सरक्षक माना जाना चाहिए[1]।

कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में रखे जाने का विचार शताब्दियों से चली आती हुई भारतीय-जनश्रुति से तो मेल खाता ही है, आन्तरिक तथा बाह्य प्रमाण भी इसके पक्ष में हैं तथा इस विचार के मान लेने पर बृहत्कथा जैसे कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों के समय में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

अब हमें यह देखना है कि कालिदास को अन्य विभिन्न समयों में मानने वाले विचार कहा तक भ्रमात्मक और असत्य हैं। कालिदास को गुप्त राजाओं के समय में माननेवाले लोगों ने गुप् धातु तथा इससे बनने वाले शब्दों, रघुवश तथा कुमारसभव में कुमार श द का प्रयोग और कुमार सभव के नाम को आधार मानकर कालिदास को गुप्तराजाओं के समय में रखने का आग्रह किया है। लेकिन किसी ग्रन्थ में कोई पद या वाक्याश

---

१ प्रो० के० एम० शेम्बावनेकर (सेन्ट जेवियर्स कालेज, बम्बई) ने (जर्नल आफ दि यूनिवर्सिटी आफ बाम्बे, ?, पृ० २३०-२८६) में प्रबल प्रमाणों और तर्कों के आधार पर कालिदास को ई० पू० ५६ में ही रखा है। डा० एम० एल० दास गुप्त ने भी (प्राच्यवाणी पत्रिका, कलकत्ता, भाग २, स० ३,४, १९४५ पृ० १०० ११०) कालिदास को इसी समय का माना है।

तभी किसी विशेष अभिप्राय का द्योतक माना जा सकता है, जब कि जान बूझकर विशेषतया उसका प्रयोग किया गया हो या किसी विशिष्ट अभिप्रायपूर्ण प्रसग मे वह पाया जाय। रघुवश में गुप् धातु का प्रयोग बड़े ही साधारण रूप में हुआ है, जैसा कि रामायण और महाभारत में भी पाया जाता है। राजनीति के ग्रन्थों में तो इस धातु का प्रयोग बड़ा ही प्रचुर है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति मे तो गुप्त जैसे शब्द स्थान स्थान पर पाये जाते हैं। कालिदास ने जिसका कि राजनीति का ज्ञान अवश्य ही गम्भीर रहा होगा, गुप् धातु तथा इससे बनने वाले शब्दों को राजनीति के अर्थों मे ही प्रयुक्त किया है। अत गुप् धातु के प्रयोग मे कोई विशेष तात्पर्य दृष्टिगोचर नहीं होता है। वस्तुत कालिदास ने पा, रक्ष्, त्रै इत्यादि पालनार्थक सभी धातुओं का छन्द की सुविधा के अनुसार प्रयोग किया है और गुप् धातु केवल राजनैतिक अर्थ में (रक्षा करना) प्रयुक्त की गई है। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रसग में इस धातु के प्रयोग में कोई विशेष अभिप्राय दृष्टि गोचर नहीं होता है। अत इस तरह के तुच्छ आधार पर कालिदास का गुप्त राजाओं से सम्बन्ध जोड़ना नितान्त निराधार है। यदि केवल गुप् धातु के प्रयोग मात्र से गुप्त राजाओं से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, तो शक् धातु तथा इससे बने हुए शब्दों के भी कहीं कहीं पाये जाने वाले प्रयोग के आधार पर शक राजाओं से भी कालिदास का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

कुमार शब्द का प्रयोग भी किसी तरह कुछ महत्वपूर्ण नहीं है। कादम्बरी, वेणीसहार और मुद्रा राक्षस में भी यह शब्द बहुत बार आता है। कवि ने यदि कहीं भी रघुवंश में इस शब्द का प्रयोग किया है तो आवश्यकता से प्रेरित होकर, जिस तरह कि कुमारी शब्द रघुवश के छठे सर्ग में आता है। वास्तव में कुमार शब्द संस्कृत साहित्य का बहुत ही साधारण शब्द है। 'सुत' 'पुत्र,' 'तनय,' 'आत्मज,' 'सूनु' इत्यादि अन्य पर्यायवाची शब्दों की तरह इसका भी स्थान स्थान पर प्रयोग पाया जाता है। अत कुमार शब्द के प्रयोग में कोई विशेष बात नहीं दीखती है। इसके विपरीत विक्रमोर्वशीय में महेन्द्र शब्द की आवृत्ति जान बूझकर की गई प्रतीत होती है। क्यूं कि इन्द्र के पर्यायवाची अन्य शब्दों को छोड़कर इसी विशेषण की आवृत्ति की गई है तथा कुछ वाक्य भी ऐसे हैं जो महेन्द्र नामक किसी व्यक्ति की प्रशसा का सकेत करते हैं, अत कालिदास को महेन्द्र जैसे किसी राजा का सम कालीन ही मानना चाहिये। इस मत का कथासरित्सागर के प्रमाण से भी कोई विरोध नहीं पड़ता है।

प्रो० कीथ का यह कथन भी कि कालिदास की रचनाओं में गुप्तकाल के हिन्दु शास्त्रों का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई देता है, सत्य नहीं है। वस्तुत साख्य, योग, न्याय, वेदान्त, व्याकरण, अर्थशास्त्र, ज्योतिष यह सब विद्यायें गुप्त वश के किसी भी प्राचीन-तम राजा से ही प्राचीन नहीं, बल्कि ईसा से भी पूर्व की हैं।

कुछ विद्वानों ने यूनानी Diametron के अपभ्रंश जामित्र (कुमार० ७ १) तथा चन्द्रग्रहण के कारणों के वर्णन[1] (रघु १४ ४०) का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है कि कालिदास ने ज्योतिष के यूनानी शब्द तथा ग्रहण के कारणों का अपने पूर्ववर्ती किसी भारतीय ज्योतिषी से ज्ञान प्राप्त किया होगा। सम्भव है कि ज्योतिष के प्रथम भारतीय विद्वान आर्यभट्ट के ग्रन्थों से जिनमें कि यूनानी ज्योतिष का प्रभाव देखने में आता है और जो कि ई० पञ्चम शतक के अन्त में लिखे गए हैं, कालिदास ने यह ज्ञान प्राप्त किया हो। अतः कालिदास ई० षष्ठ शतक का ही हो सकता है। लेकिन यह मत सत्य नहीं है। बौधायन गृह्यशेष सूत्र[2] तथा रामायण जैसे प्राचीन ग्रन्थों में भी ज्योतिष के पारिभाषिक शब्द पाये जाते हैं। भारतीयों को ज्योतिष का ज्ञान भले ही कहीं बाहर से प्राप्त हुआ हो लेकिन यह तो निश्चित ही है कि ई० पू० प्रथम शतक में भारतवर्ष में लग्न और राशि का ज्ञान सर्वसाधारण में प्रचलित था और यदि इस ज्ञान को यूनानी आधार पर भी माना जाये तो भी कालिदास की तिथि में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण तथा विक्रम संवत् की स्थापना में दो शताब्दियों से अधिक का अन्तराल ज्योतिष के प्रसार के लिये पर्याप्त है और फिर ऐसे देश में जहां कि वैदिक युग से ही ज्योतिष विद्या की उन्नति होती रही हो, ज्योतिष विद्या का इतना शीघ्र प्रसार होना कोई कठिन बात नहीं है। अतः कालिदास को गुप्त राजाओं के शासन काल में मानना न्याययुक्त नहीं है।

कालिदास और अश्वघोष के पौर्वापर्य का विवेचन तो पहिले किया ही जा चुका है। अश्वघोष दार्शनिक था और उसका प्रधान ध्येय बौद्धधर्म का प्रचार करना था। उस समय के लोगों की अभिरुचि काव्यों में अधिक देख कर और विपरीत लोगों को उस मार्ग से परावृत्त कर धर्मोन्मुख करने के उद्देश्य से ही उसने अपना प्रथम काव्य सौन्दरनन्द लिखा था। यह बात उसने सौन्दरनन्द के अन्तिम श्लोकों में स्पष्टतया कही है।[3] क्योंकि उस समय लोक में किसी प्रसिद्ध कवि के प्रचलित सुन्दर शृंगार रस प्रधान काव्यों की बड़ी प्रसिद्धि थी, इसलिये अश्वघोष ने उसी कवि की शैली का अनुकरण किया और उसमें 'ग्राह्य न ललितं' ऐसा उपदेश दिया। इसलिये मानना पड़ता है कि अश्वघोष ने ही अपने काव्यों में कालिदास का अनुकरण किया है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष के ग्रन्थों का उत्तर

---

१ छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः।

२ स्वर्गीय श्री त्र्यम्बक गुरुनाथ काले ने बौधायन गृह्यशेष-सूत्र में राशियों के नाम पहिले ही खोज निकाले हैं। उक्त गृह्य-सूत्र में वसन्त ऋतु की सीमाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है-मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्तः। देखिये तिलक का गीता रहस्य। -

३ दे० म० म० हरप्रसाद शास्त्री का सौन्दरनन्द काव्य।

कालीन अलंकार ग्रन्थों में अथवा सुभाषितावलियों में कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है। यदि कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया होता तो मालविकाग्निमित्र नाटक के प्रारम्भ में भास, सौमिल्ल, कविपुत्रादि की तरह अश्वघोष का भी निर्देश अवश्य करता। अतः ई० पू० प्रथम शतक में कालिदास को रखने हुये हमें यह कहना ही पड़ेगा कि अश्वघोष ने ही कालिदास के काव्यों से प्रेरणा प्राप्त की है। डा० कीथ का कहना है कि अश्वघोष की प्राकृत कालिदास की प्राकृत से प्राचीन है। लेकिन प्राकृत भाषा के स्वरूप के आधार पर कोई तर्क चल नहीं सकता, क्योंकि इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि किसी विशेष प्रकार की प्राकृत किसी विशेष शताब्दी में ही बोली जाती थी।

मेघदूत के आधार पर कालिदास को दिङ्नाग का समकालीन मानना भी ठीक नहीं है। कुछ विद्वान् तो उपर्युक्त पद्य में ध्वन्य अर्थ को बिल्कुल मानते ही नहीं हैं। यदि ध्वन्य अर्थ को मान भी जाए तो भी यही प्रकट होता है कि दिङ्नाग नामक कोई कवि कालिदास से ईर्ष्या रखता था। लेकिन यह कवि दिङ्नाग नामक बौद्ध दार्शनिक नहीं हो सकता। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो यह है कि इस बौद्ध दार्शनिक के कवि होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। दूसरा यह कि एक दार्शनिक और एक कवि में परस्पर शत्रुता कभी हो ही नहीं सकती।

तीसरा कारण यह है कि दिङ्नाग नामक बौद्ध दार्शनिक के न केवल उज्जयिनी बल्कि मालवा तक के निवासी होने का पता नहीं है, वहां के राजा के आश्रय में रहने की तो बात ही दूर है। इन सब बातों के अतिरिक्त कुन्दमाला नामक नाटक के रचयिता एक अन्य दिङ्नाग का भी पता लगा है। यह दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग से भिन्न है, क्योंकि इसने नाटक की नान्दी में ही गणेश की स्तुति की है। हो सकता है यही दिङ्नाग कालिदास का प्रतिस्पर्धी हो या अन्य कोई इस नाम का कवि कालिदास का प्रतिस्पर्धी रहा हो। कम से कम यह तो निश्चित ही है कि यह बौद्ध दार्शनिक कालिदास का प्रतिस्पर्धी नहीं है।

डा० के० बी० पाठक का ईस्वी षष्ठ शतक का मत अब तो बिल्कुल माना ही नहीं जाता है। लेकिन उनके मत की त्रुटियों पर वास्तव में लोगों का ध्यान नहीं गया है। वक्षु नदी को आक्सस समझने की उनकी चेष्टा का समर्थन मुश्किल से ही हो सकता है। प्रथम तो पाठभेद के प्रामाणिक होने में भी सन्देह है। दूसरा कारण यह भी है कि कालिदास ने किसी नदी के वर्णन करने के अवसर को छोड़ा नहीं है। फिर यह बात कुछ असम्भव सी दीखती है कि कालिदास भारतवर्ष की एक विशाल नदी सिन्धु (Indus) को छोड़कर आक्सस नदी का एक दम वर्णन करने लगे। इसके अतिरिक्त उस नदी के पास केशर उत्पन्न होती हुई बताई गई है। यह बात काश्मीर प्रदेश में बहती हुई सिन्धु नदी के तट पर ही संभव हो सकती है न कि आक्सस नदी पर जहां कि केशर का उत्पन्न होना सिद्ध नहीं है। वंक्षु

नदी का आक्सस नदी से तादात्म्य जिस प्रकार माना गया है, उस प्रकार तो टेम्स नदी का तमसा नदी से भी तादात्म्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त श्री एस० क० रे ने विष्णु पुराण तथा अन्य ग्रन्थों से उद्धरण देकर वक्षु और सिन्धु नदी को एक ही प्रमाणित भी किया है (दे० उनके शकुन्तला नाटक की भूमिका)

रघु के दिग्विजय में हूणों के उल्लेख के आधार पर भी कालिदास को ईसवी षष्ठ शतक का मानना उचित नहीं है। महाभारत में हूणों का उल्लेख पाया ही जाता है। बौद्धों के ललित विस्तर नाम के ग्रन्थ से भी हूण जाति के प्राचीन होने का उल्लेख मिलता है। उसमें अनेक लिपियों के साथ हूण लिपि का भी उल्लेख है[1]। अश्वघोष ने इसी ग्रन्थ के आधार पर अपना बुद्धचरित लिखा था। ललित विस्तर का समय ई० प्रथम शतक के बाद का नहीं हो सकता। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हूण जाति ई० पू० प्रथम या द्वितीय शतक में भी ज्ञात थी। इसके अतिरिक्त प्रो० आप्टे और नन्दर्गीकर का यह भी कथन है[2] कि रघुवंश के श्लोक में उल्लिखित हूण लोग इन्डो-सीथियन थे जिन्होंने कि बैक्ट्रिया की सीमा या भारतवर्ष के द्वार पर अपना विशाल साम्राज्य ई० पू० तृतीय शतक के मध्य से ई० प्रथम या द्वितीय शतक के अन्त तक स्थापित कर रक्खा था।

कालिदास की तिथि के सम्बन्ध में कुछ अन्य मत भी हैं। श्री हिप्पोलाइट फाचे कालिदास को रघुवंश के अन्तिम सर्ग में वर्णित सूर्य वंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुए उसके पुत्र का समकालीन मानते हैं और ई० पू० अष्टम शताब्दी के लगभग ही कालिदास का समय स्थिर करते हैं[3]। श्री एस० पी० पण्डित इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं[4]– यदि कालिदास अपने समय में शासन करते हुए इस राजा का समकालीन होता, तो उसके जीवन का अवश्य ही कुछ वर्णन करता। इसके अतिरिक्त रघुवंश को हम सम्पूर्ण काव्य भी

---

१ श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास में कहा है कि हूणों का उल्लेख महाभारत और हरिवंश में भी है।

२ दे० आप्टे का Date of Kalidasa पृ० २४ तथा नन्दर्गीकर के रघुवंश की भूमिका पृ० ८८।

३ दे० Collective Works of Kalidasa, Paris Literary Remains, Calcutta 7 Saturday Review, Jan 1860 और जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई १८६१, २५ में भाउदाजी का कालिदास पर निबन्ध।

४ दे० एस० पी० पण्डित के रघुवंश की भूमिका पृ० २७–२८।

नहीं मान सकते। जनश्रुति के अनुसार सूर्यवंश के राजाओं का इतिहास अभी और अवशिष्ट है। कालिदास के काव्य के अग्निवर्ण तक पहुंचते पहुंचते समाप्त हो जाने से हम यह नहीं मान सकते कि सूर्य वंश ही यहां पर समाप्त हो गया होगा। विष्णु पुराण में अग्निवर्ण के बाद भी ३७ राजाओं की सूची दी गई है।

लासेन महोदय शिलालेखों में समुद्रगुप्त के लिये 'कवियों का मित्र' इस उपाधि के प्रयुक्त किये जाने के आधार पर कालिदास को समुद्रगुप्त की सभा का कवि मानते हैं और ई० तृतीय शतक का प्रारम्भ ही कालिदास का समय स्थिर करते हैं।[1] मोनियर विलियम्स (इण्डियन विज्डम, ८४७) भी इसी तिथि को मानते हैं। लेकिन श्री एस० पी० पण्डित (रघु० भूमिका) उपर्युक्त तर्क को निर्णायक नहीं मानते, क्योंकि अन्य राजाओं यथा मालवा के शीलादित्य और कन्नौज के हर्षवर्धन के साथ भी यह उपाधि पाई जाती है।

श्री के० जी० शंकर ने 'इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली' भा० १ सं० २, जून, १९२५, पृ० ३०९–३१६ में तथा श्री के० चट्टोपाध्याय ने अपने Date of Kalidasa नामक लेख (इलाहाबाद यू० स्टडीज, भाग २,७६) में कालिदास को ईसवी पूर्व प्रथम शतक का ही माना है।

कवि की जन्मभूमि

कालिदास ने अपने सम्बन्ध में कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। इसकी जन्मभूमि के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ा मत भेद है। काश्मीर, विदर्भ, बंगाल तथा मालवा इन प्रदेशों में कहीं न कहीं प्रायः इसकी जन्मभूमि बताई जाती है। हिमालयवर्णन तथा काव्यशैली के आधार पर कोई इसे काश्मीरवासी बताता है तो काली की उपासना वाली दन्त-कथा तथा इसके नाम के आधार पर कुछ लोग इसे बंगाली मानते हैं। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य का मत है कि कालिदास यदि बंगीय होता तो उसके ग्रन्थों में गौडी रीति का प्राधान्य होता जैसा कि प्रायः बंगीय कवियों के काव्यों में पाया जाता है। दण्डिन् की अवन्तिसुन्दरी कथा में–

लिप्ता मधुद्रवेणासन्यस्य निर्विषया गिरः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्॥

यह पद्य आया है। इस पद्य के आधार पर कोई इसे विदर्भ का बताते हैं। लेकिन मेघदूत में मेघ को अलका का मार्ग बताते हुए रास्ता टेढ़ा होने पर भी यक्ष उससे उज्जयिनी जाने का आग्रह करता है और कहता है कि उज्जयिनी के विशाल महलों और रमणियों के कुटिल कटाक्षों के देखने से यदि यह वंचित रह गया,

---

१ दे० Indian Antiquary २,४४१।

तो उसका जीवन ही निष्फल है। उज्जयिनी की शिप्रा नदी तथा महाकाल के वर्णन से कवि का उज्जयिनी के लिए विशेष पक्षपात प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने मेघदूत में अवन्ति प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का बड़ा सूक्ष्म वर्णन किया है। यहां की छोटी छोटी नदियों का भी नाम निर्देश किया है तथा वर्णन दिया है। इस आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास उज्जयिनी का रहने वाला था। बहुत सम्भव है कि वह काश्मीर में पैदा हुआ हो और बाल्यावस्था वहीं बिताकर उज्जयिनी में आ बसा हो, अन्यथा हिमालय पर्वत का ऐसा सजीव वर्णन करना केवल उस पर्वत को एक दो बार देखकर ही सम्भव नहीं है।

कवि का जीवन वृत्त तथा उसके धार्मिक विचार

कालिदास के सम्बन्ध में प्रचलित कुछ किम्वदन्तियां पहिले दी जा चुकी हैं। उसकी रचनाओं से यह प्रकट होता है कि वह एक आस्तिक ब्राह्मण रहा होगा तथा अपने जीवन का अधिकांश उसने विक्रमादित्य की राजसभा में रहकर उज्जयिनी में ही बिताया होगा। ब्राह्मण होने के अतिरिक्त हम और किसी उपजाति में उसके होने का ठीक २ अनुमान नहीं कर सकते। उसके ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि अपने जीवन में वह बड़ा सुखी और सम्पन्न रहा होगा। जहां तक उसके धार्मिक विचारों का प्रश्न है, वह शैवमतावलम्बी प्रतीत होता है। प्राय उसके सभी ग्रन्थों में शिवजी की स्तुति पाई जाती है। विक्रमोर्वशीय के प्रथम श्लोक में उसने लिखा है – स स्थाणु स्थिरभक्ति-योग सुलभो नि श्रेयसायास्तु व । मालविकाग्निमित्र में भी शिवजी की प्रार्थना की गई है –

> एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले य स्वयं कृत्तिवासा
> कान्ता सम्मिश्र देहोऽप्यविषयमनसा य पुरस्ताद्यतीनाम् ।
> अष्टाभिर्यस्य कृत्स्न जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमान
> सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीश ॥

कुमारसम्भव काव्य तो शिवजी की कथा को लेकर लिखा ही गया है। शकुन्तला नाटक के अन्तिम श्लोक में भी शिवजी की प्रार्थना की गई है। रघुवंश में भी कवि ने शिवजी और पार्वती की वन्दना की है। मेघदूत के पूर्वभाग में उज्जयिनी में स्थित महाकाल के मन्दिर का कवि ने बड़ा ही भव्य वर्णन किया है। अत यही स्वाभाविक प्रतीत होता है कि कालिदास को शैव ही माना जाए। लेकिन शैव होते हुए भी कवि की रचनाओं में कहीं भी धार्मिक संकीर्णता नहीं दिखलाई देती है। उसकी शिवभक्ति सहिष्णुता तथा व्यापक दृष्टिकोण लिए हुए है।

कालिदास का देशाटन

कालिदास भारतवर्ष के प्राय सभी भागों से परिचित प्रतीत होता है। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के यथार्थ वर्णन से यही अनुमान

होता है कि कालिदास ने इन प्रान्तों की यात्रा अवश्य की होगी। कोंकण प्रदेश में बीज बोने से पहिले जमीन के जलाने की प्रथा का वर्णन तो बड़ा ही आश्चर्य जनक है। रघुवंश के चौदहवें सर्ग में विभिन्न देशों के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने उन देशों की यात्रा अवश्य की होगी, क्योंकि केवल यात्राविवरणों के पढ़ने से इतना विस्तृत ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। लेकिन इतना सब कुछ होते हुये भी हमें यह अवश्य मानना पड़ेगा कि दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत से कालिदास अधिक परिचित था। मेघदूत के मार्गवर्णन से भी इसी कथन की पुष्टि होती है।

कालिदास का पाण्डित्य

यद्यपि कालिदास के निजी जीवन के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है, फिर भी उसकी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह विभिन्न विद्याओं तथा कलाओं का उत्कृष्ट विद्वान् था। दर्शनों के गम्भीर ज्ञान से लेकर बालक-बालिकाओं के साधारण खेलों तक का कालिदास को ज्ञान था[1]। कालिदास ने मनु इत्यादि की स्मृतियों का भी गम्भीर अध्ययन किया होगा, तभी तो शकुन्तला नाटक में षष्ठ अंक में मात्स्यिक और धनमित्र वणिक् के प्रसंग में चौर्य-दण्ड और उत्तराधिकार के नियम का शास्त्रसंगत उल्लेख पाया जाता है। बाह्य प्रकृति के साधारण से साधारण रूप का भी कवि को ज्ञान है। इन्द्रधनुष के बनने की प्रक्रिया तथा मेघों के स्वरूप का कालिदास के द्वारा किया गया वर्णन आधुनिक भौतिक विज्ञान के सर्वथा अनुकूल है। कालिदास का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है। व्याकरण की दृष्टि से उसकी भाषा नितान्त शुद्ध है। व्याकरण के 'शब्दार्थयोः स्तादात्म्यम्' इस सिद्धान्त को कालिदास भी मानता है, जैसाकि रघुवंश के प्रथम श्लोक में 'वागर्थाविव संपृक्तौ' इस कथन से स्पष्ट है। इसी प्रकार अलंकार शास्त्र तथा नाट्यशास्त्र से भी कालिदास पूर्ण परिचित प्रतीत होता है। कहीं भी उसने इन शास्त्रों के नियमों का अपनी रचनाओं में उल्लंघन नहीं किया है। आयुर्वेद तथा इसकी विभिन्न शाखाओं का ज्ञान भी कवि का प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त कवि ज्योतिषशास्त्र से भी परिचित प्रतीत होता है। दर्शन में कवि का वेदान्त दर्शन की ओर अधिक झुकाव प्रकट होता है।

वास्तव में देखा जाए, तो कालिदास अपने समय की सब विद्याओं का पारगत विद्वान् था। सरस्वती की कृपा से कोई भी विद्या उसके लिये दुर्गम नहीं थी।

---

१ द० मेघ० २६

अन्वेष्टुं कनक सिकता-मुष्टि निक्षेप-गूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमर प्रार्थिता यत्र कन्या' ॥

कालिदास नाम के अनेक विद्वान्

संस्कृत साहित्य में कालिदास नाम के अनेक विद्वान् हुए हैं। राजशेखर ने अपनी सूक्तिमुक्तावली में कालिदासत्रयी का उल्लेख किया है–

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदास त्रयी किमु॥

स्व० म० म० प० रामावतार शर्मा पाण्डेयजी ने बतलाया है कि नवसाहसाङ्क चरित का कर्त्ता पद्मगुप्त भी परिमल कालिदास कहाता था। वह धाराधिप मुञ्ज का सभापण्डित था। धारा के भोज की सभा में भी एक कालिदास था। ज्योतिर्विदाभरण और शत्रुञ्जयमाहात्म्य का रचयिता भी कोई कालिदास था। परन्तु विक्रमादित्य का सभापण्डित महाकवि कालिदास जिसके सम्बन्ध में यहां विचार हो रहा है, इन सब कालिदासों से प्राचीन तथा भिन्न है।

कालिदास के ग्रन्थ

कालिदास निःसन्देह एक महाकवि और महान् कलाकार है। विविध प्रकार की अनेक साहित्यिक रचनाये उसकी लिखित बताई जाती हैं, परन्तु केवल सात ग्रन्थ ही मुख्यतया उसके लिखे हुए माने जाते हैं। तीन नाटक (१) मालविकाग्नि-मित्र, (२) विक्रमोर्वशीय और (३) अभिज्ञानशाकुन्तल। दो महाकाव्य (१) कुमार सम्भव और (२) रघुवंश। दो खण्डकाव्य (१) ऋतुसंहार और (२) मेघदूत (मेघसंदेश)।

मेघ संदेश की कथा

कैलाश पर्वत पर स्थित अलका नगरी के स्वामी धनपति कुबेर के यहाँ एक यक्ष किसी सेवा कार्य में नियुक्त था। सेवा में कुछ प्रमाद[1] करने के कारण यक्षराज कुबेर के द्वारा पत्नी से वियुक्त कर एक वर्ष के लिये अलका नगरी से निर्वासित कर दिये

---

१ यक्ष के सेवाकार्य तथा प्रमाद के सम्बन्ध मे कवि ने कुछ भी नहीं लिखा है। लेकिन कुछ जैन टीकाकारों का ऐसा कथन है कि प्रात कालीन शिवपूजा के अवसर पर कुबेर के लिये *मानसरोवर* से सद्योविकसित कमल पुष्प लाना यक्ष का कार्य था।

जाने पर घूमता २ वह रामगिरि पर्वत पर आ पहुंचता है और वहीं रहने लगता है¹। किसी तरह वहां उसके आठ महीने तो बीत जाते हैं लेकिन आषाढ़

इस कार्य के लिये यक्ष को सूर्योदय से बहुत पहिले ही पत्नी के बाहुपाश से मुक्त होकर घर से निकलना पड़ता था। इसलिये एक दिन वह शाम को ही कुछ कलियां तोड़ लाया। प्रातःकाल जब कुबेर शिवजी की पूजा करने लगा, तब किसी फूलों में छिपे हुये एक भौंरे ने उसकी उंगली में काट खाया। वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर कुबेर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने यक्ष को शाप दे दिया। कुछ टीकाकारों का यह भी कथन है कि यह यक्ष कुबेर के उद्यान का द्वाररक्षक था। एक दिन जब यह द्वार खुला छोड़कर चला गया, तब उसकी अनुपस्थिति में इन्द्र का ऐरावत हाथी उद्यान में घुस गया और उसने पुष्पों की क्यारियां कुचल डालीं। इसलिये उसे कुबेर ने शाप दे दिया। कुछ अन्य विद्वान् ऐसा कहते हैं कि यक्ष प्रतिदिन कुबेर के लिए पुष्प शय्या तैयार किया करता था। एक दिन पुष्पशय्या पर सोने के आनन्द का अनुभव प्राप्त करने के लिये वह स्वयं उस पर लेट गया तथा गहरी नींद सो गया। इसी समय कुबेर वहां आ गये और उन्होंने उसे अपनी शय्या पर सोता हुआ देख कर एक वर्ष के लिये निर्वासित कर दिया। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि कुबेर की निधियों की रक्षा करने के कार्य में ही यक्ष ने प्रमाद किया होगा।

श्री मन्दिकल राम शास्त्री ने मेघप्रतिसन्देश में (देखिये प्र० स० श्लोक स० ४४ ४७) यक्ष के शाप का कुछ अन्य ही कारण बताया है। उन्होंने लिखा है कि एक बार कुबेर ने सन्ध्या के समय यक्ष से शिवजी को भेंट करने के लिये शीघ्राति शीघ्र एक माला बनाने के लिये कहा। यक्ष ने माला बनाकर प्रेमवश पहिले अपनी पत्नी को पहिना दी। फिर उसी माला को शिवजी के लिये ले गया। जब सन्ध्याकालीन उत्सव में शिवजी के लिये वह माला भेंट की गई तो उन्होंने निर्माल्य समझ कर उसे अस्वीकृत कर दिया। इस घटना के सारे रहस्य को अपनी प्रणिधानशक्ति से पूर्णतया जानकर कुबेर ने यक्ष को शाप दे दिया।

¹ मल्लिनाथ ने भूल से रामगिरि को चित्रकूट समझ लिया है। यों तो किसी भी ऐसे पर्वत को जहां रामचन्द्रजी रहे हों, रामगिरि कह सकते हैं और चित्रकूट पर अपने वनवास में रामचन्द्रजी रहे भी थे। इसीलिये सम्भवतः मल्लिनाथ ने रामगिरि से चित्रकूट का अर्थ ग्रहण किया है। लेकिन मेघ द्वारा अनुसरणीय मार्ग के प्रारम्भिक स्थान को देखते हुये रामगिरि से दक्षिण का कोई अन्य पर्वत ही समझ में आता है, क्योंकि मार्ग के मध्य में आम्रकूट का (किसी किसी पुस्तक में चित्रकूट का भी) उल्लेख आता है। अतः मिरसन के मतानुसार रामगिरि से नागपुर के निकट २४ मील के अन्तर पर उत्तर की ओर स्थित रामटेक ही समझना चाहिये। मराठी में टेक का अर्थ पहाड़ी ही होता है। इसके अतिरिक्त रामटेक में रामचन्द्रजी

मास के लगते [२] उसका विरही हृदय बड़ा व्याकुल हो उठता है और पत्नी के जीवन की चिन्ता भी उसे सताने लगती है[१]।

इसी समय आकाश में उत्तर की ओर जाता हुआ एक मेघ उसे दिखाई पड़ता है। प्रथम तो मेघदर्शन से उसे कुछ चिन्ता होती है, लेकिन बाद में बड़े प्रेम से स्वागत करता हुआ वह उसके कुल, शील और सामर्थ्य की प्रशंसा करता है और फिर उससे अलका नगरी जाने तथा अपनी पत्नी के पास अपना सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना करता है। शुभ निमित्तों, अपनी पत्नी के जीवित तथा पतिव्रता बने रहने की आशा और कैलाश पर्वत तक हंसों के साथ यात्रा करने के आनन्द से मेघ को यात्रा के लिये प्रोत्साहित कर वह फिर रामगिरि से अलका तक का रमणीय मार्ग उसे बड़े विस्तार के साथ बताता है।

इस प्रसंग में सर्वप्रथम रामगिरि से उत्तर की ओर मालक्षेत्र,[२] वहां से फिर कुछ पश्चिम की ओर मुड़कर उत्तर की ही ओर चलने पर आम्रकूट पर्वत,[३] तदनन्तर विन्ध्याचल के चरणों में बहती हुई नर्मदा नदी का जल ग्रहण करने के बाद

तथा उनके साथियों से सम्बद्ध बहुत से मन्दिर भी पाये जाते हैं और अनेकों यात्री वहां समय-समय पर आते हैं। अतः यह निश्चित ही है कि कालिदास के समय में भी यह स्थान एक तीर्थ रहा होगा।

कुछ विद्वान् रामगिरि से मध्यप्रदेश का रामगढ़ पर्वत समझते हैं। नर्मदा के उद्गमस्थान आम्रकूट के निकट ही यह रामगढ़ पर्वत है।

१ शेषान् मासान् गमय चतुरः—इत्यादि अग्रिम कथन से यह प्रतीत होता है कि आषाढ़ मास तक यक्ष ने अपने शाप के आठ मास बिता दिये थे। उसका यह शाप कार्तिक मास से प्रारम्भ हुआ समझा जाना चाहिये।

२ आधुनिक रतनपुर के समीप मालदा नामक स्थान अथवा कोई भी ऊँचा पहाड़ी स्थान।

३ अमरकण्टक नामक पर्वत जिससे कि नर्मदा तथा अन्य नदियां निकलती हैं और जो विन्ध्य पर्वत का पूर्वी भाग है। डा० बराजपे आम्रकूट से सोहागपुर के दक्षिण तथा महादेव पर्वतमाला के उत्तर की कोई पहाड़ी मानते हैं। उनका कथन है कि रामटेक और भिल्सा को मिलाने वाली सरल रेखा से पूर्व की ओर २०० मील के अन्तर पर अमरकण्टक स्थित है। अतः यह मेघ का प्रथम विश्रामस्थान नहीं हो सकता।

दशार्ण[1] देश और वेत्रवती नदी[2] के तट पर स्थित इस देश की राजधानी विदिशानगरी[3] पहुँचने का मेघ को परामर्श दिया गया है। वहां से फिर नीचै[4] नामक किसी पर्वत पर विश्राम करने के बाद वननदी,[5] निर्विन्ध्या[6] तथा सिन्धु[7] नदियों पर से होते हुए अवन्ति देश और उज्जयिनी नगरी जाने का मेघ से आग्रह किया गया है।

उज्जयिनी के उच्च प्रासादों में विश्राम करने के बाद गन्धवती[8] नदी के निकट

---

१ दशार्ण-वह देश जिसमें दस दुर्ग (ऋण हों), वह नदी जिसमें दस नदियां (ऋण = जल) मिलती हों। विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली एक नदी (दोसन) का भी यह नाम है। प्राचीन दशार्ण देश भोपाल सहित मालवा का पूर्वी भाग तथा मध्यदेश का दक्षिण पूर्वी भाग था। मालवा के आधुनिक छत्तीसगढ जिले को दशार्ण देश कह सकते हैं।

२ बेतवा नामक आधुनिक नदी।

३ आजकल का भिल्सा नामक नगर।

४ विदिशा नगरी के पास की कोई छोटी और नीची सी पहाडी।

५ मल्लिनाथ वने या नद्य तासाम् ऐसी व्याख्या देकर वननदी नाम की कोई विशेष नदी नहीं मानते हैं। सारोद्धारिणी टीका के लेखक ने मालवदेश में स्थित इस नाम की एक नदी को ही माना है। विल्सन ने 'नगनदी' पाठ भेद मानकर पार्वती नदी का ही यह नामान्तर माना है। पार्वती नदी बेतवा नदी से पश्चिम की ओर बहती है और शिप्रा में मिलती है।

६ विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली नदी। यह नदी पूर्वोक्त वननदी अथवा नग नदी (पार्वती) तथा शिप्रा के मध्य में उत्तर की ओर बहने वाली कोई नदी है। सभवत आजकल की नेवज नदी का ही यह प्राचीन नाम रहा हो।

७ मल्लिनाथ ने सिन्धु नदी से निर्विन्ध्या नदी का ही तात्पर्य लिया है। उसके मत में काश्मीर के सिन्धु नद के अतिरिक्त सिन्धु नाम की कोई नदी कहीं है ही नहीं। लेकिन उसका यह विचार सत्य नहीं है। मालवा में काली सिन्धु नाम की एक नदी पाई जाती है। यह बगी नामक स्थान से निकलती है और चम्बल में मिलती है अथवा सिन्धु नदी से उस छोटी सी सिन्धु नदी का भी ग्रहण हो सकता है, जो देवास से निकलकर तथा और भी बहुत सी छोटी नदियों के साथ उज्जैन के पास से गुजरती हुई चम्बल में मिल जाती है।

८ उज्जैन के पास एक छोटी सी नदी तथा शिप्रा की एक शाखा जिसके तट पर महाकाल का मन्दिर बना हुआ है।

महाकाल[1] के मन्दिर में सायकालीन पूजा के समय तक ठहर कर फिर कहीं किसी भवन वलभि में ही रात्रि बिताकर प्रात काल आगे बढ़ने के लिए मेघ से कहा गया है। इसके बाद गम्भीरा[2] नदी में विहार करते हुए देवगिरि[3] पहुँचकर वहां स्कन्द[4] स्वामी पर पुष्पवर्षा करने और फिर चर्मण्वती[5] नदी तथा दशपुर[6] नगर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है।

तदनन्तर ब्रह्मावर्त[7] और कुरुक्षेत्र[8] होते हुए सरस्वती[9] नदी और वहां से फिर कनखल[10] के समीप गगाजी के दर्शन करते हुये हिमालय पहुँचने का मेघ को

---

१ उज्जैन का प्रसिद्ध शिव मन्दिर तथा शिवजी की मूर्ति—इन दोनों के लिये ही महाकाल कहा जाता है।

२ गन्धवती नदी की तरह मालवा की एक छोटी सी नदी। जिनसेन ने अपने आदि पुराण, अध्याय २९ में इस नदी का उल्लेख किया है। सभवत जहाँ से चर्मण्वती निकलती है, वहीं से यह नदी भी निकलती है।

३ विल्सन के मतानुसार मालवा प्रान्त के मध्य में चम्बल नदी के दक्षिण में स्थित आजकल का देवगढ नामक स्थान। डा० फ्लीट के अनुसार झाँसी से दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग ६० मील पर स्थित देवगढ़ नामक ग्राम।

४ कुमार कार्तिकेय। ५- आधुनिक चम्बल नदी

६ आधुनिक चम्बल नदी से कुछ उत्तर की ओर स्थित आजकल का रन्तिपुर या रन्तमपुर नामक स्थान। कुछ लोग सिवना नदी के उत्तरी या बाये तट पर स्थित मन्दसोर के दोसर नामक स्थान को ही दशपुर समझते हैं। पश्चिमी मालवा में मन्दसोर जिले में यह एक प्रमुख नगर है। प्राचीन समय में भी यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा, क्योंकि महाभारत, नासिक और गुप्त शिलालेखों में भी इसका उल्लेख मिलता है।

७ ब्रह्मावर्त नाम का पवित्र देश हस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम में कुरुक्षेत्र के निकट का देश है। मनु महाराज ने सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच में इस देश की स्थिति बताई है।

८ कौरवों और पाण्डवों के बीच महाभारत युद्ध का घटनास्थल तथा थानेश्वर से दक्षिण पूर्व की ओर का स्थान।

९ भारतवर्ष की एक पवित्र नदी जो कि हिमालय के दक्षिण भाग से निकलती है और मरुस्थल के रेत में आकर विलीन हो जाती है।

१० हरिद्वार के निकट कनखल नाम का तीर्थ। यह ग्राम गंगा के पश्चिमी किनारे पर बसा हुआ है। मल्लिनाथ ने कनखल नाम का पर्वत माना है, जिसके मुख से गगा निकलती है।

परामर्श दिया गया है। हिमालय पर्वत पर शिवजी के चरण न्यास[1] की परिक्रमा करने के बाद क्रौंचरन्ध्र[2] में से निकलकर, उत्तर की ओर ऊपर चलने पर कैलाश[3] पर्वत और वहां से फिर अलका[4], नगरी जाने के लिए मेघ से कहा गया है।

मार्ग वर्णन के बाद यक्ष अलका नगरी के वैभव, और विलासमय जीवन का वर्णन करता है। फिर अपने गृह तथा उसके आसपास के दृश्यों का वर्णन कर मेघ से स्वल्प शरीर होकर तथा गृहस्थित क्रीडाशैल पर बैठकर अपनी प्रेयसी के देखने की प्रार्थना करता है। इस प्रसग में यक्ष ने विरहिणी प्रेयसी का बड़ा ही भावपूर्ण काल्पनिक चित्र अंकित किया है। तदनन्तर यक्ष मेघ से मध्यरात्रि में सौधवातायन में बैठकर और शीतल वायु द्वारा उसे जगाकर (यदि सो रही हो) सन्देश सुनाने की प्रार्थना करता है।

अपना सन्देश बताने के बाद यक्ष मेघ से प्रेयसी के प्रति सन्देश लाने की भी प्रार्थना करता है तथा उसके मौन भाव से अपने दूत कार्य के स्वीकृत हो जाने की आशा कर अन्त में उसको आशीर्वाद देता है कि सन्देश कार्य को पूरा करने के बाद वह अपनी इच्छा के अनुसार यत्र तत्र घूमता रहे और विद्युत् रूपी प्रेयसी से कभी भी उसका वियोग न हो[5]।

---

१ सम्भवत हरिद्वार के निकट 'हर की पैडी' नामक पहाडी।

२ कोई पहाडी दर्रा जो कि परशुरामजी के बाण से बना था। हिमालय पर्वत पर स्थित नीति दर्रे का ही शायद यह नामान्तर हो।

३ यह पर्वत मानसरोवर से २५ मील के अन्तर पर स्थित बताया जाता है तथा शिवजी और पार्वती का यह निवासस्थान है।

४ कुबेर की प्रख्यात राजधानी। अपने वैभव के कारण ही इस नगरी का नाम अलका है। अल् धातु का अर्थ ही 'सजाना' है।

५ कुछ पुस्तकों में कथा को कुछ और आगे भी बढाया गया है। उसका साराश यह है कि मेघ यक्ष का सन्देश लेकर अलकापुरी पहुँचता है। पूर्व निर्दिष्ट लक्षणों से यक्ष के घर को पहिचान कर यक्ष पत्नी के लिए वह यक्ष का सन्देश सुनाता है। पति के वृत्तान्त को सुनकर यक्ष वधू बडी प्रसन्न होती है। इसी अवसर पर मेघ द्वारा कहा हुआ यह वृत्तान्त धनपति कुबेर के भी पास पहुच जाता है। यक्ष की करुण दशा को जानकर कुबेर को बडी दया आ जाती है और व शाप को समाप्त कर यक्ष दम्पती का पुनर्मिलन करा देते हैं।

काव्य समीक्षा

मेघ सन्देश की कथा संक्षेप में ऊपर दी जा चुकी है। वस्तुतः कथानक जैसी कोई वस्तु इस काव्य में है ही नहीं[1]। यक्ष का नाम क्या था, कुबेर के यहां वह क्या कार्य करता था तथा उसका अपराध क्या था—इन सब विषयों पर कवि ने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। यदि कवि चाहता तो इन सब विषयों पर भी विस्तार के साथ लिख सकता था। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि काव्य में कथा तो उपलक्षणमात्र है। अपने परिचित देशों और स्थानों का यथार्थ वर्णन करना तथा प्रथम बार वियुक्त भावुक प्रेमियों की भावनाओं का चित्रण करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है।

काव्य का मूल स्रोत

इस सम्बन्ध में दक्षिणावर्त और मल्लिनाथ का कहना है[2] कि कालिदास ने इस काव्य के लिखने में वाल्मीकि-रामायण से अवश्य ही प्रेरणा प्राप्त की है। रामायण में सीताजी के पास हनुमान् द्वारा रामचन्द्रजी ने सन्देश भेजा ही है। इसी घटना के आधार पर यह सन्देश काव्य लिखा गया है। काव्य में –

(१) यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नान पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥१॥

(२) इत्याख्याते पवन तनयं मैथिलीवोन्मुखी सा ॥२॥४०॥

जैसे स्थलों में जनकतनया, राम और पवनतनय के उल्लेख से भी रामायण की घटना का पाठकों के समक्ष चित्र उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त विरहिणी नायिका का वर्णन भी विरहिणी सीता के वर्णन से बहुत कुछ मिलता जुलता है। यक्ष पत्नी के सम्बन्ध में कहे गये –

ता जानीथा परिमितकथा जीवित मे द्वितीय
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।

गाढोत्कण्ठा गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बाला
जाता मन्ये शिशिर मथिता पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२॥२२॥

---

१ प्रायः सभी सन्देश काव्यों में कथा वस्तु का ऐसा ही स्वरूप पाया जाता है।

२ इह खलु कवि सीता प्रति हनुमता हारितं सन्देश हृदयेन समुद्वहन् तत्स्थानीयनायकाद्युत्पादनेन संदेश करोति। (दक्षिणावर्त) सीता प्रति रामस्य हनूमत्सन्देश मनसि निधाय मेघसन्देशं कविः कृतवान्। (मल्लिनाथ)

पद्य में

हिमहत-नलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना।
सहचर रहितेव चक्रवाकी जनक सुता कृपणां दशां प्रपन्ना ॥रा०रा०सु०१६ ३०।

की छाया स्पष्ट दीख पड़ती है।

इसी प्रकार कई अन्य स्थलों में भी समानान्तर भाव पाये जाते हैं। रामायण के किष्किन्धा काण्ड में वर्षावर्णन के प्रसंग में कहा गया है—

१ मही बाष्पं विमुञ्चति ॥२८॥७॥

२ प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ॥२८॥२२॥
३ (मेघा) महत्सु शृंगेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥२८॥२२॥

४ मेघाभिकामा परिसम्पतन्ती सम्मोदिता भाति बलाक पंक्तिः।
वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेव माला रुचिराम्बरस्य ॥२८॥२३।

मेघ सन्देश में भी मेघ के प्रसंग में ऐसे ही समानान्तर भाव व्यक्त किए गये हैं—

१ काले २ भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिर विरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥१॥१२

२ यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम् ॥२॥२८॥

३ खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र (मार्गे) ॥१॥१३॥

४ नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयन सुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥१॥६॥

इस काव्य के—

१ (मेघे) त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शंके मृगाक्ष्या
मीन क्षोभाच्चल कुवलय श्री तुलामेष्यतीति ॥२॥३४॥

२ सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्त संवाहनानाम्।
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥२॥३६॥

३ आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ॥२॥४६॥

इत्यादि स्थलों में भी, रामायण के क्रमशः निम्नलिखित, पद्यों की छाया विद्यमान है—

१ तस्या शुभं वाममरालपक्ष्मराजीवृतं कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवाभिताम्रम् ॥

॥रा० सु० २९ २॥

२ गजेन्द्र हस्तप्रतिमश्च पीनस्तयो र्द्वयो संहतयोस्तु जातः ।
प्रस्पन्दमानः पुनरूरुरस्या रामं पुरस्तात्स्थितमाचचक्षे ॥

॥रा० सु० २९ ४॥

३ यदि यात, यत कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृशे ।
त्वयि मे गात्र सस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः ॥

रामायण में हनुमान्‌जी के प्रति विश्वास उत्पन्न कराने के लिये रामचन्द्रजी ने सीताजी के पास अपनी अँगूठी भेजी है तथा सीताजी ने भी अभिज्ञान स्वरूप अपनी चूडामणि हनुमान्‌जी को देकर जयन्त की कथा का उल्लेख किया है। इसी तरह इस काव्य में भी यक्ष अपने वैवाहिक जीवन की एक घटना मेघ को अभिज्ञान के रूप में बताता है तथा अपनी प्रेयसी के पास से भी कुछ अभिज्ञान के, लाने के लिये कहता है। इस तरह रामायण और मेघसन्देश में विभिन्न स्थलों में सादृश्य दृष्टिगोचर होता है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान्‌जी के द्वारा रामचन्द्रजी के सन्देश तथा उनकी अंगूठी देने के बाद सीताजी के सम्बन्ध में कहा गया है—

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम् ।
भर्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदिताऽभवत् ॥सु०॥३६॥४॥

मेघ सन्देश में भी मेघ के परिचय के बाद यक्षपत्नी के दत्तचित्त हो जाने की संभावना करते हुए कहा गया है—

श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः सङ्गमात् किंचिदूनः ॥२॥३८॥

लेकिन रामायण की घटना तथा वर्णन साम्य के आधार पर हम यह नहीं मान सकते कि कवि ने रामायण के भावों का अपहरण कर यह काव्य लिखा है। भले ही उसने रामायण से इस काव्य के लिखने की प्रेरणा प्राप्त की हो, लेकिन उसने काव्य का विस्तार अपने ही ढ़ंग से किया है।

काव्य में विभिन्न स्थलों में जो भावसाम्य पाया जाता है, उसका भी कारण यही है कि कालिदास आदि कवि वाल्मीकि की रामायण का, परम प्रशंसक था

और उसकी शैली न केवल मेघसन्देश में बल्कि सभी रचनाओं में रामायण से प्रभावित है[1]। वृहत्कथा में वर्णित यक्षों के शापों की कथाओं[2] और महाभारत, श्रीमद्भागवत[3] तथा जातक कथाओं में आये हुए दूत प्रसगों से

१. रामायण में रावण को परास्त करने तथा मारने के बाद रामचन्द्रजी सीताजी तथा अपने अन्य साथियों के साथ लका नगरी से अयोध्या वापिस लौटते हैं। पुष्पक विमान द्वारा इस यात्रा के वर्णन प्रसग में कवि को लका से अयोध्या तक के भूभाग का वर्णन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। कालिदास ने भी इसी स्थल से सकेत लेकर रघुवंश के तेरहवें सर्ग मे इस वायु यात्रा का ही वर्णन किया है। चू कि रघुवंश कवि की मेघसन्देश से पूर्व की रचना है, अत सभव है कि रघुवंश के इस सर्ग को लिखते समय कवि के मन में अकस्मात् मेघसन्देश लिखने की प्रेरणा उत्पन्न हो गई हो।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसा भी प्रतीत होता है कि विक्रमोर्वशीय नाटक को लिखते समय भी कवि के मन में मेघदूत की कल्पना कुछ प्रस्फुटित हो रही थी। तभी तो इस नाटक के चतुर्थ अक में पुरूरवा की विरहावस्था का वर्णन करते हुए चित्रलेखा कहती है—अनेन पुनर्निर्घृतागामप्युत्कण्ठाकारिणा मेघोदयेनाप्रतीकारो भविष्यतीति तर्कयामि। और पुरूरवा भी अपनी प्रेयसी के वियोग में उन्मत्त होकर मेघ को बार बार सम्बोधन करता है तथा मयूर, कोकिल, राजहंस, चक्रवाक, भ्रमर, गजराज, पर्वत, नदी और हिरन इत्यादि से उर्वशी का पता पूछता है।

२ सभव है कि 'योगिनी माहात्म्यम्' में वर्णित आषाढ कृष्ण एकादशी की कथा के आधार पर यह काव्य लिखा गया हो। यह कथा इस प्रकार है कि हेममाली नामक यक्ष मानसरोवर से कुबेर के लिए पुष्प तोड कर लाया करता था। एक दिन उसने अपने कर्त्तव्य पर ध्यान न दिया और अपनी पत्नी विशालाक्षी के पास ही रह गया। इस बात पर क्रुद्ध होकर कुबेर ने उस श्वेतकुष्ठ लगाकर निर्वासित कर दिया। हिमालय पर घूमते हुए उसे मार्कण्डेय ऋषि मिले और उनके कहने से उसने आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष में योगिनी व्रत रक्खा। इस प्रकार रोग से मुक्त होकर वह समय पर अपने घर लौट आया और अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

३ श्री मद्भागवत में दशम स्कन्ध में ६० वें अध्याय में स्त्रियों द्वारा मेघ को भी सम्बोधन किया गया है—

मेघ श्रीमन्स्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनम्
श्रीवत्साक वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्ध।
अत्युत्कण्ठ शबल हृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधारा
स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसग ॥२०॥

इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है।

भी कवि ने कुछ प्रेरणा भले ही प्राप्त की हो तथा यह भी सम्भव है कि घटकर्पर कवि के यमक काव्य से भी मेघ के दूत बनाने का[1] विचार कवि के ध्यान में आया हो, लेकिन यह तो मानना ही पड़ेगा कि विभिन्न नगरों, नदियों और पर्वतों इत्यादि का वर्णन कवि ने बड़े सजीव और सरस ढंग से किया है तथा यक्ष दम्पती की विरहावस्थाओं का चित्रण भी बड़ा ही भावपूर्ण और अद्वितीय है। अन्य प्राचीन स्रोतों से सहायता लेकर इस काव्य के लिखने पर भी कवि की धवलकीर्ति में कुछ भी बट्टा नहीं आता है। अपने अन्य ग्रन्थ जैसे अभिज्ञान शाकुन्तलम्, रघुवंशम् और कुमारसम्भवम् के लिखने में भी कवि को पुराणों तथा अन्य काव्यों से सहायता लेनी पड़ी है। अन्य देशों के बड़े बड़े कवियों ने भी जैसे अंग्रेज कवि शेक्सपियर ने अपने ग्रन्थों के लिये प्लाट अपने से प्राचीन स्रोतों से ग्रहण किये हैं। कवि का महत्त्व उसके वर्णन प्रकार, मनुष्य स्वभाव की भीतरी पैठ और पात्रों के ठीक तथा प्रभावशाली चुनाव पर निर्भर है। इसलिये यदि यह मान भी लिया जाये कि मेघदूत के लिखने में कवि को अन्य स्रोतों का आधार लेना पड़ा है, तो भी भारतीय कवियों में उनका पद कवि सम्राट् के सर्वथा उपयुक्त है। कविता के क्षेत्र में एक नये शिल्पविधान के साथ साथ एक नई काव्यपरम्परा के जन्म देने का श्रेय कालिदास को ही है और उसका यह सन्देश काव्य भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों दृष्टिकोणों से एक अभिनव रचना है।

साहित्यिक आलोचना

कवि ने इस काव्य को दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग को पूर्व मेघ तथा द्वितीय भाग को उत्तरमेघ भी कहा जाता है। प्रथम भाग में विरही यक्ष का मेघदर्शन, मेघ का स्वागत, सन्देश लेजाने की प्रार्थना तथा मार्ग-वर्णन है। द्वितीय भाग अथवा उत्तर मेघ में अलका नगरी, यक्ष गृह तथा विरहिणी नायिका के वर्णन के बाद सन्देश कथन और अन्त में मेघ को आशीर्वाद दिया गया है।

मार्ग वर्णन के प्रसंग में कवि ने विभिन्न नगरों, नदियों, पर्वतों तथा रमणीय स्थानों का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है। वर्षा ऋतु के आगमन से प्रकृति में होने वाले परिवर्तनोंका भी बड़ा ही भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्ग वर्णन कुछ स्थानों की केवल सूचीमात्र नहीं है, बल्कि

---

१ चीन के हुस्कन् (Huskun) (४२६-५०१ ई०) नामक कवि ने भी एक स्थान पर एक भद्र महिला द्वारा मेघ को दूत नियत करके अपने स्वामी के पास भेजने का वर्णन किया है। इसने नागार्जुन की प्रज्ञामूल शास्त्र टीका का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। यह ग्रन्थ कालिदास के पूर्वनिश्चित समय के अनुसार उत्तर कालीन रचना है। अतः इस ग्रन्थ के प्रभाव का तो कुछ प्रश्न ही नहीं उठता है।

तत्तत् स्थान का एक शब्दचित्र है और इसके द्वारा तथा मेघ को दूत बनाने से भी पूर्व मेघ में कवि को प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन करने का एक बड़ा सुअवसर प्राप्त हुआ है। मेघ स्वयं ही प्रकृति का एक सुन्दर रूप है और इन्द्र धनुष के साथ तो उसका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। ऐसे ही दृश्य का वर्णन करते हुए यक्ष ने मेघ से कहा है—

रत्नच्छायव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत् पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ।

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेशस्य विष्णोः ॥१॥१५॥

कवि ने इन्द्र धनुष से संयुक्त मेघ के लिये मयूरपंख धारण किये हुये गोपवेश विष्णु की कितनी सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है।

मेघ के सम्पर्क से शोभायमान आम्रकूट पर्वत का भी कवि ने बड़ा ही मनोहर चित्र अंकित किया है—

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः
त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थाम्
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१॥१८॥

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ हो जाने पर सारंगों (भृंगों, कुरंगों और हाथियों) द्वारा मेघमार्ग के सूचित किये जाने का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है—

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ।

जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥१॥२१॥

विन्ध्य पर्वत पर विभिन्न धाराओं में बहती हुई नर्मदा नदी के लिये कवि बड़ी सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है —

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१॥१९॥

नर्मदा नदी को विंध्य पर्वत रूपी हाथी के शरीर की शृंगार रचना बताकर कवि ने इन दोनों के स्वरूप का एक चित्रसा उपस्थित कर दिया है।

मेघ दर्शन अथवा वर्षा ऋतु के आने पर मयूरों का आनन्दित होना प्रसिद्ध ही है। इसीलिये कवि ने मेघ के लिये लिखा है –

शुक्लापाङ्गैः सजल नयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥१॥२३॥

वर्षा ऋतु में दशार्ण देश के वर्षाकालीन प्राकृतिक वैभव का भी कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है–

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै
र्नीडारम्भैर्गृहबलि भुजामाकुल ग्राम चैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणत फलश्याम जम्बू वनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिन स्थायिहंसा दशार्णाः ॥१॥२४॥

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने पर केतकी पुष्पों का खिलना, वायस इत्यादि पक्षियों का घोंसला बनाना और जामुनों का पकना प्रसिद्ध ही है। इस त्रिविध सौन्दर्य को देखकर वर्षा ऋतु में भी वहां हंसों का कुछ दिन और ठहर जाना स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर शैलराज से उतरती हुई गंगा का भी कवि ने बड़ा भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है –

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम्
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥१॥५१॥

शिवजी द्वारा अपनी जटाओं में गंगा के धारण किये जाने की घटना के आधार पर कवि ने यहां गंगा में किसी प्रौढ़ा नायिका का भाव कितनी सुन्दर रीति से आरोपित कर दिया है।

गंगा के स्फटिक समान निर्मल जल को पीने के लिये मेघ के झुकने की सम्भावना करते हुए कवि ने क्या ही सुन्दर उत्प्रेक्षा की है –

संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छाययाऽसौ (गंगा)
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा ॥१॥५२॥

गंगा के बाद हिमालय पहुंचने पर मेघ की शोभा के लिये भी कवि ने बड़ी सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है—

तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृंगे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥१॥५२॥

तुषार से श्वेत हिमालय के किसी शृंग पर बैठे हुए मेघ को शिवजी के वृष के सींग में लगी हुई पंक से उपमा देकर कवि ने मेघ के सौभाग्य को बढाया ही है।

कैलाश पर्वत के वर्णन में तो कवि ने बड़ा ही चमत्कार दिखाया है। इस पर्वत की धवलता को हृदयंगम कराने के लिये कवि ने इसे त्रिदशवनिताओं का दर्पण तथा शिवजी का अट्टहास ही बना दिया है--

कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
शृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥१॥५६॥

इस प्रकार पूर्व मेघ में कवि ने विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों का बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रण किया है। साथ में स्थान स्थान पर उत्कृष्ट मानवीय भावनाओं का भी सम्मिश्रण पाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास का मेघ 'धूम-ज्योति--सलिलमरुतां सन्निपातः' ही नहीं है, बल्कि वह यक्ष का मित्र और बन्धु है तथा यक्ष की पत्नी उसकी सखी अथवा उसके भाई की जाया है।

पर्वतों के वर्णन में भी कवि ने प्रायः सर्वत्र ही मेघ को उनका मित्र बताया है। तभी तो रामगिरि के सम्बन्ध में कवि कहता है--

काले काले भवति भवतो यस्य (रामगिरेः) संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥१॥१२॥

चिर विरह के बाद मिलने वाले मित्रों का अश्रुपात करना स्वाभाविक ही है।

वर्षा ऋतु के आगमन से वन की अग्नि शान्त हो जाती है। इस बात को मेघ का आम्रकूट पर्वत के प्रति उपकार बताकर पर्वत द्वारा मित्र रूप से उसके भी अध्वश्रम दूर करने का वर्णन किया गया है--

त्वामासार-प्रशमित-वनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१॥१७॥

इसी प्रकार नीचैः नामक पर्वत को भी मेघ के सम्पर्क से पुलकायमान बताया गया है--

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो
स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ॥१॥२६॥

मित्र के सम्पर्क से मित्र का पुलकित होना स्वाभाविक ही है।

आकाश में जाते हुए मेघ के वर्णन में कवि ने बड़ी ही कोमल मानवीय भावनाओं का उल्लेख किया है—

त्वामारूढं पवन पदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ॥१॥८॥

प्रोषितभर्तृकाओं का मेघ दर्शन होने पर प्रिय के वापिस लौटने के विश्वास से अत्युत्कंठित होना स्वाभाविक ही है।

ग्रामीण सरल स्त्रियों द्वारा मेघ के देखे जाने का भी कैसी भावभंगिमा के साथ कवि ने वर्णन किया है—

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधू लोचनैः पीयमानः ॥१॥१६॥

मार्ग में पड़नेवाली नदियों को प्रायः मेघ की प्रेयसियों के रूप में ही कवि ने वर्णित किया है। वेत्रवती (बेतवा) नदी के निकट मेघ के पहुँचने का प्रसंग लेकर कवि कहता है—

गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥१॥२४॥

यहां पर मेघ को कामुक तथा वेत्रवती नदी को विलासिनी स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है।

निर्विन्ध्या नदी के पास पहुँचने पर भी कवि ने इस नदी को मेघ की नायिका के रूप में ही वर्णित किया है—

वीचिक्षोभस्तनित विहगश्रेणि काञ्ची गुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलित सुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥१॥२८॥

रूपक और श्लेष की सहायता से कवि ने किस सुन्दर रीति से यहां निर्विन्ध्या नदी में नायिका के व्यवहार का वर्णन किया है।

सिन्धु नदी (मालवा की काली सिन्ध नदी) को भी मेघ की प्रेयसी के रूप में ही चित्रित किया गया है —

> वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
> पाण्डुच्छायातटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।
> सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
> कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥१॥३०॥

मेघ के वियोग में सिन्धु नदी (मालवा की काली सिंध नदी) को कृश बता कर कवि ने उसे मेघ की प्रोषितभर्तृका नायिका का रूपक दिया है।

आगे चलकर गम्भीरा नदी भी एक उदात्त नायिका के रूप में ही वर्णित की गई है —

> गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
> छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
> तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्यात्
> मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥१॥४१॥

उपमा और रूपक की सहायता से गम्भीरा नदी को एक उदात्त और अनुरक्त नायिका के रूप में यहां उपस्थित किया गया है।

नदियों के वर्णन प्रसंग में उनके साथ मेघ के प्रणय सम्बन्ध की चर्चा करने पर भी कुछ नदियों के प्रति मेघ को न केवल नम्र बल्कि श्रद्धालु भी दिखाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मेघ से चर्मण्वती (चम्बल) नदी का सत्कार करने के लिये भी कहा गया है —

> व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
> स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥१॥४६॥

सरस्वती के जल से तो मेघ के अन्तः शुद्ध होने तक का उल्लेख किया गया है —

> कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीनाम्
> अन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥१॥५०॥

कवि ने न केवल नदियों को ही मेघ की नायिकाओं के रूप में चित्रित किया है, बल्कि उज्जयिनी के प्रसंग में तो वहां की पौरांगनाओं के साथ भी मेघ के प्रणय संबंध की व्यंजना की गई है —

विद्युद्दामस्फुरित चकितैस्तत्र पौराङ्गनानाम्
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥१॥२८॥

उज्जयिनी में रात्रि के समय अभिसार के लिए जाती हुई रमणियों को कवि ने बिजली द्वारा मार्ग दिखाने का भी मेघ से आग्रह किया है तथा बरसने और गरजने के लिये तो सर्वथा निषेध किया है —

सौदामन्या कनक निकष स्निग्धया दर्शयोर्वीम्
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ता ॥१॥३८॥

इसके अतिरिक्त उज्जैन में महाकाल की पूजा करने, देवगिरि में स्कन्द स्वामी पर पुष्पवर्षा करने तथा हिमालय पर शिवजी के चरणन्यास की भक्तिपूर्वक परिक्रमा करने का यथास्थान मेघ को आदेश दिया गया है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि मार्ग वर्णन के द्वारा बाह्य तथा मानव प्रकृति दोनों का ही कवि ने संश्लिष्ट रूप में चित्रण किया है। साथ में काव्य की कथा के मूल तत्वों-प्रेमियों का वियोग, तज्जन्य मानसिक वेदना और इस अवस्था में मेघ का सहायक होना- को कवि ने पाठकों की दृष्टि से कहीं भी दूर नहीं होने दिया है। प्रकृति वर्णन तथा मानवीय भावनाओं के चित्रण में संयोग और वियोग के मिश्रित वातावरण की झलक सर्वत्र ही दिखाई देती है। नगर, पर्वत तथा नदियां केवल भौगोलिक दृष्टि से ही वर्णित नहीं की गई हैं, बल्कि उनको भी काव्य में कलात्मक ढंग से समन्वित कर और किसी न किसी रूप में मेघ से सबद्ध मान कर ही वर्णित किया गया है।

पूर्वमेघ में जिस प्रकार बाह्य प्रकृति के वर्णन की प्रचुरता है, उसी प्रकार उत्तर मेघ में मानव प्रकृति के चित्रण का प्राचुर्य पाया जाता है। अलका नगरी तथा अपने गृह के वर्णन के बाद यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी के स्वरूप का वर्णन करता है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोक नम्रा स्तनाभ्याम्
या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ २ ॥ २१ ॥

यक्ष पत्नी के इस स्वरूप वर्णन में कवि ने आदर्श सौन्दर्य की अपनी कल्पना को ही साकार रूप दे रखा है। यक्ष पत्नी को दूसरे शब्दों में हम पद्मिनी भी कह सकते हैं। कवि ने भी अग्रिम पद्य में 'जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनीं वाऽन्य रूपाम्' ॥२॥२२॥ कहकर यक्ष पत्नी के पद्मिनी होने की ही पुष्टि की है।

यक्ष दम्पती का परस्पर प्रेम भी दाम्पत्य प्रेम का एक उत्कृष्ट आदर्श है। तभी तो यक्ष मेघ से कहता है—

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयम्
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ॥२।२२॥

यक्ष ने अपनी पत्नी को अपना द्वितीय जीवन तथा अपनी अनुपस्थिति में उसे चक्रवाक वधू की तरह एकाकिनी बनाकर अपने पारस्परिक प्रेम की अनन्यता तथा दृढता प्रतिपादित की है। इसीलिये तो उसे शंका होती है कि उसकी पत्नी अवश्य ही प्रथम विरह में बड़ी दुखी हो रही होगी।

इसके बाद यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी का बड़ा ही भावपूर्ण कल्पना चित्र प्रस्तुत करता है –

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वात्
इन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥२।२३॥

पतिवियोग में नितान्त रोते रहना, उष्ण निश्वास से अधरोष्ठ का फीका पड़ जाना, केशसंस्कार न करना तथा हथेली पर मुख का रखे रहना पतिप्राणा यक्ष पत्नी के विषाद, शोक और चिन्ता की पराकाष्ठा को व्यक्त करते हैं। कवि ने इस पद्य में विरहिणी यक्षपत्नी का बड़ा ही भावपूर्ण करुण चित्र अंकित किया है।

आगे चलकर विरहिणी यक्ष पत्नी की विरह कालीन विभिन्न अवस्थाओं तथा चेष्टाओं की बड़ी मधुर सम्भावना की गई है। यक्ष मेघ से कहता है कि उसकी पत्नी या तो देवताओं की पूजा में लगी होगी, या विरह में क्षीण मेरी आकृति का अपने मनोभावों के अनुसार चित्र बनाती होगी, या पिंजड़े की मैना से पूछती होगी– हे रसिके, क्या तुझे भी स्वामी की याद आती है ? तू तो उनकी बड़ी दुलारी थी[1]। सम्भव है कि मलिन वस्त्र पहिने हुए गोद में वीणा रखकर नेत्रों के जल से भीगे हुए तन्तुओं को किसी तरह ठीक ठाक करके मेरे नामांकित पद को गाने की इच्छा से संगीत में प्रवृत्त वह अपनी स्वरविधि को भी भूलती हुई दिखाई पड़े[2]। इस प्रकार

---

१ आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थाम्
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२।२४॥

२ उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥२।२५॥

प्रेयसी की मन सग अवस्था के वर्णन के बाद यक्ष कहता है कि एक वर्ष के लिये निश्चित मेरे वियोग की अवधि के अवशिष्ट मासों को गिनने के लिये देहली पर चढाये पूजा के फूलों को उठा २ कर, सम्भव है, वह भूमि पर रख रही हो। या फिर भाँति भाँति के समागम सुखों का अपने मन में वह आनन्द ले रही हो[1]।

विरह काल में विविध मनोविनोदों के द्वारा प्रेयसी की मन सग और संकल्पावस्था के वर्णन के बाद यक्ष ने उसकी अन्य अवस्थाओं का भी अपनी कल्पना के आधार पर बड़ा भावपूर्ण चित्र अंकित किया है। यक्ष कहता है कि चित्र लेखन या वीणा बजाने आदि में दिन तो किसी तरह उसकी प्रेयसी का कट जाता होगा, लेकिन रात्रि में तो वह बड़ा दुःख उठाती होगी और मध्य रात्रि में भी जमीन पर जागती ही रहती होगी—

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोग
शङ्के रात्रौ गुरुतर शुच निर्विनोदा सखीं ते।
तामुन्निद्रामवनिशयना पश्य साध्वीं निशीथे ॥ २ ॥ २७ ॥

इस पद्य में कवि ने विरहिणी नायिका की जागरावस्था का भी वर्णन किया है।

यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी को बड़ा कृश तथा विरह शय्या पर एक करवट से लेटा हुआ और रात्रि भर रोता हुआ ही बताता है—

आधिक्षामा विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वाम्
(रात्रिम्) तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥२॥२८॥

प्रिय संयोग में चन्द्रमा की जो किरणें अमृत के समान शीतल लगती थीं, वियोग में वे विरह-वेदना को और भी उद्दीप्त करती हैं। इसलिए चन्द्रमा को देखकर भी विरहिणी यक्ष पत्नी के नेत्रों से आंसू बहने लगते हैं और वह अपने नेत्रों को बन्द कर लेती है। यक्ष पत्नी की विरह जन्य इसी विषय द्वेष अवस्था का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

पादानिन्दोरमृतशिशिरान् जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुख सन्निवृत्त तथैव।
चक्षु खेदात् सलिल गुरुभि पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धा न सुप्ताम् ॥२॥२९॥

---

१ शेषान्मासान् विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पै।
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनाना विनोदा ॥२॥२६॥

यक्ष पत्नी की दयनीय दशा का यथार्थ चित्रण करने के लिए कवि ने उपमा भी बड़ी ही उपयुक्त दी है।

विरहवेदना की उत्कटता में यक्षपत्नी को शरीरसंस्कार से रहित, उष्ण निश्वासें छोड़ता हुआ और स्वप्न में ही प्रियसमागम के विचार से निद्रा को चाहने पर भी प्रबल अश्रुवेग के कारण निद्रा न पाता हुआ वर्णित किया गया है—

निश्वासेनाधरकिशलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात् परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।
मत्संभोगः कथमुपनयेत् स्वप्नजोऽपीति निद्राम्
आकाङ्क्षन्तीम् नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥२॥३०॥

वियोग में यक्षपत्नी को रोता हुआ बताकर कवि ने यहां उसके लज्जात्याग की व्यञ्जना की है।

विरहिणी यक्षपत्नी का चित्त बिलकुल ही अस्थिर रहता है। वह खुरदुरी, बेढंगी और एक में लिपटी हुई अपनी चोटी को जो छूने मात्र से पीड़ा पहुँचाती हो, अपने गण्डस्थल के पास से लम्बे नखों वाले हाथ द्वारा बार बार हटाती हुई वर्णित की गई है—

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं
गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥२॥३१॥

विरह कालीन एक वेणी को बार बार कपोलस्थल से हटाना नायिका के चित्त विभ्रम अथवा उन्माद को सूचित करता है।

अन्त में यक्ष मेघ से कहता है कि आभूषणों से रहित, भाँति भाँति के दुखों से तड़पते हुए तथा विरहशय्या के मध्य में किसी तरह पड़े हुए उसके सुकुमार शरीर को देखकर तुम भी अवश्य रो पड़ोगे —

सा सन्न्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यम् ॥२॥३२॥

यक्षपत्नी को इस पद्य में अत्यन्त क्षीण और अशक्त बताकर कवि ने उसकी मूर्च्छावस्था की ओर संकेत किया है। इसीलिये तो उसे देखकर मेघ के भी रो पड़ने की सम्भावना की गई है। आगे चलकर वियोगिनी यक्षपत्नी के नयन के सम्बन्ध में—

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यम्
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
नयनम् ॥२॥३४॥

कह कर तो कवि ने विरह की प्रतिच्छाया सी उपस्थित कर दी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरहिणी यक्षपत्नी की तत्तत् विरहावस्थाओं और चेष्टाओं का कवि ने कोमल भावनाओं को लेकर बड़े ही भावपूर्ण और मार्मिक ढंग से यहाँ चित्रण किया है। संस्कृत साहित्य अथवा किसी अन्य साहित्य में इस तरह का कोई अन्य उत्कृष्ट उदाहरण मिलना असम्भव न भी हो, लेकिन दुर्लभ तो अवश्य ही है।

प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाओं की सम्भावना करने के बाद यक्ष मेघ से कहता है कि यदि मध्य रात्रि में किसी तरह मेरी प्रेयसी सोती हुई मिले, तो अपना गरजना बन्द करके एक प्रहर तक तुम उसकी अवश्य प्रतीक्षा करना[१]। तदनन्तर अपने जल कणों से शीतल वायु द्वारा उसको जगाकर[२] पहिले तुम उसे इस प्रकार अपना परिचय देना—

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम्
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबला-वेणिमोक्षोत्सुकानि ॥२॥३८॥

मेघ के परिचय में कवि ने कैसे प्रभावपूर्ण और सार्थक शब्दों का प्रयोग किया है। परिचय के आदि में ही पतिवाचक भर्तृ शब्द को इसलिये रखा गया है कि उससे तत्काल ही यक्ष पत्नी का ध्यान आकृष्ट हो जाये। वियोगिनी पतिव्रताओं के कान में यह शब्द कैसी अमृतवर्षा करता है, उसका अनुमान सभी सहृदय कर सकते हैं। कवि यदि चाहता तो 'भर्तुर्मित्रं' की जगह 'मित्रं भर्तुः' भी लिख सकता था। उससे भी छन्द की गति में कोई व्याघात न आता। परन्तु नहीं, उसने यक्ष पत्नी के कान में सर्वप्रथम 'भर्तुः' का सुनाना ही उचित समझा।

इसके अतिरिक्त, 'भर्तुः' का सम्बन्ध और अर्थ विशेष से पूर्ण 'अविधवे' शब्द भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसके रखने में भी कुछ कारण है। इस शब्द के द्वारा यक्ष

---

१ तस्मिन् काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ॥२॥३६॥

२ तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ॥२॥३७॥

अपनी पत्नी को यह सूचित करना चाहता है कि वह विधवा नहीं हो गई है, सौभाग्यवती बनी हुई है, उसका पति अभी जीवित है। पति के जीवित रहने के समाचार से बढ़कर और कौन समाचार पति प्राणा स्त्री के लिये आनन्ददायक हो सकता है।

मेघ के लिये 'अम्बुवाह' शब्द भी यहां जानबूझ कर ही प्रयुक्त किया गया है। जो मेघ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जल ले जाने का गुरुतर कार्य कर सकता है, उसके लिये सन्देश ले जाना कोई कठिन कार्य नहीं है। मेघ को न केवल सन्देश वाहक, प्रत्युत प्रेमियों का मिलन कराने वाला भी बतलाया गया है।

मेघ के परिचय को सुनकर प्रेयसी के दत्तचित्त हो जाने की आशा कर यक्ष फिर मेघ से प्रेयसी को अपना सन्देश सुनाने के लिये कहता है। सर्वप्रथम प्रेयसी की कुशल वार्ता ही पूछने के लिये मेघ से कहा गया है:–

> ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थ
> अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वा वियुक्तः ॥२॥४०॥

इन पंक्तियों में यक्ष पत्नी की कुशल तो पूछी ही गई है, लेकिन साथ में यक्ष के निवास स्थान तथा जीवित होने का भी समाचार दिया गया है। 'अव्यापन्नः' से यक्ष के जीवित होने की प्रतीति के साथ साथ उसकी तीव्र विरहव्यथा का भी अनुमान लगाया जा सकता है। इसीलिये तो बाद में उसे वियुक्त भी कहा गया है।

कुशल प्रश्न के बाद यक्ष मेघ से प्रेयसी को अपना वृत्तान्त सुनाने के लिये कहता है:–

> अंगेनांग प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तम्
> सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।
> उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
> संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥

कहकर उसकी विरहता भी प्रकट की गई है। नायक और नायिका को समान अवस्था में बताकर कवि उनके प्रेम की भी समानता प्रकट कर रहा है।

आगे चल कर फिर कहा गया है –

> शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
> कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।
> सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य
> स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥२॥४२॥

यक्ष की वियोग से पूर्व तथा उत्तरकाल की अवस्थाओं के महान् वैषम्य का इस पद्य में बड़ी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया है। प्रेम की प्रबलता में प्रेयसी से अत्यन्त दूर हो जाने पर यक्ष का उत्कण्ठित हो जाना स्वाभाविक ही है। इसीलिये तो वह मेघ के द्वारा अपनी प्रेयसी के पास सन्देश भेजता है। सन्देश में सर्व प्रथम यक्ष ने कहा है –

श्यामास्वङ्ग चकित हरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

प्रकृति के तत्तद् रमणीय दृश्यों में प्रेयसी के अंगों की शोभा ढूढने से प्रेयसी में यक्ष की तन्मयता प्रतीत होती है। 'हन्तैक स्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्य मस्ति' कह कर यक्ष के विषाद की ही व्यञ्जना नहीं की गई है, प्रत्युत यक्षपत्नी के सौन्दर्य की अनुपमता भी व्यक्त की गई है[1]।

इसके बाद यक्ष अपनी विरहावस्था का वर्णन करता है—

त्वामालिख्य प्रणय कुपितां धातुरागैः शिलायाम्
आत्मानं ते चरण पतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥२॥४४॥

यक्ष पत्नी द्वारा यक्ष के चित्र बनाने की सम्भावना पहिले की ही गई है। यक्ष भी उसी प्रकार अपनी पत्नी का चित्र बनाता है। लेकिन दैव की क्रूरता तो देखिये कि जब वह प्रणयकुपिता प्रेयसी का चित्र बनाकर उसके चरणों में अपना चित्र भी

---

१ उपर्युक्त पद्य के अनुरूप भाव कवि की अन्य रचनाओं में भी पाये जाते हैं:–

I कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ॥रघु०॥८०५६॥

II मृदु पवन विभिन्नो मत्प्रियाया विनाशात्
घनरुचिरकलापो निःसपत्नोऽद्य जातः।
रतिविगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्याः
सति कुसुमसनाथे किं करोत्येष बर्ही ॥विक्रमो० ॥४॥१०॥

'चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातम्' का भाव पहिले भी इसी काव्य में चकित हरिणी प्रेक्षणा ॥२॥२१॥ में पाया जाता है।

बनाना चाहता है, तो उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है और उसका चित्र अधूरा ही रह जाता है। यक्ष के प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त करते हुए कवि ने इस पद्य में बड़ी ही कोमल भावनाओं का चित्रण किया है। उत्तरकालीन अन्य सन्देश काव्यों में भी इस पद्य का भावानुकरण देखने में आता है।[1]

जिस प्रकार यक्ष की पत्नी कथंचित् अपने पति से स्वप्न में ही मिल पाती है, वैसे ही यक्ष भी कथमपि अपनी पत्नी से स्वप्न में ही मिल पाता है —

मामाकाशप्रणिहित भुज निर्दयाश्लेषहेतो
लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु।
पश्यन्तीना न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानाम्
मुक्तास्थूला स्तरु किसलयेष्व। पतन्ति ॥२॥४४॥

स्वप्न में भी प्रेयसी से भेंट होने पर उसे अक में भर कर निर्भर आलिंगन करने के लिये यक्ष अपनी भुजायें आकाश में फैलाता है। इस दृश्य को देखकर वन-देवियां भी करुणा से आर्द्र हो रो पड़ती हैं। उनके अश्रुबिन्दु ही नये तरुपल्लवों पर मोती के सदृश दिखाई पड़ते हैं।

वन देवियां तक जिसके दु ख से द्रवित होती हैं, वनस्थली को भी जिसने अपने समान शोकवाली बना दिया है, वह यक्ष, हम सबकी करुणा का पात्र तो अवश्य ही है। अपने कारुण्यभरे विलाप से यक्ष सब प्राणियों की शुभकामनाओं को अपनी ओर आकृष्ट करता है। सुख दु ख की चक्र-नेमि पर सवार जितना प्राणि-जगत् है, उसमें कोई भी ऐसा नहीं होगा, जो वियोग व्यथाओं से अशरण बने हुये यक्ष के प्रति सहानुभूति न दिखाये।

रामगिरि पर सनसनाती हुई जो हवा चलती है, वह मानो यक्ष के लिये प्रिया के जीवन का सन्देश लाती है। यद्यपि वह दयिता को प्राणावलम्बन देने की इच्छा

---

1 कवि की अन्य रचनाओं में भी इस पद्य के अनुरूप भाव पाये जाते हैं —

I न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य ता
मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति ॥विक्रमो०॥२॥१०॥

II प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्या स्वप्नसमागम।
बाष्पस्तु न ददात्येना द्रष्टु चित्रगतामपि ॥शकु०॥६॥२२॥

III सादृश्य प्रतिकृतिदर्शने प्रियाया स्वप्नेषु क्षणिकसमागमोत्सवैश्च।
सेनाद्यो परिगमिता समा कथचिद्वाल्यादधिगत सुनृतेन सूनो ॥रघु ।८।९२॥

IV इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखर. ॥कुमार ।४।५८॥

से मेघ को दूत बनाकर भेज रहा है, पर तो भी वह सन्देश-वार्ता में ही यह सूचित कर देना चाहता है कि वह अपनी पत्नी को अभी तक अत्यापन्न ही समझ रहा है। अहोरात्र बहते हुये समीरों में उसकी यही भावना रहती है कि वे उसकी गुणवती प्रिया का स्पर्श सुख लेकर आ रहे हैं। वस्तुत उत्तर से आने वाली पवनों में इस प्रकार की भावना ही यक्ष के सुखानुभव का कारण है। दक्षिण रुख बहती हुई कौन सी हवा यक्षिणी के गात्र सस्पर्श सुख से सपृक्त है, इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है। यक्ष केवल हिमालय की वायु को पहचान सकता है। उन तुषाराद्रिवातों में फिर अधिक विवेचन वह नहीं कर सकता। उन सब का आलिंगन करने की आवश्यकता इसीलिये है, क्योंकि उसको सदा सन्देह रहता है कि शायद इनमें से कोई झोंका प्रिया के गात्र को छूकर आया हो। यह सन्देह ही उसके विनोद को बढ़ाने के लिये पर्याप्त है। अपनी इसी भावना का वर्णन करते हुये यक्ष कहता है –

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणाम्
ये तत्क्षीर स्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किलभवेदङ्गमेभिस्तवेति[1] ॥२॥४६॥

सन्देश के प्रथम चार श्लोकों में यक्ष के विरहकालीन चार मनोविनोदों का वर्णन किया गया है। सदृशवस्तु दर्शन, प्रति कृति दर्शन, स्वप्न-दर्शन तथा तदङ्ग स्पृष्ट वस्तु-स्पर्श–यह चारों विनोद क्रमशः उपर्युक्त चार पद्यों में पाए जाते हैं। यक्ष पत्नी की विरहावस्था के चित्रण में भी इन मनोविनोदों की संभावना की गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यक्ष और यक्षिणी की समान वियोगदशा और प्रेम का यहां वर्णन किया गया है।

---

[1] कालिदास ने शाकुन्तल में भी कुछ ऐसी ही कल्पना की है –

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
अङ्गैरनङ्ग तप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः ॥३॥४॥

भवभूति ने भी मालतीमाधव में ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं—

उन्मीलन्मुकुल कराल कुन्द कोश प्रश्च्योतद्घन मकरन्द गन्धबन्धो।
तामीषत्प्रचलविलोचनां नताङ्गीमालिङ्गन्पवन मम स्पृशाङ्गमङ्गम् ॥१॥३८॥
अन्यच्च विकसत्कदम्ब निकुरम्ब पांशुना सह जीवितं यदि मम प्रिया यत।
अथवा तदङ्गपरिवाससुशीतल मयि किंचिदर्पय भवान्हि मे गतिः ॥६॥४३॥

गीतगोविन्द में जयदेव ने भी उक्त पद्य से मिलते जुलते भाव व्यक्त किये हैं–

बहु मनुते ननु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥११॥२॥

अपनी प्रेयसी के विरह में यक्ष बड़ा ही व्याकुल रहता है। रात्रि में वह यह सोचता है कि कब दिन हो और दिन में वह यह सोचता है कि कब रात्रि हो। इसी तरह की दुर्लभ प्रार्थनाओं से पूर्ण अपने चित्त की असहायावस्था का यक्ष ने निम्न पद्य में वर्णन किया है—

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥२॥४७॥

यह बात किसी भी सहृदय से छिपी नहीं है कि विरह में थोड़ा सा भी समय बड़ा कष्ट कर प्रतीत होता है और जब विरह वेदना बड़ी प्रबल हो तब तो चित्त की असहायावस्था का कहना ही क्या? कवि ने इस पद्य में यक्ष की भावनाओं का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है।

अपनी दयनीय दशा का वर्णन करते २ यक्ष को आशंका होती है कि कहीं उसकी पत्नी बड़ी चिन्तित न हो जाय। इसीलिए वह एकदम कहता है—

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥२॥४८॥

संसार में कोई न हमेशा दुःखी रहता है, न हमेशा सुखी ही रहता है। दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख आते ही रहते हैं। यक्ष का दुःख भी हमेशा नहीं बना रह सकता।[1] इसीलिए वह फिर अपनी प्रेयसी को आश्वासन देता है—

---

1 उपर्युक्त पद्य में प्रयुक्त 'आत्मानमात्मना' जैसा पद विन्यास प्रसंगान्तर में अन्यत्र भी कवि ने प्रयुक्त किया है—

आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना ॥कुमा०॥२॥१०॥

यहां यह तो स्पष्ट ही है कि कवि ने श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश का आश्रय लिया है। यथा—

I उद्धरेदात्मनात्मानम् नात्मानमवसादयेत् ॥६॥५॥
II संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥३॥४३॥

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा[1]।
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषम्
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥४६॥

विरहिणी यक्ष वधू के लिये प्रिय मिलन के आश्वासन से बढ़ कर और मधुर सन्देश क्या हो सकता है। यक्ष के सन्देश की मुख्य बात तो इसी पद्य में छिपी हुई है और वास्तव में सन्देश भी यहां पर समाप्त हो जाता है।

मेघ को अपना सन्देश बताने के बाद यक्ष को शंका होती है कि कहीं उसकी पत्नी मेघ को कोई धूर्त न समझ बैठे। इसलिये अपने वैवाहिक जीवन की एक छोटी पर बड़ी गूढ़ घटना भी यक्ष मेघ को बताता है, ताकि मेघ से उस घटना को सुन कर यक्ष पत्नी को यह विश्वास हो जाये कि मेघ वास्तव में यक्ष का भेजा हुआ दूत है—

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वरं विप्रबुद्धा।
सान्तर्हासं कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन् कामपि त्वं मयेति ॥२॥४७॥

कस्यात्यन्तमित्यादि पंक्तियां भी अवश्य ही महाभारत के—
सुखं च दुःखञ्च भवाभवश्च लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायशः सर्वमिदं स्पृशन्ति तस्माद्धीरो न प्रहृष्येन्न शोचेत ॥महा॰शा०॥२५॥३१॥
श्लोक के आधार पर लिखी गई हैं। मनुस्मृति में भी चक्र की उपमा पाई जाती है—

चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥१०॥८५॥
भास ने भी एक स्थल पर ऐसा ही निर्देश किया है—

काल क्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥स्वप्न॥१॥४॥

ऐसे ही समानान्तर भाव—'संयोगा विप्रयोगाश्च भवन्ति बहवो नृणाम्' इस तरह कथा-सरित्सागर में, 'समागमाः सापगमाः सर्वमुत्पादि भंगुरम्' इस तरह पञ्चतन्त्र में, 'एष क्रीडति कूपयन्त्र घटिकान्यायप्रसक्तो विधिः' इस तरह मृच्छकटिक नाटक में भी पाये जाते हैं।

१ अमरुशतक में भी यह भाव कुछ दूसरे शब्दों में पाया जाता है—
कान्ते कत्यपि वासराणि गमय त्वं मीलयित्वा दृशौ ॥७४॥

यद्यपि घटना बहुत छोटी है लेकिन इस घटना को यक्ष दम्पति के अतिरिक्त और कौन जान सकता था। मेघ के मुख से यह घटना सुनकर उसे 'भर्तुर्मित्र प्रियम्' मानने में यक्ष-वधू को कोई सन्देह नहीं रह सकता, क्योंकि यक्ष यह घटना अपने किसी अन्तरंग मित्र को ही बता सकता है। रामायण में रामचन्द्रजी ने भी अभिज्ञान स्वरूप अपनी अँगूठी देकर हनुमानजी को सीताजी के पास भेजा है¹ और सीताजी ने भी काक जयन्त की घटना के साथ एक अन्य घटना भी अभिज्ञानस्वरूप वर्णित की है² और अपनी चूडामणि भी हनुमानजी के साथ भेजी है। लेकिन कवि यक्ष को पहिले ही 'कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ' बता चुका है, अतः बाह्य अभिज्ञान के अभाव में किसी अन्तरंग घटना का ही अभिज्ञानस्वरूप बताया जाना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अभिज्ञान घटना के द्वारा अपनी कुशल सूचित करने के बाद यक्ष अपनी पत्नी को यह भी विश्वास दिलाता है कि विरह में उसका प्रेम नष्ट नहीं हुआ है प्रत्युत और भी समृद्ध हो गया है—

> एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
> मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः।
> स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्
> इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥२॥४१॥

विरह में यक्ष प्रेम के समृद्ध होने का वर्णन कर कवि प्रेम सम्बन्धी अपने विचारों को ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है। इसके पूर्व भी कवि एक स्थल पर 'विरहगुणितं तम् तमात्माभिलाषम् ॥२॥४६॥ कह चुका है।

इस प्रकार मेघ को अपना सन्देश बता कर यक्ष फिर मेघ से अपनी पत्नी के भी सन्देश लाने की प्रार्थना करता है। अन्त में मेघ के मौन रहने पर भी उसके द्वारा अपनी प्रार्थना के स्वीकार किये जाने का विश्वास कर कृतज्ञता प्रदर्शन और आशीर्वाद के साथ यक्ष मेघ को विदा कर देता है—

> इष्टान् देशान् जलद विचर प्रावृषा सम्भृतश्री
> मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥२॥४८॥

---

(१) ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तप ॥कि० ४४॥१२॥

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥कि० ॥४४॥१३॥

(२) मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः।
त्वया प्रनष्टे तिलके तं किल स्मर्तुमर्हसि,, सु०॥४०॥५॥

यक्ष के इस आशीर्वाद में भी उसके विरह विधुर हृदय की ही प्रतिध्वनि पाई जाती है। और यह आशीर्वाद है भी बड़ा ही हृदयस्पर्शी तथा कारुणिक। विद्युत् को मेघ की पत्नी के रूप में पहिले भी वर्णित किया जा चुका है—नीत्वा रात्रिं चिर-विलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्र ॥१॥३६॥ इसीलिये यक्ष मेघ को विद्युत् से क्षणमात्र के लिये भी विप्रयुक्त न होने का आशीर्वाद देता है। विरही व्यक्ति इससे बढ़कर और शुभ आशीर्वाद क्या दे सकता है?

काव्य में यक्ष का सन्देश बड़ा ही भावपूर्ण और कारुणिक है। कवि ने विरही यक्ष के हृदय की भावनाओं का बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। साथ में भाव योजना भी बड़े व्यवस्थित और मनोवैज्ञानिक ढंग से की गई है। सर्वप्रथम अपने निवासस्थान तथा कुशल का समाचार देने के साथ साथ यक्ष अपनी पत्नी की कुशल वार्ता पूछता है। इसके बाद वह अपनी विरहावस्था का वर्णन करता है। तदनन्तर अपनी पत्नी को धैर्य बधाते हुए वह उसे शीघ्र ही अपने मिलने का आश्वासन देता है। अन्त में वह विरह में भी अपने प्रेम की प्रगाढ़ता का अपनी पत्नी को विश्वास दिलाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यक्ष का सन्देश विरहिणी यक्षपत्नी के निष्प्राण जीवन में भी प्राण का सचार कर सकता है। अपनी प्रियतमा के जीवन की रक्षा के लिए ही तो यक्ष मेघ के द्वारा सन्देश भेज रहा है और उसका यह सन्देश न केवल मेघ के ही लिए प्रत्युत उसकी पत्नी के लिये भी वस्तुत श्रोतव्य है।

उज्जयिनी और अलका

इस काव्य में कवि ने विभिन्न पर्वतों तथा नदियों का वर्णन तो किया ही है, कुछ नगरों के प्राकृतिक सौन्दर्य, सासारिक वैभव और विलासमय जीवन का भी यथास्थान कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है। इन नगरों में उज्जयिनी और अलका विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तर की ओर जाने वाले मेघ के लिए उज्जयिनी का मार्ग यद्यपि सीधा नहीं पड़ता है, फिर भी उससे वहा जाने का आग्रह किया गया है, ताकि वह वहा के उच्च प्रासादों और विलासिनी पौरागनाओं के दर्शन से वचित न रह जाय—

> वक्र पन्था यदपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशाम्
> सौधोत्सगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्या ।
> विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौरागनानाम्
> लोलापागैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥१॥२८॥

उज्जयिनी के वैभव का अनुमान लगाने के लिये कवि का निम्न कथन ही पर्याप्त है—

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानाम्
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥१॥३१॥

उज्जयिनी की पण्यवीथिकाओं में विक्रयार्थ रक्खे हुए हीरे और मोती इत्यादि को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र में केवल जल ही शेष रह गया होगा—

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥१॥३३॥

ऐसे वैभवशाली नगर में प्रत्येक गवाक्ष से सुगन्धित धूप का निकलते रहना, घर-घर में मयूर का नृत्य करना तथा प्रासादों का विभिन्न प्रकार के पुष्पों से सुगन्धित और सुन्दर स्त्रियों के पादरागसे अंकित होना स्वाभाविक ही है। मेघ को अपनी यात्रा की थकान दूर करने का उपदेश देता हुआ यक्ष प्रकारान्तर से नगर के सौन्दर्य का ही वर्णन करता है—

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा
लक्ष्मीं पश्यन् ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥१॥३२॥

उज्जयिनी न केवल सांसारिक वैभव से ही पूर्ण है प्रत्युत वहां का प्राकृतिक सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं है। प्रातःकाल होने पर हंसों के मधुर कलरव तथा कमलों की मधुर सुगन्ध से युक्त जो शीतल हवायें शिप्रा नदी से चलती हैं, वे किस प्रकृति-प्रेमी के हृदय को मुग्ध न करेंगी। उज्जयिनी की प्रातःकालीन सुषमा का कवि ने निम्न पद्य में कितना मधुर चित्र अंकित किया है—

दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानाम्
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥१॥३०॥

यहां प्रकृति की पृष्ठभूमि में मानवीय भावनाओं का बड़ी सुन्दर रीति से यहां पर समन्वय किया गया है।

प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सांसारिक वैभव से पूर्ण इस नगर में अभिसारिकायें निबिड़ अन्धकार में भी अपने प्रेमियों के पास रात्रि में जाती हुई बताई गई हैं—

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तम्
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥१॥३८॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य, सांसारिक वैभव और मानवीय भावनाओं को लेकर उज्जयिनी नगरी का बड़ा ही रमणीय चित्र उपस्थित किया है।

उज्जयिनी नगरी के समान अलका नगरी का भी कवि ने बड़ा उदात्त और भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। कैलाश पर्वत पर स्थित अलका नगरी का परिचय देता हुआ यक्ष मेघ से कहता है –

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलाम्
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥१॥६४॥

कैलाश पर्वत और अलका नगरी के लिये प्रिय और प्रेयसी की बड़ी ही मधुर तथा उपयुक्त उपमा यहां प्रदान की गई है।

अलका नगरी के उच्च प्रासादों का भी बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। इन प्रासादों में सुन्दर दिव्यांगनायें तो रहती ही हैं, भित्तियों पर चित्र भी बने हुए हैं, संगीत के साथ मृदंग भी बजते रहते हैं और फर्श भी पारदर्शक मणियों का बना हुआ है।

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥२॥१॥

मेघ और प्रासादों में परस्पर सादृश्य बताने वाले विशेषणों का यहां बड़ा ही सुन्दर उपयोग किया गया है।

अलका नगरी में सर्वदा ही सब ऋतुयें पाई जाती हैं। तभी तो वहां की स्त्रियां अपने विभिन्न अंगों को विभिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले विविध पुष्पों से सर्वदा सजाती रहती हैं। इसी भाव को लेकर काव्य में कहा गया है–

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धम्
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषम्
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥२॥२॥

अलका की स्त्रियों को रत्न इत्यादि के अलंकारों से भूषित न बताकर पुष्पों से ही उनके भूषित होने का वर्णन कर कवि उनके अत्यधिक सौकुमार्य तथा विलासवती होने की व्यंजना कर रहा है।

अलका नगरी की कुछ अन्य प्राकृतिक विशिष्टताओं को भी देखिये –

यत्रोन्मत्त भ्रमर मुखरा पादपा नित्यपुष्पा
हंसश्रेणीरचितरसना नित्यपद्मा नलिन्यः।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्ना प्रतिहततमोवृत्तिरम्या प्रदोषा ॥२॥३॥

अलका नगरी का यहा पर बड़ा ही उदात्त और समृद्ध चित्र अंकित किया गया है।

प्राकृतिक वैभव से पूर्ण यह अलका नगरी सांसारिक वैभव में भी कुछ कम नहीं है। यहा का जीवन भी बड़ा विलासमय ही वर्णित किया गया है —

यस्या यक्षा सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छाया कुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहाया।
आसेवन्ते मधु रतिफल कल्पवृक्षप्रसूतम्
(मेघ) त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकै पुष्करेष्वाहतेषु ॥२॥५॥

अलका नगरी के वैभव और विलासमय जीवन का एक और दृश्य देखिये –

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिल यत्र बिम्बाधराणाम्
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तु गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढाना भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टि ॥२॥७॥

अलका नगरी के वैभव के साथ-साथ यह पद्य यहा की रमणियों की मुग्धता को भी व्यक्त कर रहा है।

जिस प्रकार उज्जयिनी में अभिसारिकायें रात्रि में अपने प्रेमियों के पास आती हुई वर्णित की गई हैं, उसी प्रकार अलका में भी रात्रि में अभिसारिकायें अपने अपने प्रेमियों के पास आती हुई बतलाई गई हैं —

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तन परिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः
नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥२॥११॥

अलका नगरी का कवि ने श्रृंगार रस से पूर्ण बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। अलका की स्त्रियां नयन विभ्रमों में बड़ी ही दक्ष हैं तथा उनके विविध श्रृंगार की सामग्री अकेले कल्पवृक्ष से ही उन्हें उपलब्ध हो जाती है। वहां की चतुर वनिताओं के भ्रू विलास और तिरछे कटाक्ष रूपी अमोघास्त्रों से ही कामीजन चूर चूर हो जाते हैं। उनको विभ्रम की शिक्षा देने वाला रतिफल नामक मधु है जो कि कल्पवृक्ष से चुआ कर बनाया गया है। कभी क्षय को प्राप्त न होने वाली निधियां जिनके घरों में हैं, वे कामी यक्ष वारांगनाओं को साथ लेकर कुबेर के वैभ्राज नामक उपवन में विहार करते हैं —

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनिता वारमुख्यासहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥२॥१०॥

अलका में चरम कोटि का अर्थस्वातन्त्र्य है। वह अनन्त सम्पत्ति की पुरी है, फिर भी उसमें कल्पवृक्ष है। यद्यपि इस नगरी में कल्पवृक्ष की उपयोगिता कुछ भी नहीं है, फिर भी कवि ने कल्पवृक्ष के लिए कुछ उपयोग ढूंढ ही लिया है —

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षम्
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्याम्
एकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥२॥१२॥

अर्थात् अलका में एक कल्पवृक्ष ही अबलाओं के प्रसाधन की समस्त सामग्री पूरी कर देता है। अगर सौन्दर्य के देश में स्त्रियों को कोई कामना यदि होती है, तो वह केवल मण्डनसामग्री की। जैसा मण्डन वे चाहती हैं, कल्पवृक्ष उन्हें दे देता है। यही कल्पतरु की सार्थकता है।

अलका और उज्जयिनी में अनेक समानताएं पाई जाती हैं। दोनों नगरियों की अभिसारिकाओं का उल्लेख किया ही जा चुका है। अलका में अप्सरा रूपी पण्यस्त्रियां हैं। उज्जयिनी में भी उनके समकक्ष गणिकाएं हैं जो महाकाल के मंदिर में चामरनृत्य करती हैं। पशुपति की पूजा का विधान दोनों जगह समान है। उज्जयिनी में सायंकाल आरती के समय ढोल बजाए जाते हैं। अलका में संगीत के लिए मुरजों की ध्वनि होती है। अलका में वे सुन्दरी बालाएं जिनके लिए देव भी ललचाते हैं, सुवर्ण की बालू में मणियां छिपा कर गुप्तमणि नामक खेल खेलती हैं (संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥२॥६॥)। उज्जयिनी में युवतियां गन्धवती नदी के तीर में जल क्रीडा करती हैं। अलका में सुरत खिन्न अबलाओं की श्रान्ति

हरने की सामग्री चन्द्रकान्त मणियां हैं।[1] उज्जयिनी में प्रातःकाल खिलने वाले कमलों से सुगन्धित होकर जो शिप्रा की हवा चलती है, वही रतिश्रान्त रमणियों की ग्लानि हरती है।[2] अलका और उज्जयिनी दोनों जगह भवनों में गवाक्ष हैं। उज्जयिनी में इन जालमार्गों से स्त्रियों के केश संस्कार का जो धूप निकलता है, वही ऊंचे चढ़कर मेघ के गात्र को पुष्ट करता है। अलका में भी जालमार्गों से जो धुआं निकलता है, वह मेघों की ही रक्षा करने के काम में आता है। अलका में घर घर पर मोर पले हुए हैं जिन्हें गृहस्वामिनी स्त्रियां नचाती हैं। उज्जयिनी के भवनों के नील कण्ठों को वर्षा का सन्देशवाही मेघ नचाने वाला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अलका और उज्जयिनी में परस्पर बड़ा सादृश्य है। यद्यपि उज्जयिनी इस भूलोक का ही एक भाग है, लेकिन उसका प्राकृतिक सौन्दर्य, सांसारिक वैभव और विलासमय जीवन स्वर्ग से किसी भी प्रकार कम नहीं है। इसीलिये तो कवि ने इस नगरी को 'दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्' कहा है। वास्तव में उज्जयिनी पृथ्वी पर एक आदर्श नगरी है और अलका तो साक्षात स्वर्ग है ही। इस नगरी के वर्णन में कवि की सुख और सौन्दर्य की कल्पना ही साकार हो उठी है। इस नगरी को कवि का आनन्दपूर्ण कोई स्वप्न नगर माना जाय, तो अनुचित न होगा।

यक्ष का गृह

अलका जैसी सुन्दर नगरी में यक्ष का गृह भी कुछ कम सुन्दर नहीं है। कुबेर के गृह से उत्तर की ओर ही यक्ष का यह गृह है। अपने उच्च तथा मणिमय तोरण के द्वारा यह दूर से ही चमकता है। इसके पास में बालमन्दार वृक्ष लगा हुआ है। मरकतशिलाओं की सीढ़ियों से युक्त तथा स्वच्छ जल से पूर्ण एक वापी भी इस घर में है। वर्षा ऋतु में भी हंस इस वापी के जल में विहार करते रहते हैं। इस वापी के किनारे ही कनक कदली से घिरा हुआ एक क्रीडाशैल है।

इसके शिखर पर इन्द्रनीलमणियां लगी हुई हैं तथा इस पर माधवी मण्डप के पास ही रक्ताशोक और केशर के वृक्ष लगे हुए हैं। इन वृक्षों के मध्य में सुवर्ण निर्मित तथा स्फटिक के फलक वाली एक वासयष्टि है जिस पर कि यक्ष के घर का मयूर सायंकाल को प्रायः बैठा करता है और यक्ष पत्नी उसे अपने हाथ से ताल

---

१ यत्र स्त्रीणां प्रियतम भुजोच्छ्वासितालिंगनानाम्
अगंग्लानिं सुरत जनितां तन्तुजालावलम्बाः।
(मेघ) त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे।
व्यालुम्पन्ति स्फुटजल लवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ता ॥२॥६॥

२ यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूल
शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥

दे दे कर नचाया करती है। गृह के द्वार पर शख और पदुम के चित्र बने हुए हैं। इस प्रकार कवि ने यक्ष के गृह की बड़ी ही उदात्त कल्पना की है। इस गृह वर्णन से यक्ष के ऐश्वर्यवान् और वैभवसम्पन्न होने में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता है। निर्धन होने पर भी प्रेमी जनों में पति पत्नी सम्बंधी प्रेम की मात्रा कम नहीं होती फिर जो जन्म से ही धन सम्पन्न हैं, उनके प्रेम की प्रगाढ़ता का तो कहना ही क्या? पत्नी वियोग होने से यक्ष को कितना दुःख, कितनी मनोव्यथा, कितना शोक सन्ताप हो सकता है, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। यक्ष पत्नी भी पति के वियोग में बड़ी ही अधीर तथा गाढोत्कण्ठा बतलाई गई है। अलका नगरी तथा गृह के वैभव और समृद्ध वातावरण को देखते हुए यक्ष दम्पती का विरह में परस्पर उत्कण्ठित होना स्वाभाविक ही है। यक्ष दम्पती के विरह-वर्णन में अलका नगरी और यक्षगृह का वैभव तथा विलासमय वातावरण पृष्ठभूमि के समान कार्य कर रहा है।

यक्ष और यक्षपत्नी -

यक्ष और यक्ष पत्नी का विरही प्रेमियों के रूप में विवेचन किया ही जा चुका है। काव्य के नायक और नायिका के रूप में भी उनका कुछ विवेचन करना अनुचित न होगा। शास्त्रीय दृष्टि से यक्ष को धीर ललित नायक कहा जा सकता है। यह युवक है, कला प्रेमी है तथा अपनी पत्नी के प्रति उसका प्रेम भी काफी तीव्र है। देवयोनि होने के कारण यह कामचारी है। इसलिये उसका भौगोलिक ज्ञान बड़ा ही गम्भीर और यथार्थ है। किसी योग्य और सूक्ष्मदर्शी पर्यटक के समान ही यह मेघ के मार्ग का निर्देश करता है।

जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बड़ा ही स्वस्थ तथा आशावादी है जैसाकि उसके निम्न कथन से प्रतीत होता है –

> कस्यात्यन्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा
> नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥२॥४८॥

विरह में भी उसके प्रेम की तीव्रता बढ़ता ही जाती है। सन्देश के अन्त में उसने स्वयं ही कहा है—

> स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वसिनस्ते त्वभोगात्
> इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥२॥५१॥

इसके अतिरिक्त यक्ष का व्यावहारिक ज्ञान भी कुछ कम नहीं है तथा मनुष्य प्रकृति की गम्भीरताओं से भी वह परिचित जान पड़ता है। इसीलिए तो अपने सन्देश वाहक मेघ को यह अपना भ्राता तथा सुहृद् और अपनी पत्नी को मेघ की भ्रातृजाया बनाता है। सगीत तथा चित्रकला से भी उसे प्रेम है। तभी तो स्वरचित पदों में उसने अपना सन्देश भेजा है–

त्वामुत्कण्ठाविरचितपद मन्मुखेनेदमाह । ,

यक्ष के द्वारा अपनी प्रेयसी के चित्र बनाने का उल्लेख तो काव्य में आया ही है।

यक्ष की विरह विधुरता तथा स्वभाव कोमलता देखकर काव्य के अन्त में स्वत ही उसके प्रति हमारी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है और जिस प्रकार उसने अन्त में मेघ को आशीर्वाद दिया है –

माभूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग ॥

उसी तरह हम भी उसके प्रति यह शुभकामना व्यक्त किए बिना नहीं रह सकते।

माभूदेव क्षणमपि च ते जायया विप्रयोग ॥

यक्षपत्नी-

काव्य की नायिका के रूप में यक्षपत्नी पर यदि हम विचार करते हैं, तो यह बडी ही पतिपरायणा, धर्मनिष्ठ और सुन्दर स्त्री सिद्ध होती है। प्रोषितभर्तृका नायिका के रूप में उसका जीवन बडा ही संयत तथा कठोर है। साहित्यशास्त्र में विरहिणी स्त्रियों का जैसा स्वरूप बतलाया गया है, यक्ष पत्नी प्राय वैसी ही है। वह भूमि पर सोती है और किसी भी प्रकार के प्रसाधन से सर्वथा दूर ही रहती है। विरहावस्था में भी वह देवताओं की पूजा करती रहती है[1]।

संगीत तथा चित्रकला से वह भी परिचित है। विरहावस्था में अपने पति के नाम से युक्त कोई गाना गाकर अथवा अपने पति का चित्र बनाकर वह समय बिताने की चेष्टा करती है। कवि ने उसका जैसा वर्णन प्रस्तुत किया है, उससे वह पद्मिनी प्रतीत होती है। स्थान स्थान पर कुछ उपमाओं द्वारा भी कवि ने उसके पद्मिनी होने की पुष्टि की है[2]। इसके अतिरिक्त उसकी शिष्टाचार की भावना भी बडी ही उदात्त है और वह बडी ही मानिनी है। तभी तो मेघ से विद्युत् रूपी अपनी स्त्री को साथ लेकर उससे वार्तालाप प्रारम्भ करने के लिये कहा गया है[3]। यक्ष ने अभिज्ञानस्वरूप जो घटना वर्णित की है, उससे भी यक्ष पत्नी के मानिनी होने का निश्चय होता है।

---

१ आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा ॥२॥२४॥
२ जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥
साभ्रेऽह्नीव स्थल कमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥
३ विद्युद्गर्भं स्तिमितनयना त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तु धीर स्तनित वचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथा ॥२॥३७॥

मेघ का दूत कार्य

यों तो यक्ष का मेघ को दूत कार्य में नियुक्त करना कुछ अनुचित सा ही प्रतीत होता है, लेकिन कवि के इस कथन से —

यक्षश्चक्रे जनक-तनया स्नान पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥

यह सूचित होता है कि यक्ष एक स्थान पर स्थिर रूप से नहीं रहता है, प्रत्युत उन्मादावस्था में इधर उधर घूमता फिरता है। ऐसी अवस्था में चेतन और अचेतन के विवेक का नष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है' और मेघ के द्वारा अपनी पत्नी के पास यक्ष का सन्देश भेजना कुछ भी असंगत नहीं प्रतीत होता है। कवि ने भी—

कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥५॥

कह कर मेघ के दूत कार्य के अनौचित्य का परिहार कर दिया है। दूत में प्राय' निम्न गुणों का होना आवश्यक समझा जाता है —

ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानवर्जित ।
धीमानुदारो नि शको वक्ता दूत स्त्रिया भवेत् ॥
दूत चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्र विशारदम् ।
इ गिताकार चेष्टज्ञ शुचिं दक्ष कुलोद्गतम् ॥
अनुरक्तश्शुचिर्दक्षस्स्मृतिमान्देशकालवित्
वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञ प्रशस्यते ॥

कवि ने अपनी प्रतिभा से मेघ में प्राय सभी गुणों का समावेश किया है। मेघ को उच्चवंश में उत्पन्न बताया गया है, वह इन्द्र का प्रधान पुरुष है तथा इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकता है। मेघ कामचारी है, सतप्तों की सहायता करने वाला है, कृषकों के जीवन का मुख्य अवलम्ब है, उसका अन्त करण करुणा से पूर्ण है और स्त्रियों के प्रति तो वह बड़ा ही उदार है। शिवजी का वह परम भक्त है। इसीलिये तो महाकाल के मन्दिर में सायंकालीन पूजा के समय वह पटह का कार्य करता है और शिव चरणन्यास पहुँचने पर भक्तिपूर्वक उसकी प्रदक्षिणा करता है। इन सब गुणों के होते हुए भी मेघ को पूर्ण ब्रह्मचारी तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विद्युत् रूपी उसकी प्रेयसी तो उसके साथ ही रहती है तथा उज्जयिनी की स्त्रियों के चंचल कटाक्षों से भी वह क्रीडा करता है।

---

१ उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाचेतनेष्वपि ॥ सा० द० तृ० प० ॥१६१॥

समय समय पर अपने पुरुषोचित साहस का भी मेघ ने परिचय दिया है। शरभों द्वारा आक्रमण किये जाने और सुरयुवतियों द्वारा यन्त्रधारागृह रूप में परिवर्तित किये जाने पर वह अपनी चतुरता का भी परिचय देता है। उसका घोर गर्जन उसकी गम्भीर वाणी है। कवि ने 'सखे' 'सौम्य' 'बन्धु और सुहृद्' जैसे सम्बोधनों द्वारा उसके उदार चरित्र की स्थान स्थान पर अभिव्यञ्जना की है।

रस, छन्द और शैली

इस काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ शृ गार है। शाप द्वारा उत्पन्न प्रवास से पति पत्नियोंका विरह इस काव्य में पाया जाता है और नायक की उन्मादावस्था का विशेष रूप से चित्रण किया गया है। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा गया है। कवियों की सम्मति है कि विषय के अनुकूल छन्दो योजना करने से वर्ण्य विषय में सजीवता आ जाती है। वह विशेष खुलता है, उसकी सरलता और सहृदयों को आनन्दित करने की शक्तिबढ़ जाती है। इस काव्य में विप्रलम्भ शृ गार और करुण रस के मिश्रण की अधिकता है। यक्ष का सन्देश कारुणिक उक्तियों से भरा हुआ है। जो मनुष्य कारुणिक आलाप करता हो, या जो प्रेमोद्रेक के कारण अपने प्रेम पात्र से मीठी मीठी बातें करता हो, वह न तो साप के सदृश टेढ़ी मेढ़ी चाल चलता है, न रथ के सदृश दौड़ता ही है। अत उसकी बातें भुजंगप्रयात या रथोद्धता अथवा और ऐसे ही किसी वृत्त में अच्छी नहीं लगतीं। वह तो ठहर-ठहर कर कभी धीमे और कभी कुछ ऊँचे स्वर में अपने मन के भाव प्रकट करता है। यही जान कर कालिदास ने मन्दाक्रान्ता वृत्त का उपयोग इस काव्य में किया है। कहा भी गया है—

प्रावृट् प्रवास व्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।

वर्षाऋतु, यात्रा तथा आपत्ति के वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द विशेष रूप से उपयुक्त रहता है। इस काव्य में यह तीनों ही बातें पाई जाती हैं। वास्तव में कालिदास ने समग्र काव्य को इस छन्द में लिखकर सन्देश काव्यों के लिये मन्दाक्रान्ता छन्द की परम्परा सी निर्धारित कर दी है और उसे इस छन्द के प्रयोग में सफलता भी खूब मिली है। क्षेमेन्द्र ने भी कालिदास के मन्दाक्रान्ता वृत्त की अत्यन्त प्रशंसा की है—

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रवल्गति ।
सदश्वदमकस्येव काम्बोज तुरगाङ्गना ॥सुवृत्त तिलक।
विन्यास ३। श्लोक ३४॥

कालिदास की इस सफलता से प्रेरित होकर ही कुछ परवर्ती कवियों ने अपने सन्देश-काव्यों में इस वृत्त का आश्रय लिया है।

कवि यदि अपने मन का भाव ऐसे शब्दों में कहे जिनका आशय सुनने के साथ ही सुनने वाले की समझ में आ जाय, तो ऐसा काव्य प्रसाद गुण से पूर्ण कहा जाता है। जिस तरह पके हुये अगूर का रस बाहर से झलकता है, उसी तरह प्रसादगुण परिप्लुत कविता का भावार्थ शब्दों के भीतर से झलकता है। उसके हृदयंगम होने में देर नहीं लगती। अतएव जिस काव्य मे करुणार्द्र सन्देश और प्रेमातिशयद्योतक बातें हों उसमें प्रसाद गुण की कितनी आवश्यकता है, यह सहृदय जनों को बताना न पडेगा। प्रेम की बात यदि कहते ही समझ मे न आ गई—कारुणिक सन्देश यदि कानों की राह से तत्काल ही हृदय में न पहुचा, तो उसे एक प्रकार से निष्फल ही समझिये। प्रेमालाप के समय कोई कोष लेकर नहीं बैठता। करुणा क्रन्दन करने वाले अपनी उक्तियों मे व्यग्य और क्लिष्टता लाने नहीं बैठते। वे तो सीधी तरह सरल शब्दों में अपने मन की बात कहते हैं। यही समझ कर महाकवि कालिदास ने इस काव्य को प्रसाद गुण से ओतप्रोत कर दिया है और वैदर्भी रीति तथा कैशिकी वृत्ति में ही इस काव्य की रचना की है। चुन चुन कर सरल और कोमल शब्दों को ही रखा है। माधुर्य, सरलता और स्पष्टता ही कालिदास की शैली की प्रमुख विशेषतायें हैं। उदात्त तथा दीप्यमान कल्पनाशक्ति के द्वारा कवि की शैली मे प्रवाह, लय तथा चित्रोपमता आदि गुण पर्याप्त रूप से पाये जाते हैं। बाह्य तथा मानव प्रकृति दोनों के चित्रण में कवि कुशलहस्त है। उज्जयिनी तथा अलका के वर्णन मे प्रत्येक पद्य मे तत्तद् दृश्य का एक शब्दचित्र सा प्रस्तुत किया गया है। मानवीय भावनाओं के चित्रण में भी कवि ने पूर्ण कुशलता का परिचय दिया है। यक्ष पत्नी की विरहावस्था का वर्णन बड़ा ही भावपूर्ण है और सहृदय पाठकों के हृदय में करुणा का सचार किये बिना नहीं रह सकता। काव्य की प्रत्येक पक्ति से कवि की सुकुमार भावनाओं तथा उपयुक्त शब्द-चयन का प्रमाण मिलता है। भावों के अनुकूल भाषा भी बड़ी सरस और मधुर है। विभिन्न अलकारों के साथ उपमा अलकार का भी काव्य में प्रयोग किया गया है और यह उपमायें भी बड़ी उपयुक्त तथा चमत्कारपूर्ण हैं। विरहिणी यक्षपत्नी का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

आधिक्षामा विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वाम्
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्र शेषां हिमांशो ॥२॥२८॥

यहा पर विरह क्षीण यक्ष पत्नी के लिये कला मात्र चन्द्रमा के शरीर की कितनी सुन्दर उपमा दी गई है।

इसी प्रकार कवि ने आगे भी फिर बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

पादानिन्दोरमृतशिशिरान् जालमार्ग प्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुख सन्निवृत्त तथैव।

चक्षु खेदात् सलिल गुरुभि पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धा न सुप्ताम् ॥२॥२६॥

आँसुओं से भारी पलकों द्वारा आँखें बन्द किये हुई यक्ष पत्नी के लिये दुर्दिन में न तो पूर्ण विकसित और न पूर्ण बन्द स्थल कमलिनी की बडी ही उपयुक्त उपमा दी गई है। दोनों ही स्थलों में गुणसाम्य के साथ साथ उपमेय और उपमान के लिंग की समानता भी ध्यान देने योग्य है। वास्तव में कालिदास की शैली में चित्रोपम वर्णन के साथ साथ संगीतात्मक अभिव्यक्ति की भी शक्ति छिपी हुई है। संस्कृत के अन्य कवियों में यह गुण प्राय कम ही देखने में आता है। कालिदास की रचनाओं में मेघ सन्देश सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य माना जाता है। इस काव्य को आदर्श मान कर परवर्ती कवियों ने इसके अनुकरण पर विभिन्न सन्देशकाव्य लिखे हैं। ईसा की अष्टम शताब्दी में जैन आचार्य श्री जिनसेन ने जैन तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र को लेकर चार सर्गों में पार्श्वाभ्युदय नामक अपना काव्य लिखा। इसमें मेघ सन्देश की प्रत्येक पंक्ति को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। सम्पूर्ण मेघसन्देश को इस प्रकार पार्श्वाभ्युदय काव्य में समाविष्ट कर दिया गया है। मेघसन्देश की लोक प्रियता का इससे बढकर और प्रबल प्रमाण क्या हो सकता है? न केवल भारतवर्ष में, प्रत्युत विदेशों में भी मेघसन्देश के प्रशंसक पाये जाते हैं। फ्रांस के श्री एम० फाचे का कथन है — There is nothing as perfect in the elegiac literature of Europe as the Meghaduta of Kalidasa

काव्य में नैतिक तथा अन्य विचार

कालिदास की रचनाओं में यत्र तत्र उनके विचार-रत्न बिखरे हुये पाये जाते हैं। यों तो काव्य का उद्देश्य मुख्य रूप से पाठकों को आनन्दित करना ही है, लेकिन उसके शिक्षणात्मक पक्ष को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। उत्तम काव्य की विशेषता भी यही है कि यह अप्रत्यक्ष रूप से पाठकों को सद्विचार तथा नैतिकता की भी शिक्षा दे। कवि के कुछ ऐसे ही उपदेशप्रद विचार मेघसन्देश से यहा उद्धृत किये जाते हैं।

(१) कृतज्ञ रहना

मित्र के साथ उपकार करना भारतीय जीवन की एक प्रमुख विशेषता है तथा मित्र के उपकार को समाज का तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति भी कभी नहीं भूलता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि ने कहा है—

न क्षुद्रोऽपि प्रथम सुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुख किं पुनर्यस्तथोच्चै ॥१॥१०॥

(२) निर्धन

निर्धनों के विषय में कालिदास का यह विचार सर्वथा अखंडनीय है—

रिक्तः सर्वो भवति हि लघु पूर्णता गौरवाय ॥१॥२०॥

सब खाली चीजें हल्की होती हैं, निर्धन का सब जगह निरादर होता है, परन्तु भरपूर होने से भारीपन आ जाता है। धनिकों का सब जगह आदर होता है। कवि का यह कथन एक कटुसत्य है।

(३) सच्चा प्रेम

किसी किसी कवि ने प्रेम के विषय में इसे सिद्धान्त सा समझ लिया है – मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात् स्नेहः प्रवासाश्रयात्—अर्थात् विदेश में रहने से प्रेम नष्ट हो जाता है। कालिदास ने इस मत का सर्वथा खण्डन किया है। उनका मत है –

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्
इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥२॥५१॥

घटने की बात तो दूर रही, वियोग में स्नेह बढ़ता है। कारण यह है कि वियोग में स्नेह रस का आस्वादन नहीं होता। अतः इस के एकत्र होते होते यह महान् राशि बन जाता है। किस सहृदय को यह सिद्धान्त मान्य नहीं होगा ?

(४) सज्जन

सज्जनों के विषय में कालिदास के विचार बड़े ही उच्च हैं। उनके सम्बन्ध में कवि कहता है—

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥२॥५३॥

सज्जन प्रणयी जनों की याचना का उत्तर उनकी अभिलाषा को पूरा करने में ही देते हैं। मुख से इच्छा पूर्ति का वचन नहीं कहते।

(५) सुख-दुःख

कालिदास ने सुख दुःख के परिवर्तन की उपमा पहिये की नेमि से दी है। जिस प्रकार पहिये की नेमि नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे घूमा करती है, उसी प्रकार सुख-दुःख की भी दशा है –

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥२॥४८॥

संसार में कौन ऐसा मनुष्य है जो सदा सुख भोगे और कौन ऐसा है जो दुःख के गर्त में पड़ा हुआ सदा आहें भरा करे। अवनति के बाद उन्नति तथा उन्नति के बाद अवनति अवश्य होती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

(६) धन का फल

धन इकट्ठा करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य नहीं है। धन इकट्ठा कर दूसरों के दुःख दूर करने में ही उसका व्यय करना चाहिये—

आपन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् ॥१॥५४॥

कवि का यह कथन भी बड़ा समीचीन है।

(७) मित्र का कर्त्तव्य

मित्र के कार्य को एक बार हाथ में ले लेने के बाद फिर सच्चे मित्र उसमें विलम्ब नहीं करते—

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥१॥३९॥

इस प्रकार काव्य में कवि के अनेक गम्भीर विचार पाये जाते हैं।

सन्देश की विशेषता

इस काव्य में एक विरही पति के द्वारा अपनी विरहिणी पत्नी के पास प्रणय सन्देश भेजा गया है। इन विरही पति पत्नियों का प्रेम बड़ी उच्चकोटि का है। यह निःस्वार्थ है—निर्दोष है। यक्ष अपने और अपनी प्रियतमा के जीवन को अन्योन्याश्रित समझता है और अपना सन्देश भेजकर अपनी पत्नी की प्राणरक्षा करना चाहता है। बहुत सम्भव है कि उसकी पत्नी भी वियुक्त होने के कारण पति की प्राण धारण के विषय में सशंक रही हो। कवि ने यक्ष के सन्देश के द्वारा यह बतलाने की चेष्टा की है कि प्रेम से जीवन पवित्र, सुन्दर और सार्थक हो सकता है तथा मानवीय प्रेम के द्वारा ईश्वरीय प्रेम भी हृदय में जागृत किया जा सकता है। इस बात के और भी कई उदाहरण इस देश में पाये जाते हैं। गोपियों के प्रेम को हम लौकिक नहीं कह सकते। यह सर्वथा अलौकिक है। अन्यथा—

नो चेदयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन धाम पदयोः पदवीं सरोते ॥

उनके मुख से कभी न निकलता।

इसके अतिरिक्त इस काव्य से एक और शिक्षा यह भी मिलती है कि सांसारिक विषयों के आनन्द में ही जीवन का सच्चा उपयोग नहीं है, बल्कि सच्चे प्रेमियों का त्यागमय तथा दुःख पूर्ण जीवन भी स्पृहणीय है।

कुछ विद्वान् इस काव्य को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझाने की चेष्टा करते हैं। प्रो० एम० रंगाचारियर का कथन है कि यक्ष वधू के प्रति यक्ष के प्रेम और उत्कण्ठा में भक्त का परमात्मा से प्रेम तथा मिलने की उत्कण्ठा झलकती है। यह दृष्टिकोण दूसरे शब्दों में वैष्णव दृष्टिकोण कहा जा सकता है।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मेघदूत पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—

"हममें से प्रत्येक निर्जन गिरि शृंग पर अकेला खड़ा होकर उत्तर की ओर देख रहा है। बीच में आकाश, मेघ और सुन्दरी पृथ्वी के सुख, सौन्दर्य भोग और ऐश्वर्य की चित्रलेखा के स्वरूप रेवा, शिप्रा तथा अवन्ती वर्तमान है। ये सब मन में स्मृति जगा देते हैं, पर पास में पहुँचने नहीं देते, आकांक्षा का उद्रेक करते हैं पर उसकी निवृत्ति नहीं करते। दो मनुष्यों के बीच में इतना अन्तर ! किन्तु यह बात मन में उठती है कि किसी समय हम लोग एक ही मानस लोक में थे, पर अब वहां से निर्वासित हो गये हैं।

केवल यही नहीं। वैदिक परम्परा के अनुसार अनेक पर्व (संयोजक अंग) होने से पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड पर्ववान् या पर्वत कहलाता है, रमणीय (भोग्य) होने से इसे रामपर्वत कह सकते हैं। यहाँ अष्टचक्रा नवद्वारा देवपुरी अयोध्या से यक्ष (जीव) मानों निर्वासित हुआ सा रहता है। है तो यह अकेला ही, परन्तु उसमें पंचकोश, तीनपुर, दश इन्द्रिय-स्थान आदि अनेक आश्रम (आश्रयस्थान) हैं जिनमें यह निवास करता है—स्निग्धच्छाया तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु। यों तो वह भोगों में फंसा हुआ अपनी दूरस्थ प्रिया को भूला रहता है, परन्तु ग्रीष्म (शम, दम, संयम आदि तपस्या) में तपने के पश्चात् जब आषाढ़, सदाचार) के प्रथम दिवस (प्रमुख दीप्ति) पर मेघ (मन) आश्लिष्ट सानु (उन्नत) होता है, तब प्रिया की विशेष याद आती है और उसकी ओर मेघ (मन) दूत बनकर आता है। इसके मार्ग में अन्नरसमय से लेकर मनोमय जगत् तक के अनेक भोग पड़ते हैं। इन्हीं का वर्णन पूर्वमेघ में नदियों, नगरों आदि के प्रतीकों द्वारा किया गया है। मनोमय जगत् पार करके विज्ञानमय जगत् आता है। यहीं उत्तरमेघ की अमरावती है, जहां योगी को 'सोऽहम्' की अनुभूति होती है—

[1] सोऽहमित्यात्तसंस्कार स्तस्मिन् भावनया पुनः।

इस रूपक की वास्तविक पूर्ति तभी होती है, जब यक्ष अपनी प्रिया से मिल जाता है और जब 'सोऽहम्' की अनुभूति प्राप्त हो जाती है। इसीलिये काव्य के अंतिम दो पद्यों में दोनों का मिलन दिखा दिया गया है[1]। समस्त दो पद्यों में कथा के एक दम शीघ्रता से समाप्त होने तथा इतना सहसा मिलन होने के लिये आलोचक के तैयार न होने से यह श्लोक प्रक्षिप्त माने जाते हैं। लेकिन हमें रवीन्द्र बाबू के निम्न लिखित शब्द न भूलने चाहिये —"महाभारत में भी यही बात है। स्वर्गारोहण पर्व में ही कुरुक्षेत्र के योद्धाओं को स्वर्ग लाभ हो गया। कथाप्रिय व्यक्तियों को जहा कथा समाप्ति रुचिकर होती, वहा महाभारतकार नहीं रुके, इतनी बड़ी कहानी को धूल से बने गृह की भाँति वे एक क्षण में छिन्न भिन्न कर आगे बढ़ गये। जो संसार से विरागी हैं और कथा कहानियों को उदासीन भाव से देखते हैं, उन्होंने इसके भीतर से सत्य का भी अनुसधान किया, वे क्षुब्ध नहीं हुये। बिलकुल यही बात मेघसन्देश के लिये भी कही जा सकती है[2]।"

कुछ विद्वानों को इस काव्य में शैवदर्शन की भी झलक दिखलाई देती है। उनका कथन है कि कालिदास शिवजी को ही वेदान्त द्वारा प्रतिपाद्य प्रधान पुरुष (वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुष व्याप्य स्थित रोदसी) मानते थे तथा शिव सायुज्य प्राप्त करने की भी उन्हें बड़ी उत्कण्ठा थी। उनका यह भी विश्वास था कि जीवात्मा इन्द्रियों के विषयों में अनुरक्त होने और परमात्मा के ध्यान में उपेक्षा करने से ही परमात्मा से वियुक्त है और यह वियोग तब तक चलता रहेगा जब तक कि जीवात्मा अपने मन को शिवलोक में शिवजी के पास नहीं भेजता है।

यक्ष को भी अपनी पत्नी के प्रेम तथा अपने स्वामी की सेवा में अनवधानता करने के कारण वियुक्त रहना पड़ता है। मेघ के प्रति कहे गये यक्ष के वचनों को हम ऐसा मान सकते हैं कि यक्ष अपनी अन्तरात्मा से परमात्मा के आनन्दमय स्थान पर विभिन्न केन्द्रों में से होते हुए आने की प्रार्थना करता है। आषाढ मास से प्रारम

१ तत्सन्देश जलधरवरो दिव्य वाचाऽचचक्षे
प्राणास्तस्या जन हितरतो रक्षितु यक्षवध्वा ।
प्राप्योदन्त प्रमुदितमना साऽपि तस्थौ स्वभर्तु
केषा न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमानाम् ॥२॥५६॥
श्रुत्वा वार्ता जलद-कथिता ता धनेशोऽपि सद्य
शापस्यान्त सदयहृदय सविधायास्तकोप ।
सयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानभिमतसुखान् प्रापयामास भूय ॥२॥५७॥

२ इस प्रसंग में श्री नेमिदूतम् (कोटा) की डा० फतेहसिंह द्वारा लिखित भूमिका दर्शनीय है।

करना, राम गिरि पर (भारतवर्ष के केन्द्र में रहना तथा आँखों के बन्द करने से शाप का अवसान-यह सब बातें सन्देश की आध्यात्मिक विशेषता को ही प्रकट करती हैं।

श्री डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी अपने 'मेघदूत एक अध्ययन' में काव्य की अध्यात्मपरक ही व्याख्या की है। उनका विचार है कि कवि ने मेघदूत में बड़े कौशल से शिव के स्वरूप का सन्निवेश किया है। उज्जयिनी में महाकाल शिव के पुण्यधाम का वर्णन है। शिव के गणों का, उनके नीलकण्ठ गुण का, शिवजी के नृत्य का तथा उसके आरम्भ में गजासुर की कृत्ति के परिधान का उल्लेख है (१।४०)॥ शंकर को शूली कह कर उनके त्रिशूल की ओर भी संकेत है। चण्डी, भवानी और गौरी के नाम भी हैं। शिवजी के अट्टहास का (१।५९), उनकी जटाओं में कल्लोल करती हुई जह्नुतनया का तथा पार्वती के साथ गंगा के सपत्नी भाव का भी वर्णन है। शंभु के भुजगों का, पार्वती के साथ उनके विहार का (१।६१), कुबेर के साथ उनकी मैत्री का, किन्नरियों द्वारा उनके यशोगान का, त्रिपुर की विजय का एवं उनके वृषभ का भी वर्णन किया है। शिवजी त्रिनयन हैं (१।५६।), मदन का वे दहन कर चुके हैं, इसलिये जहा शिव का निवास है वहा कामदेव जाने से डरता है। देवांगनाओं द्वारा दर्पण के काम में लिये जाने वाले रजतगिरि कैलाश के उत्संग में तो अलकापुरी बसी ही हुई है। शिवजी पशुपति हैं (१।५६।), उनके चरणन्यास की परिक्रमा और दर्शन करके श्रद्धालु जन स्थिर पद अर्थात् अनावृत्तिमय मोक्ष पाने में समर्थ होते हैं (१।५६।)। इस प्रकार अनेक प्रकार से वृषराज केतन शिव के स्वरूप का कालिदास ने मेघदूत में निर्देश किया है। आगे चल कर विद्वान् लेखक ने शिव के इस स्वरूप पर विस्तृत रूप से विचार किया है। उनका कथन है"—

"कालिदास उत्कृष्ट कोटि के अद्वैतवाद को मानने वाले थे। वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म को वे शिव ही कहते हैं तथा शिव, विष्णु और ब्रह्म में वे कोई भेद नहीं मानते (कुमार० २।४)। शिव, विष्णु और ब्रह्मा का अद्वैतभाव शिव और कूटस्थ आत्मा का तादात्म्य और योग द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार ही कालिदास का दार्शनिक मत है।"

"जब तक वृषकेतु, वृषाचल, *शिवरूप आत्मा के दर्शन नहीं होते, तब तक काम*-बाधा चित्तवृत्तियों को अधोमुख रखती है। वृषपति शिव की साधना और भक्ति (१।५६।।) प्राप्त करना प्रत्येक कामरूप पुरुष के लिये अत्यन्त आवश्यक है। कालिदास के अनुसार योग के द्वारा परमात्मा संज्ञक परम ज्योति का दर्शन करना ही जीवन की परम सिद्धि है"—

योगात्स चान्त: परमात्मसंज्ञं
दृष्टवा परं ज्योतिरुपारराम[1]॥कुमार० ३।५८॥

शिव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही कालिदास के दर्शन और साधन का ज्ञान है। कवि ने इस काव्य में भी पाठकों को शिव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान कराने की चेष्टा की है[1]।"

भारतीय साहित्य में लौकिक और पारलौकिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक का समन्वय कराने की प्रथा चली आती है। इस काव्य में भी मानवीय प्रेम से संश्लिष्ट बाह्य प्रकृति के प्रेम के साथ परमात्मा के प्रेम की ओर संकेत किया गया है। जीवात्मा तथा परमात्मा के बीच की खाई को पार करने के लिये यह सन्देश काव्य एक स्थायी सेतु का कार्य करता है। प्रेयसी रूपी परमात्मा के निवासस्थान से आती हुई शीतल वायु के लिये जीवात्मा सर्वदा ही उत्कण्ठित रहेगा। कवि ने निम्न पद्य में इसी भाव का संकेत किया है—

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति॥

काव्य के अन्त में भी कवि ने कुछ आध्यात्मिक सन्देश अपने पाठकों को दिया है। यक्ष मेघ के प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुये कहता है—

मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।

दूसरे शब्दों में इस पंक्ति का यह भी अर्थ हो सकता है कि जीवात्मा का क्षण भर के लिये भी ज्योति स्वरूप परमात्मा से वियोग न हो[2]।

---

१ इस मत का विशेष अध्ययन करने के लिये उक्त लेखक की 'मेघदूत एक अध्ययन' का 'शिव का स्वरूप' नामक अध्याय देखिये।

२ श्री सुधीर कुमार गुप्त, एम० ए०, शास्त्री (खुरजा यू० पी०) ने 'मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उसका सांस्कृतिक सन्देश' नामक अपनी पुस्तक में मेघदूत के तत्तत पौराणिक कथाओं को वेद मन्त्रों के अर्थ से मिलाने का प्रयास किया है और सारे काव्य को स्वामी दयानन्दजी द्वारा निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार किये गये वेद मन्त्रों के अर्थ से अनुप्राणित सिद्ध करने की चेष्टा की है। लेकिन कालिदास की रचनाओं में जिस संस्कृति की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है, वह शुद्ध पौराणिक है, भले ही उसका मूल वेदों में ही क्यों न पाया जाये। कालिदास ने अपने समय में प्रचलित पौराणिक संस्कृति को लेकर ही अपने काव्यों की रचना की है। किसी सम्प्रदाय विशेष या

बहुत सम्भव है कि कवि ने केवल मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को लेकर ही यह काव्य लिखा हो। इस काव्य में जो कुछ भी सांस्कृतिक अथवा दार्शनिक विचार आ गये हैं, वे कवि की अन्तरात्मा तथा मन के परिष्कार को ही प्रमाणित करते हैं। पाठकों के मनोरंजन और आनन्दोत्पादन की सामग्री इस काव्य में पर्याप्त रूप से है। इसमें आम्रकूट पर्वत के ऊपर बने हुये ऐसे कुंज देखने को मिलते हैं, जिनमें वनचरों की स्त्रियाँ विहार किया करती हैं। पर्वतों के ऐसे दृश्य देखने में आते हैं जिन्हें वर्षा ऋतु में केवल वही लोग देख सकते हैं जो पर्वतवासी हैं या जो विशेष करके इसी निमित्त पर्वतों पर जाते हैं। दशार्ण की केतकी यदि किसी ने नहीं देखी है, विदिशा की वेत्रवती की लहरों का भ्रूभंग यदि किसी ने नहीं देखा है, उस प्रान्त के उपवनों में चमेली के पुष्पों को चुनने वाली पुष्पलावियों से यदि किसी का परिचय नहीं हुआ है, तो उसे मेघसन्देश अवश्य पढ़ना चाहिये। उज्जैन की यदि सैर करनी हो अथवा उदयन का कीर्ति-गान सुनना हो, तो और कहीं न जाकर केवल मेघसन्देश पढ़ना ही पर्याप्त होगा। प्राचीन दशपुर प्राचीन ब्रह्मावर्त प्राचीन कनखल, प्राचीन कैलाश और प्राचीन अलका के दर्शन अब दुर्लभ है, तथापि उनकी छाया इस काव्य में पाई जाती है। यदि किसी को इन नगरों तथा उत्तरीय भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा देखने की उत्कण्ठा हो तो उसे मेघसन्देश अवश्य ही पढ़ना चाहिये।



सिद्धान्त विशेष का विधिवत् उसके काव्यों में प्रतिपादन नहीं किया गया है। उसने अपने समकालीन ज्ञान, दर्शन तथा धर्म की परम्पराओं का ही काव्य में दर्शन कराया है। जो कुछ भी साहित्येतर गुण—उसकी रचनाओं में पाये जाते हैं, वे उसकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और सारग्राहिणी प्रवृत्ति के द्योतक हैं, न कि उसके किसी सम्प्रदाय विशेष के अनुयायी होने के।

द्वितीय अध्याय

द्वितीय भाग–मेघसन्देश के उत्तराख्यानकाव्य

१ परमेश्वर झा का यक्ष मिलन काव्य

२ मन्दिकल रामशास्त्री का मेघ प्रति सन्देश

परमेश्वर झा का यक्ष समागम काव्य (वि० सं० १९१३-१९८१)

दरभंगा राज्य के तरवनी (तरौनी) नामक ग्राम में पौष शुक्ल प्रतिपदा वि० संवत् १९१३ में इनका जन्म हुआ था। इनके पितामह श्री भोलानाथ झा व्याकरण के परम विद्वान् थे तथा दरभंगा नरेश महाराज श्री छत्रसिंह (सं० १८०७ ई०-सं० १८२६ ई०) के सभापण्डित थे। इन भोलानाथ झा के ही पुत्र पूर्णनाथ झा उपनाम बाबूनाथ झा हुए। यह भी व्याकरण के अच्छे विद्वान् थे। इन पूर्णनाथ झा उपनाम बाबूनाथ झा के दो पुत्र हुए। एक का नाम प्रयाग झा था तथा दूसरे का श्रीपरमेश्वर झा। यह परमेश्वर झा बड़े विद्वान् थे। वैयाकरणकेसरी तथा कर्मकाण्डोद्धारक और महोपदेशक इत्यादि पदवियां इन्हें भारतवर्ष की विभिन्न संस्थाओं से सम्मान में मिली थीं। ब्रिटिश गवर्नमेंन्ट ने इन्हें महामहोपाध्याय पदवी से भी भूषित किया था। विहार पण्डित-सभा ने इन्हें विद्यानिधि पदवी भी प्रदान की थी। अपने समय के संस्कृत विद्वानों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी।

इन महामहोपाध्यायजी ने स्वरचित 'कुसुम कलिका आख्यायिका' नामक ग्रन्थ में संक्षेप में अपना कुछ वंश परिचय दिया है। यह अत्यन्त-प्रतिभाशाली थे। बाल्यावस्था में अपने ग्राम की पाठशाला में ही व्याकरण तथा साहित्य का अध्ययन करने के बाद सोलह वर्ष की अवस्था में क्वींस कालेज बनारस में प्रविष्ट हुए। यहां श्री राजाराम शास्त्री तथा श्री बालशास्त्री से इन्होंने व्याकरण, धर्मशास्त्र, मीमांसा, सांख्य और वेदान्त इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन किया। वार्षिक परीक्षा में व्याकरण तथा धर्मशास्त्र विषय लेकर विशिष्ट योग्यता के साथ उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल श्री टी० एन० आर० ग्रीफिथ के समय में ता० १४ मार्च सं० १८७४ ई० को लार्ड नार्थब्रुक के दरबार में इन्हें पारितोषिक मिला। डा० बुलर जो कि दक्षिणप्रान्त के उच्च शिक्षाधिकारी थे, एक बार संस्कृत कालेज में आए थे। वे भी परमेश्वर झा के संस्कृत ज्ञान और शास्त्रीय विद्वत्ता से परम संतुष्ट हुए थे।

इस प्रकार १९ वर्ष की अवस्था में ही अध्ययन समाप्त कर राजस्थान के झालरापाटन नामक नगर में कैन्ट पाठशाला में कुछ दिनों तक इन्होंने संस्कृताध्यापक का कार्य किया। दूर होने के कारण इस स्थान को छोड़कर यह विहार वापिस चले आए। इसके बाद पूर्णिया जिले के अन्तर्गत बनैली राज्य में कुछ दिनों राजपण्डित रहे। यहां की जलवायु के स्वास्थ्य-कर न होने के कारण पुनः पद त्याग कर घर आ गए। फिर दरभंगा के निकट गन्धवारि स्टेट में राज्य पाठशाला में १२ वर्ष तक इन्होंने अध्यापन कार्य किया। गन्धवारि स्टेट के दरभंगा में मिला दिए जाने पर दरभंगा नरेश श्री रामेश्वरसिंह बहादुर जी० सी० आई० ई०, के० बी० ई० ने ता० १-७ १८९९ ई० को इन्हें दरभंगा का राजपण्डित नियुक्त कर लिया। ४० वर्ष तक श्री परमेश्वर झा ने दरभंगा राज्य की सेवा की। कुछ दिनों तक यह

राजकीय संस्कृत पुस्तकालय, दरभंगा के अध्यक्ष भी रहे। राजकीय रामेश्वर लता संस्कृत विद्यालय के प्रिंसिपल के पद पर भी इन्होंने कार्य किया।

धर्मोन्नति तथा विद्योन्नति में निरन्तर लगे रहने के कारण इन्हें अनेक स्थानों से अनेक पदवियां भी प्राप्त हुईं। सर्वप्रथम कर्मकाण्ड के उद्धार करने के कारण विद्वन्मण्डली से इन्हें कर्मकाण्डोद्धारक पद प्राप्त हुआ। भारत धर्म महा मण्डल बनारस से कार्तिक कृष्ण ४ सम्वत् १९६३ में इन्हें वैयाकरण केसरी तथा महोपदेशक की पदवी प्राप्त हुई। ता० १ १ १९१४ ई० में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने इन्हें महा महोपाध्याय पद प्रदान किया। बिहार पंडित सभा, बाकीपुर ने ता० २८ ७ १९१७ ई० में विद्यानिधि पद से इन्हें विभूषित किया। प्रान्तीय संस्कृत कौंसिल के यह सदस्य थे। पटना विश्वविद्यालय, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस, हिन्दु विश्व विद्यालय, बंगाल, बिहार और उड़ीसा की संस्कृत परीक्षा समितियों में विभिन्न रूप से यह अपना सहयोग देते रहे। सन् १८२० ई० में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने सम्मान के रूप में रेशमी धोती तथा रेशमी चपकन इन्हें भेंट की।

इन्होंने कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र, नाटक, काव्य और कोष इत्यादि विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। महिषासुर वध नाटक, वाताह्वान काव्य, कुसुमकलिका आख्यायिका, ऋतु-वर्णन काव्य तथा यक्ष समागम काव्य[1] यह इनकी साहित्यिक रचनायें हैं। कालिदास के ऋतुसंहार के आधार पर ऋतु वर्णन काव्य तथा मेघदूत के आधार पर यक्ष समागमकाव्य लिखा गया है।

साहित्य, कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र में विभिन्न ग्रन्थों का निर्माण कर महा महोपाध्याय परमेश्वर झा ने अतुल ख्याति प्राप्त की। ता० जून ३०, सन् १९२४ ई० को इस विद्वान् का स्वर्गवास हुवा[2]।

काव्य की कथा

जैसाकि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इसमें यक्ष का उसकी प्रेयसी के साथ समागम वर्णित किया गया है। मेघदूत में अपनी प्रेयसी के लिये संदेश देते समय यक्ष कहता है —

---

१ यह काव्य दरभंगा से शाके १८२७ में प्रकाशित हुआ है। अतः वि० स० १९५२ अथवा इससे कुछ पूर्व का समय इस काव्य का रचनाकाल होना चाहिये।

२ लेखक के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये मिथिला भाषा में लिखा हुआ लेखक का 'मिथिला-तत्त्व विमर्श' उत्तरार्ध पृष्ठ १८-१२४ देखिये।

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥

तदनुसार चार महीने बाद देवोत्थान होने पर यक्ष अपनी प्रेयसी के पास पहुँचता है। सर्वप्रथम अपनी प्रेयसी से वह कुशल-वार्ता पूछता है। कुछ कथायें भी उसे सुनाता है। वहाँ उत्सुकता से उसका किसी तरह दिन बीतता है। रात्रि होने पर यक्ष की अपनी प्रेयसी से फिर कुछ बातचीत होती है। इस प्रसंग में कवि ने दोनों प्रेमियों की विभिन्न प्रणयकथायें और प्रणयलीलायें बड़े सरस और मधुर ढंग से वर्णित की हैं। यक्ष की पत्नी द्वारा यक्ष को प्रेमपूर्वक हाला पिलाने तथा वीणा वादन द्वारा उसे प्रसन्न करने का वर्णन किया गया है। यक्ष भी इस अवसर पर अपनी प्रेयसी के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करता है। इस प्रकार बड़े प्रेम से उनकी रात्रि बीतती है। प्रात काल होने पर वन्दीगण मधुर गीतों से उन्हें जगाते हैं। पति पत्नी शय्या से उठकर सर्व प्रथम ब्राह्मणों के दर्शन करते हैं। उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर तथा प्रात कालीन कृत्यों से निवृत्त होकर यक्ष अपने मित्रों के साथ डरता डरता कुबेर के पास जाता है और उन्हें प्रणाम करता है। कुबेर भी प्रसन्न होकर उसके लिये और भी अधिक उत्तरदायित्व का कार्य सौंप देते हैं। इस प्रकार यक्ष और उसकी पत्नी अपना जीवन फिर बड़े सुख से बिताने लगते हैं।

काव्य की कथा यहीं पर समाप्त हो जाती है।

काव्य समीक्षा

यह काव्य आकार में तो छोटा ही है। केवल ३४ श्लोक ही इस काव्य में हैं। मेघदूत के अनुसार इसमें भी मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। जैसा कि काव्य के नाम से भी कुछ प्रतीत हो जाता है, इसमें संभोग शृंगार का वर्णन किया गया है। मेघदूत में यक्ष केवल सन्देश देकर ही रह जाता है। इस काव्य में कवि ने मेघदूत की कथा को ही पल्लवित किया है। मेघदूत में यक्ष कहता है कि भगवान् विष्णु के भुजग शयन से उठने पर उसके शाप का अन्त हो जायगा, अत केवल चार महीने का उसकी प्रेयसी को और कष्ट है। कवि ने इसी बात को लेकर अपना काव्य प्रारम्भ किया है। चार महीने बाद यक्ष स्वय अपनी प्रेयसी के पास पहुँच जाता है। इस मिलन-वेला में दोनों प्रेमियों को जो अपूर्व आनन्द हुआ होगा, उसे सहृदय पाठक स्वयं ही जान सकते हैं।

जैसाकि यक्ष ने मेघदूत म कहा था —

पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्याव परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥२१॥

इसी के अनुसार इस काव्य में यक्ष और उसकी प्रेयसी के मिलने का वर्णन किया गया है। यह लघु-काव्य संयोग शृंगार की मधुर धारा से ओतप्रोत है। काव्य

क प्रत्येक पद्य में तो क्या, प्रत्येक पंक्ति में शृंगार रस की छटा विद्यमान है। अपनी प्रेयसी से मिलते समय सर्वप्रथम यक्ष कहता है–

ये ये क्लेशा सुमुखि विरहे ते मया सोढपूर्वा–
स्तानानन्दानुभवसमयेऽत्र पुनः स्मारयित्वा।
सम्प्रत्येकीभव सह मया प्राण वद्गोपनीये
भूयान्नैव पलमपि कदाऽप्यावयोर्विप्रयोगः[१] ॥३॥

चिर विरह के बाद मिलन होने पर यक्ष की ऐसी इच्छा स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर कवि ने दोनों प्रेमियों के संयोग का बड़ा मधुर और भावपूर्ण चित्र अंकित किया है। कल्पना की सुकुमारता तथा भावों की तीव्रता दर्शनीय है। यक्ष अपनी प्रेयसी के पास बैठा हुआ है। उसकी प्रेयसी उसे मदिरा तो पिलाती ही है, साथ में वीणा भी बजा रही है —

पत्याऽऽयाते मधुरमुखरे पुष्करे वाक्प्रवीणा
वीणामेणीनयनतरुणी वारुणीघूर्णिताक्षे।
कोणप्रान्ते लघु लघु तथाऽवादयत्सा यथाऽस्याः
ताल कास्या इव समदधुः कंकणा निःक्वणन्तः ॥१२॥

प्रेमियों के मिलन के अवसर पर कवि ने सुरा और संगीत का प्रसंग उपस्थित कर वातावरण को और भी मधुर बना दिया है। साथ में भावों के अनुकूल शब्द भी ऐसे प्रयोग किये गये हैं जो वीणा वादन का दृश्य उपस्थित करते हैं[२]।

जो विरहिणी नायिका विरहावस्था में लम्बी-लम्बी रात्रियों को रोते-रोते बिताती थी, अब प्रत्येक रात्रि उसके लिये एक उत्सव बन गई है। कवि ने लिखा है —

---

१ इस पंक्ति की मेघदूत की– मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥२॥५४॥ पंक्ति से तुलना की जा सकती है।

२ उद्धृत पद्य में णकार बहुल शब्दों पर विचार कीजिये।
कवि को नायिका के वीणा बजाने का दृश्य उपस्थित करने में मेघदूत के–

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणाम् ॥२॥२५॥

इत्यादि पद्य से प्रेरणा अवश्य ही प्राप्त हुई होगी, क्योंकि विरहिणी नायिका जब विरह में भी वीणा बजाने की चेष्टा करती थी तो प्रियसंयोग में तो उसका वीणा बजाना स्वाभाविक ही है।

याँ या रात्रिप्रियविरहिता[1] ग्राटकेनेक्षमाणा
निद्राहीना कठिनकठिन क्षोणिपृष्ठे लुठन्ती ।
आलीवाक्यैरपि परिपल बोधिता नैव नेतु
शक्ता सैषा दयितयुतया सोत्सवन्नीयते स्म ॥१३॥

इस पद्य में वियोग और सयोग का कवि ने एक साथ ही बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

आगे चलकर यक्ष अपनी प्रेयसी के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करता है। इस वर्णन में कवि ने बड़ी चमत्कारपूर्ण कल्पनायें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। यक्ष वेणीबन्धन में सलग्न अपनी पत्नी से कहता है—

बाले ! वक्त्र तव निकलुष चन्द्रमुत्प्रेक्ष्य पूर्ण
ग्रस्त्यै [2]पातस्त्वरितमपतत्केशपाशापदेशात् ।

त्वचेदानीं लकुचितकुचे पाणिनोद्गृह्य राहुम्
चौरकार चिकुरनिकर पृष्ठबन्ध बधान ॥१६॥

नायिका के मुख में चन्द्र, अलकों में राहु और वेणी बन्धन में चोर बन्धन की कल्पना कितनी चमत्कारपूर्ण है।

यक्ष फिर अपनी प्रेयसी के लिये कहता है—

चक्षुर्लीलाकमलमतुला भिक्षते तेऽत्युदारे
वाच मोचामधुररुचिरा कोकिल कूजितेन ।
बन्धूकश्चाप्यधर सुषमा नम्रभावेण कम्रे
मुग्ध्याऽभिख्या तव नजनना वर्धतेऽथापि काऽपि ॥१७॥

नायिका के नेत्र, वाणी और अधर सुषमा का कवि ने किस प्रकार भाव भगिमा के साथ वर्णन किया है।

अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये एक स्थान पर यक्ष कहता है-

बाले भाले रुचिरुचिर सूक्ष्मसिन्दूरबिन्दु
कर्णे पुष्प दशनवसने गाढताम्बूलराग ।
सौवीरन्ते दृशि नखततौ यावकश्चित्रवासो
गौरे गात्रे गुणिनि सुभगम्मावुकत्व गृणन्ति ॥२३॥

---

[1] ग्राटकेन = मुद्राविशेषेण, यत्र निर्निमेष दृश्यते
[2] पात = राहु ।

कवि ने इस पद्य में नायिका का बड़ा ही उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया है।

आगे चल कर कवि ने नायिका की वियोग-कालीन और संयोग-कालीन अवस्थाओं की बड़े सुन्दर ढंग से तुलना की है—

अङ्कादधीना वररमयितु शापकालाच्च दीना
'कीनाशाशा जिगमिषुरिवातीव खिन्ना नवीना।
मीनाक्षी या क्षणमिव शिला' क्षापयन्ती सतीना
सा दिष्ट्याद्य स्वपिति ललना कान्तदेहेऽतिलीना ॥२७॥

भावों के साथ साथ कवि ने भाषा भी बड़ी सुकुमार ही प्रयुक्त की है। अनुप्रास की छटा तो दर्शनीय है ही।

इस प्रकार एक अन्य स्थान पर भी कवि ने वृत्त्यनुप्रास की छटा बाँध दी है। यक्ष का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अके छत्वा कथमिव कला कोविद कामुकोऽसौ
कान्ता कर्णे किमपि कुतुकाद्वक्तुकाम करेण। इत्यादि ॥१०॥

यद्यपि यह काव्य छोटा ही है, फिर भी इसमें स्थान-स्थान पर अनेक सूक्तियाँ बिखरी हुई हैं—

१ मध्यस्थाना लघु समुचित सन्धिकृत्य हि तत्र ॥७॥

२ नैव द्वेष्यो न च खलु सुहृत्कोऽपि कस्याप्यकस्मात्
स्वस्याचाराद्भवति हि जनो गर्हणामर्हणा वा ॥१४॥

३ अल्पादल्पो भवति नियम कल्पकल्पो हि काल
सङ्कल्पात्तु शमयसमयो दृश्यते द्राधितोऽपि ॥३४॥

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकगण जान सकते हैं कि यह लघु काव्य किस कोटि का है। भाषा, भाव, और शैली की दृष्टि से यह एक प्राञ्जल रचना है। माधुर्य और प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति का काव्य में बाहुल्य है। कालिदास ने मेघसन्देश में विप्रलम्भ शृङ्गार की यदि सृष्टि की है, तो इस काव्य में शरद् ऋतु की चाँदनी में संभोग शृङ्गार बरसाया गया है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह लघुकाव्य मेघदूत का सहोदर ही है। इस काव्य का एक-एक पद्य शृङ्गार की स्वच्छ छवि से अंकित हो रहा है। कवि ने काव्य के अन्त में उचित ही कहा है—

---

१ यमदिशम्

माऽस्याकारे कुरुत कृतिनो द्वक्प्रसार कथंचित्–
, गृह्णीतास्य रसगुणमनु यो न लभ्यो बहुत्र।
प्रेक्ष्य पक्वं सुललित फल निम्बकं तुण्डिकेर्या
स्त्यक्त्वा विम्बस्तलितसरसम् पक्वमास्वादयन्ति ॥३४॥

कालिदास के मेघदूत की कथा को पल्लवित करते हुये जिस तरह इन्होंने यक्ष-समागम-काव्य लिखा, उसी तरह ऋतु संहार के विषय का उपसंहार करते हुये इन्होंने ऋतु-वर्णन नामक काव्य भी लिखा है। इस काव्य में भी कवि ने बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षायें प्रयुक्त की हैं–

नवकिसलयदम्भाद्दित सिन्दूर मुष्टि
प्रतिवनतति लक्ष्म्याऽऽक्रीड्य होरयुत्सवेऽसौ
कमलदलमिषेणोत्कीर्य सारीरमत्र
सरसि कविसहाय स्नाति किंस्विद्वसन्त ॥

वसन्त होली के महोत्सव में वनश्री के साथ नये किसलयों के गुलाल और कमलदलों के अबरख मिले हुये अबीर से होली खेलकर सरोवर में कवि अथवा जलपक्षियों के साथ नहा रहा है। रंग खेलने के बाद स्नान करना स्वाभाविक ही है।

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा न केवल पद्यरचना में सिद्धहस्त थे, बल्कि गद्य भी बड़ा सुन्दर लिखते थे। इनकी लिखी हुई कुसुम कलिका आख्यायिका संस्कृत गद्य की एक प्रौढ़ रचना है। उदाहरण के लिये निम्न अवतरण पर्याप्त होगा –

वाद्यन्ते चाव्यक्त मधुराणि पदानि बालकां इवाङ्गना
कोमलाङ्गा मृदङ्गाः, आलप्यन्ते चालिंग्य नवोढा
कृशाङ्गीव तन्त्री, शयनीयशयेन शयेन सारंगी, संयोज्यन्ते
वयस्या इव तुल्य काला कांस्यताला, परामृश्यते
च शनकैः कामिनीव मानिनी क्रोडीकृताकराङ्गुलिभि
स्सगुणा वीणा।

उपर्युक्त अवतरण में कवि ने किस प्रकार श्लेषमूलक उपमा द्वारा वाद्यवादन का विवरण प्रस्तुत किया है।

कवि के सम्बन्ध में और कुछ अधिक न कह कर हमें केवल यहां पर इतना ही कहना है कि मेघदूत की कथा को पल्लवित कर कवि ने अपनी लोकोत्तर प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि व्याकरण और कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड विद्वान् होने के अतिरिक्त एक सहृदय व्यक्ति भी हैं। मेघदूत की कथा को पल्लवित कर लिखे जाने वाले काव्यों में यक्ष समागम काव्य भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टि से एक सुन्दर काव्य है।

मन्दिकल रामशास्त्री का मेघप्रतिसन्देश [स० १६२३ ई०]

दक्षिण भारत के आधुनिककालीन संस्कृत विद्वानों में श्री मन्दिकल राम शास्त्री का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इस विद्वान् का जन्म सन् १८४६ ई० में मैसूर राज्य के अन्तर्गत मन्दिकल नामक नगर में हुआ था। यह रथीतरगोत्र के श्री अप्पा स्वामी ज्योतिषी के पौत्र तथा वेंकट सुब्बाशास्त्री के पुत्र थे। इनकी माता का नाम अक्कम्मा था। आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा मैसूर में श्री द्विवेदी गुरु से इन्होंने ऋग्वेद का अध्ययन किया। सोलह वर्ष की अवस्था तक यह यहां ऋग्वेद का अध्ययन करते रहे। इसी समय अपने पिता के स्वर्गवास का समाचार सुन यह अपने घर आ गये और अपने नगर में ही श्री वेंकट रामाचार्य के यहां चार वर्षों तक संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते रहे। तदनन्तर उत्तर भारत में आकर विभिन्न विद्वानों से इन्होंने न्याय, व्याकरण इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन किया। इसके बाद यह फिर मैसूर चले गये तथा महाराज कृष्ण राज वोडियर तृतीय के प्रासादाध्यक्ष श्री बख्शी नरसप्पा की देख रेख में पण्डितरत्नम् श्री सीताराम शास्त्री के पास न्याय तथा साहित्यशास्त्र का अध्ययन करते रहे। महाराजा संस्कृत कालेज मैसूर से संस्कृतविद्वत् परीक्षा इन्होंने उसी वर्ष उत्तीर्ण की जिस वर्ष कि यह वहां चालू की गई थी। बाद में श्री बख्शी नरसप्पा द्वारा स्थापित शारदा विलास-संस्कृत पाठशाला में चिरकाल तक इन्होंने अध्यक्ष पद पर कार्य किया और अपने अनेक शिष्यों को संस्कृत का विद्वान् बनाया।

श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु श्री शिवाभिनव सच्चिदानन्द भारती से अद्वैत वेदान्त की शिक्षा प्राप्त कर आर्य धर्म प्रकाशिका नामक कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का एक सुन्दर ग्रन्थ इन्होंने लिखा। प्रो० मैक्समूलर ने इस ग्रन्थ की भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

इसके अतिरिक्त चामराजकल्याणचम्पू, चामराज राज्याभिषेक-चरित्र और कृष्णराजाभ्युदय आदि ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे। स्वर्गीय हिज हाईनेस श्री चामराज वोडियर ने इन ग्रन्थों पर इन को कई पुरस्कार भी प्रदान किये। तदनन्तर स० १६१४ ई० में इन्होंने 'भैमी परिणय' नामक नाटक लिखा। इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो श्रीमान् कृष्णराज वोडियर चतुर्थ ने इनको कवि रत्न की उपाधि प्रदान की तथा महाराजा संस्कृत कालेज मैसूर के प्रधान पण्डित के पद पर नियुक्त कर दिया।

श्रृंगेरी मठ के महोत्सव वृत्तान्त को लेकर इन्होंने कुम्भाभिषेक चम्पू लिखा। इस ग्रन्थ पर श्री श्रृंगेरी जगद्गुरु चन्द्रशेखर भारती ने इन्हें कवि-कुला-लंकार की उपाधि प्रदान की। अपनी विद्वत्ता और गम्भीर शास्त्र ज्ञान के कारण समग्र भारत में विभिन्न स्थानों से इन्हें अनेक उपाधियां प्राप्त हुईं। इस प्रकार उत्तरादि मठ से

श्री सत्य ध्यान तीर्थ गुरु से इन्हें 'कवि शिरोमणि,' गरलपुर स्थित श्री राघवेन्द्र मठ के स्वामी श्री सुब्रह्मण्याभिनव सच्चिदानन्द भारती से 'कवि कुला-वतंस' तथा भारतधर्म महामण्डल काशी से 'कवि विभूषण' की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् १९२३ ई०के लगभग इन्होंने मेघप्रतिसन्देश की रचना की। इसके अतिरिक्त संस्कृत कथा ससति और भगवत्प्रार्थना आदि ग्रन्थ भी इनके लिखे हुये हैं।

मेघप्रतिसन्देश की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इसमें मेघ-सन्देश की कथा को ही पल्लवित किया गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। यक्ष के सन्देश को लेकर मेघ अलका नगरी पहुचता है और उसकी पत्नी को यक्ष का सन्देश सुनाता है। अपने प्रिय के सन्देश को सुनकर यक्षी बड़ी प्रसन्न होती है, लेकिन प्रिय की विरह व्यथा से उसे वेदना भी कम नहीं होती है। तन्नन्तर हाथ के सहारे किसी तरह उठकर धीरे धीरे वह मेघ से वार्तालाप प्रारम्भ करती है और उसे देव-स्वरूप मानकर उसके करुणा और औदार्य इत्यादि गुणों की प्रशंसा करने के बाद यक्ष के पास अपना प्रतिसन्देश ले जाने की प्रार्थना उससे करती है।

प्रतिसंदेश में सर्वप्रथम यक्षके सद्गुणों का वर्णन, अपनी विरहावस्था का निवेदन तथा अपने और यक्ष के दुर्भाग्य पर पश्चात्ताप प्रकट किया गया है। इसके बाद यक्षी ने अपने घर की दुरवस्था का वर्णन किया है और फिर यक्ष के सन्देश का यथोचित उत्तर दिया है। अन्त में यक्ष के शाप से सम्बद्ध अभिज्ञानस्वरूप कुछ घटनायें वर्णित कर और शिवजी की कृपा से शाप के शान्त होने का समाचार बता कर यक्ष से शीघ्र ही घर लौटने की प्रार्थना की गई है।

प्रति सन्देश सुनाने के बाद मेघ को रामगिरि तक का सरल मार्ग भी बतलाया गया है। अलका नगरी से हिमालय पहुँच कर और वहां से फिर दक्षिण की ओर चलने पर सिन्धु नदी का जल पीते हुये काश्मीर पहुँचने का सर्वप्रथम मेघ को परामर्श दिया गया है। काश्मीर में श्रीनगर तथा वहां शारदाम्बा के दर्शन के बाद पंजाब में अमृतसर तथा शतद्रु नदी देखते हुये देहली पहुँचने का फिर मेघ को परामर्श दिया गया है। वहां से फिर जयपुर, उदयपुर, चित्तौड़ और अराल पर्वत प्रदेश होते हुये उज्जयिनी पहुच कर तथा वहां महाकाल की पूजा करने के बाद विन्ध्य पर्वत आने का मेघ को आदेश दिया गया है। विन्ध्य पर्वत से फिर तापती नदी, विदर्भ देश, पूर्णा नामक नदी, गोदावरी और कृष्णा नदी को पार कर आन्ध्र देश होते हुये रामदुर्ग पहुँचने का फिर मेघ को यक्षी ने परामर्श दिया है।

रामदुर्ग पर्वत पर ही कहीं यक्ष के मिलने की सभावना के साथ साथ उसकी विभिन्न विरहावस्थाओं का यक्षी ने वर्णन किया है। संभव है कि वहा (रामदुर्ग पर)

यक्ष न मिले और विरह जन्य अधीरता के कारण घूमता हुआ दक्षिण देश की ओर कहीं चला गया हो, अत मेघ से भी यक्ष की खोज करते हुये दक्षिण की ओर जाने की प्रार्थना की गई है। इस प्रसग में सर्वप्रथम रामदुर्ग से पम्पा सरोवर तथा पम्पा नगर और तुगभद्रा नदी होते हुये ऋष्यमूक पर्वत जाने का मेघ को आदेश दिया गया है। इसके बाद क्रमश वेद भाष्यकर्ता श्री माधवाचार्य (अद्वैताचार्य विद्यारण्य) के विजयनगर, पेन्गोड, मन्दिकल, घोषाद्रि, धेनुशैल, नन्दि दुर्ग, कल्याणनगर (बगलोर), रामगिरि, यदुगिरि, और कावेरी नदी के तट पर स्थित श्रीरगपत्तन होते हुये महिसुरपुरी '(मैसूर) जाने का मेघ को परामर्श दिया गया है। सभव है कि मैसूर नगर के वैभव और विद्याप्रसार इत्यादि से प्रभावित हो यक्ष यहा घूमने चला गया हो, अत मैसूर नगर के विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों में भी यक्ष की खोज करने के लिये मेघ से कहा गया है। इसके बाद चामुण्डा देवी के निवास स्थान महा-बल गिरि और फिर गरलपुर-क्षेत्र होते हुए केरल देश पहुच कर अनन्तशयन भगवान् के दर्शन कर कोच्ची नामक स्थान से होते हुये कुछ पूर्व की ओर श्री शकराचार्य के जन्मस्थान कालटी नामक ग्राम में जाने का मेघ को परामर्श दिया गया है। यहा से फिर पूर्णा नदी को पारकर पाण्ड्य देश पहुच कर यहा मदुरा नगरी में मीनाक्षी देवी के दर्शन करने के बाद कृतमाला नदी, श्रीपति पदगिरि (तिरुमालिरुशोले पर्वत) तथा दर्भशयन तीर्थ होते हुये रामेश्वरम् और धनुष्कोटि पहुँचने तथा यहा यक्ष के ढूढने का परामर्श दिया गया है। अन्त मे यक्षी मेघ से इन्हीं किन्हीं स्थानों में विरह से व्याकुल यक्ष को ढूढकर अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना करती है और बिजली के साथ स्वच्छन्द विहार करते रहना का उसे आशीर्वाद भी देती है।

अन्त में कवि ने लिखा है कि यक्षी के उपर्युक्त विरह वचन किसी प्रकार यक्षराज कुबेर के पास पहुच जाते हैं। उन्हें यक्षी की दीन दशा पर दया आ जाती है। स्वय अपना रथ भेजकर रामदुर्ग से यक्ष को अलका बुला लेते हैं। यक्ष दम्पती फिर यथापूर्व अपने घर पर सुखपूर्वक रहने लगते हैं।

बस, काव्य की कथा यहा परही समाप्त हो जाती है।

काव्य समीक्षा

जैसा कि काव्य के नाम और कथा-वस्तु से स्पष्ट है, इसमें मेघसन्देश की कथा को ही पल्लवित किया गया है। मेघ-संदेश में यक्ष ने अपनी पत्नी के पास मेघ द्वारा सन्देश भेजा है। इस काव्य में मेघ द्वारा यक्ष के सन्देश को सुन कर उसकी पत्नी मेघ के द्वारा ही यक्ष के पास अपना उत्तर भेजती है। अत इस काव्य का मेघ प्रति सन्देश नाम उचित ही है। मेघसदेश में मेघ को अपना सन्देश सुनाने के बाद यक्ष मेघ से कहता है—

साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातःकुन्द प्रसवशिथिल जीवितं धारयेथा ॥२॥५२॥

इस कथन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास को भी यक्ष के सदेश का प्रत्युत्तर अभीष्ट था। अत यह मानना पडेगा कि रामशास्त्री कवि ने मेघ सदेश के इस प्रसग से ही प्रेरणा लेकर अपने काव्य की रचना की है।

मेघ-सन्देश की तरह इस काव्य में भी दो सर्ग हैं, लेकिन कथा का क्रम बिलकुल विपरीत है। मेघ-सन्देश में पूर्व भाग मे मार्ग वर्णन तथा उत्तर भाग में सन्देश कथन इत्यादि है। इस काव्य में कवि ने पूर्वभाग में यक्षी का प्रतिसन्देश दिया है तथा उत्तरभाग में अलका से रामेश्वर और धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित किया गया है। मेघ के द्वारा यक्ष के सन्देश को सुनकर विरह व्याकुल यक्षवधू का प्रथम यक्ष के लिये प्रति सन्देश देना ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि मार्ग तो मेघ का देखा हुआ ही है। यदि विचार किया जाय तो इस काव्य में मार्गवर्णन की आवश्यकता ही नहीं थी, लेकिन फिर भी जो मार्गवर्णन किया गया है, वह इसीलिये कि मेघ शीघ्र से शीघ्र यक्ष के पास पहुँच जाय, क्योंकि यक्ष के पास से मेघ वक्र धकर दार और लम्बे मार्ग से आया था, जैसा कि मेघ सन्देश के निम्न पद्य से प्रकट होता है —

वक्रः पन्था यदपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशाम्
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्या ॥१॥२८॥

इसलिये इस काव्य में यक्ष की पत्नी मेघ को सरल मार्ग बताती है'–

क्षिप्रं गन्तु निशमय ऋजु कथ्यते कोऽपि मार्ग ॥१॥६८॥

विरह व्याकुल नायिका का अपने प्रिय के पास प्रतिसन्देश भेजते हुये विलम्ब न सहना स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त कवि को भी मार्ग वर्णन के द्वारा अपनी वर्णनशक्ति तथा तत्तद् स्थानों के सौन्दर्य को पाठकों के समक्ष रखने का अवसर प्राप्त हुआ है। अलका नगरी से रामगिरि तक का एक नवीन मार्ग तो कवि ने बतलाया ही है। साथ में विरहजन्य चपलता के कारण यक्ष के दक्षिण देश चले जाने की सभावना द्वारा कवि ने रामगिरि से धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित कर काव्य को और भी सुन्दर और सरस बना दिया है।

काव्य में प्रथम सर्ग में ६८ और द्वितीयसर्ग में ६६ श्लोक हैं और मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है।

मेघसन्देश में जिस प्रकार यक्ष की विरहावस्था का वर्णन किया गया है तथा विप्रलम्भ शृ गार की प्रधानता है, उसी प्रकार इस काव्य में भी यक्ष-वधू की विरहा

वस्था का बड़ा भावपूर्ण चित्र उपस्थित किया गया है। यक्ष वधू प्रिय विरह में अपने जीवन की व्यर्थता बताते हुये कहती है –

दूरीभूते दयित भवति त्वा विनाऽह वृथाऽसम्
निर्यत्ना धीरिव निरहितेवाकृतिस्सद्गुणेन।
भोगेच्छेव द्रविणरहिता श्रीरिवारोग्यशून्या
वाणी सत्यादिव विगलिता श्रूयता मद्दशाऽपि ॥१॥२०॥

प्रिय विरह में नायिका की व्यर्थता का वर्णन करते हुये कवि ने कैसी सार्थक उपमायें प्रयुक्त की हैं।

अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये यक्ष वधू फिर कहती है –

भित्तेर्मूले भवन शरणानर्धपद्मा सनस्था
द्वारे चक्षु र्जलकणचित न्यस्य पाणौ कपोलम्।
ध्यायन्ती त्वा प्रचलति तृणेऽप्यागत तर्कयन्ती
मासानद्यौ कथमपि भवद्दर्शनार्थिन्यनैषम् ॥१॥२१॥

इस पद्य में कवि ने नायिका की विरहकालीन चिन्ता और उत्सुकता का बड़ा स्वाभाविक चित्र अंकित किया है। आगे चल कर नायिका कहती है —

द्रष्टु दृष्टि प्रचलति मन कर्षति ध्यातुमन्त-
र्निर्निद्रा धी र्वशयति तनु क्षीयते स्वामलब्ध्वा।
विध्वान् भोगानपि मम रुचिर्द्वेष्टि लज्जाप्रवासा-
दुन्मत्ताऽस नविदितमथो मूर्च्छिता वाऽन्यथा वा ॥१॥२५॥

विरह की विभिन्न अवस्थाओं का एक ही पद्य में कवि ने कितना सुन्दर वर्णन किया है।

प्रिय विरह में नायिका बार बार अपना जीवन छोड़ना चाहती है, लेकिन प्रिय के दर्शनों की इच्छा से किसी तरह जीवित बनी रहती है–

त्यक्तु प्राणान् त्वरयति मुहुस्त्वद्वियोगव्यथा मा
शापोदन्त ककच इव मामन्तरेव क्षिणोति।
औदास्यं ते मम न सहते जीवित जीवितु मे
हस्तालम्ब वितरति पुनर्दर्शनेच्छा तवैका ॥१॥२४॥

प्रिय विरह में नायिका ही केवल दीन और दुःखी नहीं है, बल्कि घर का सारा वातावरण ही विषादमय हो गया है। मेघ-सन्देश में यक्ष ने भी अपनी अनुपस्थिति में अपने घर के सम्बन्ध में कहा है–

क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनम्
सूर्यापाये न खलुकमल पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥२॥१६॥

यक्ष का यह कथन ठीक ही है। यक्ष वधू भी गृह स्वामी के चले जाने पर गृह की दुरवस्था का वर्णन करते हुये कहती है –

उत्सार्यन्ते श्वसितपवनै र्देहलीधूलयो मे
प्रक्षाल्यन्ते गृहधरण्य प्रत्यह वाष्पसेकै ।
भित्तेश्चित्र भवति विकृत रिक्तगात्रानुयगै
लूतातन्तुप्रकरनिचिता मचकास्ते मनोज्ञा ॥१॥३१॥

गृहस्वामी के वियोग में न केवल गृह पत्नी ही उदासीन है, बल्कि घर की मैना, मोर और यहा तक कि पुष्पवाटिका और रक्ताशोक इत्यादि भी विरह का अनुभव करते हैं।

इसी प्रसग में यक्ष पत्नी आगे चलकर कहती है–

नाहारेऽपि प्रणयति मनश्शारिकादारिकाऽसौ
तुच्छ पुच्छ नमयति शिखी शोकमूकीकृतोऽयम् ।
शश्वत्तिलकाऽप्यनिशमयते शुष्कता पुष्पवाटी
क्षामच्छाय भवनमधुना त्वद्वियोगेन नूनम् ॥१॥३२॥

कवि ने मेघसन्देश की मूलपंक्ति में केवल एक शब्द का परिवर्तन कर अपने भावों को कैसी सुन्दर रीति से व्यक्त किया है।

यक्ष ने अपने गृह की पहिचान के प्रसग में रक्ताशोक और केसर वृक्ष का उल्लेख किया है। उन वृक्षों की भी दशा इस समय बड़ी दयनीय बताई गई है –

रक्ताशोकस्तव विरहतस्तप्यते केसरश्च
द्वौ मु चन्तौ परिणतिपतत्पाण्डुपत्राश्रुबिन्दून् ।
प्रोच्चच्छाखासमुदय भुजालिंगितान्योन्यगात्रौ
काकारावै प्ररुदित इव प्रासकाश्रुप्रकारै ॥१॥३३॥

रक्ताशोक और केसर वृक्ष पर कौए बैठे हुए हैं। उनके कलरव को लेकर कवि ने स्वामिविरह में उनके (रक्ताशोक और केसर) रोने की कैसी भावपूर्ण उत्प्रेक्षा की है।

अपने घर का वर्णन करते हुए यक्ष ने अपनी विलासवापी को बड़ा वैभवपूर्ण बनाया था–

वापी चास्मिन् मरकत शिलाबद्ध सोपान मार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलै स्निग्धवैदूर्यनालै ॥२॥१४॥

इस विलासवापी की भी बड़ी दीन अवस्था बतलाई गई है —

> कीर्णं जीर्णैररणकमलैः प्राप्तकाषायवेषा ।
> शैवालौघैर्विसपरिचितैः शीर्यत कीर्णकेशा ॥
> पद्माक्षीयं परिवृततनुः भस्मितालक्रियाऽसौ ।
> वापी चापि व्यथयति मनो दीनकात्यायनीव ॥१॥३४॥

कवि ने श्लिष्ट विशेषणों की सहायता से वापी को दीन कात्यायनी की कितनी उपयुक्त उपमा दी है।

अपनी विरहावस्था तथा गृहस्वामी की अनुपस्थिति में अपने घर की दुरवस्था का वर्णन करने के बाद यक्षवधू यक्ष के सन्देश का बड़ा ही भावपूर्ण प्रत्युत्तर देती है। प्रायः यक्ष की प्रत्येक बात का उत्तर दिया गया है। यक्ष ने अपने सन्देश में अपनी पत्नी से कहा था —

> श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्
> वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ॥२॥४३॥ इत्यादि

इस बात का उत्तर देती हुई यक्षपत्नी कहती है —

> श्यामास्वङ्गं चकितहरिणी प्रेक्षणादौ च वक्त्र-
> न्मत्सादृश्यं क्वचिदपि न चेद्दर्शिता प्रीतिरेवम् ॥
> तां मां हित्वा तृणमिव कथं दूरदेशं गतोऽभूः ।
> तत्ते चित्तं व्यरचि कुसुमैः प्रस्तरैश्चेति मन्ये ॥१॥४२॥

यक्ष पत्नी के इस प्रति वचन में नायक के प्रेम की प्रशंसा के साथ साथ उसकी कठोरता पर उसे मृदु उपालम्भ भी दिया गया है।

इसके बाद यक्ष पत्नी कहती है —

> मामालिख्य प्रणयकुपिता नेक्षिताऽभूस्त्वमस्त्रैः ।
> स्वप्ने वाढं क्षणमपि भवत्सङ्गमिच्छामि यावत् ॥
> तावन्निद्रा प्रवसति मया प्रार्थ्यमानाऽपि सत्यम् ।
> क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः[1] ॥१॥४५॥

---

१ इस पद्य की मेघसन्देश के —

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम् ॥२॥४५॥
इत्यादि पद्य से तुलना कीजिये।

यक्ष तो चित्र में ही अपनी प्रेयसी से नहीं मिल पाता है, लेकिन उसकी प्रेयसी के लिये तो स्वप्न में भी प्रिय का समागम दुर्लभ है, क्योंकि प्रिय विरह में उसे नींद तो आती ही नहीं है, फिर स्वप्न का तो कहना ही क्या।

इसी बात को लेकर वह फिर कहती है—

> मामाकाश प्रणिहितभुज श्लिष्यसि स्वप्नलब्धाम् ।
> देवी निद्रा त्वयि सकरुणा भाग्यमेवत्तथास्ते ॥
> उन्निद्राह दिशि दिशि समालोक्य ते रूपश्रेयम्
> गाढाश्लेषोद्यतभुजलता त्वामनासाद्य लज्जे[1] ॥१॥४६॥

नायिका के इस कथन में कितनी दीनता भरी हुई है।

विरहिणी नायिका को प्रिय के स्वस्थ बने रहने की भी चिन्ता है। इसीलिए तो वह यक्ष से हिमालय की ठंडी हवाओं से बचने की प्रार्थना करती है—

> भित्वा सद्य किसलयपुटान् यान्तु वातास्समन्तात्
> स्नात्वा भर्या कथञ्चनमदन् निद्रितो वाऽस्यनिद्र ।
> माऽलिंगयन्ता मदनुसृतये ते तुषाराद्रिवाता
> शीतार्तिस्त्वा त्यजतु भगवान् शङ्करोऽस्याद्रुमरन्तम् ॥१॥४७॥

उपर्युक्त वचन से नायिका का यक्ष के प्रति तीव्र प्रेम भी व्यक्त होता है[2]।

यक्ष ने अपनी विरह व्यथा का निवेदन करते हुए कहा था —

> सङ्क्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
> सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ॥२॥४७॥

---

१ इस पद्य की मेघ सन्देश के —

> मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो
> लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ॥२॥४५॥

इत्यादि पद्य से तुलना कीजिए।

२ इस पद्य का भाव समझने के लिए मेघसन्देश का —

> भित्वा सद्य किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणाम् ॥२॥४६॥

इत्यादि पद्य देखिए।

इस बात का यक्ष-वधू बड़ा ही भावपूर्ण उत्तर देती है —

संक्षिप्योक्तिः रजनिदिनयोर्विस्मर त्वं वियोगम्
सर्वेषां नस्त्वमसि शरणं त्वं कथं निश्शरण्यः ।
शुश्रूषुर्वा निजगुरुजनान् गेहमायाहि तूर्णम्
सन्यस्तानामिव तव कथं वन्यवृत्त्या व्यथैवा ॥१॥४८॥

शीघ्र गृह लौटने की प्रार्थना को यक्ष-वधू ने प्रसंग बदल कर कितने सुन्दर ढंग से यक्ष के सामने रक्खा है।

जिस प्रकार यक्ष ने अपनी प्रेयसी को सान्त्वना दी थी[1], उसी प्रकार उसकी प्रेयसी भी उसे सान्त्वना देती है —

नन्वेषाऽहं तव वचनतो मा गमं कातरत्वम्
त्वं च श्रीमन् मम गतिमनुस्मृत्य मा गा विषादम् ।
दुःखी जातोऽस्म्यविदित सुखोऽस्मीति धैर्य लभेथा
चित्तेऽधीने सपदि समतां याति दुःखं सुखं च ॥१॥४९॥

यक्ष ने अपने सन्देश में अपनी प्रेयसी से कहा था कि भगवान् विष्णु के शेषशय्या पर से उठने पर उसका शाप समाप्त हो जायगा। अवशिष्ट चार महीने किसी तरह और बिता लिए जायं। बाद में तो मिलन होगा ही[2]। इस बात का भी यक्ष की पत्नी बड़ा उचित उत्तर देती है —

शापान्तस्ते भवति हि हरौ शेषशय्या विहाने
धास्ये तावत्कथमहमसून् लोचने मीलयित्वा ।
अद्य श्वो वा प्रबल विरहात्प्राणभंगो यदि स्यात्
निर्वेदयाय कथमिव सखे तन्तमात्माभिलाषम् ॥१॥५०॥

प्रिय विरह में व्याकुल नायिका के लिये एक २ दिन भारी बना हुआ है। चार महीने तक वह कैसे धीरज रख सकती है। अतः प्राणभंग होने की उसकी आशंका स्वाभाविक ही है।

यक्ष ने अपने दाम्पत्य जीवन की साधारण होते हुए भी एक महत्त्वपूर्ण घटना अपनी प्रेयसी को बताने के लिये मेघ से कहा था ताकि उसकी प्रेयसी को मेघ के सम्बन्ध में प्रिय के दूत होने का विश्वास हो जाय—

---

१ नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि सुतरां मा गमः कातरत्वम् ॥१॥४८॥

२ दे० मेघ० उत्तरभाग श्लो० सं० ४८, शापान्तो मे भुजगशयनादित्यादि ।

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वरं विप्रबुद्धा।
सान्तर्हासं कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन् कामपि त्वं मयेति ॥२॥५०॥

लेकिन इस घटना को अभिज्ञान स्वरूप न समझ कर यक्ष वधू यह समझती है कि यह केवल उसके अपराध को जताने के लिये कही गई है और वह बड़े विनय के साथ अपने प्रिय से क्षमायाचना करती है —

भूयोदृष्टः कितव रमयन् कामपि त्वं मयेति
स्वाप्नं वृत्तं मदभिहितमालोच्य रुष्टोऽसि नूनम्।
ज्ञातं तत्त्वं पदकमलयोस्सन्निपत्याद्य याचे
क्षान्त्वा सर्वं मदपचरितं देहि मे सन्निधानम् ॥१५१॥

पतिप्राणा प्रेयसी अपने प्रिय के रुष्ट हो जाने को कैसे सह सकती है। क्षमा-याचना तथा शीघ्र आने की प्रार्थना दोनों ही बड़ी भावपूर्ण हैं।

यक्ष के सन्देश का उत्तर देने के बाद यक्ष वधू कुछ अपना भी सन्देश यक्ष के लिए देती है। वह कहती है —

अद्यैवाहं तव शुभमभिप्रार्थये नाथ हर्षात्
सार्धे मासे यदि मम दृशोर्गोचरत्वं न यायाः।
यायो वह्नौ मृगयतु भवान् वातमध्ये प्रमासून्
चक्षुस्सूर्ये शशिनि हृदयं व्योम्नि मे चापि जीवम् ॥१॥५२॥

यक्ष वधू के उपर्युक्त वचनों में कितनी वेदना भरी हुई है। उसकी विरह वेदना अनुभूति की चरमावस्था पर पहुँच चुकी है।

प्रति-सन्देश के बाद अभिज्ञानस्वरूप कुछ घटनायें भी मेघ को बताई गई हैं। इनमें धनपति के क्रोध का कारण, शाप का स्वरूप तथा उसकी वर्ष भर की अवधि का वर्णन किया गया है। इसी प्रसंग में शंकर भगवान् तथा कुबेर द्वारा यक्ष के अपराध को क्षमा कर देने का भी वर्णन किया गया है। अन्त में यक्ष वधू फिर कहती है—

स स्याच्छार्ङ्गी भुजगशयनादुत्थितोऽनुत्थितो वा
शापस्यान्तो धनपतिमुखेनोच्यतां मोच्यतां वा।
शापान्तस्ते समजनि सखे शंकरोक्तेः प्रभावात्
सामान्यादप्यधिकबलवत्त्वाद्विशेषं हि शास्त्रम् ॥१॥६६॥

इस प्रकार भगवान् शंकर की कृपा से शाप के शान्त हो जाने का समाचार बताकर अन्त में फिर यक्ष से घर लौट आने की प्रार्थना की गई है —

गेहे स्वीये गमयतु भवान् शेषकालं सुखेन ॥१॥६६॥

इस प्रकार कवि ने प्रथम सर्ग में यक्ष वधू की विरहावस्था, यक्ष के गृह की दुरवस्था, यक्ष पत्नी का प्रतिसंदेश, अभिज्ञान घटनायें तथा शाप के परिहार और यक्ष के घर लौट आने की प्रार्थना इत्यादि बातें दिखलाई हैं। द्वितीय सर्ग में कवि ने मार्ग वर्णन किया है। मार्ग वर्णन में कवि ने मेघ सन्देश में बताये हुए अलका से रामगिरि तक के मार्ग से भिन्न मार्ग का तो निर्देश किया ही है। साथ में रामगिरि से धनुष्कोटि तक का मार्ग भी यक्ष के वहां चल आने की सम्भावना द्वारा वर्णित कर काव्य में और भी सरसता ला दी है। मार्ग वर्णन में पंजाब, अमृतसर, देहली, जयपुर, उदयपुर, चित्तौर और उज्जयिनी इत्यादि नगरों का कवि ने बड़ा ही भाव पूर्ण चित्र उपस्थित किया है। चित्तौड के वर्णन में कवि ने वहां की स्त्रियों की वीरता का क्या ही उत्कृष्ट चित्र अंकित किया है —

चित्तौडाख्यं जयति नगरं तैर्नृपैः पाल्यमानम्
घोरे युद्धे विनिहतधवा निघ्नुता वीरपत्न्यः।
क्षुद्रारिभ्यो निज कुलभयं शङ्कमानाश्च यस्मिन्
पातिव्रत्यप्रवणमतयो वृन्दशोऽग्निं प्रविष्टाः ॥२॥३५॥

आगे चलकर विन्ध्य वन का भी कवि ने बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया है —

तत्र क्रुद्धाः क्षुधितहृदयाः क्वापि गर्जन्ति घोरम्
त्रस्ताः क्वापि द्विरदपतयो धावितान्युद्गिरन्ति।
आकुर्वन्ति प्रदरपतनैः क्वाप्यहो निर्झरौघाः
शब्दायन्ते मधुरनिनदैः क्वापि वान्ताशकुन्ताः ॥२॥३४॥

रामदुर्ग पर स्थित विरही यक्ष का भी कवि ने बड़ा स्वाभाविक और भावपूर्ण वर्णन किया है। यक्षवधू अपने प्रिय की तत्तद् विरहावस्थाओं की सम्भावना करते हुए मेघ से कहती है —

मद्वृत्तान्तं श्रवण कुतुकात्त्वत्प्रतीक्षापरो वा
मामुत्प्रेक्ष्य मनसि गणयन् मोहसम्मीलितो वा।
स्मृत्वा पूर्वान् स्वगृहविभवान् स्वममर्यन्निश्वसतो वा
निद्राणो वा कथमपि स ते नेत्र पात्रीकृतस्स्यात् ॥२॥४६

इसी प्रसंग में वह फिर कहती है —

निद्राहीनो निटिल-तटभून्यस्तवामार्धपाणि
पश्चात्तिर्यक्कृतपरकरालम्बितासोर्ध्वभाग ।
वामे जानौ निहित निज-जान्वन्तरश्शोकमूला-
न्युत्तानेनोच्छ्रयनविधिना मन्दमालोचयन्वा ॥२॥८७॥

सस्तभ्य स्व कथमपि मन कन्दमूलान्यदन्वा
ध्यात्वा ध्यात्वा तटदपदि मद्भावचित्र लिखन्वा
वामे पाणौ त्रिनमति मणीबन्धशीर्षेण मन्द
मच्चिन्तातो मुहुरुपचिता मार्जयन्वाऽश्रुधाराम् ॥२॥४८॥

विरह व्याकुल यक्ष का कवि ने कैसा कारुणिक और स्वाभाविक भावचित्र इन पद्यों में प्रस्तुत किया है। विरह जन्य चपलता से ही तो यक्ष के दक्षिण देश चले जाने की सम्भावना की गई है। इसी सम्भावना से कवि को फिर रामदुर्ग से धनुष्कोटि पर्यन्त मार्ग के वर्णन करने का अवसर भी प्राप्त हुआ है।

इस मार्ग वर्णन में कवि ने श्री शंकराचार्य[1], श्री रामानुजाचार्य और श्री व्यास राजाचार्य इत्यादि का तत्तद् स्थानों पर बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से काव्य की कथा से उत्तरकालीन व्यक्तियों का काव्य में उल्लेख होना असंगत ही है, फिर भी इस उल्लेख से कवि की इन व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा तो प्रकट होती ही है। इसी प्रकार बंगलोर और मैसूर जैसे आधुनिक नगरों का वर्णन भी काव्य में कुछ खटकता है, लेकिन इन नगरों के वैभव और प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन से काव्य में रमणीयता की कुछ वृद्धि ही हुई है। जिस प्रकार मेघ-सन्देश में उज्जयिनी और अलका नगरियों के वर्णन में शृंगार रस का पुट पाया जाता है, उसी प्रकार इस काव्य में मैसूर नगर के वर्णन में भी शृंगार रस का पुट दीख पड़ता है। यथा –

वीथ्या वीथ्या प्रतिगृहमपि स्थापिते लोकहेतो
स्स्वर्णां रात्रि दिनयति तटिद्दीपजालप्रकाशे ।
पुंवेषेण प्रियगृहमभिप्रस्थिता पद्मलाद्य
पार्श्वेष्वन्यैरविदितमिदास्तत्र धीर प्रयान्ति ॥२॥७४॥

आगे चलकर मैसूर नगर की सुशिक्षित स्त्रियों का वर्णन करते हुये कवि कहता है–

---

१ दे० द्वितीयसर्ग श्लोक सं ६०—६१।

तस्या राज्ञीविरचितमहापाठशालात्तविद्या
प्रेद्या प्रेष्ठाभरण वसनै प्रौढविद्याप्रवीणा ।
वीणालापैर्विनयविभवै र्वल्गुवाचा विलासै
गेहे गेहे निज निज जनान् प्रीणयन्ते तरुण्य ॥२॥७५॥

मैसूर नगर में नल द्वारा जल की व्यवस्था का कवि ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है –

विद्युच्छुस्त्या सतत जितदै र्मौलिकान्तर्निबद्धै
प्राप्ते रन्ध्रे पुररिमरसम्प्रेस्तयेरोत्पतद्भि ।
कावेरीयैर्मधुरमधुरै पावनैश्चाम्बुपूरै-
स्तोयाधाराश्चिरविरचितास्तत्र सर्वे परास्ता ॥२॥७६॥

इस प्रकार मैसूर के राज प्रासाद, विश्वविद्यालय, कौतुकागार और संस्कृत कालेज इत्यादि का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन काव्य में प्रस्तुत किया है।

मैसूर से फिर धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित किया गया है। अन्त में यहीं कहीं पर यक्ष के मिलने की संभावना कर यक्ष वधू यक्ष को सन्देश सुनाने की मेघ से प्रार्थना करती है। इसके बाद मेघ को आशीर्वाद भी देती है—

सौदामन्या सह विचर ते सन्तु सन्मंगलानि ॥२॥६५॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को इस काव्य के भाव, भाषा और शैली से परिचय तो हो ही गया होगा। लेखक ने मेघ सन्देश का प्रत्युत्तर लिखकर कालिदास की इच्छा तो पूर्ण की ही है, साथ में मेघसन्देश के समान ही भाषा और शैली अपना कर मेघ-सन्देश के समकक्ष ही एक खण्ड-काव्य संस्कृत साहित्य को प्रदान किया है। लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। क्लिष्ट तथा लम्बे समास तो काव्य में हैं ही नहीं। विप्रलम्भ शृंगार के अनुकूल ललित भाषा का ही सर्वत्र प्रयोग किया गया है। माधुर्य तथा प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति ही सर्वत्र देखने में आती है। अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त जैसे सरस और सरल अलंकारों का ही प्रयोग किया गया है।

कवि ने यक्ष सन्देश का बड़ा ही भावपूर्ण और उपयुक्त प्रत्युत्तर यक्ष वधू के द्वारा भिजवाया है। यदि सन्देश का एक एक पद्य विरह से ओत प्रोत है तो प्रति-सन्देश में यक्ष वधू की विरहवेदना और विरही प्रिय के लिये उसकी चिन्ता भी कम नहीं है।

यद्यपि कवि ने मेघसन्देश की समस्यापूर्ति नहीं की है, फिर भी कहीं कहीं मेघ-सन्देश की पंक्तियां इस काव्य में स्वतः आ गई हैं। यक्ष वधू यक्ष के कैलास पर्वत छोड़ आने तथा रामगिरि चले जाने पर उस पर आक्षेप करती हुई कहती है—

कैलासाद्रौ स्थितिमगणयन् तापसीभूय भूय
मर्त्यस्त्रीणामुखकमलश्रीर्दिदृक्षु' किमासीः ।
नो चेदेव वद कितव मे तेषु कस्मादकार्षीः
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥२६॥

इस पद्य में मेघ-सन्देश के प्रथम श्लोक का अन्त्यपाद ही कवि ने रख दिया है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर उपर्युक्त श्लोक का द्वितीय पाद पाया जाता है। यक्ष वधू यक्ष से उसके भाग्य की अनुकूलता का वर्णन करते हुए कहती है —

दूरीभूतं दुरितमखिलं देवदेवप्रसादात्
कालोऽतीतस्स खलु विषमो राजराज प्रसन्नः ।
अस्मद्भाग्यं परिणतमभूदद्य नैराश्यरम्यम्
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ॥१॥६२॥

इसके अतिरिक्त मेघ-सन्देश में जिस प्रकार विभिन्न लोकोक्तियां तथा जीवनोपयोगी सुभाषित पाये जाते हैं, उसी प्रकार इस काव्य में भी विभिन्न स्थानों पर अनेक सुभाषित तथा लोक नीतियां कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। सज्जनों के सम्बन्ध में कवि की धारणा बड़ी ही उच्च है—

(I) लोके सन्तो न हि खलु परं प्रार्थनां व्यर्थयन्ति ॥१॥११॥
(II) स्वोपक्रान्तं महदपि बलात्साधयन्त्येव सन्तः ॥२॥१०॥
(III) मध्ये सन्तो न खलु सुहृदामभ्युपेतं त्यजन्ति ॥२॥५०॥

दान के सम्बन्ध में भी कवि के विचार बड़े सतुलित हैं। कवि का कहना है कि दान दरिद्रों को ही देना चाहिये न कि सम्पन्न व्यक्तियों को —

पूर्णे दानं भवति हि वृथा वारिदानं यथाब्धौ ॥१॥६॥

इसके अतिरिक्त स्थान स्थान पर कवि ने अपने विभिन्न विचारों को काव्य में व्यक्त किया है। यथा —

(१) स्वार्थं हित्वा परहितकृता सज्जनो गौरवं हि ॥१॥६॥
(२) शुद्धे चित्ते भुवनमखिलं पुण्यतीर्थायते हि ॥१॥१२॥
(३) कष्टे काले जगति महतां बुद्धयोऽपि स्खलन्ति ॥१॥१३॥
(४) वक्तव्यांशे जगति महतां मौनमग्नीक्रिया हि ॥१॥१४॥
(५) कष्टं कष्टं विधिविलिखितं केन शक्यं प्रमार्ष्टुम् ॥१॥२७॥

जिस प्रकार मेघ-सन्देश में कालिदास ने लिखा है —

कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः संगमात्किंचिदूनः ॥२॥३६॥

इसी प्रकार प्रिय के वृत्तान्त की इस काव्य में भी महत्ता बतलाई गई है -

प्रेयोवृत्तात्मणयगुणितान्यदाश्वासहेतु ॥१॥११॥

इस तरह उच्च कविता के साथ साथ काव्य में सांसारिक ज्ञान की भी बहुत सामग्री भरी हुई है।

कवि ने मेघ-सन्देश में उल्लिखित न होने पर भी यक्ष-दम्पति का नाम, यक्ष का पद, धनपति के क्रोधका कारण तथा शाप इत्यादि की बड़ी सुन्दर कल्पना की है। कालिदास ने धनपति के क्रोध तथा शाप के केवल वर्षभोग्य रह जाने का भी कोई कारण नहीं दिया था। इसी बात को यक्षवधू के द्वारा अभिज्ञान-स्वरूप बतलाकर कवि ने मेघ-सन्देश के कथानक को और भी पूर्ण कर दिया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह काव्य एक सुन्दर दूतकाव्य है। कथानक, भाव, भाषा, शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य सर्वांगपूर्ण है। मेघ सन्देश के समान विप्रलम्भ शृंगार ही इसका मुख्य रस है। यक्ष के सन्देश का यक्षी के द्वारा कवि ने बड़ा ही सुन्दर प्रत्युत्तर भिजवाया है। जिस प्रकार कालिदास के मार्ग वर्णन से उसकी तत्तत् स्थानों से आत्मीयता प्रतीत होती है, उसी प्रकार रामशास्त्री कवि का मार्ग वर्णन भी आत्मीयता लिए हुए है। दक्षिण देश का वर्णन प्रस्तुत कर कवि ने काव्य को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है। मेघ सन्देश में तो केवल उत्तर भारत का ही वर्णन पाया जाता है, लेकिन इस काव्य में उत्तर और दक्षिण तथा काश्मीर से धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित कर कवि ने भारत देश का बड़ा ही सुन्दर शब्द चित्र प्रस्तुत किया है। तत्तत् स्थानों की भौगोलिक स्थिति का परिचय देने के साथ साथ उसका सांस्कृतिक महत्त्व भी बतलाया गया है।

यह काव्य भी मेघ सन्देश के समान सरस और आनन्द दायक है। कोई भी सहृदय पाठक मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।



तृतीय अध्याय

जैन सन्देश काव्य

१ जिन सेन का पार्श्वाभ्युदय
२ विक्रम कवि का नेमिदूत
३ मेरुतुंग का जैनमेघदूत
४ चरित्र-सुन्दर-गणि का शीलदूत
५ वादि चन्द्र का पवनदूत
६ अज्ञात कवि का चेतोदूत
७ विनय विजयगणि का इन्दुदूत
८ मेघ विजय का मेघदूतसमस्यालेख

जिनसेन का पार्श्वाभ्युदय (वि० नवम शतक)

पार्श्वाभ्युदय के लेखक श्री जिनसेनाचार्य के रचना काल के सम्बन्ध में किसी विवाद की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्र-कूट वंश के राजा अमोघवर्ष[1] प्रथम के शासनकाल में यह काव्य लिखा गया है। कवि ने काव्य के अंत में स्वयं इस बात का उल्लेख किया है –

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघ
बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यम्।
मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशाङ्कम्
भुवनमवतु देवः सर्वदाऽमोघवर्षः ॥१॥

श्री वीरसेनमुनिपाद पयोजभृङ्ग
श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण
काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम् ॥२॥

विनयसेन और जिनसेन यह दोनों श्री वीरसेन (वीराचार्य) के शिष्य थे। विनयसेन के कहने पर ही श्री जिनसेन ने इस काव्य की रचना की। काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्री जिनसेन को राजा अमोघवर्ष का गुरु बताया गया है। अमोघवर्ष राष्ट्रकूट वंश का राजा था और कर्नाटक तथा महाराष्ट्र पर शासन करता था। यह शक सं० ७३६ (वि० सं० ८७१) में राज्यासन पर बैठा और शक सं० ७९८ (वि० सं ९३४) तक शासन करता रहा। मान्यखेट अथवा मालखेड इसकी राजधानी थी। यह बड़ा साहित्यप्रेमी था। श्री जिनसेनजी के द्वारा जैन धर्म में दीक्षित कर लिये जाने पर इसने अपने पुत्र के लिये अपना राज्य सौंप दिया और स्वयं साधु बन गया। इसने प्राचीन कनाडी भाषा में अलंकारशास्त्र पर 'कविराजमार्ग' नामक एक ग्रन्थ लिखा तथा 'प्रश्नोत्तरमाला नामक एक संस्कृत लघुकाव्य भी इसका लिखा हुआ माना जाता है। इस प्रश्नोत्तरमाला के अन्त में ही निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है –

विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥

---

१ इसके शिलालेखों के लिये 'इण्डियन एन्टिक्वेरी', (१२, २१८,) (१३, १३३, १३३, २१५) पृष्ठ देखिये। फ्लीट का Dynasties of kanarese Districts, पृष्ठ ४०७ देखिये। इण्डियन एन्टिक्वेरी (१४, १०१) तथा (१५, १८१) में क० बी० पाठक का लेख देखिये।

राजा अमोघवर्ष श्री जिनसेन का परमभक्त था और श्री जिनसेन श्री वीरसेन के शिष्य थे। उत्तर पुराण की प्रशस्ति के अन्त में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है—

अभवदिह हिमाद्रेर्देवसिन्धुप्रवाहो
ध्वनिरिव सकलज्ञात्सर्वशास्त्रैकमूर्ति
उदयगिरितटाद्वा भास्करो भासमानो
मुनिरनु जिनसेनो वीरसेनादमुष्मात् ॥
यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादाम्भोजरजः पिशंगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः ।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमान् जिनसेन पूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम् ॥

राजा अमोघवर्ष और उनके गुरु श्री जिनसेन का वीरसेनकृत जयधवला टीका में जो कि शक संवत् ७५६ (वि० सं० ८६४) की लिखी हुई है, उल्लेख पाया जाता है—

इति श्री वीरसेनीया टीका सूत्रार्थदर्शिनी
भटग्रामपुरे श्रीमद्गुर्जरार्यानुपालिते ॥
फाल्गुने मासि पूर्वाह्णे दशम्यां शुक्लपक्षके ।
प्रवर्धमानपूजायां नन्दीश्वरमहोत्सवे ॥
अमोघवर्ष राजेन्द्र प्राज्य-राज्य गुणोदया ।
निष्ठितप्रचयं यायादाकल्पान्तमनल्पिका ॥
षष्टिरेव सहस्राणि ग्रन्थानां प्रमाणतः ।
श्लोकेनानुष्टुभेनात्र निर्दिष्टान्यनुपूर्वशः ॥
विभक्तिः प्रथमः स्कन्धो द्वितीयः संक्रमोदयः ।
उपयोगश्च शेषास्तु तृतीयस्कन्ध इष्यते ॥
एकोनषष्टिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य ।
समतीतेषु समाप्ता जयधवला प्राभृतव्याख्या ॥
गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्तिकम् ।
टीका श्री वीरसेनीयाऽशेषा पद्धतिपंचिका ॥
श्री वीरप्रभु भाषितार्थघटना निर्लोडितान्यागम
न्याया श्री जिनसेन सन्मुनि वरैरादेशितार्थस्थिति ।
टीका श्रीजयचिह्नितोरुधवला सूत्रार्थसंद्योतिनी
स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतमा श्रीपालसंपादिता ॥

जयधवला पृ० ४१६

श्री वीराचार्य गणितशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अपने 'गणितसारसंग्रह'[1] की प्रशस्ति के अन्त में भी उन्होंने राजा अमोघवर्ष प्रथम का उल्लेख किया है। शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में जब कि अमोघवर्ष का पितामह और कृष्ण राज प्रथम[2] का पुत्र श्री वल्लभ शासन करता था, श्री जिनसेन ने अपना प्रथमग्रन्थ जैन हरिवंश पुराण[3] लिखा। पार्श्वाभ्युदय[4] उनकी दूसरी रचना है और शक संवत् ७३६ (वि० सं० ८७१) के कुछ दिनों बाद ही यह लिखा गया होगा। आदिपुराण[5] उनका अन्तिम ग्रन्थ है। वे केवल ४५ सर्ग ही इसके लिख पाये। अन्त के पांच सर्ग उनके शिष्य श्री गुणभद्र ने पूर्ण किये और अपने गुरु के आदेशानुसार उनका नाम उत्तरपुराण रख दिया। कर्नाटक और महाराष्ट्र पर अमोघवर्ष प्रथम का पुत्र तथा उत्तराधिकारी कृष्णराज द्वितीय अकालवर्ष[6] जब शासन करता था, तब शक सं० ८२४ (वि० सं० ६५६) में धारवाड जिले के बंकापुर नामक स्थान में श्री गुणभद्र ने उत्तरपुराण का संपादन किया।

आदि पुराण और हरिवंश पुराण इन दोनों काव्यों के किसी एक जिनसेन के द्वारा ही लिखे जाने पर विद्वानों में मतभेद है। हरिवंश पुराण शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में लिखा गया है जब कि कृष्णराज प्रथम का पुत्र श्री वल्लभ दक्षिण में राज्य करता था। काव्य के मंगलाचरण में कवि ने निम्नलिखित विद्वानों की प्रशंसा की है -जीवसिद्धि और युक्त्यनुशासन के रचयिता समन्तभद्र, सिद्धसेन, इन्द्र, चन्द्र, अर्क और देव जैसे वैयाकरण वज्रसूरि, सुलोचन कथा के लेखक महासेन, पद्म पुराण के लेखक रविषेण, वरांगचरित, कुमारसेन, वीरसेन और जिनसेन। अन्तिम दो नामों के उल्लेख से यह विवाद उठता है कि हरिवंश-पुराण के रचयिता जिनसेन तथा आदिपुराण के रचयिता जिनसेन में क्या सम्बध है। कुछ विद्वानों की धारणा

---

१ ग्रन्थकार का आत्मानुशासन, श्लोक १०२ देखिये।

२ इसके शिलालेखों के लिये जो कि शक सं० ६७५ के हैं, इण्डियन एन्टिक्वेरी (१२, २३८) देखिये।

३ बम्बई में मुद्रित।

४ श्री के० बी० पाठक द्वारा पूना से तथा सेठ नाथारंगजी गांधी द्वारा पण्डिताचार्य योगिराट् की टीका सहित बम्बई से प्रकाशित।

५ तीन भागों में इन्दौर से प्रकाशित।

६ शक सं० ८२२ तथा ८३१ के इसके शिलालेखों के लिए 'इण्डियन एन्टिक्वेरी' (१२ २२०,२२१) और)१५ १४१) देखिये।

है कि आदि पुराण के रचयिता जिनसेन का ही इस मंगलाचरण में उल्लेख किया गया है और आदिपुराण तथा हरि वंश पुराण दोनों का लेखक एक ही है। लेकिन इन दोनों काव्यों के रचना काल में कम से कम ५० साल का अन्तर है जिसके कारण इन दोनों काव्यों का एक ही लेखक के द्वारा लिखा जाना नितान्त असम्भव ज्ञात पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन दोनों लेखकों की गुरु परम्परा भी अलग अलग है। हरिवंशपुराण का लेखक पुन्नतगण के कीर्तिसेन का शिष्य है और आदि पुराण का लेखक सेनगण के वीरसेन का शिष्य है। हरिवंश पुराण में जिस ढंग से जिनसेन का उल्लेख किया गया है, उससे भी यही प्रतीत होता है कि लेखक अपने से अतिरिक्त किसी और व्यक्ति का उल्लेख कर रहा है। श्लोक इस तरह है —

यामिताभ्युदये तस्य जिनेन्द्र गुण सस्तुति. ।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिस्संकीर्तयत्यसौ ॥

किसी भी लेखक का, इस तरह से अपनी प्रशंसा करना गर्वोक्ति ही कहा जायगा। लेकिन इन दोनों लेखकों को यदि दो अलग अलग व्यक्ति माना जाता है, तो दूसरी समस्या यह उठती है कि हरिवंश पुराण के लेखक ने अपने ग्रन्थ का जो निर्माण काल दिया है उसके अनुसार जयधवला टीका के लेखक वीरसेन और आदि पुराण के लेखक जिनसेन का हरिवंश पुराण में उल्लेख युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि हरिवंश पुराण के लिखे जाने के बाद इन दो विद्वानों का नाम सुनने में आता है। अत इस कठिनाई को दूर करने के लिये ऐसा मानना अनुचित न होगा कि हरिवंश पुराण के लिखे जाने से पूर्व वीरसेन और जिनसेन नाम के कोई और दो व्यक्ति भी प्रसिद्ध हो चुके हैं तथा उन्हीं का इस काव्य में उल्लेख किया गया है न कि जयधवला-टीकाकार वीरसेन और आदिपुराण के रचयिता जिनसेन का।

पार्श्वाभ्युदय काव्य पर मैसूरराज्यान्तर्गत श्रवण-बेलगुल निवासी जैन धर्म गुरु श्री पंडिताचार्य योगिराट् की एक प्राचीन टीका उपलब्ध है। इस टीका में मल्लिनाथ की शैली का ही अनुकरण किया गया है तथा शाकटायन व्याकरण और नानार्थरत्नमाला नामक कोष का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया गया है। यह कोष ग्रन्थ शक संवत् १३२१ (वि० सं० १४५६) में विजयनगर राज्य में शासन करने वाले हरिहर द्वितीय के आश्रित जैन विद्वान् श्री इरुगदण्डनाथ का लिखा हुआ है। अत यह निश्चित है कि पार्श्वाभ्युदय का टीकाकार शक सं० १३२१ वि० सं० १४५६) के बाद का है। टीकाकार ने पार्श्वाभ्युदय काव्य की रचना के प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है—

श्री जिनेन्द्रमताम्बोन्दुर्मूलसंघाम्बरांशुमान् ।
वीरसेनाभिधानो यत्यर्तिरणाचार्यपुंगव ॥१॥

तच्छिष्यो जिनसेनार्यो बभूव मुनिनायकः ।
यत्कृतिर्भुवनेऽद्यापि चन्द्रिका प्रसरायते ॥२॥

बंकापुरे जिनेन्द्राङ्घ्रि सरोजेदिन्दिरोपमः ।
अमोघवर्षनामाऽभून्महाराजो महोदयः ॥३॥

स स्वस्य जिनसेनर्षिं विधाय परमं गुरुम् ।
सद्धर्मं द्योतयंस्तस्थौ पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥४॥

कालिदासाह्वयः कश्चित्कविः कृत्वा महोजसा ।
मेघदूताभिधं काव्यं श्रावयन्गणशो नृपान् ॥५॥

अमोघवर्षराजस्य समामेत्य मदोद्धुरः ।
विदुषोऽवगणय्यैव प्रभुमश्रावयत्कृतिम् ॥६॥

तदा विनयसेनस्य सतीर्थ्यस्योपरोधतः ।
तद्विद्याहङ्कृतिच्युत्यै सन्मार्गोद्दीप्तये परम् ॥७॥

जिनसेनमुनीशानस्त्रैविद्याधीश्वराग्रणी ।
द्विरात्यग्रशतग्रन्थ प्रबन्धश्रुतिमात्रतः ॥८॥

एकसन्धित्वतस्सर्वं गृहीत्वा पद्यमर्थतः
भूभृद्विद्वत्सभामध्ये प्रोचे परिहसन्निति ॥९॥

पुरातनकृतिस्स्तेयात्काव्यं रम्यमभूदिदम् ।
तच्छ्रुत्वा सोऽब्रवीद्ब्रूहि पठतात्कृतिरस्ति चेत् ॥१०॥

पुरान्तरे सुदूरेऽस्ति वासराष्टकमात्रतः ।
आनाय्य वाचयिष्यामीत्यवोचद्यतिकुञ्जरः ॥११॥

इत्येतदवलोक्याथ सभापतिपुरोगमाः ।
तथैवास्त्विति माध्यस्थ्यात्समयं चक्रिरे मिथः ॥१२॥

श्रीमत्पार्श्वार्हदीशस्य कथामाश्रित्य सोऽतनोत् ।
श्रीपार्श्वाभ्युदयं काव्यं तत्पादार्थादिवेष्टितम् ॥१३॥

संकेत दिवसे काव्यं वाचयित्वा स संसदि ।
तदुदन्तमुदीर्याथ कालिदासममानयत् ॥१४॥

श्रीमद्वेलगुल विन्ध्याद्रि प्रोल्लसद्दोर्बलीशिनः ।
श्रीपादाम्बुजमूलस्थः पण्डिताचार्ययोगिराट् ॥१५॥

तन्मुनीन्द्रमतिप्रौढिप्रकटीकरणोत्सुकः।
तद्व्याख्या प्रार्थितश्चक्रे निजसुन्दरसूनुना ॥१६॥

श्री पार्श्वात्साधुत साधु कमठात्खलत खल ।
पार्श्वाभ्युदयत काव्य न च क्वचिदपीष्यते ॥१७॥

तत सौजन्य सम्पूर्त्यै दौर्जन्यपरिहाणये।
काव्य कौशल्य सिद्ध्यै सद्भिरभ्यस्यतामद ॥१८॥

इस अवतरण से यह प्रतीत होता है कि कालिदास जिनसेन का समकालीन था। लेकिन यह बात नितान्त असगत है, क्योंकि जैन कवि श्री रविकीर्ति ने शक संवत् ५५६ (वि० स० ६९१) के अपने ऐवेल के शिलालेख में कालिदास का भी उल्लेख किया है और यह कवि चालुक्यवश के पुलकेशी द्वितीय का राज्याश्रित था। चालुक्यवंश के पुलकेशि /द्वितीय का शासन काल शक स० षष्ठ शतक के आस पास ही पड़ता है। अत यह निश्चित है कि कालिदास जिनसेन का समकालीन नहीं हो सकता। टीकाकार ने किसी भ्रान्त दन्त कथा का आश्रय लेकर ऐसा लिख डाला है।

पार्श्वनाथ चरित्र

काव्य की कथा को पाठकों के हृदयगम कराने के लिये सक्षेप में श्री पार्श्वनाथ का चरित्र नीचे दिया जा रहा है। श्री पार्श्वनाथ का जन्म जन्मान्तरों के अनुसार जीवन चरित्र इस तरह है। इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में पोतनपुर नाम का एक नगर था। वहा अरविन्द नामका प्रतापी और जैन धर्म परायण राजा राज्य करता था। उसका विश्वभूति नामक एक पुरोहित था। उसकी पत्नी का नाम अनुद्धरा था। इस अनुद्धरा से विश्वभूति के कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र हुये। योग्य होने पर विश्वभूति ने कमठ का विवाह वरुणा और मरुभूति का विवाह वसुन्धरा के साथ कर दिया।

अपना अवसान समीप जानकार विश्वभूति पुरोहित अनशन करके शरीर त्याग देव-लोक को चला गया। विश्वभूति की स्त्री अनुद्धरा भी पति वियोग से दु खित हो नवकार मन्त्र का जप करती हुई शरीर छोड़ गई। अपने पिता के बाद कमठ और मरुभूति दोनों राजा अरविन्द के मन्त्री हो गये। इन दोनों भाइयों में छोटा भाई मरुभूति विषय भोग से पराङ्मुख था और पौषधादि धर्मक्रियायें करता रहता था तथा उसके मन में यह भावना रहा करती थी कि कब वह गुरु के समीप जाकर सर्वसावद्य योग का त्याग करे।

इस बीच कमठ स्वच्छन्द हो गया था। उसमें समस्त दुर्गुण निवास करने लगे थे। वह परदारगामी और जुआरी भी था। एक बार मरुभूति राजा अरविन्द के

साथ युद्ध में गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिति में अवसर पाकर दुराचारी कमठ ने उसकी पत्नी वसुन्धरा को अपनी पत्नी बना लिया। विपक्षियों को परास्त करने के बाद जब राजा अपने नगर में वापिस आया और उसे कमठ के इस दुर्वृत्त का पता लगा, तब उसने मरुभूति के परामर्श से कमठ को नगर से बाहर निकाल दिया। कमठ भी भाई पर क्रुद्ध होकर वन चला गया और तापसों के पास जाकर स्वयं तापस बनकर अज्ञान तप करने लगा।

कमठ के चले जाने के पश्चात् मरुभूति ने विचार किया कि मेरे भाई कमठ ने मेरा जो अपराध किया था, उसकी अपेक्षा मैंने कमठ का अधिक अपराध किया है, क्योंकि मैंने ही राजा से प्रार्थना करके कमठ को नगर से बाहर निकलवाया और उसे अपमानित कराया है। मरुभूति ने राजा से प्रार्थना की कि कमठ का अपराध क्षमा कर दिया जाय और उसे नगर से बाहर जाने का दण्ड न दिया जाये, परन्तु राजा ने मरुभूति की यह प्रार्थना स्वीकार न की। तब मरुभूति कमठ से क्षमा मांगने के लिये उसके आश्रम में जाता है। कमठ के चरणों में पड़कर मरुभूति उससे क्षमा मांगता है, परन्तु कमठ के हृदय में जलने वाली अपमान की ज्वाला शान्त न हुई थी। वह क्रोध के वशीभूत होकर मरुभूति पर शिला प्रहार कर देता है। शिलाघात से मरुभूति को पीड़ा प्रारम्भ होती ही है कि कमठ मरुभूति पर दूसरा शिला प्रहार कर देता है। शिलाघात के कष्ट से आर्त ध्यान करता हुआ मरुभूति मर जाता है और विंध्याचल पर युत्थपति हाथी का जन्म प्राप्त करता है। दूसरी ओर कमठ की स्त्री वरुणा भी क्रोधवश शरीर त्याग देती है और वह इसी युत्थपति हाथी की हथिनी होती है।

पोतनपुर के महाराजा अरविन्द एक समय अपने महल की छत पर बैठे हुये थे। उन्होंने एक मेघ घटा को चढ़ते और बिखरते देखा। इस घटना को देखकर उन्हें विरक्ति हो गई और वे संयम में प्रवृत्त हो गये। अवधिज्ञान से युक्त गीतार्थ अरविन्द मुनि एकलविहारी प्रतिमा को धारण करके विचरते हुये उसी वन में आ निकले जिसमें मरुभूति का जीव हाथी का भव धारण करके रहता था। परिवार सहित जल-पान करके लौटता हुआ युथपति हाथी अरविन्द मुनि की ओर दौड़ा। अरविन्द मुनि कायोत्सर्ग करके ध्यानारूढ़ हो खड़े हो गये। हाथी ने मुनिको उपसर्ग तो देना चाहा परन्तु मुनि के तप-तेज से हाथी का क्रोध ही नष्ट हो गया। वह दीनता धारण करके मुनि सम्मुख खड़ा रहा। ध्यान समाप्त करके मुनि ने हाथी को उपदेश दिया और कहा कि तू अपने पूर्व भव को याद कर जिसमें तू मरुभूति श्रावक था। आर्त रुद्रध्यान में मृत्यु पाने से ही तू इस भव में हाथी हुआ है। मैं भी पूर्वभव में अर-विन्द राजा था। तूने यह मनुष्य भव तो हारा ही परन्तु अब इस भव को भी क्यों कुकृत्य में लगाता है। इस प्रकार मुनि के उपदेश से युत्थपति हाथी को जातिस्मृति ज्ञान हुआ। उसने मुनि को प्रणाम करके उनसे श्रावक धर्म स्वीकार किया। युत्थ-पति हाथी की हथिनी भी पास ही खड़ी थी। मुनि का उपदेश सुनकर वह भी विचार करने लगी। विचार करते करते हथिनी को भी जाति-स्मृति-ज्ञान हो गया

और उसने भी श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया। श्रावक धर्म स्वीकार करके हाथी तप करने लगा और यह भावना करने लगा कि मनुष्य जन्म पाकर महाव्रत धारण करने वाले प्राणी ही धन्य हैं। मुझे धिक्कार है जो मैंने दीक्षा न लेकर मनुष्य जन्म को यों ही खो दिया। इस प्रकार की शुभ भावना करता हुआ वह हाथी समय व्यतीत करने लगा।

कमठ अपने भाई मरुभूति को मारकर भी शान्त नहीं हुआ था। मनुष्य वध के दुष्कृत्य को देखकर तापसों ने भी कमठ की निन्दा की। अन्त में वह आरत ध्यान पूर्वक मर कर कुक्कुट जाति का सर्प हुआ।

एक समय उक्त हाथी एक सरोवर में जल पीने गया था। तपस्या की निर्बलता के कारण वहा वह कीचड़ में फस गया और प्रयत्न करने पर भी न निकल सका। इतने में ही सर्प भवधारी कमठ भी वहा आ गया। पूर्व जन्म के वैर के कारण साप ने हाथी के कुम्भस्थल को डस लिया। हाथी को विष चढ़ा। अपना अन्तकाल समीप जानकर हाथी ने अनशनादि कर शुद्ध भाव से शरीर त्याग दिया और अष्टम सहस्रार कल्प में सत्रह सागर की आयु वाला महर्द्धिक देव हुआ। इस हाथी की हथिनी भी कठिन तप करती हुई शरीर त्याग कर ईशान्य कल्प में अनाभिग्रहीक देवी हुई और देव सबधी सुख भोगने लगी। अनेक जीवों का सहार करके कुक्कुट नाग भी मरा और पाचवें नरक में सत्रह सागर की आयु लेकर उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में प्राग्विदेह की सुकच्छ विजय में वैताढ्य गिरि पर तिलका नाम की नगरी थी। वहा विद्युद्गति नाम का विद्याधरों का राजा रहता था। विद्युद्गति की कनकलतिका नाम की पटरानी थी। सहस्रार देवलोक का आयुष्य भोग कर हाथी का जीव कनकलतिका के उदर में आया और गर्भकाल समाप्त होने पर पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। विद्युद्गति ने पुत्र का नाम किरणतेज रक्खा। किरण-तेज जब बड़ा हुआ तो एक समय वहा सुरगुरु नाम के आचार्य पधारे। उनके उपदेश से प्रभावित होकर किरणतेज ने सयम स्वीकार कर लिया और गीतार्थ हो एकल विहारी प्रतिमा धारण करके विचरने लगा।

पाचवें नरक का आयुष्य भोगकर कुक्कुट नाग का जीव हिमगिरि की गुफा में सर्प योनि में उत्पन्न हुआ। वहा भी वह अनेक प्राणियों के प्राण हरण करता हुआ कठिन और क्रूर कर्म करने लगा। किरणतेज मुनि भी विचरत विचरते इसी गुफा में पधारे। एकान्त स्थल देखकर मुनि गुफा में ध्यान करके खड़े रहे। ध्यान में खड़े हुये मुनि को उस सर्प ने देखा। पूर्व भव के वैर के कारण सर्प क्रोधित होकर मुनि के शरीर से लिपट गया और उसने मुनि के शरीर को कई जगह डस लिया। मुनि ने कर्म क्षय करने में सर्प को उपकारी मान और शुभ ध्यान करते हुए शरीर त्याग दिया। शरीर त्याग कर किरण-तेज मुनि का जीव बारहवें देवलोक में बाईस सागर का

आयुष्य वाला उत्कृष्ट देव हुआ। वह सर्प भी महाभयंकर कर्म बांधकर दावानल में दग्ध हो अशुभ परिणामों के कारण छट्ठी तमःप्रभा नरक में बाईस सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में पश्चिम महाविदेह की सुगन्धाविजय में शुभकरा नाम की नगरी थी। वहां वज्रवीर्य नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीवती था। किरणतेज का जीव बारहवें कल्प का आयुष्य समाप्त करके लक्ष्मीवती की कोख से उत्पन्न हुआ। वज्रवीर्य ने बालक का वज्रनाभि नाम रक्खा। बड़ा होने पर वज्रनाभि अनेक कलाओं का ज्ञाता हुआ। वज्रवीर्य ने वज्रनाभि का विवाह अनेक राजकन्याओं के साथ कर दिया। कुछ काल पश्चात् राजा वज्रवीर्य अपना राजपाट वज्रनाभि को सौंपकर आत्म कल्याण में लग गया।

वज्रनाभि के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम चक्रायुध रक्खा गया। बहुत काल तक राज्य करने के पश्चात् राजा वज्रनाभि की इच्छा संयम लेकर आत्मकल्याण करने की हुई। पुण्ययोग से शुभकरा नगरी में क्षेमकर नाम के तीर्थंकर भगवान् पधारे। भगवान् क्षेमकर का उपदेश सुनकर राजा वज्रनाभि संयम में प्रव्रजित हो गये। थोड़े ही समय में वज्रनाभि मुनि सूत्र सिद्धान्त के पारगामी हो गये और अनेक प्रकार के तप करते हुए विचरने लगे। उन्हें आकाशगामिनी आदि अनेक लब्धियाँ भी प्राप्त हुई।

एक बार आकाशमार्ग से विहार करते हुए वज्रनाभि मुनि सुकच्छ विजय में पधारे। छठे नरक से निकल कर कमठ का जीव भी इसी सुकच्छ विजय के ज्वलन गिरि वन में कुरंगक नाम का भील हुआ। कुरंगक भील उस जंगल में भ्रमण करता हुआ शिकार द्वारा जीवन बिताता था। वज्रनाभि मुनि भी विहार करते हुये उसी ज्वलनगिरि नाम के जंगल में आ निकले। सन्ध्या का समय हो गया था इस कारण वज्रनाभि मुनि ज्वलनगिरि की एक कन्दरा में ही कायोत्सर्ग करके ध्यानारूढ हुये। जंगल में भ्रमण करता हुआ कुरंगक भील भी वहीं आ निकला जहां वज्रनाभि मुनि कायोत्सर्ग करके ध्यान में थे। पूर्व भव के बैर के प्रभाव से मुनि को देखकर कुरंगक भील ने अपने लिए अपशकुन समझा। उसने क्रोधित होकर के मुनि के बाण मारा। बाण लगने से मुनि पीड़ित हुए। क्रूरकर्मी कुरंगक भी समय पर बुरे परिणामों से मृत्यु पाकर सातवें नरक के रौरव नामक नरकावास में उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में पूर्व महाविदेह में पुराणपुर नामक नगर था। यहां कुलिशबाहु नामक राजा राज्य करता था जिसकी सुदर्शना नाम की पटरानी थी। मध्यग्रैवेयक का आयुष्य भोग कर वज्रनाभि का जीव महारानी की कोख में आया। महारानी सुदर्शना ने चौदह महास्वप्न देखे। पति से स्वप्नों का फल सुन कर कि तुम्हारी कोख से चक्रवर्ती या धर्म-चक्री पुत्र उत्पन्न होगा, महारानी सुदर्शना प्रसन्न हुई और सावधानी के साथ गर्भ का पोषण करने लगी। समय पर रानी ने एक सुन्दर

और पुण्यवान् बालक को जन्म दिया। राजा कुलिश बाहु ने पुत्र-जन्मोत्सव मनाकर बालक का नाम स्वर्णबाहु रक्खा। थोडे ही समय में स्वर्णबाहु सब प्रकार से योग्य हो गया। महाराज कुलिशबाहु ने राज्यभार स्वर्णबाहु को सौंप दिया और स्वय सयम में प्रव्रजित हो गये। स्वर्णबाहु का प्रताप दिन प्रतिदिन बढता ही गया। कुछ काल पश्चात् स्वर्णबाहु के यहा चौदह रत्न प्रकट हुये और वह छ खण्ड पृथ्वी साध कर चक्रवर्ती हुआ।

एक समय भगवान् तीर्थंकर पुराणपुर में पधारे। स्वर्णबाहु चक्रवर्ती भगवान् को वन्दना करने गये। भगवान् की वाणी सुनकर स्वर्णबाहु को ससार से विरक्ति हो गई और वे सयम में प्रवृत्त हो गये। कठिन तप और अर्हद्भक्ति आदि बीस बोलों की आराधना करके स्वर्णबाहु ने तीर्थंकर नामक कर्म का उपार्जन किया।

सातवें नरक का आयुष्य भोगकर कुरगक भील का जीव क्षीरगिरि के पास के क्षीरवर्णा जगल में सिंह हुआ था। विहार करते हुये स्वर्णबाहु मुनि इसी क्षीरवर्णा जगल में आ निकले। सिंह ने मुनि को देखा। पूर्वभव के वैर से मुनि को देखकर सिंह क्रुद्ध हुआ और मुनि पर झपटा। उपसर्ग जान कर मुनि सचेत हो गये थे। इसलिये उन्होंने आत्मशुद्धिपूर्वक अनशन कर लिया सिंह ने मुनि की हत्या कर डाली। स्वर्णबाहु मुनि समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर दसवें कल्प के महाप्रभ विमान में बीस सागर की स्थिति के महर्द्धिक देव हुए और सिंह भी मर कर चौथे नरक में दस सागर की स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

अन्तिम भव

इस प्रकार पूर्व जन्मों के इतिवृत्त के बाद अन्तिम जन्म की कथा प्रारम्भ होती है। मध्य जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्रान्तर्गत मध्यखण्ड में गगा नदी के तट पर स्थित काशी देश में वाराणसी नाम की रमणीय नगरी थी। वहा इक्ष्वाकुवश शिरोमणि अश्वसेन (विश्वसेन) नाम का राजा राज्य करता था। अश्वसेन की रानियों में वामादेवी (ब्राह्मी देवी) सबसे श्रेष्ठ रानी थी। स्वर्णबाहु चक्रवर्ती का जीव प्राणत कल्प का आयुष्य भोग कर चैत्र कृष्णा ४ को वामादेवी के गर्भ में आया। सुखशय्या पर शयन किये हुए महारानी वामादेवी ने तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों को देखकर वे जाग उठीं। उन्होंने देखे हुए स्वप्न अपने पति महाराज अश्वसेन को सुनाये और पति से स्वप्नों का फल सुनकर प्रसन्न होती हुई अपने शयनागार में लौट आई तथा शेष रात्रि धर्म जागरण में व्यतीत की।

गर्भकाल के समाप्त होने पर महारानी ने पौष कृष्ण की रात्रि को जब कि चन्द्रमा अनुराधा नक्षत्र में आया हुआ था, नीलमणि की शोभा को हरने वाले तथा सर्प के मुख्य चिह्न वाले पुत्र को जन्म दिया। इतिहास वेत्ताओं के अनुसार यह

घटना ई० पूर्व ८७७ की कही जाती है[1]। प्रातःकाल महाराजा अश्वसेन ने पुत्र जन्मोत्सव मनाकर पुत्र का नाम पार्श्वकुमार रक्खा। धीरे धीरे पार्श्वकुमार बड़े होने लगे। जब वे युवक हुए उस समय उनका नव हाथ[2], ऊँचा नीलवर्णीय[3] शरीर बड़ा शोभायमान मालूम होता था। वे बड़े लोकप्रिय,[4] चतुर, अद्वितीय सुन्दर, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, सौभाग्यशाली और नम्र स्वभाव के थे।

इन्हीं दिनों कुशस्थल[5] नगर के राजा प्रसेनजित् के प्रभावती नाम की एक अद्वितीय सुन्दरी कन्या थी। जब प्रभावती विवाह योग्य हुई, तब उसके माता पिता प्रभावती के अनुरूप वर की खोज करने लगे। एक दिन प्रभावती अपनी सखियों के साथ बाग में टहल रही थी। वहां उसे किन्नरियों द्वारा गाया जाने वाला एक गीत सुनाई दिया जिसमें अश्वसेनसुत पार्श्वकुमार के उत्कृष्ट रूप का वर्णन होने के साथ ही उस स्त्री को धन्य बताया गया था जिसे पार्श्वकुमार की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो। इस प्रकार का गीत सुनकर प्रभावती के हृदय में पार्श्वकुमार के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसने पार्श्वकुमार के ही साथ विवाह करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। प्रभावती की सखियों ने प्रभावती का यह निश्चय प्रभावती के माता-पिता को सुनाया। राजा प्रसेनजित् भी इस निश्चय को सुनकर प्रसन्न हुआ। वह प्रभावती को लेकर वाराणसी गया। इधर प्रभावती का सौन्दर्य, उसका शील और

---

१ Guerinot ने अपने Intro Bibliogra hica Jaina में पार्श्वनाथ को ई० पू० अष्टम शतक में कार्य करता हुआ माना है। श्री जगदीशचन्द्र जैन ने Life in Ancient India as depicted in the Jaina Canons में पार्श्वनाथ को ई० पू० नवम शतक के अन्त में माना है। Jacobi के अनुसार ई० पू० अष्टम शतक ही उचित है। उनके जैन-सूत्रों को देखिये।

२ श्री कापडिया द्वारा लिखित जैन धर्म और साहित्य, भाग १, पृ० २४ देखिये।

३ श्री नाहर और घोष द्वारा लिखित Epitome of Jainism 46 पृष्ठ देखिये।

४ पुरिसादानीये (पुरिसादानीय) कल्पसूत्र, १४६, १५४ पाली पुरिसाजानीय, अगुत्तर, १, २६०, २, ११५। इसका यह भी अर्थ हो सकता है—उच्च जन्म वाला या प्रतिष्ठित व्यक्ति। याकोबी ने इसको इस तरह समझाया है कि ऐसा आदमी जो अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा चुना जाय—जैन सूत्र १ S B E, Vol XXII P 271

५ यह नगर कान्यकुब्ज या वर्तमान कन्नौज ही था (महाभारत, ८७, १७ भागवतपुराण ६, १, २१, योगिनी तन्त्र २,४, हर्षचरित, ६, विनय पिटक २,२११)

ज्ञान सारे देश में प्रसिद्ध हो रहा था। कलिंगदेश के राजा यवन भी प्रभावती से विवाह करना चाहते थे। प्रभावती के पार्श्वकुमार के यहां जाने का समाचार सुन कर उसने अपनी विशाल सेना के साथ कुशस्थल पर चढ़ाई करदी और नगरी को घेर लिया। राजा प्रसेनजित् ने राजा अश्वसेन से सहायता मांगी। इसी बीच अपने एक वृद्ध मन्त्री के सत्परामर्श से कलिंगराज यवन ने प्रसेनजित से युद्ध छेड़ने का विचार छोड़ दिया और क्षमा मांग कर वापिस लौट गया। यद्यपि पार्श्वकुमार प्रारम्भ से ही संसार से विरक्त रहते थे और विवाह बन्धन में पड़ना न चाहते थे, फिर भी अपने पिता तथा राजा प्रसेनजित् के आग्रह से उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया। तदनन्तर दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक समय झरोखे में बैठे हुए भगवान् पार्श्वकुमार बाजार की छटा देख रहे थे। उस समय भगवान् ने देखा कि झुण्ड के झुण्ड लोग हाथ में फल-फूलादि लिये हुये नगर से बाहर की ओर जा रहे हैं। पूछने से पता लगा कि कमठ नाम का तापस पंचाग्नि तपस्या करता है। लोग उसी की भेंट पूजा के लिये सामग्री लेकर जा रहे हैं। इतने में ही माता वामा-देवी का भेजा हुआ यह सन्देश भी भगवान् के पास आया कि मैं कमठ तपस्वी की पूजा करने जा रही हूँ, आप भी वहां चलें। यद्यपि भगवान् पार्श्वकुमार इस प्रकार के तप को अज्ञान कष्ट समझते थे, फिर भी माता की आज्ञा का पालन करने के विचार से वे भी गंगा तट पर वहां गये जहां कमठ तापस तप ले रहा था। यह कमठ तापस कोई अन्य व्यक्ति नहीं है प्रत्युत पूर्व जन्म में विश्वभूति के कमठ और मरुभूति के नाम के जो दो पुत्र थे, उन्हीं में से इस जन्म में भी कमठ तो यहां तापस के रूप में है और मरुभूति पार्श्वकुमार के रूप में है। भगवान् पार्श्वकुमार ने कमठ तापस की धूनी के पास जाकर देखा कि धूनी में जलते हुए एक लक्कड़ में बैठा हुआ एक नाग भी जल रहा है। पार्श्वकुमार ने कमठ तापस को उसके हिंसात्मक इस अज्ञान तप का बोध कराया और अपने सेवकों से उस लक्कड़ को धूनी से बाहर निकलवाया तथा सावधानी से लक्कड़ फाड़ने की आज्ञा दी। लक्कड़ के फाड़ते ही उसमें से तड़पता हुआ नाग निकल आया। भगवान् ने उस नाग को नवकार मन्त्र की शिक्षा दी। धर्म पर श्रद्धा लाने के कारण वह नाग अपना शरीर त्याग कर नागों का स्वामी धरणेन्द्र हुआ। इसके बाद भगवान् पार्श्वनाथ भी अपने महल को लौट आये।

इस घटना को देखकर लोगों ने कमठ तापस की बहुत निन्दा की। अपनी निन्दा होने के कारण तापस को भगवान् पार्श्वनाथ पर बहुत क्रोध आया परन्तु विवश था। अतः उसने अपने तप के फलस्वरूप यह कामना की कि वह अपने वैरी पार्श्वनाथ के लिये दुःखदायी बने। अज्ञान तप के फल से कमठ तापस मृत्यु पाकर मेघमाली देव हुआ और भगवान् पार्श्वनाथ से बदला लेने के समय की प्रतीक्षा करने लगा।

इधर तीस वर्ष की आयु हो जाने पर भगवान् पार्श्वनाथ भी आत्मकल्याण के

विचार से घर से निकल पड़े। घूमते २ किसी दिन भगवान् पार्श्वनाथ तापसों के आश्रम के समीप पधारे। सूर्यास्त हो चुका था, इसलिये भगवान पार्श्वनाथ वहीं कुएँ के समीपस्थ वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। मेघमालि देव ने इस अवसर को अपना वैर चुकाने के लिये उपयुक्त समझा। उसने पहले तो रीछ-चीता, हाथी और सिंह बन कर भगवान् को डराने की चेष्टा की, परन्तु जब उसे सफलता न मिली, तब उसने आकाश से मेघ लाकर जल बरसाना शुरू किया। मेघ के गरजने-बरसने, बिजली के कड़कने और वायु के वेग से बड़े २ वृक्ष भी उखड़२ कर गिरने लगे। वन के पशु पक्षी इधर उधर भागने लगे। सारा वन जलमय हो गया। जल क्रमश भगवान् पार्श्वनाथ की कमर, छाती और नाक तक पहुच गया। फिर भी भगवान् ध्यान में अविचल रहे। अनायास धरणेन्द्र का ध्यान इस ओर गया। भगवान् पर यह सकट देखकर धरणेन्द्र शीघ्र ही भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ। भगवान् को नमस्कार करके धरणेन्द्र ने भगवान् के चरणों के नीचे स्वर्ण कमल वैक्रिय किया और भगवान् के मस्तक पर अपने सप्तफण का छत्र करके भगवान् के शरीर को अपने शरीर से आच्छादित कर लिया। धरणेन्द्र ने इस प्रकार भगवान् का उपसर्ग निवारण किया। पश्चात् वह क्रुद्ध होकर मेघमालि देव से कहने लगा—अरे दुष्ट, तू यह क्या कर रहा है। या तो शीघ्र ही अपनी माया समेट कर भगवान् की शरण ले, अन्यथा मैं तेरे इस अपराध को क्षमा न कर गा। धरणेन्द्र की बात सुन कर मेघमालि बहुत लज्जित हुआ। अपनी माया समेट कर वह अपने मन में कहने लगा कि मैंने इन महापुरुष को कष्ट देने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी, तब भी ये महापुरुष धीर ही बने रहे और मेरी समस्त शक्ति वृथा हो गई। ये महापुरुष अगूठे से मेरु पर्वत को हिलाने में समर्थ हैं, फिर भी इन्होंने मुझ पर क्रोध नहीं किया। अत अब मेरी कुशल इन महापुरुष की शरण लेने में ही है। इस प्रकार विचार कर मेघमालिदेव अभिमान तज भगवान् के चरणों में गिर पड़ता है और भगवान् से क्षमा प्रार्थना करने लगता है। वीतराग भगवान् पार्श्वनाथ के लिए तो धरणेन्द्र और मेघमालि दोनों समान् ही थे। अत भगवान् पार्श्वनाथ ने मेघमालि को आश्वासन दिया। अन्त में धरणेन्द्र और मेघमालि दोनों भगवान् को नमस्कार करके अपने अपने स्थान चले जाते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ भी अन्यत्र विहार करने लगते हैं।

आगे चलकर भगवान् पार्श्वनाथ ने अपना एक सम्प्रदाय चलाया जो कि तीर्थ कहलाया और वह तीर्थकर कहलाए। इन्होंने अनेक नगरों[1] की यात्रा की। ई० पू० ७७७ में अपने हाथों को फैलाते हुए तथा सर्व दुखों से मुक्त हो सम्मेत[2] पर्वत के शिखर पर अपने ८३ शिष्यों के सामने वर्षा ऋतु के प्रथम मास

---

१ आचारग निर्युक्ति, ३३४, नायाधम्मकहाओ, २,२२२-२३० ला, Geography of Early Buddhism पृ० १८,१६,२८,४३,८६,६,१६,१५,१७,२३,२५ देखिए।

२ यह समेत शिखर नाम का ही पर्वत है जो कि बाद में पार्श्वनाथ पर्वत कहलाया है।

में महीने भर तक अनशन करके यहां तक कि जल[1] तक न लेकर भगवान् पार्श्वनाथ ने निर्वाणपद[2] प्राप्त किया। भगवान् पार्श्वनाथ इस प्रकार १०० वर्ष तक इस संसार में जीवित रहे[3]। भगवान् पार्श्वनाथ का जीवनचरित संक्षेप में जान लेने के बाद पार्श्वाभ्युदय काव्य का कथानक समझने में पाठकों के सामने अब कोई कठिनाई नहीं रह सकती। अतीत और वर्तमान जन्मों में भेदभाव न मानकर यह काव्य लिखा गया है, और मेघदूत के अनुकरण पर कमठ के यक्ष होने, अलका में रहने तथा वर्ष भर के शाप की कल्पना कर ली गई है।

काव्य की कथा

राजा अरविन्द के द्वारा नगर से बहिष्कृत कर दिये जाने पर कमठ सिन्धु नदी के तट पर तपस्या करने लगता है। अपने बड़े भाई की दुरवस्था का वृत्तान्त सुन कर पश्चात्ताप से प्रेरित हो उसका छोटा भाई मरुभूति (पार्श्वनाथ) खोजते खोजते कमठ के पास पहुंचता है। मरुभूति को देखकर कमठ के हृदय में पूर्व वैर जागृत हो उठता है और वह मरुभूति के मारने का उपाय सोचता है। अपनी माया के प्रभाव से वह घोरवृष्टि उपस्थित कर देता है, सिंह की तरह गरजता है और मरुभूति को धिक्कारता है। इस पर भी जब मरुभूति (पार्श्वनाथ) की ध्यानवृत्ति विचलित नहीं होती है, तब कमठ उससे युद्ध करने का आग्रह करता है और युद्ध में अपने हाथ से मृत्यु पाने के बाद स्वर्गलोकस्थित अलकापुरी जाने का मरुभूति को परामर्श देता है। कमठ के विभिन्न दुर्वचनों को सुन कर भी मरुभूति मौन ही रहता है। कमठ इस अवसर पर मरुभूति को विभिन्न पूर्व कथायें याद दिलाता है और अन्त में फिर युद्ध करने के लिये प्रेरित करता है। युद्ध में मरुभूति के मर जाने की संभावना को लेकर स्वयं मेघरूप के धारण करने के कारण कमठ मरुभूति को भी मेघ का ही रूप देकर उत्तर दिशा की ओर स्वर्गस्थित अलकापुरी जाने का परामर्श देता है।

इस प्रसंग में रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम रामगिरि से उत्तर की ओर चलने पर आम्रकूट पर्वत, तत्पश्चात् पुनः उत्तर की ओर चलने पर नर्मदा नदी, विन्ध्य-वन, दशार्ण देश और दशार्ण देश की राजधानी विदिशा नगरी का वर्णन किया गया है। विदिशा नगरी में वेत्रवती नदी के जल को ग्रहण करने के बाद किसी अट्टालिका के ऊपर दिन बिता कर रात्रि में

---

१ कल्पसूत्र १६८।

२ कल्पसूत्र १६९।

३ श्री तीर्थंकरचरित्र, द्वि० भा० रतलाम तथा वादिराजसूरि का श्रीपार्श्वनाथ चरितम् विशेष ज्ञान के लिये देखें।

नीचैं नामक किसी पर्वत पर विश्राम करने, तदनन्तर निर्विन्ध्या और सिन्धु नदियों पर से होते हुए मेघ को (मरुभूति) उज्जयिनी जाने का परामर्श दिया गया है। उज्जयिनी पहुच कर सर्वप्रथम जिनेन्द्र के मन्दिर में जिनेन्द्र की स्तुति करने तथा महाकाल नामक वन में स्थित जिनालयों के दर्शन करने के बाद नगरी की शोभा देखने का मेघ (मरुभूति) को परामर्श दिया गया है।

उज्जयिनी के बाद गम्भीरा नदी होते हुये देवगिरि पर्वत पर पहुँचने तथा वहा स्कन्द देव की पूजा करने और फिर चर्मण्वती नदी में कुछ देर जलक्रीडा करने के बाद दशपुर नगर तथा सीता नामक किसी नदी पर से होते हुये ब्रह्मावर्त देश पहुँचने के लिये मेघ से कहा गया है।

ब्रह्मावर्त के बाद कुरुक्षेत्र, तदनन्तर कुरुक्षेत्र के निकट ही बलराम के पुण्य क्षेत्र होते हुए कनखल पर्वत के समीप गगाजी पर पहुँचने के बाद हिमालय पर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है।

हिमालय पर्वत पर पहुँच कर वहा के विभिन्न रमणीय दृश्यों को देखकर क्रौंचरन्ध्र[1] में से होकर कैलास पर्वत पर जाने के बाद अलकापुरी में उतरने का मेघ को परामर्श दिया गया है। इस अवसर पर कवि ने अलकापुरी का श्रृगारमयी विविध भाव भगिमाओं के साथ कमठ के मुख से बड़ा सरस वर्णन कराया है। इस तरह मेघ (मरुभूति) के अलकापुरी पहुच जाने पर उसकी पूर्व जन्म की पत्नी वसुन्धरा से उसके मिलने का वर्णन किया गया है। इस प्रसग में वसुन्धरा की विरहावस्था का मेघ-दूत के यक्ष की प्रेयसी के समान बड़ा ही भावुक तथा करुण वर्णन किया गया है।

कमठ के इतना सब कुछ कहने पर भी जब मरुभूति शान्त ही बना रहता है, तब कमठ उसे फिर युद्ध के लिये प्रोत्साहित करता है। युद्ध में मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग जाकर किसी देवागना के साथ रहने का उसे प्रलोभन देता है। विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहित किये जाने पर भी जब मरुभूति युद्ध के लिये तैयार नहीं होता है, तब कमठ अपनी माया शक्ति से स्त्री-समूह की सृष्टि करते हुए गाना प्रारम्भ कर देता है और स्त्रियों की प्रणय चेष्टाओं तथा प्रिय वचनों द्वारा उसे विमुग्ध करना चाहता है। इतनी शठता करने पर भी मरुभूति (पार्श्वनाथ) को शान्त देखकर कमठ को अपनी असफलता पर बड़ा क्रोध आता है और वह मरुभूति के मस्तक पर शिला प्रहार करना चाहता है कि उसी समय मरुभूति (पार्श्वनाथ) की पूजा के लिये सपत्नीक आये हुये नागराज धरणेन्द्र को देखकर पृथ्वी पर पत्थर फेंक कर वह भाग खड़ा

---

१ किसी घाटी विशेष का नाम। संभवत: नीति नाम का दर्रा।

होता है। नागराज धरणेन्द्र उसे अभयदान देकर भागने में रोक लेता है और उसे उसके पूर्व जन्मों के अपराधों की याद दिलाता है। इसके बाद नागराज धरणेन्द्र पार्श्वनाथ की स्तुति करता है तथा कमठ पर भी कृपा दृष्टि के लिये भगवान् से प्रार्थना करता है। अन्त में कमठ द्वारा किये हुए उपसर्ग से भगवान् की रक्षा के लिये उनके मस्तक पर अपने फणों का छत्र फैला देता है। उसकी स्त्री भी भगवान् की धीरता पर विमुग्ध होकर अपने फणों को छत्र रूप से उनके ऊपर फैला देती है। तदनन्तर कमठ भी पश्चात्ताप से प्रेरित हो भगवान् पार्श्वनाथ की शरण में आकर उनसे अपने पापों के लिये क्षमायाचना करता है और सम्यग्ज्ञान की प्रार्थना करता है। प्रार्थना करते करते उसकी आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बहने लगती है। देवगण इस दृश्य को देखकर आकाश से पुष्पवृष्टि करते हैं, दुन्दुभियां बजाते हैं और स्वर्ग से उतर कर पार्श्वनाथ की स्तुति करने लगते हैं। दूसरे तापस भी श्री पार्श्वनाथ की महिमा को देखकर उनकी शरण में आ जाते हैं।

बस यहां पर ही काव्य का कथानक समाप्त हो जाता है।

समालोचना

मेघदूत के पद्यों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखे गये काव्यों में पार्श्वाभ्युदय सर्वप्रथम काव्य है। इसमें प्रायः मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मान कर कविता की गई है। कहीं कहीं दो पंक्तियां मेघदूत की हैं और दो कवि की स्वरचित हैं। इस तरह यह एक चमत्कारपूर्ण रचना है। इसको दूतकाव्यों की परम्परा में साक्षात् सम्मिलित करना कुछ उपयुक्त तो कम ही जान पड़ता है, लेकिन मेघदूत के पदों को समस्या मानकर इसकी रचना की गई है, अतः दूतकाव्यों के अनुशीलन में इसका भी समावेश कर लिया गया है। लेखक ने स्वयं इस काव्य का नाम पार्श्वाभ्युदय रक्खा है। अतः यह प्रतीत होता है कि लेखक को भी इसे दूत काव्य के रूप में मानना अभीष्ट नहीं था।

सारा काव्य चार सर्गों में विभक्त है। प्रथम सर्ग में ११८, द्वितीय सर्ग में ११८, तृतीय सर्ग में ५७ तथा चतुर्थ सर्ग में ७१ इस तरह समग्र काव्य में कुल ३६४ श्लोक हैं। समस्या पूर्ति होने के कारण सारा काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा गया है। केवल चतुर्थ सर्ग के अन्तिम छः श्लोकों में से पांच मालिनीवृत्त हैं और छठा वसन्ततिलका है।

छन्द के साथ साथ भाषा भी मेघदूत जैसी ही है। लेकिन अनावश्यक और नीरस प्रसंगों के समावेश के कारण काव्य में मेघदूत जैसा प्रवाह नहीं है। वास्तव में मेघदूत से प्रतिस्पर्धा करने के लिये इस काव्य की रचना की गई है।

काव्य की कथावस्तु तो संक्षेप में दी ही जा चुकी है। काव्य की शैली कुछ ऐसी जटिल है कि काव्य की कथा एक दम पाठक के सामने नहीं आ सकती।

समस्या पूर्ति के रूप में लिखे जाने के कारण तथा मूल पंक्तियों के भाव को यत्र तत्र विपर्यस्त करने से काव्य जटिल हो गया है और प्रसाद गुण की काव्य में न्यूनता आ गई है। कथानक की दृष्टि से काव्य बहुत शिथिल है। चूंकि मेघदूत की समस्या पूर्ति कवि का मुख्य लक्ष्य है, इसलिये बहुत सी बातें विवश होकर उसे कल्पित करनी पड़ी है। इसी कारण से काव्य में वैसी स्वाभाविकता नहीं है जैसी कि एक स्वतन्त्र रचना में होनी चाहिये।

इसके साथ समस्यापूर्ति के बन्धन ने जहां काव्य के कथानक को शिथिल और कुछ कृत्रिम सा बना दिया है, वहां इससे एक लाभ भी हुआ है कि कवि को विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों तथा कथानक के भावपूर्ण रम्य स्थलों के वर्णन करने का पर्याप्त अवसर मिला है। इन वर्णनों में कवि ने अपनी सहृदयता और कल्पनाशक्ति का पूर्णरूपेण परिचय दिया है। आम्रकूट पर्वत के शिखर पर मेघ के पहुंचते समय पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुये कवि कहता है —

कृष्णाहिः किं वलयिततनुर्मध्यमस्याधिशेते
किं वा नीलोत्पलविरचितं शेखरं भूभृतः स्यात्।
इत्याशङ्कां जनयति पुरा मुग्धविद्याधरीणां
त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ॥१॥७०॥

विद्याधरियों को पर्वत के शिखर पर स्थित श्यामवर्ण के मेघ को देखकर कृष्ण सर्प अथवा नीले कमलों की माला का भ्रम हो जाना स्वाभाविक ही है। कवि ने आगे चल कर रेवा नदी का वर्णन भी बड़ा ही सुन्दर किया है—

गत्वोदीचीं भुव इव पृथुं हारयष्टिं विभक्तां
वन्येभानां रदनहतिभिर्भिन्नपर्यन्तवप्राम्।
वीनां वृन्दैर्मधुरविरुतैरात्ततीरोपसेवाम्
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् ॥१॥७५॥

रेवा नदी को पृथ्वी की टूटी हुई बड़ी सी माला बताकर उसके तट पर वन्य हाथियों की दन्तक्रीडा तथा पक्षियों के मधुर कलरव का वर्णन कर कवि ने नदी के तट का चित्र सा खींच दिया है।

दशार्ण देश की राजधानी विदिशा नगरी का वर्णन क[र]ते हुये कवि ने बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

गत्वा पश्ये पवनविचलत्केतुहस्तैरमीदृशाम्
दूरादुच्चैर्भवन शिखरैराह्वयन्तीमिव त्वाम्।
सालोद्ग्रा प्रियमिव भुवो रूपिणीं नाभिभूताम्
(दशार्णानाम्) तेषां दिक्षुप्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम् ॥१॥८३॥

विदिशा नगरी के ऊँचे २ प्रासादों पर वायु के ज़ोर से लहराते हुये झण्डों को देखकर ऐसा लगता है मानों यह नगरी अपने हाथों के संकेत से मेघ को बुला रही हो। नगरी इतनी सुन्दर है मानों पृथ्वी की शोभा ही साक्षात खड़ी हुई हो।

आगे चल कर सिन्धु नदी के वर्णन में किसी विरहिणी स्त्री की विरहजन्य लज्जा त्याग और कार्श्य अवस्थाओं का बड़ा ही संश्लिष्ट वर्णन कवि ने किया है—

हंसश्रेणीकलविरुतिभिस्त्वामियोपाह्वयन्ती
घृणा मार्गे शिथिलवसनेवांगना दृश्यते ते।
वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य[1] सिन्धु
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ॥१॥१०७॥

क्षामा पाण्डु प्रतनुसलिला वेणिका धारयन्ती
हंसस्वानैरिव विदधती प्रार्थनाचाटुमेषा।
सौभाग्य ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्य येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्य ॥१॥१०८॥

इन श्लोकों में सिन्धु नदी का वर्णन करते हुए कवि ने विरहिणी स्त्री का चित्र उपस्थित कर दिया है।

इसके बाद उज्जयिनी नगरी का भी कवि ने बड़ा उदात्त और सरस वर्णन किया है। उज्जयिनी के राजमार्गों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

यस्या बिभ्रत्यवनिपपथा रत्नराशीरुदग्रा
शूर्पोन्मेयाञ्जलधय इवापीततोया युगान्ते।
हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्ती
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ॥ ॥११४॥

भूयो नानाभरणरचनायोग्य रत्नप्रवेका
ज्योतिर्लेखाचित रुचिमत्शक्रचापानुकारान्।
दृष्ट्वा यस्या विपणि रचितान्विद्रुमाणां च भंगान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषा ॥११६॥

उज्जयिनी के राजमार्गों में शंख, मोती और रत्न तथा मरकत मणियां इतनी प्रचुर मात्रा में लगी हुई हैं कि मालूम पड़ता है अब समुद्र में केवल पानी शेष रह गया हो। इसी तरह बाजार में भी तरह २ के रत्न और प्रवाल बिकते हुए देखकर

---

1 ताम् = निर्विन्ध्यानदीम्।

लोगों को भ्रम होता है कि अब समुद्र में केवल जल ही रह गया होगा। इस तरह समुद्र से भी बढ़कर नगरी की सम्पत्ति बताई गई है।

उज्जयिनी के समीप की शिप्रा नदी की शीतल वायु का कवि ने कैसा सरस वर्णन किया है —

यस्यामुच्चै रुपवनतरून्नामयन्मातरिश्वा
वीचिक्षोभादधिक शिशिर सचरत्यम्बुपूर्णे ।
दीर्घी कुर्वन्पटुमदकल कूजित सारसानाम्
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय ॥१॥१११॥

कल्लोलान्तर्वलनशिशिर शीकरासारवाही
धूतोद्यानो मदमधुलिहा व्यजयन्सिजितानि ।
यत्र स्त्रीणा हरति सुरतग्लानिमगानुकूल
शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकार ॥१॥११२॥

यद्यपि इन दो श्लोकों में दो दो पक्तियां मेघदूत की ही है, फिर भी समस्यापूर्ति के साथ साथ कवि ने मूलपक्तियों के भाव को बड़ी सुन्दर रीति से पल्लवित किया है।

जिस तरह मेघदूत में अलकापुरी का बड़ा सरस वर्णन किया गया है, उसी तरह इस काव्य में भी अलकापुरी का वर्णन पाया जाता है। अलकापुरी के इन्द्रनील मणियों से युक्त छोटे २ पर्वत और देवदारु वृक्षों के सुगन्धित धूम से युक्त, सुन्दर स्त्रियों के निवास स्थान तथा चित्रों से सुसज्जित ऊँचे २ प्रासाद हमेशा वर्षाऋतु जैसा दृश्य बनाए रखते हैं —

यत्रानील हरिमणिमया क्षुद्रशैला नभोगं
प्रोयद्दे यद्‌द्रुमपरिसरद्धूपधूमानुबन्धा ।
प्रासादाश्च प्रथयितुमल सर्वदा मेघकालं
विद्युत्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा ॥२॥८४॥

अलकापुरी के वर्णन प्रसंग में कवि ने वहां के स्त्रीपुरुषों की विविध शृ गारमयी चेष्टाए बड़े उत्कृष्ट ढंग से वर्णित की है। ऐसे ही एक स्थान पर कवि लिखता है —

यस्या कामद्विपमुखपटच्छायमाकस्तनीवि
श्रीमच्छ्रोणीपुलिनवरणं वारि काञ्चीविभंगम् ।
पूर्वं लज्जा विगलति ततो घर्मतोयं वधूना
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु २॥११४॥

मेघदूत में जिस तरह अलकापुरी की स्त्रियों की मुग्धावस्था वर्णित की गई है, उसी तरह इस काव्य में भी अलका की रमणियों को बड़ा मुग्ध बतलाया गया है —

आक्षिप्तेषु प्रियतमकरैरंशुकेषु प्रमोदा-
दन्तर्लीलातरलितदृशो यत्र नाल नवोढा
शय्योत्थाय वदनमरुताऽपासितु धावमाना
अर्चिस्तुगानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान् ॥२॥११५॥

अलका की रमणियों की मुग्धावस्था का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे रत्नों के दीपों को फूंक से बुझाने की व्यर्थ चेष्टा करती हैं।

अलकापुरी की रमणियों के शृंगार का वर्णन करते हुए कवि ने अलका में हमेशा सब ऋतुओं का एक साथ होना बतलाया है —

पाणौ पद्मं कुरवकयुतं स्त्रोचितेधाम्नि कुन्दं
लोध्रो रेणुः स्तनपरिसरे हारि कर्णे शिरीषम्।
व्यक्तिव्यक्तम् व्यतिकरमहो तत्र षण्णामृतूनाम्।
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥

कमल से शरद्, कुरवक से वसन्त, कुन्द से हेमन्त, लोध्र के चूर्ण से शिशिर, शिरीष पुष्प से ग्रीष्म तथा कदम्ब से वर्षा ऋतु का एक साथ अलका में होना कवि ने सिद्ध किया है।

प्रस्तुत काव्य में मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर कविता की गई है। अतः मेघदूत में केवल संकेत मात्र से निर्दिष्ट भाव इस काव्य में पूर्ण रूप से कहीं २ विकसित पाया जाता है। मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुए यक्ष ने मेघ को वहां की रमणियों के नेत्रों से क्रीडा करने का आदेश देते हुए कहा है-

विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानाम्
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितः स्याः ॥

इसी भाव को और अधिक विशद करते हुए इस काव्य में कवि ने लोचनों के बड़े ही उपयुक्त विशेषण दिए हैं —

जैत्रैरस्त्रैः कुसुमधनुषो दूरपातैरमोघै
र्मर्मविद्भिर्दृढपरिचितभ्रूधनुर्यष्टिमुक्तैः।

लोचनों के इन विशेषणों से उज्जयिनी की अङ्गनाओं की और भी अधिक विलासिता व्यक्त होती है।

मेघदूत में उज्जयिनी स्थित महाकाल के मन्दिर में सायंकालीन पूजा के समय नगाड़े के समान धीरे २ गरजने के उपलक्ष्य में मन्दिर की वेश्याओं द्वारा अपने सुदीर्घ कटाक्षों द्वारा देखा जाना ही मेघ को उसकी शिव पूजा का फल बतलाया गया है —

पादन्यासैः क्वणित रसनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दून्
आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥१॥३५॥

इस श्लोक की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर प्रस्तुत काव्य में कवि ने पाठकों के समक्ष विभिन्न दृश्यों को रखने का प्रयास किया है। महाकाल नामक वन में स्थित जिनालय में मेघ के सायंकाल पहुँचने की सम्भावना को लेकर कवि कहता है-

सायाह्ने चेत्समुपगतवान्धाम तत्कालपूजा
सङ्गीतान्ते श्रमजलकणैराचिताङ्गी सुकण्ठी।
मन्दं यान्तीश्चतुर गणिका शीकरैः सन्नयेस्त्वं
पादन्यासैः क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै ॥

हे मेघ! महाकाल वन में यदि सन्ध्या के समय तुम जैन मन्दिर में पहुँचो तो सन्ध्याकालीन पूजा के बाद स्वेद बिन्दुओं से भीगी हुई, धीरे २ चलती हुई, अपने चरण निक्षेप के साथ करधनी का शब्द करती हुई कोमल कण्ठ वाली चतुर गणिकाओं को तुम लीला (खेल) में ही बिखेरे हुये अपने जलकणों से सिक्त करना।

इसके बाद कवि कहता है —

तास्तत्राहर्मणिमयरणन्नूपुराः पद्मयोषा
प्रोद्गायन्ती सुललितपदन्याससमुद्भ्रूविलासाः।
पश्योत्पश्या नवजलकणैर्द्विश्रसिक्ता विलोला
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ॥

हे मेघ! यदि जैन मन्दिर में दिन में तुम पहुँचोगे, तो तुम्हें वहां मणियों से युक्त तथा बजते हुए नूपुरोंवाली, सुललित पदन्यास के साथ गाती हुई, भ्रूविलास से युक्त, रत्न जड़े हुए दण्ड वाले चामरों से थके हुए हाथों वाली, वर्षा के नवीन बिन्दुओं से सिक्त तथा चञ्चल और ऊपर को देखती हुई गणिकाएं देखने को मिलेंगी।

अन्त में गणिकाओं को लेकर कवि कहता है —

भूयश्च त्वत्स्तनितचकिता किंस्विदित्यात्तशंका
किंचित्तिर्यग्वलितवदनास्तत्र पण्यांगनास्ता ।
वक्षोत्कम्पस्तननटलुठल्लोलहारा सलीला
नामोद्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥

हे मेघ ! जैन मन्दिर में तुम्हारे गर्जन से चकित, 'यह क्या है' इस तरह शंका करती हुई, मुख को कुछ टेढ़ा किए हुई तथा स्तनतट पर चचल हार को धारण किए हुई पण्यांगनाएं तुम्हारी ओर बड़े हाव भाव के साथ देखेंगी।

मेघदूत में अलकापुरी की विशेषता बतलाते हुए एक कल्पवृक्ष से ही स्त्रियों के विविध श्रृंगार की सामग्री के मिल जाने का वर्णन किया गया है—

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्याम्
एकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥२॥१३॥

इसी विचार को और भी अधिक पल्लवित करते हुए कवि ने किस सुन्दर ढंग से समस्यापूर्ति की है —

यस्मिन् कल्पद्रुमपरिकरः सर्वकालोपभोग्या
निष्ठान्भोगान्सुकृतिनि जने शंकलान्सम्फलीति ।
वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षम्
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पम् ॥३॥६॥

स्व्याहारं रसमभिमतस्रग्विकल्पं विपंची
माहार्याणि स्वरुचिरचितान्यंशुकान्यंगरागम्
लाक्षारागं चरणकमलन्यास-योग्यं च यस्मिन्
एकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः[१] ॥३॥७॥

प्रस्तुत काव्य में मेघदूत की समस्यापूर्ति विभिन्न ढंग से की गई है। मेघदूत की केवल एक पंक्ति कहीं छन्द के आदि या अंत में पाई जाती है, तो कहीं दो पंक्तियां एक साथ छन्द के अंत में देखने को मिलती हैं। यही नहीं, कहीं २ मेघदूत की दो पंक्तियों के बीच में बीच की दूसरी और तीसरी पंक्तियां कवि की स्वरचित हैं। कहीं २ छन्द में दूसरी और चौथी पंक्ति कवि की स्वलिखित है तथा प्रथम और तृतीय मेघदूत से ली गई हैं।

---

१ विपंची=वीणा। यस्मिन्=यैश्यजे।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए मेघ से कहता है—

(आलोके ते निपतति)

उत्सगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणा
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचित्
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्छनां विस्मरन्ती ॥२॥२४॥

प्रस्तुत काव्य में इस श्लोक की एकान्तरित तथा द्व्यन्तरित रूप से समस्या पूर्ति का चमत्कार देखिये। कमठ मेघ (मरुभूति) को उसकी पत्नी वसुन्धरा का हाल बताते हुए कहता है—

उत्सगें वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणा
गाढोत्कण्ठं करुणविरुतं विप्रलापायमानम्।
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा
त्वामुद्दिश्य प्रचलदलकं मूर्छनां भावयन्ती ॥३॥३८॥

तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचित्
दन्ताग्रोत्थैः कुसुममृदुभिर्रङ्गलीभिस्पृशन्ती।
ध्यायं ध्यायं त्वदुपगमनं शून्यचिन्तानुकण्ठी
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्छनां विस्मरन्ती ॥३॥३९॥

मूल श्लोक के भाव को सुरक्षित रखते हुये कवि ने किस सुन्दरता से यहां समस्यापूर्तिकी है।

कालिदास का यक्ष अपनी प्रेयसी से चित्र में ही नहीं मिल पाता है, लेकिन इस काव्य में विरहिणी स्त्री की दीनता का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि वह स्वप्न में भी अपने प्रेमी से नहीं मिल पाती है —

तीव्रावस्थे तपति मदने पुष्पबाणैर्मदंगम्
तल्पेऽनल्पं दहति च मुहुः पुष्पभेदैः प्रक्लृप्ते।
तीव्रापाया त्वदुपगमनं स्वप्नमार्गेऽपिनाऽयम्
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥४॥३४॥

समस्या पूर्ति के साथ साथ भाव सौन्दर्य भी इस पद्य में दर्शनीय है।

समस्यापूर्ति के बन्धन में आकर कवि को कहीं कहीं मूलपंक्ति के भाव को विपर्यस्त भी करना पड़ा है और प्रसंगांतर में कही हुई बात को प्रसंगांतर में कहना पड़ा है—

यत्तन्मौढ्याद्दहु विलसित न्यायमुल्लघ्य वाचा
तन्मे मिथ्या भवतु च मुने दुष्कृत निन्दितस्य
भक्त्या पादौ जिन विनमत पार्श्वे मे तत्प्रसादात्
मा भूदेवं क्षणमपि सखे विद्युता विप्रयोग ॥४॥६५॥

काव्य के अन्त में कमठ भगवान् पार्श्वनाथ से अपने अपराधों के लिए क्षमा याचना करते हुए प्रार्थना करता है—हे भगवान्! आपके चरणों की कृपा से मेरा सम्यग्ज्ञान (विद्युत्=विशेष दीप्ति=सम्यग्ज्ञान) से विश्लेष न हो। यहां पर कवि ने विद्युत् शब्द का बिजली अर्थ न लेकर सम्यग्ज्ञान अर्थ लिया है।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी के वाम ऊरु को लेकर कहता है —

वामश्चास्या कररुहपदै र्मुच्यमानो मदीयै
र्मुक्ताजाल चिरपरिचित त्याजितो दैवगत्या।
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसवाहनानाम्
यास्यत्यूरु सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥२॥३५॥

इस श्लोक की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर कवि ने विभिन्न प्रसग प्रस्तुत किए हैं। कमठ मरुभूति को अलकापुरी के मार्ग वर्णन तथा वसुन्धरा की अवस्था बताने के बाद कहता है —

सदिष्ट च प्रणयमधुर कान्तया मे द्वितीयै
प्राणै प्राणा नवजलधर सन्निति त्वा प्रतीदम्।
तत्कर्तुं त्वं त्वरय लघुन किमिवेर न कुर्या
वामश्चास्या कररुहपदै र्मुच्यमानो मदीयै ॥२॥१॥

हे मेघ! (मरुभूते) प्राणों के समान प्रिय मेरी पत्नी ने भी इस तरह से प्रणय मधुर वचन कहे हैं। इस कार्य के करने के लिए तुम शीघ्रता करो। मेरे नाखूनों से पत्रकर (न मर कर) तथा अपनी प्रेयसी के लिए मनोहर (वाम) होकर अर्थात् उसे पाकर तुम क्या क्या नहीं करोगे अर्थात् सब कुछ करोगे।

दूसरी पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुए कवि कहता है —

भो भो भिक्षो मयि सदरपि क्व प्रयास्यस्यवश्य
त्वामुद्देतिप्रक्षिपतनकै सारयिष्य तदग्रम्।
न प्राणास्त्वामवटयितुमल तावको निर्णयो वा
मुक्ताजाल चिरपरिचित त्याजितो दैवगत्या ॥३॥२॥

कमठ के बहुत कुछ कहने पर भी मरुभूति शान्त ही रहता है, तब कमठ उससे कहता है—हे भिक्षो! मेरे क्रुद्ध होने पर तुम कहां जाओगे? मैं तुम्हें अपनी तलवार

की नोक का अवश्य शिकार बनाऊंगा। चिरकाल से अभ्यस्त मौक्तिक आभूषणों को दैववश छोड देने का तुम्हारा निर्णय भी तुम्हारे प्राणों को बचाए नहीं रख सकता।

इसके बाद तृतीयपंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुए कवि ने लिखा है —

किं ते वैरि द्विरदनघटा कुम्भ सभेदनेषु
प्राप्तस्थेमा समरविजयी वीरलक्ष्म्या करोऽयम्।
नास्मत्खग श्रुतिपथमगाद्कणनोत्सवानाम्
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानाम् ॥४॥३॥

कमठ मरुभूति से कहता है—हे भिक्षो! वैरियों के हाथियों के कुम्भस्थल को विदीर्ण करने में अभ्यस्त, समर विजयी, युद्ध में कार्य करने के बाद (सम्भोगान्ते) मेरे हाथों द्वारा सवाहन करने योग्य तथा वीर लक्ष्मी के बाहुस्वरूप इस मेरे खग का क्या तुमने नाम नहीं सुना है?

अन्त में अपनी तलवार के आघात से मरुभूति की जंघा के काप जाने का प्रसग लेकर कमठ कहता है —

अस्युद्गीर्णे मयि सुरभटास्तेऽपि बिभ्यत्यसभ्य
कस्त्वं स्थातु भण मम पुर किं न जिह्रेषि भिक्षो।
भावत्कोऽयं मदसिनिशितालघातरस्ता
यास्यत्यूरु सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥४॥४॥

कमठ कहता है—मेरे तलवार हाथ में लेने पर स्वर्ग तक के योद्धा डरते हैं। असभ्य! तू तो क्या ही है? हे भिक्षो! तुझे लज्जा नहीं आती। मेरी तलवार के विस्तृत आघात से सरस कदलीस्तभ के समान गौरवर्ण वाली तेरी यह जघा काप उठेगी।

इन श्लोकों में पाठकों ने देखा होगा कि मूल पक्ति के भाव को किस तरह प्रसगान्तर में कवि ने बैठाने की चेष्टा की है। इसी तरह के अन्य स्थल भी विज्ञ पाठकों के सामने काव्य में आ सकते हैं। काव्य की जटिलता ऐसे ही स्थलों से बढ गई है।

जैसा कि पहिले कहा गया है कि कथानक की दृष्टि से काव्य शिथिल है और अनावश्यक वर्णनों की काव्य में भरमार है। इसी तरह रस के विचार से भी यही कहना होगा कि काव्य में इसका पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है। कवि का मूल लक्ष्य केवल मेघदूत की समस्यापूर्ति ही रहा है और इसमें कवि को पूर्ण सफलता भी मिली है, लेकिन स्थान २ पर काव्य में दुरूहता और नीरसता आ गई है। पार्श्वनाथ और कमठ की विभिन्न जन्मों की कथाओं को एक साथ लेकर लिखे जाने से

कथानक में वह सरलता और स्वाभाविकता नहीं, जैसी कि किसी खण्डकाव्य में होनी चाहिए। मार्ग-वर्णन में काव्य मेघदूत का पूर्ण अनुकरण करता है। इसके बाद मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा की विरहावस्था भी मेघदूत जैसी ही वर्णित की गई है। फिर जिस स्थान से मेघदूत में सन्देश कथन प्रारम्भ होता है वहा से मेघदूत और इस काव्य में कोई समानता नहीं दिखलाई पड़ती है। पार्श्वाभ्युदय काव्य में सन्देश कथन जैसी कोई चीज ही नहीं है। कमठ मरुभूति की धीरता, सौजन्य और सहिष्णुता से प्रभावित हो वैरभाव को छोड़कर उसकी शरण में चला जाता है और अपने अपराधों के लिए पश्चात्तापपूर्वक क्षमायाचना करता है तथा सम्यग्ज्ञान की भिक्षा मांगता है। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। अन्त में और भी तापस भक्ति भावना के साथ पार्श्वनाथ की शरण में आते हुए बतलाए गए हैं। इस तरह काव्य के अंत में पार्श्वनाथजी की महिमा बतलाकर कवि ने काव्य को भक्तिपरक अवश्य बना दिया है।

यों तो काव्य में जैन धर्म का कहीं पर भी कोई विशेष सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया गया है लेकिन कहीं कहीं कवि ने जिनालयों[1] तथा अर्हत् का अवश्य उल्लेख किया है। कैलास पर्वत पर भी जैन मन्दिर के होने का कवि उल्लेख करता है। मेघदूत में उज्जयिनी के पास महाकाल का मन्दिर बतलाया गया है, लेकिन इस काव्य में महाकाल नामक किसी अरण्य को लेकर वहा पर जैन मुनियों तथा जैन मन्दिरों की स्थिति बतलाई गई है और मेघ को यथासमय जैन मन्दिरों में पूजा करने का आदेश दिया गया है। काव्य के अन्त में तो श्री पार्श्वनाथजी की महिमा वर्णित की ही गई है। इसके अतिरिक्त काव्य में जैन धर्म का और अधिक कुछ भी प्रभाव नहीं है।

काव्य में कहीं कहीं पर बड़ी सुन्दर सूक्तियां भी पाई जाती हैं -

(I) दानादन्यन्न खलु सुकृतं देहिना श्लाघ्यमस्ति ॥१॥३८॥

(II) पापापाये प्रथममुदितं कारणं भक्तिरेव ॥२॥६४॥

(III) रम्यस्थानं त्यजति न मनो दुर्विधानं प्रतीहि ॥१॥७४॥

समग्र काव्य के अनुशीलन करने के बाद यह निष्पक्ष रूप से कहा जा सकता है कि समस्या पूर्ति की दृष्टि से यह काव्य अपने ढंग का अद्वितीय है। कहीं कहीं कालिदास के मूलभावों को कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से पल्लवित किया है और

---

[1] देखिए—२ रा सर्ग २ रा श्लोक, ८ वा श्लोक, ३२ वा श्लोक और ७६ वा श्लोक।

कहीं २ कालिदास के भाव को प्रसगान्तर में कवि ने बडी सूक्ष्मता से सन्निविष्ट करने की चेष्टा की है। मेघदूत को समस्या मानकर लिखे गए काव्यों में यह काव्य सर्व प्रथम है। जैन कवियों ने आगे चलकर इसी काव्य से इस क्षेत्र में आगे बढने की प्रेरणा प्राप्त की है। काव्य में विभिन्न नदी, शैल, नगरी और ऋतुओं के सरस वर्णन से लेखक की भावुकता और कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है। जैन धर्म के आचार्य होते हुए भी लेखक का ऐसी सरस रचना लिख सकना वस्तुत उनकी विद्वत्ता और सहृदयता सिद्ध करता है। साथ में भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र को गुम्फित कर देने से काव्य की धार्मिक दृष्टि से भी उपादेयता बढ़ गई है। संस्कृत साहित्य में अद्वितीय काव्य रत्न होने के साथ साथ जैन साहित्य में भी इस काव्य का विशिष्ट स्थान है।

विक्रम कवि का नेमिदूत (वि० चतुर्दश शतक)

नेमिदूत काव्य किसी विक्रम कवि का लिखा हुआ है। यह कवि कहा का रहने वाला था, इसका जन्म कब हुआ और इस काव्य की रचना इसने कब और कहा की—इन प्रश्नों का उत्तर अभी तक नहीं मिल सका है। इस काव्य के निम्न लिखित श्लोक —

सद्भूतार्थप्रवरकविना कालिदासेन काव्या
दन्त्य पाद सुपदरचितान्मेघदूताद् गृहीत्वा।
श्रीमन्नेमेश्चरितविशद सागणस्यागजन्मा
चक्रे काव्यं बुधजनमन प्रीतये विक्रमाख्य ॥१२६॥

में कवि ने अपने लिए सागणस्यागजन्मा बताया है। मूल की कितनी ही प्रतियों में 'सागण' के स्थान पर 'साभण' मिलता है, किन्तु काव्य की पुरातन प्रतियों एव टीका के आधार पर सागण ही ठीक प्रतीत होता है।

---

१ पार्श्वाभ्युदय काव्यम्—श्री के० बी० पाठक द्वारा पूना तथा श्री योगिराट पण्डिताचार्य, श्रवणबेलगोलनिवासी की टीका के साथ बम्बई से प्रकाशित।

इस कवि के सम्बन्ध में विद्वत्समाज में निम्नलिखित मत पाए जाते हैं —

१ जैन साहित्यमहारथी श्री मोहनलाल दलीचंद देसाईजी के 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' में एवं श्री छोटालालजी द्वारा लिखित 'जैन मेघदूत की प्रस्तावना' में इस कवि को सागण सुत मान कर गुर्जर महाकवि ऋषभ दास का भ्राता माना गया है।

२ पं० नाथूराम प्रेमी ने अपने "जैन साहित्य का इतिहास" में खंभात के शिला लेख को देखकर तथा यश कीर्ति सहस्र कीर्ति की कीर्ति शाखा और हुम्बड ज्ञाति को देखकर इस ग्रन्थकर्ता को १४ वीं शताब्दी का दिगम्बर माना है।

३ मुनि विद्याविजयजी ने नेमिदूत पद्यानुवाद की प्रस्तावना में इस कवि को १७ वीं शताब्दी के कर्णावती के मन्त्री सागण का पुत्र बतलाया है।

इन मतों के अतिरिक्त श्री मुनि विनयसागरजी ने स्व संपादित नेमिदूत की भूमिका में अपना मत संक्षेप में इस तरह दिया है। उन्हें मूल काव्य की ३ प्रतियां प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक तो वि० सं० १४७६ की लिखित है और दूसरी सोलहवीं सदी की। एक प्रति अजमेर के ढड्ढाजी के संग्रह में देखने को प्राप्त हुई है। यह वि० सं० १८७२ की लिखी हुई है। जब मूल काव्य की ३ प्रतियां १५ और १६ वीं शताब्दी की लिखित प्राप्त हुई हैं, तब काव्यकर्त्ता १७ वीं शताब्दी में कवि ऋषभ दास का भाई कैसे हो सकता है।

दूसरे, खरतर गच्छालंकार युग प्रधानाचार्य गुर्वावलि (जो कि १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की रचना है) में श्री जिनपति सूरिजी के शिष्य श्री जिनेश्वर-सूरिजी ने सं० १२८४ से सं० १३३० तक लगभग १२-१५ शिष्य कीर्ति नदी के दीक्षित किए थे। उनमें यश कीर्ति का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त इसी गुर्वावलि में एक बात और है कि वि० सं० १३०६ में श्री जिनेश्वर सूरिजी की अध्यक्षता में यात्रार्थ जो संघ निकला था वह क्रमशः यात्रा करता हुआ खंभात पहुंचा था। वहां मंदिर में पूजा माला की बोलियां हुई थीं, उनमें सागणसुत ने चमरधारक पद धारण किया था।

तीसरे, जिस हुम्बड ज्ञाति को देखकर कवि को दिगम्बर बतलाया गया है, वह हुम्बड ज्ञाति श्वेताम्बरों [redacted] भी होती है और आज भी मालवान्तर्गत प्रतापगढ़ में लगभग ७५ घर हुम्बड ज्ञाति के हैं, वे सब श्वेताम्बर ही हैं। पहिले भी १२ वीं शताब्दी के युगप्रधान दादा-पद धारक श्री जिनदत्त सूरिजी महाराज भी श्वेताम्बर हुम्बड ज्ञाति के ही थे।

चौथे, जो प्रथम प्रति सं० १४७२ की उपलब्ध हुई है, केवल उसी में मन्त्री

विक्रम ऐसा शब्द मिलता है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि मन्त्रिदलीय होने के कारण मन्त्रि शब्द कवि का विशेषण रहा होगा।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि विक्रम कवि न तो ऋषभदास का भाई था, न हुम्मड ज्ञातीय दिगम्बर ही था और न उनके गुरु ही दिगम्बर थे, किन्तु यह खम्भात का रहने वाला तथा १४ वीं शताब्दी के श्वेताम्बर एवं खरतर गच्छाधीश श्री जिनेश्वर सूरि का श्रावक भक्त था।

इस कवि का केवल यही एक ग्रन्थ उपलब्ध है।

नेमिदूत की कथा

इस काव्य की कथावस्तु जैनियों के २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी के जीवन से सम्बद्ध है। काव्य की कथा वस्तु को सम्यक् हृदयगम कराने के लिये कुछ पूर्व कथा भी दी जा रही है। द्वारिका के यदुवंशी राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी के भाई थे। श्री नेमिनाथजी इन्हीं समुद्रविजय के ज्येष्ठ पुत्र थे। यह बचपन से ही विषय पराङ्मुख थे। अपने माता पिता तथा श्रीकृष्ण के आग्रह से यह मथुरा के राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती से विवाह करने को तैयार हो जाते हैं। द्वारिका से बरात मथुरा आती है। ज्योंही बरात महाराज उग्रसेन के महल के पास आती है, उसी समय भगवान् नेमिनाथ को पशुपक्षियों की करुणापूर्ण चीत्कार सुनाई देती है। पशु पक्षी मूक भाषा में भगवान् से अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं। सारथि के मुख से यह सुनकर कि उनके विवाह के उपलक्ष्य में दी जाने वाली रसोई में बनने वाले मांस के लिये इन पशु पक्षियों को बाड़े और पिंजरे में बन्द किया गया है और मरने के भय से यह सब चिल्ला रहे हैं, करुणानिधान भगवान् नेमिनाथ उन पशु पक्षियों को बन्धन मुक्त करने का सारथि को आदेश दे देते हैं। भगवान् की आज्ञा मानकर सारथि बाड़े और पिंजरे में घिरे हुये समस्त पशु पक्षियों को मुक्त कर देता है। सारथि के इस कार्य से प्रसन्न होकर भगवान् नेमिनाथ मुकुट के सिवा अपने समस्त आभूषण उसे पुरस्कार में दे देते हैं और रथ को वापिस लौटाने की आज्ञा देते हैं। श्री नेमिनाथजी के रथ को वापिस लौटता देख उनके सारे सम्बंधी उनसे वापिस न लौटने तथा राजा उग्रसेन की कन्या से विवाह करने का अनुरोध करते हैं। श्री नेमिनाथजी उत्तर देते हैं आप मुझे जिस सम्बन्ध में जोड़ना चाहते हैं, मैं उससे अधिक पवित्र और विशाल सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ। मैं किसी एक को ही अपना नहीं बनाना चाहता, न स्वयं ही किसी एक का रहना चाहता हूँ, किन्तु संसार के समस्त प्राणियों से प्रेम सम्बन्ध जोड़कर मैं सभी का बनना चाहता हूँ। तदनन्तर रथारूढ हो भगवान् आगे बढ़ जाते हैं और द्वारिका के लिए प्रस्थान कर देते हैं। द्वारिका पहुंच कर भगवान् नेमिनाथ संसार से विरक्त हो नगरी छोड़कर रैवतक (गिरनार) पर्वत पर योगाभ्यास और तपश्चर्या में लग जाते हैं।

जब राजीमती को यह वृत्तान्त मालूम होता है, वह मूर्छित होकर गिर पड़ती है। दासियों द्वारा शीतोपचार किए जाने पर किसी तरह उसकी मूर्छा दूर होती है। श्री नेमिनाथजी द्वारा परित्याग कर दिए जाने पर भी उसका मन उनकी ओर ही लगा रहता है। वह उन्हें अपने मन में पति रूप से ही मानती है और एक वृद्ध ब्राह्मण को श्री नेमिनाथजी के पास उनकी कुशलवार्ता जानने के लिए भेजती है। तदनन्तर पिता की आज्ञा से वह स्वयं रैवतक पर्वत पर एक सखी के साथ पहुंचती है। इस प्रकार विरह विधुरा राजीमती के अपने प्रिय के साथ अनुनय विनय से काव्य का प्रारम्भ होता है।

अपनी दीन दशा का वर्णन करते हुए राजीमती श्री नेमिनाथजी से पर्वत शृंग छोड़कर द्वारिका चलने की प्रार्थना करती है। इस प्रसंग में विविध प्रकार से द्वारिका नगरी के सौंदर्य और वैभव का वर्णन किया गया है। राजीमती विविध उपायों से श्री नेमिनाथजी को सांसारिक सुखों का उपभोग करने के लिए प्रेरित करती है। रैवतक पर्वत से द्वारिका तक के मार्ग तथा मार्ग में पड़ने वाले विविध प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। रैवतक पर्वत से नीचे उतरने पर स्वर्ण रेखा नदी के दूसरे तट पर स्थित वामनपुरी, तदनन्तर समुद्र के किनारे किनारे चलते हुए भद्रा नामक नदी और फिर उसको पार कर पौर नामक एक नगर का उल्लेख किया गया है। इसके बाद गन्धमादन तथा वेणुल नाम के एक और पर्वत के बाद द्वारिका पहुँचने का श्रीनेमिनाथजी से अनुरोध किया गया है। इस प्रसंग में द्वारिका नगरी का विविध भाव भंगिमाओं के साथ बड़ा ही सरस चित्र अंकित किया गया है। राजीमती के विविध प्रकार से द्वारिका लौटने के आग्रह करने पर भी जब श्री नेमिनाथजी का हृदय द्रवीभूत नहीं होता है, तब उसकी सखी राजीमती की विरहावस्था का बड़ा ही करुण वर्णन करती है और श्री नेमिनाथजी से द्वारिका लौट चलने की प्रार्थना करती है।

अन्त में श्री नेमिनाथजी राजीमती पर दयाभाव दिखलाते हैं और धर्मोपदेश द्वारा मोक्षपुर की प्राप्ति के लिए उसको योग की शिक्षा देकर अपनी सहचरी बना लेते हैं। सांसारिक सुखों को त्यागकर राजीमती भी मोक्षपुरी के सतत आनन्द का श्री नेमिनाथजी के साथ उपभोग करने लगती है।

काव्य समीक्षा

मेघदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्यापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। सम्पूर्ण काव्य में १२१ श्लोक हैं। पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा काव्य में कोई विभाजन नहीं है। काव्य के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें श्री नेमिनाथजी को दूत बनाया गया होगा पर ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः समग्र काव्य राजीमती के विरह तथा विलाप के वर्णन से भरा हुआ है। अतः यदि इस

काव्य का नाम राजीमती विप्रलम्भ अथवा राजीमती विलाप रक्खा गया होता तो कुछ भी अनुचित न होता। मेघदूत के पद्यों के अंतिम चरणों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखे जाने के कारण इस काव्य को भी दूत काव्य जैसा मानकर और श्री नमिनाथजी के चरित्र की प्रधानता होने के कारण इस काव्य का नाम नेमिदूत रख दिया गया है।

मेघदूत में अपनी प्रेयसी के वियोग में नायक की विरहावस्था वर्णित की गई है। इसके विपरीत नेमिदूत में नायिका की विरहावस्था का चित्रण पाया जाता है और संसार से विरक्त नायक को अपनी ओर अनुरक्त करने के लिये नायिका उससे अनुनयविनय करती है। काव्य में किसी को दूत बना कर नहीं भेजा गया है। स्वयं राजीमती अपने प्रिय के पास जाकर अनुनय विनय करती है। अन्त में उसकी सखी ही श्री नेमिनाथजी से राजीमती की मानसिक अवस्थाओं और विरहवेदना का निवेदन करती है। इस प्रकार कवि ने राजीमती के शील और लज्जा की बड़े सुन्दर ढंग से रक्षा की है और राजीमती को एक पति परायणा साध्वी भारतीय स्त्री के रूप में अंकित किया है। काव्य में विप्रलम्भ शृंगार और शान्तरस का अपूर्व संगम दिखलाया गया है काव्य का प्रारम्भ राजीमती के विरह वर्णन से ही होता है। श्री नेमिनाथजी के विरह में व्यथित राजीमती उनसे द्वारिका लौटने की प्रार्थना करते हुये कहती है –

सा त्वं दूना मनसिजशरैर्यादवेश त्वभावं
रक्षत्यास्त शरणगमसौ ह्यनियम्यति धर्मे ।
तस्मात् स्वामिन्निन भवदधीनासुमभ्यर्थये त्वा
याञ्चामोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥

तस्य प्राणानव तव मतो जीवरक्षैव धर्मो
धासार्थं च सुरविरचिता ता पुरीमेहि यस्याः ॥२६॥

त्वा यावेऽहं न पथि भवता क्वापि कार्यो विलम्बो
गन्तव्यात सपदि नगरी स्था यत सा त्वदम्बा।
मुक्ताहारा सकलनयना त्वद्वियोगार्तिदीना
कार्श्येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥३१॥

अपनी प्रार्थना को और भी सबल बनाने के लिये राजीमती ने श्री नेमिनाथजी की माता की दशा का वर्णन कर बड़ी सुन्दर युक्ति प्रदान की है।

प्रार्थना के अन्त में राजीमती श्री नेमिनाथजी से कहती है –

मत्वा पूर्वं पितृमुखगुरून् तान्विसृज्याथ बन्धून्
सौधं मा च द्वयमपि ततोऽलङ्कुरुष्वार्द्रचित्त ।

यन्ति श्रीकं द्रवति न मनस्त्वां विना यादवेन्दो
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥८७॥

इस श्लोक में सीध के साथ अपनी करुण दशा की भी बड़े गूढ ढंग से राजीमती ने व्यंजना की है।

राजीमती के अनुनय विनय करने पर भी जब श्री नेमिनाथजी उससे विरक्त ही रहते हैं, तब उसकी सखी फिर उसकी विरह-वेदना और करुण-दशा का वर्णन करती है। राजीमती के विरह वर्णन में काव्य में ३३ छन्द (९०-१२१) लिखे गए हैं। क्या भाव और क्या भाषा दोनों ही दृष्टि से यह पद्य बड़े सुन्दर हैं और राजीमती का करुण चित्र पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। सखी राजीमती का वर्णन करते हुए कहती है —

अस्वीकारात्सुभग भवता कि्लष्टशोभा कियद्भि-
र्मुग्धीमन्तर्विरहशिखिना वासरैर्दह्यमानाम्।
एना शुष्यद्वदनकमलां दूरविध्वस्तपाथाम्
जातां मन्ये तुहिनमथिता पद्मिनीं वाऽन्य रूपाम् ॥९०॥

आश्वासस्त्या मृदुकरपरिष्वङ्गसौख्यानि सख्या
पश्यास्मद्या मुखमनुदितं म्लानमस्मेरमश्रि।
उष्णतापात्सुमुखमिव तं कैरविण्या वियोगा
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥९१॥

प्रिय वियोग में राजीमती को समय काटना भी कठिन हो गया है। सखी कहती है —

या प्रागस्या क्षणमिव नवैर्गीतवार्ताविनोदै
रासीत् शय्यातल विगलितैः गल्लभाग विलग्य।
रात्रिः स त्वत्सङ्गशतसमा त्वत्कृते तप्तगात्री
तामेवोष्णैः विरहजनितैरश्रुभिर्यापयन्ती ॥९२॥

प्रिय विरह विह्वल राजीमती न अच्छी तरह से सोती है और न उसे जागता हुआ ही कह सकते हैं —

अन्तर्भिन्ना मनसिजशरैः मीलिताक्षी मुहूर्तं
लब्ध्वा संज्ञामियमथ दशाऽवीक्षमाणाऽसिर्द्रिना।
शय्योत्सङ्गे नव किसलयस्रस्तरे शर्म लेभे
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता ॥९३॥

राजीमती स्वप्न में भी नेमिनाथ को देखती है, लेकिन दुर्भाग्य कि वार्तालाप करने की चेष्टा करते ही उसकी निद्रा भग हो जाती है —

राज्ञो निद्रा कथमपि चिरात् प्राप्य यावद्भवन्तं
लब्ध्वा स्वप्ने प्रणयवचनै किंचिदिच्छामि वक्तुम् ।
तावत्तस्या भवति दुरितै प्राक्कृतै मे विराम
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगमं नौ कृतान्त ॥११३॥

कामदेव के क्रुद्ध होने का राजीमती ने बड़ा ही उपयुक्त कारण दिया है। वह कहती है —

मन्नाथेन ध्रुवमवजितो रूपलक्ष्म्या तपोभि-
स्तद् वैरान्मामिषुभिरबला हन्त्यशक्तो मनोभू ।
इत्थ्या तप्तैरिति मम निशि स्रस्तरे चिन्तयन्त्या
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशा पतन्ति ॥११४॥

सन्देश के अन्त में राजीमती अपनी सखी के द्वारा श्री नेमिनाथ को कहलाती है —

सचिन्त्यैवं हृदि मयि दया धारयन् तत्प्रसीद
स्वामिन्निर्वापय वपुरिद स्वागसंगामृतेन ।
यत्सन्तप्यानिशमतितरा प्राणलावण्यशेष
गाढोष्माभि कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभि ॥११६॥

दु ख येनानवधि बुभुजे त्वद्वियोगादिदानीं
सयोगात्तेऽनुभवतु सुखं तद्वपुर्मे चिराय ॥११७॥

राजीमती के सन्देश को सुनाने के बाद उसकी सखी अन्त में फिर कहती है —

तस्माद्बाला स्मरशरचयै दु सहैर्जर्जराङ्गीम्
सम्भाव्यैना नय निजगृहान् सत्वरं यादवेन्द्र !
प्रीत्या चास्या मधुर वचनाऽश्वासनाभि कृपार्द्र
प्रात कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथा ॥१२१॥

राजीमत्या सह नवघनस्येव वर्षासु भूयो
मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग ॥१२३॥

इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक काव्य में विप्रलम्भ शृंगार ही पाया जाता है। स्थान स्थान पर द्वारिका नगरी, उपवनों और क्रीड़ाशैलों का शृंगारमय ही वर्णन किया गया है, लेकिन काव्य के अन्त में शृंगार रस एकदम शान्त रस में बदल

जाता है। श्री नेमिनाथजी राजीमती को स्वीकार तो कर लेते हैं, सासारिक सुख भोग के लिए नहीं, प्रत्युत उसे भी मोक्ष मार्ग का पथिक बनाने के लिए—

तत्सख्योक्ते वचसि सदयस्ता सतीमेक चित्ता
सद्योध्येश स भवविरतो रम्य धर्मोपदेशैः
चक्रे योगाग्निभसहचरीं मोक्षसौख्याप्तिहेतो
केषा न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥१२४॥

तामानन्द शिवपुरि परित्याज्य ससार-भाजा
भोगानिष्टानभिमतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥१२५॥

इस तरह शृ गार रस का शान्त रस में पर्यवसान कर कवि ने मानव व्यवहार में एक उदात्त आदर्श की प्रतिष्ठा की है।

शान्त रस में पर्यवसान होने पर भी काव्य में शृ गाररसपूर्ण अनेक भावचित्र पाए जाते हैं। रैवतक पर्वत से द्वारिका के निकट क्रीडाशैल पर पहुचने के समय श्री नेमिनाथजी को देखकर वहा की सुन्दरियों की चेष्टाओं का बड़ा भावपूर्ण चित्र कवि ने अंकित किया है –

तस्मिन्नुद्यन्मनसिजरसा प्रांशुशालाग्रनाम
व्याजादाविष्कृत कुचयलीनाभिकाचीकलापा ।
संधास्यन्ते त्वयि मृगदृशस्ता विचित्रान् विलासान्
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥३०॥

द्वारिका नगरी का वैसा ही सरस और शृ गार रसयुक्त वर्णन किया गया है, जैसा कि मेघदूत में अलका नगरी का पाया जाता है। द्वारिका नगरी की रमणिया भी अलका की रमणियों की ही तरह बड़ी मुग्ध हैं। कवि कहता है—

रात्रौ यस्यामुपसरति भृश गात्रसंकोचभाजा
रागांधे शयनभवनेपूल्लसद्दीपवत्सु ।
प्रेम्णा कान्तैरभिमुखयुगं ह्यगन्धिर्यधूना
ह्रींमूढाना भवति विफल प्रेरितस्तूर्णमुष्टि ॥७४॥

द्वारिका नगरी में भी अलका नगरी की तरह रात्रि में रमणिया स्वच्छन्द अभिसार करती रहती हैं :—

पर्यांकाद्यमावनिषु शिशिरे कु कुमार्द्रे पदाकै
शीतोत्कंपाद्गतिविगलिते र्वालकै केशपाशात् ।
भ्रष्टैः पीनस्तनपरिसराद्दोधमाल्यैश्च यस्या
नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥८०॥

समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुए भी कवि ने अपनी रचना में कहीं पर भी कृत्रिमता नहीं आने दी है। हर चतुर्थ पंक्ति ऐसी ही प्रतीत होती है मानों पद्य का स्वाभाविक अंग हो। काव्य की भाषा प्रसाद-गुणयुक्त है और काव्य में सर्वत्र प्रवाह दीख पड़ता है। लम्बे २ क्लिष्ट समास बहुत कम काव्य में आए हैं। काव्य की शैली का निम्नांकित कुछ छन्दों से पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।-

श्री नेमिनाथजी को द्वारिका लौट चलने का परामर्श देती हुई राजीमती कहती है —

> रम्या हर्म्ये क्व तव नगरी दुर्गमं शृंग क्व चाद्रि
> क्वैतत्काम्यं तव मृदु वपु क्व व्रत दुःखचर्यम्।
> चित्तग्राह्यं हितमिति वचो मन्यसे चेन्ममाल
> किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥१६॥

एक अन्य प्रसंग में द्वारिका नगरी का बड़ा ही आदर्श वर्णन किया गया है-

> व्याधिर्देहान्स्पृशति न भयाद् रक्षितुं शागपाणे
> र्मृत्युर्यो घोरो श्रवणपथगा कुत्रचिद् वाग्भाजाम्।
> कामक्रीडारससुखजुषां यत्कुनामर्थिकामान्
> वित्तेशाना न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ॥७०॥

> तुंगं शृंगं परिहर गिरेरेहि यावं पुरीं स्वां
> रत्नश्रेणीरचितभवनद्योतिताशांतरालाम्।
> शोभासाम्यं कलयति मनाग् नालका नाथ यस्या
> बाह्योद्यान स्थित हर-शिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या ॥७॥

समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुए भी कवि की कल्पना कहीं २ मेघदूत से टक्कर लेती है। मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी के लिये कहता है-

> श्यामास्वंगं चकित-हरिणी प्रेक्षणे दृष्टि पातं
> वक्त्र-च्छायां शशिनि शिखिनां बर्ह भारेषु केशान्। ।१४२॥ इत्यादि

इसी प्रकार नेमिदूत में भी श्री नेमिनाथजी के सम्बन्ध में कहा गया है –

> दुर्लंघ्यत्वं शिखरिणि पयोधौ च गाम्भीर्यमुर्व्यां
> स्थैर्यं तेजः शिशिनि मदने रूप सौन्दर्यलक्ष्मीम्।
> बुद्धे क्षान्तिं बुधरं कलयामीति वृन्दं गुणानां
> ह्यैकस्थ क्वचिदपि न ते भीरु साहश्यमस्ति ॥११॥

---

१ यया लक्ष्म्या दृश्यं दर्शनीयम्।

जिस प्रकार मेघदूत का यक्ष हिमालय से आती हुई वायु के सत्पर्श में प्रेयसी के स्पर्श सुख का अनुभव करता है, उसी प्रकार काम-सतप्त राजीमती भी श्री नेमि नाथजी के पास से आने वाली वायु के सम्पर्श से आनन्द का अनुभव करती है –

अस्मिन्नेते शिखरिणि मया यादवेशान्तिकात्ते
जीमूतास्म कणचयमुच सचरन्त पुरस्तात् ।
संसेव्यन्ते नियमविशिखोत्तसया नीपवाता
पूर्व स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ॥११५॥

मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुये शिप्रा नदी से उठते हुये पवन के सम्बन्ध में कालिदास ने लिखा है –

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकल कूजित सारसाना
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्री कषाय ।१।३१॥ इत्यादि

नेमिदूत में कवि ने अपनी कल्पना को और भी प्रौढता प्रदान की है। यहा पर शिप्रा पवन को प्रियतम के रूप में और भी अधिक साकार रूप दे दिया गया है:–

यस्या सान्द्रानुपवनलतावेश्मसु स्वेद बिन्दून्
मुष्णन्नगारसुरतजनितानुज्जयन्तीं निगाह्य ।
कुर्वन्तीरं निगलितपटा सेवते वारनारी,
शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारी ॥३३॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि ने समस्यापूर्ति के साथ साथ अपनी रचना में मूल भावों की भ. रक्षा की है। मेघदूत के पदों की चतुर्थ पंक्तियां प्रसंगान्तर में कदाचित् ही प्रयुक्त की गई हैं। क्या भाव और क्या भाषा, दोनों ही दृष्टि से काव्य सरस और सुन्दर है। अन्त में शान्त रस की प्रधानता होते हुये भी काव्य को विरह काव्य ही कहा जायगा। मेघदूत की समस्यापूर्ति के रूप में लिखे गये अन्य काव्यों की अपेक्षा यह काव्य कहीं अधिक प्रसाद गुण-युक्त है और लेखक की सहृदयता का परिचय देता है।

मेरुतुंग का जैन मेघदूत (वि० पचदश शतक)

जैन समाज में मेरुतुंग नाम के दो तीन विद्वान् हुये हैं। इनमें ग्रन्थकार के रूप में केवल दो ही प्रसिद्ध हैं। एक मेरुतुंग तो चन्द्रप्रभसूरिका शिष्य है और विक्रमीय चतुर्दश शतक उसकी समयमर्यादा है। इस विद्वान् ने महापुरुष-चरित्र अथवा उपदेशश शत, प्रबन्ध चिन्तामणि, विचार श्रेणी, धर्मोपदेश, थेरावली, षड्दर्शन विचार आदि ग्रन्थ लिखे हैं। जैन साहित्य में यह विद्वान् आचार्य मेरुतुंग के नाम से विख्यात है। द्वितीय मेरुतुंग अंचल-गच्छीय महेन्द्र प्रभसूरि का शिष्य है। यह द्वितीय मेरुतुंग ही जैन मेघदूत काव्य का रचयिता है और विक्रमीय पचदश शतक इसका कार्यकाल है।

मारवाड़ में स्थित नाणी ग्राम में पोरवाल वशीय वहोरा वैरसिंह का एक प्रसिद्ध परिवार था। वहोरा वैरसिंह की पत्नी का नाम नालदेवी था। उसके गर्भ से वि० स० १४०३ में हमारे काव्यकार का जन्म हुआ। बचपन का इसका नाम 'वस्तिक', 'वस्तो' या 'वस्तपाल' था। अचल-गच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री महेन्द्रप्रभ सूरि विहार करते करते इस ग्राम में आये। वहोरा वस्तिक ने उनसे दीक्षा ली। उस समय इस बालक का नाम मेरुतुंग रख दिया गया। बाल्यावस्था के साथ ब्रह्मचर्य का भी सयोग होने से इस बालक का विद्याध्ययन सुचारु रूप से चलता रहा। अपने समय की शिक्षा प्रणाली के अनुसार इस शिष्य ने संस्कृत, प्राकृत तथा इनसे सम्बद्ध विविध विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया। कालक्रम से उसके चरित्र, ज्ञान और क्रियाओं का जब सम्पूर्ण विकास हो चुका, तब उसके गुरु ने उसे वि० स० १४२६ में पाटन में सूरिपद प्रदान किया। इसके बाद वि० स० १४४७ फाल्गुन वदि एकादशी को उसे गच्छ नायक की पदवी दी गई। गच्छ और अपने सघ पर उसका अच्छा प्रभाव था। यह बात उसके बाद की कुछ टिप्पणियों से भी ज्ञात होती है। वि० सं० १४७१ में मार्गशीर्ष सुदि पूर्णिमा के दिन पाटन में इस विद्वान् का स्वर्गवास हो गया। अपने ६८ वर्ष के दीर्घ जीवन काल में यह विद्वान् सर्वदा अपने और समाज के विकास में लगा रहा। अंचल-गच्छ की पट्टावली तथा उसके रास इत्यादि से लेखक के समय के सम्बन्ध में उपरितन निर्णय हो सका है।

इस कवि ने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है—

१ जैन मेघदूत
२ सप्ततिका भाष्य टीका
३ लघुशतपदी
४ धातुपारायण
५ षड्दर्शन समुच्चय
६ बाल बोध-व्याकरण

७ इस व्याकरण की वृत्ति तथा
८ सूरिमन्त्रकल्पसारोद्धार इत्यादि।

लेखक ने प्राय. प्रत्येक ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति तो दी है परन्तु कहीं रचना काल का विवरण नहीं है। इसलिये प्रत्येक ग्रन्थ का समय निर्णय करना कष्ट साध्य है। केवल सप्ततिका भाष्य टीका की प्रशस्ति में लेखक ने ग्रन्थ रचना का समय दिया है –

> इत्स्य प्रशस्यस्मरणार्थमेतैर्गुर्विनेयवात्सल्यरसाभ्युपेतै ।
> व्यतानि नन्दाम्बुधि वेद सोम सवत्सरे (१४४९) सप्ततिभाष्य टीका ॥

इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों के रचनाकाल का निर्णय करना सम्भव नहीं है। लेखक ने इस मेघदूत के अन्त में ग्रन्थकार के रूप से अपना नाम नहीं दिया है, लेकिन सप्ततिकाभाष्य की वृत्ति की प्रशस्ति में अपने रचित ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए कवि ने मेघदूत का भी नाम लिया है–

> काव्य श्री मेघदूताख्यं षड्दर्शन समुच्चय ।
> वृत्ति र्बालावबोधाख्या धातुपारायणं तथा ॥
> एवमादि-महाग्रन्थनिर्मापण-परायणा ।
> चतुरणा चिर चेतश्चमत्काराय वेऽन्वहम् ॥

इसके अतिरिक्त इस मेघदूत के टीका कार श्री शील रत्न-सूरि ने अपनी टीका की भूमिका में ग्रन्थकार के रूप से श्री मेरुतुंग का स्पष्ट उल्लेख किया है। टीकाकार ने लिखा है–

> माधुर्येण मनोहरा परिणतौ सौख्यैकसंपादिका
> काम्या कल्पतरो फलावलिरिव स्फारा यदीया मुदम् ।
> वाग्दत्त विबुधव्रजाय स नवं श्रीमेघदूतं महा
> काव्यं श्री गुरुमेरुतुंगगण भून्चूडामणि र्निर्ममे ॥

प्रबन्ध चिन्तामणि का रचयिता मेरुतुंग इस मेघदूत के रचयिता से भिन्न है और प्रथम मेरुतुंग उसे ही समझा जाना चाहिये। महापुरुषचरित इत्यादि ग्रन्थों का लेखक भी यही है।

काव्य की कथाः—

यदुकुल शिरोमणि प्रभु नेमिनाथजी बाल्यावस्था से ही इन्द्रिय सुखों से उदासीन रहते थे। कुटुम्बी जनों के आग्रह से वे विवाह करने के लिये उद्यत हो जाते हैं। विवाह के अवसर पर सहस्रों पशुओं के बलि किये जाने का समाचार पाकर

घरबार, सहोदर और पत्नी आदि को त्याग कर मोक्षप्राप्ति के निमित्त तपस्या करने के लिये वे रैवतक (गिरनार) पर्वत पर चले जाते हैं। अपने पति का सर्वदा के लिये गृह छोड़कर चले जाने का वज्रपात सम समाचार सुन कर प्रभुनेमिनाथजी की पत्नी राजीमती एकदम मूर्च्छित हो जाती है। उसकी सखियां चन्दन और भीगे वस्त्र इत्यादि के शीतोपचार से जब उसे होश में ले आती हैं तब वह नवीन मेघों को देखकर एकदम पुकार उठती है—

एकः तावद्विरहिहृदयद्रोहकृन्मेघकालो
द्वैतीयीकः प्रकृतिगहनो यौवनारम्भ एव ।
तार्तीयीकः हृदयदयित सैष भोगाद्व्यरांसी-
त्युप न्याय्यान्न चलति पथो मानसं भावि हा किम् ॥४॥

इस प्रकार प्रिय वियोग में व्यथित राजीमती मेघ के द्वारा प्राणनाथ के पास अपना सन्देश पहुंचाने के विचार से सर्वप्रथम उसका स्वागत सत्कार करती है और फिर उसे अपने पति का परिचय देती है। इस प्रसंग में श्री नेमिनाथजी की बाल क्रीड़ा, उनके पराक्रम पूर्ण चरित, विविध वसन्त क्रीड़ायें, विवाह महोत्सव और गृह त्याग का वर्णन किया गया है। तदनन्तर राजीमती अपनी विरहावस्था का वर्णन करती है और फिर प्राणनाथ के लिये दिये जाने वाले अपने सन्देश को मेघ के लिये सुनाती है। मेघ द्वारा प्रभु नेमिनाथजी को सुनाये जाने वाले राजीमती के सन्देश को सुनकर उसकी सखियां उससे कहती हैं"-हे सखि, तू कहां और प्रभु नेमिनाथ कहां? मेघ कहां और तेरा यह सन्देश कहां? तेरा और उनका सम्बन्ध अब असम्भव है। तू चाहे जितना प्रयत्न करे, वीतरागी प्रभु अब तुझ से अनुराग नहीं कर सकते। तू उनकी आशा छोड़ दे। इस महामोह का प्रति बोध रूपी शस्त्र से नाश कर। राजीमती सखियों के वचनों को सुनकर शोक का परित्याग कर देती है और वीतराग प्रभु नेमिनाथजी के पास आकर व्रत ग्रहण कर लेती है। स्वामी के ध्यान से उसे तन्मयत्व (स्वामिमयत्व) प्राप्त हो जाता है। श्री नेमिनाथजी के ही समान वह भी रागद्वेष से रहित होकर मुक्ति पद प्राप्त करती है।

बस यहीं पर ही काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य समीक्षा

कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी यह काव्य कालिदास के मेघदूत से सर्वथा भिन्न है। जैनपरम्परा में उपलब्ध अन्य दूत-काव्यों की तरह इसमें समस्यापूर्ति भी नहीं है। हां, मन्दाक्रान्ता छन्द अवश्य अपनाया गया है। काव्य (सम्पूर्ण) चार सर्गों में विभाजित किया गया है और कुल १६६ श्लोक इस काव्य में हैं। काव्य की नायिका राजीमती अपने पति के पास मेघ को दूत बनाकर भेजती है। इसलिये इस काव्य का नाम मेघदूत है और जैनियों के २२ वें तीर्थंकर

श्री नेमिनाथ के जीवन चरित पर आधारित होने, तथा एक जैन विद्वान् की कृति होने के कारण इसे जैन मेघदूत कहा जाता है। लेकिन भाषा, शैली, विचार तारतम्य और रस की दृष्टि से यह काव्य एक स्वतन्त्र रचना है।

कवि का भाषा पर पर्याप्त अधिकार है, लेकिन जानबूझ कर काव्य को जटिल बनाया गया है। एक पद्य में एक साथ चार चार या पाच पाच अलकार भी पाये जाते हैं। देखिये, निम्नलिखित श्लोक में कामदेव की युद्ध-सज्जता का वर्णन करते हुये कवि क्या कहता है—

> यानस्पत्या' कलकिशलयै- कोशिकाभि प्रवालै
> तस्या राजन्निव तनुभृतो रागलक्ष्मीनिवासा ।
> उद्यन्मोह प्रसवरजसा चाम्बर पूरयन्तोऽ
> भीकामीष्टा मलयमरुत कामवाहा' प्रसस्रु ॥२॥२॥

सुन्दर पत्रों और नवीन पल्लवों द्वारा कामदेव की राग रूपी लक्ष्मी के साक्षात् निवास स्थान की तरह वृक्ष शोभायमान थे। मन में राग उत्पन्न करने वाले पुष्पों की रज से आकाश को भरती हुई, कामियों के लिये प्रिय और स्वेच्छा से प्रेरित मलयाचल की हवायें चल रही थीं।

इस श्लोक के पूर्वार्ध में अपह्नुति और रूपक अलकार हैं। जिस तरह किसी और राजा की सेना में लक्ष्मी-युक्त निवास होते हैं, उसी तरह कामदेव की सेना में भी राग रूपी लक्ष्मी से युक्त निवास बताये गये हैं। इस तरह रूपक और साथ में अपह्नुति है। उत्तरार्ध में उत्प्रेक्षा तो है ही। साथ में 'कामवाहा' में वाह शब्द अश्व का पर्यायवाची है। अश्वों के सम्बन्ध में 'उद्यन्मोह प्रसवरजसा' का अर्थ है—अज्ञान की प्रबलता से उत्पन्न करने वाली धूल के द्वारा। इसी तरह 'अभीकाभीष्टा' में भी श्लेष है। मलयमरुत के सम्बन्ध में अभीक शब्द का अर्थ है कामी पुरुष और अश्वों के प्रसग में अभीक शब्द का अर्थ है—अभय। निर्भय लोग ही घोड़ों पर चढ सकते हैं। इस तरह इस पद्य में चार अलकारों का प्रयोग है। यह तो केवल एक उदाहरण है। प्राय काव्य का प्रत्येक पद श्लिष्ट है और क्लिष्ट कल्पना से भरा हुआ है। काव्य प्रकाश में—

> श्रुतिमात्रेण शब्दाना येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
> साधारण' समग्राणा स प्रसादो गुण स्मृत' ॥

इस रूप से निर्दिष्ट प्रसाद-गुण तो इस काव्य में बहुत ही कम है।

कालिदस के मेघदूत की तरह इसमें भी मेघ को दूत बनाते समय उसकी कुशल-वार्ता पूछी गई है, उसका स्वागत किया गया है और उसके चरित्र की प्रशसा की गई है। फिर नेमिनाथ के चरित्र का वर्णन किया गया है। लेकिन मार्ग

वर्णन बिलकुल नहीं है। अत भौगोलिक ज्ञान की कोई बात इस काव्य में देखने में नहीं आती है।

काव्य का प्रारम्भ तो विप्रलम्भ शृंगार से ही है। अपने प्रिय के वियोग में राजीमती अत्यन्त व्याकुल है और मेघ को देखकर सहसा उसका हृदय और भी विचलित हो उठता है। वह कहती है—

हेतो कस्मादहिरिव तदाऽऽसज्जिनीमप्यमु च
न्मा निर्मोक्त्वचमिव लघु ‥ ऽप्यसौ तन्न जाने।
यद्वा दैवे वधति विमुखीभावमातोऽप्यमित्रे
सर्वस्य स्यात्किमु नियमने मादृशा न कील ॥७॥

तन्मास्मैव स्फुटति हि हिरुक् प्रेयसो हृन्ममैत
त्काऽऽरुण्यार्णवमुपतद् प्रेप्यास्यन्दमेतम् ॥८॥

अस्त्रासार पुरु विसृजती वारि कादम्बिनीव
दीना दुःखादथ दकमुचेमुग्धयाचेयुवाच ॥९॥

नेमिनाथ के चरित्र वर्णन के बाद अन्त में राजीमती फिर अपनी दीनावस्था का वर्णन करती हुई कहती है—

प्रागिर्देश्य दिनदिनमवस्तीक्ष्यवर्षेऽस्मत्
मभ्यासोऽस्मे ऽसर्दिनजगज्जीवनापानपीनम्।
सम्प्रत्युष्णोच्छ्वसितवशतो बाष्पधूमायमान
स्फोटं स्फोटं हृदयमिदक चूर्णशादीयते स्म ॥४॥७॥

कोकी शोकाद्धसतिविगमे वासरान्ते चकोरी
शीतोष्णर्तु प्रशमसमये मुच्यते नीलकण्ठी।
त्यक्ता पत्या तरुणिमभरे कञ्चुकश्चक्रिणे या
ऽसत्र राहद इव शुचामामर्म त्वामवं भो ॥४॥९॥

फिर अन्त में श्री नेमिनाथ के प्रति अपना संदेश बताते हुये वह कहती है—

हे नाथ! विवाह के अवसर पर अत्यन्त शान्त, (शीतल) नवीन शृंगार (माधुर्य) युक्त तथा उत्कृष्ट प्रेम (घृत) से पूर्ण मुझ को आपने औरों की तरह अपने हाथ से छुआ तक नहीं। आज मैं कामानल से अत्यन्त तप्त हूँ। किसी और से मेरा सम्पर्क भी नहीं हुआ। आप मुझे स्वीकार क्यों नहीं कर लेते?

हे नाथ! यदि आपको मुनि बनकर मुझे छोड़ना ही था, तो प्रथम मुझे स्वीकार

ही क्यों किया। आप पशु पक्षियों पर तो दया करते हो, लेकिन अपने इस भक्त को अपनी वाणी तक से सन्तुष्ट नहीं करते ?

हे नाथ ! अपने सम्बंधियों के आग्रह से प्रथम तो आपने विवाह स्वीकार किया। फिर अपने श्वसुर के द्वार तक से लौट गये। इस तरह तो चार वर्ष के बच्चे तक को धोखा नहीं दिया जाता है।

हे नाथ ! यदि बाल-क्रीड़ायें तथा अन्य पराक्रम लीलायें आपने केवल अपने गुरुजनों के मन को प्रसन्न करने के लिये ही कीं, तो मेरी-प्रसन्नता के लिये आप विवाह क्यों नहीं कर लेते। फिर वृद्धावस्था के निकट आने पर तपस्या कर लेना।

हे नाथ ! यह कामदेव अपने विषम बाणों से मुझे बहुत सता रहा है। अपने तिरस्कार की ज्वाला मुझे व्याकुल कर रही है। अपनी इस अचेतनावस्था में यदि मैं किसी खाई में कूद पड़ूं तो क्या होगा ? हे नाथ ! मुझ में किसी दोष का आरोप करके यदि मुझे छोड़ा होता तो उचित भी था। इस तरह तो आप पर एक निर्दोष स्त्री के परित्याग का कलंक लगेगा। बिना किसी बहाने के यम-राज भी प्राणियों को नहीं मारता है।

हे नाथ ! तुम्हारे वियोग में मुझे शीतल नदी अंगारपरिखा की तरह, रेशमी वस्त्र तुषाग्नि की तरह, चन्द्रमा दावाग्नि की तरह, कमल वृश्चिक की तरह और सारे आभूषण त्रिकटु की औषधि की तरह अप्रिय लगते हैं। पुष्प, ताम्बूल और मधुर भोजन विष के समान लगता है।

हे नाथ ! मुझे तुमसे तरह तरह की आशायें थीं लेकिन प्रव्रज्या के बहाने तुमने मेरा परित्याग कर दिया। फिर भी प्रव्रज्या के बाद अमृत (मोक्ष) को प्राप्त करने वाले ! तुमको मेरा नमस्कार है।

उपर्युक्त संदेश में कवि ने राजीमती के विरह को बड़े अच्छे ढंग से व्यञ्जना की है। इसके अतिरिक्त वसन्त वर्णन इत्यादि के प्रसंग में शृंगारमय वर्णन भी पाये जाते हैं। श्रीकृष्ण की रानियों की नेमिनाथ के साथ विविध क्रीडाओं का वर्णन बड़े सरस ढंग से किया गया है। यथा —

अन्या लोकोत्तर ! तनुमता रागपाशेन बद्धो
मोक्षं गासे कथमिति मितं सस्मितं भाषमाणा।
दर्पात् रक्तोत्पल विरचितेनेव दाम्ना कटीर
काचीदेशाप्रतिमिव तं चैनमेशा बबन्ध ॥२॥२१॥

काचिद्दामा अलद पिदध चन्दनस्यन्दसिक्तै
पत्निन्यस्तै सरसकुसुमैर्देवमुष्णम्य यस्य ॥२॥२॥

पूर्ण पूर सुरभि सलिलैः स्वर्ण शृंगाणि रंगात्
सारंगाक्ष्य स्मितकृतममुं सर्वतोऽप्यभ्यषिंचन् ।
धारा धाराधर ! सरलगास्ताश्च वारामपारा
स्मारादौऽगप्रसृमरशरासारसारा विरेजुः ॥२॥४५॥

नित्योन्निद्र पुरुपरिमल राजतेजोविराजि
स्पष्टश्रीकं वदनकमलं देव ते सेवतेऽद ।
स्थानभ्रष्टं जिनमिति पदस्येव कर्णावतंसी
चक्रे काचिद्दशशतदल लीलयोत्लूय तस्य ॥२॥४६॥

इस तरह कवि ने कृष्ण की पत्नियों की श्री नेमिनाथ के साथ सरस क्रीडाओं का बड़ा ललित वर्णन किया है। राजीमती के विरह वर्णन में उसकी सांसारिक सुखों के प्रति उत्कट उत्सुकता छिपी हुई है। कृष्ण पत्नियों की नेमिनाथ के साथ तरह तरह की विलासमय क्रीडायें भी शृंगार रस को ही पुष्ट करती हैं। पर अन्त में कवि ने काव्य का पर्यवसान शान्त रस में किया है। राजीमती की विरहवेदना देख कर तथा उसके सन्देश कथन पर उसकी सखियां उससे कहती हैं—

क्वासौ नेमिर्विषयविमुखस्तरसुरेच्छु क्व वा त्वम्
क्वासकोऽम्द, क्व पटुवचनैर्रोचिकं वाचनीयम् ।
किं कस्याग्रे कथयसि सखि ! प्राह चूडामणेर्वा
नो दोषस्ते प्रकृतिविकृते मोह एवात्र मूलम् ॥४॥३८॥

फिर वे महामोह को बोध रूपी शस्त्र से नष्ट करने का परामर्श देती हैं —

श्रीमान्नेमि र्व्यजयत महामोहमल्लं तदैव
त्वातरपत्नीं सखि ! मनुमहे बाधते यद्वदैर ।
किं त्वेव ते यदुकुलमणेर्वीरपत्न्या विसोढु
नैतम्न्याय्यं तदिममधुना बोधशस्त्रेण छिन्द्धि ॥४॥३९॥

इसके बाद श्री नेमिनाथ की विशेषता बतलाते हुये व कहती हैं —

रागाम्भोधौ ललित-ललना-चाटु वाग्भिर्मिर्य
संप्लाव्येत प्रतनुगरिमा स क्षमाभृद्गणोऽन्य ।
औन्नत्यं तत्तदचलगुरुश्चैव माध्यस्थ्यमंशो
धत्ते येन स्फुटयसुममुं स्पष्टमप्यत्तमास्ता ॥४॥४०॥

अन्त में सखियां राजीमती से कहती हैं—

हे बुद्धिशालिनि ! जिस तरह कोई असली हीरा कृत्रिम रंगों से नहीं रंगा जा सकता है, उसी तरह श्री नेमिनाथजी को भी तुम अपने हाव भाव और मधुर वचन इत्यादि से अपने में अनुरक्त नहीं कर सकती।

सखियों के इन वचनों को सुनकर राजीमती का मन शान्त हो जाता है और वह अपने स्वामी की तरह ही रागद्वेष से रहित हो जाती है। अन्त में कुछ ही दिनों में मुक्तिपद प्राप्त कर शाश्वत सुख का उपभोग करती है। इस प्रकार अन्त में काव्य का शान्त रस में पर्यवसान हो जाता है।

विचार तारतम्य और रस की दृष्टि से काव्य बड़ी उच्च कोटि का है। कवि ने पदे २ श्लिष्ट वाक्य रचना और अलकारों की भरमार से काव्य को दुरूह अवश्य बना दिया है। अलकारों के बाहुल्य से भाषा और भाव दबे हुए से हैं। प्रसाद गुण की रचना में कमी है। लेखक ने अपने व्याकरण ज्ञान का परिचय देने की पदे २ प्रबल चेष्टा की है। पदलालित्य और प्रसाद गुण की दृष्टि से विक्रम कवि का नेमिदूत और चारित्रसुन्दरगणि का शीलदूत कहीं उत्कृष्ट रचनाएं हैं। फिर भी जैन संस्कृत साहित्य में यह रचना एक विशिष्ट स्थान रखती है।[1]

चारित्रसुन्दरगणि का शीलदूत (वि० स० १४८७)

मेघदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्यापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। श्री चारित्र सुन्दर-गणि के सबध में शीलदूत के अन्त में आया हुआ –

दुर्गे रङ्गैरतिकजतट स्तम्भतीर्थाभिधाने
वर्षे हर्षाज्जलधिभुजगाम्भोधि चन्द्रप्रमाणे।
चक्रे काव्य वरमिह मया स्तम्भनेशप्रसादात्
सद्भि शोध्य परहितपरैस्तद्दोपैरसादात ॥१३१॥

यह श्लोक सिद्ध करता है कि लेखक ने वि० स० १४८७ में गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत स्तम्भन तीर्थ (खभात) में इस ग्रन्थ की रचना की। श्री चारित्रसुन्दर गणि सत्तपोगच्छ के नेता श्री रत्नसिंह सूरि के शिष्य थे। लेखक ने स्वयं इस बात को माना है जैसा कि काव्य की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है–

सोऽयं श्रीमानवनिविदितो रत्नसिंहाख्यसूरि
र्जीयाद् नित्य नृपतिमहित सत्तपोगच्छनेता ॥१२६॥

---

१ श्री जैन आत्मानन्द सभा भावनगर से प्रकाशित।

शिष्योऽमुष्याऽखिलबुधमुदे दत्तमुख्यस्य सूरे-
श्चारित्रर्दि धरणिवलये सुन्दरास्याप्रसिद्ध ।
श्चक्रे काव्य सुललितमहो शीलदूताभिधानम् ॥१२०॥

इस काव्य के अतिरिक्त लेखक ने श्री कुमारपाल महाकाव्य, श्री महीपालचरित और आचारोपदेश आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

काव्य की कथा

स्थूलभद्र नाम का एक जैन राजकुमार अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुन कर ससार से विरक्त हो जाता है और एक पर्वत पर अपना आश्रम बना कर रहने लगता है। एक बार श्री भद्र बाहु स्वामी से उसका साक्षात्कार होता है। वह उनसे जैन धर्म की दीक्षा लेता है तथा उनके आदेश के अनुसार अपनी नगरी में वापिस लौट आता है। वहा पर उसकी रानी कोशा उसको पुन गृहस्थाश्रम में आने के लिये प्रेरित करती है। इस प्रसग में वह अपनी दीनावस्था का वर्णन करती है, सयम के अतिरिक्त दानधर्म का भी महत्व बताती है और स्थूलभद्र से कहती है कि यदि तुम्हें पुण्य ही प्राप्त करना है तो कूप, वापी और तडाग इत्यादि के निर्माण से भी प्राप्त कर सकते हो। तुम्हें अपने बन्धुओं की उन्नति करनी चाहिये। पुन गगा में की हुई अपनी जल क्रीडाओं का भी वह स्थूलभद्र को स्मरण कराती है। दयाभाव को मुख्य धर्म बताकर परिजनों पर दया करने का भी स्थूलभद्र को परामर्श देती है। नगर छोडकर वन जाने की अपेक्षा प्रासाद के बाहर राज्य में ही स्थित क्रीडाशैल पर विहार कर पुन राजधानी लौट आने का वह अपने पति से अनुरोध करती है। इस प्रसग में राजधानी का बडा उदात्त और शृगारमय वर्णन करती है।

अपनी रानी के अश्रुगद्गद वचनों को सुनकर स्थूलभद्र कहता है— हे भद्रे ! मैंने पवित्र जैनधर्म स्वीकार कर लिया है। गुरु का उपदेश मेरे मन से नहीं हट सकता। तत्वस्वरूप को जान जानकर मेरा मन विरक्त हो गया है। मुझे अब विषयों से कोई राग नहीं रहा है। चित्रशाला भी वन के तुल्य दीख पडती है। युवावस्था में शरीर का जो सौन्दर्य रहता है, वह वृद्धावस्था में नहीं रहता। ससार को अनित्य मानकर मेरा मन धर्म में ही कल्याण समझता है। मैं अब स्त्री को विष तुल्य समझता हूँ। मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है, मोह मूर्च्छा भी समाप्त होगई है। मेरा चित्त निर्विकार है। मैं अपने शरीर को मृत्यु की वह्नि वृद्धावस्था के द्वारा ग्रस्त समझता हूँ।

स्थूलभद्र के वैराग्य पूर्ण इन वचनों को सुनकर उसकी रानी की चतुरा नाम की सखी फिर उससे कहती है —

हे सुभग ! क्या तुम्हारा हृदय वस्तुत इतना कठोर हो गया है। तनिक अपनी प्रेयसी के मुख की ओर तो देखो। इसने कल्पतुल्य इतने दिनों को रोते-रोते बिताया

है। प्राय यह मूर्च्छित हो जाया करती है और प्रात सायं तुम्हारे आने के सम्बन्ध में पूछती रहती है। ज्योतिषियों से तुम्हारे आने के सम्बन्ध में पूछ पूछ कर उगलियों पर दिन गिनती रही है। कभी घर में और कभी द्वार पर आकर यह दिन काटती रही है। इसने अपना शृंगार तो अगार की तरह छोड़ दिया है। सारी रात इसे रोते २ बीतती है। आखों से आसुओं को पोछकर अपने मन में यह संसार को शून्य ही समझती है। तम्हारे गुणों को याद कर कर भूमि पर लोटती रहती है। यदि तुम मेरा कथन न मानोगे तो यह शीघ्र ही प्राण छोड़ देगी। विविध वार्तालाप में व्यग्र रहने के कारण दिन तो इसका किसी तरह कट जाता है लेकिन रात में तुम्हारा वियोग इसे बहुत दु ख देता है।

हे देव ! मेरी प्रार्थना पूर्ण करो। मेरी सखी के साथ विविध भोगों को भोगते हुए अपना मन प्रसन्न करो। घर आकर भी तुम कठोरता को क्यों धारण किए हुए हो ? अपनी प्रेयसी की ओर तनिक प्रेम से देखते भी नहीं, उसकी कुशल तक नहीं पूछते और घर के भीतर तक नहीं आते। अपने प्रासादमें ही पराए आदमी की तरह रहते हो। हे देव ! कोशा रानी के तुम ही रक्षक हो, तुम उसके प्राण हो और उसके हृदय हो।

अपनी रानी की सखी के वचनों को सुनकर स्थूलभद्र फिर अपनी रानी से कहता है—आर्ये ! तुम भी जैन धर्म स्वीकार कर लो। मेरे लिए स्त्री और तृण दोनों समान हैं। मैं अब अपने गुरु के चरणों की वन्दना करने के लिए वापिस जाता हूं। जैन धर्म स्वीकार कर लेने पर तुम्हारे लिए भी कोई दु ख न रहेगा। तुम्हारे वियोग में भी जैन धर्म की शिक्षाओं के कारण मेरा मन कभी दु खी नहीं होता है। तुम भी जैन धर्म को स्वीकार कर लो, शील को अपनाओ, गुणी पुरुषों के लिए दान दो और तप द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करो।

पति के उपदेश को सुनकर कोशा की भोग तृष्णा नष्ट हो जाती है। वह पति से ऐसी दिव्यौषधि मागती है जिससे कि उसके मन की कामवासनायें नष्ट हो जायें और फिर भक्ति पूर्वक अपने पति के चरणों में गिर पड़ती है। स्थूलभद्र उसे जैन धर्म की शिक्षा देता है और स्वयं अपने गुरु के चरणों में श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिये वापिस लौट आता है। इस बीच जैन धर्म का पालन करती हुई कोशा अपने घर पर ही रहती है। स्थूलभद्र भी शनै शनै सूरीश पद को प्राप्त कर लेता है और अपनी शीलशक्ति से सारे भू मण्डल में जैन धर्म का प्रसार करता है। अन्त में समग्र दु:खों से रहित होकर स्वर्ग चला जाता है। कोशा भी जैन धर्म का पालन करती हुई तथा शील की साधना करती हुई पति प्रेम के प्रभाव से स्वर्ग के लिए सिधार जाती है

समीक्षा

मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ चरण को लेकर समस्यापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं तथा पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा

काव्य का कोई विभाजन भी नहीं किया गया है। काव्य का नायक स्थूलभद्र अपनी प्रेयसी कोशा को अपने शील के प्रभाव से जैन धर्म में दीक्षित कर लेता है। इसी आधार पर इस काव्य का नाम शीलदूत रख दिया गया है। यों तो इसमें किसी ने भी किसी के पास किसी को दूत बना कर नहीं भेजा है। एक स्थल पर कोशा की सखी चतुरा अवश्य कोशा की तरफ से स्थूलभद्र को पुन गृहस्थाश्रम में आने के लिये प्रेरित करती है। मेघदूत के प्रत्येक पद्य के अन्तिम चरण को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखे जाने के कारण ही इस काव्य को भी दूत काव्य का रूप देकर तथा शील की प्रधानता होने से इसका नाम भी शीलदूत रख दिया गया है।

दूत काव्यों में प्राय विप्रलम्भ शृ गार की प्रधानता होती है। नायक या नायिका अपनी विरहावस्था में अपनी प्रेयसी अथवा प्रिय के पास किसी को दूत बनाकर अपने सन्देश भेजता है और प्रसगानुसार आश्वासन तथा सान्त्वना देता है। शीलदूत में काव्य का नायक स्थूलभद्र जैन धर्म में दीक्षित होकर अपने गुरु के आदेश से अपने नगर में वापिस आता है। वहा पर उसकी स्त्री कोशा उसे अपनी दीन हीन अवस्था बताती है और पुन गृहस्थाश्रम में आ जाने के लिये उससे अनुरोध करती है। यहा तक तो विप्रलम्भ शृ गार की प्रधानता है लेकिन स्थूलभद्र के वचनोंमें शान्तरस भरा हुआ है। वह वैराग्य की ओर झुका हुआ है तथा जैन धर्म में दीक्षित हो जाने की अपनी पत्नी को भी सम्मति देता है। उसकी पत्नी भी अन्त में जैन धर्म में दीक्षित हो जाती है और ससार के सुखों से विरक्त हो जाती है। अत हम शीलदूत को शान्त रस प्रधान ही मानेंगे। कोशा स्वयं कहती है –

स्वामिन ! धर्मामृतरसमय देहि दिव्यौषध तद्
येनाय मे तुदति न मनो मन्मथाख्यो विकार ॥११६॥

इसके उत्तर में स्थूलभद्र कहता है—

तामूचेऽसौ मनसि सतत मन्त्रमेव स्मर त्व
नित्यभक्त्या त्रिभुवनगुरो र्जैन सार्वं शुभ स्वम् ।
शीलेनाऽल विमलममले जैनधर्मं भजेथा ॥१२१॥

काव्य की भाषा बडी सरस तथा ललित है। लम्बे समास तो प्राय नहीं ही हैं। कहीं कहीं पर बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षायें प्रयोग में लाई गई हैं। स्थूलभद्र को घर पर रहने के लिये समझाती हुई कोशा कहती है–

लोलच्चन्द्राभाशयविलसितै स्वामिवाकारयन्ती
भृ गालापैरिव तव तप साम्प्रतं वारयन्ती ।
वृत्तालीयं कुसुमपुलकं दर्शयन्तीव पश्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥२०॥

पूर्व पंक्ति में विभ्रमवती नायिका का व्यवहार कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से आरोपित किया है।

गंगा की उठती हुई तरंगों को लेकर भी बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की गई है -

दीक्षामेषा तव सुरनदी धारयत्यूर्मिरावै
पश्य स्वामिन् गहुपरिचिता प्रेयसीवोपमुच्चैः ॥६४॥

अपने ऊपर दया भाव दिखलाने के लिये कोशा ने अपने पति से बड़ा ही उपयुक्त तर्क किया है -

धर्मेष्वाद्यामिह खलु दयामादिदेवो जगाद
प्रोज्झन्नेता निजपरिजने वेत्सि धर्मं न सम्यक्।
सीदन्तं तन्निजजनममुं पालय स्वार्जितैः स्वै-
रापन्नार्तिप्रशमनफला संपदो ह्युत्तमानाम् ॥६७॥

कवि ने राजधानी का भी बड़ा उदात्त और श्रृंगारमय वर्णन प्रस्तुत किया है -

गंगागौरा सितवरहयाकारवीगस्तुरंगा
श्रृंगोत्तुंगा ललितगतयो दानवन्तो गजेन्द्राः।
लीलावत्योऽगिलयुवतयो यत्र धीराश्च तस्या
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥७०॥

स्नेहादन्यत् न भवति परं बन्धनं यत्र किंचि-
च्चिन्ता काचिन्न भवति परा यत्र धर्मं विहाय।
कश्चिद् यस्मिन् न भवति परो राजहंसात् सरोगो
वित्तेशाना न च खलु वयो यौवनादन्य दस्ति ॥७१॥

इस श्लोक की तृतीय पंक्ति में 'सरोग' पद में बड़ी सूक्ष्मता से श्लेष का प्रयोग किया गया है।

परम्पराभुक्त होते हुये भी स्त्रियों का बड़ा ही सरस चित्र काव्य में अंकित किया गया है -

वेणीदण्डो जयति भुजगान् मध्यदेशो मृगेन्द्रान्
यासामास्यं प्रिय! परिभवन्युल्लकैश्चन्द्रबिम्बम्।
यत्र नृत्यन्त्यतुलमसकृद् यत्र वारांगनास्ता
स्तत्पद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥७२॥

समस्यापूर्तिमय होते हुये भी काव्य में कवि ने अपनी मौलिक कल्पना शक्ति का

यथास्थान परिचय दिया है। मेघदूत में उत्तरभाग में कल्पवृक्ष के सम्बन्ध में कहा गया है—

> वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्ष
> पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
> लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्याम्
> एकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥१३॥

इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति को लेकर —

> त्यागो यस्या धनिभिरनिशं दीयमानोऽर्थिनां द्रा-
> गेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥८०॥

में त्याग के सम्बन्ध में किस प्रकार बिठा दिया गया है।

(अबलानाम् = निःस्वानाम्, आसमन्तात् मण्डनम् अबलामण्डनम्)

मेघ के सम्बन्ध में कही हुई—

खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥२॥२०॥

को कोशा के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है—

> मुग्धे स्निग्धां रचयसि मुधा मामुद्दीक्ष्य स्वकीयां
> खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥८८॥

स्थूलभद्र को घर पर रहने के लिये प्रोत्साहित करती हुई कोशा कहती है—

> ताते याते त्रिदशभवनं युष्मदाशानिबद्धा
> ये जीवन्ति प्रिय परिहरंस्तान्न किं लज्जसे त्वम्।
> आयामात्रात् त्वयि सति गते बान्धवास्तेऽस्तचित्ता
> संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥२५॥

अंतिम पंक्ति मेघदूत में दशार्ण नामक जनपद के लिये प्रयुक्त की गई है। यहां पर दशार्ण[1] को बान्धवों का विशेषण बनाकर 'हंस' शब्द प्राणों के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार अनेक स्थलों पर कवि ने अपनी काव्यशक्ति का परिचय दिया है।

---

१ दशानाम् ऋणं विद्यते येषां ते दशार्णाः ।

शृंगार रस के प्रसंग में कही गई उक्तियों को बड़े सुन्दर ढंग से शान्तरस परक बनाया गया है। स्थूलभद्र अपने वैराग्य का वर्णन करते हुए कहता है:—

नारी यस्मिन्नमृतसदृशी मे बभूवाद्य यावद्
रागग्रस्ते मनसि मदनज्वालविध्वस्तसत्वे।
ध्वस्ते रागे गुरुभिरभवत्¹ क्ष्वेडवत् साऽप्यनिष्टा
या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्यैव धातु ॥८६॥

जैन धर्म में दीक्षित हो जाने का परामर्श देते हुए स्थूलभद्र अपनी प्रेयसी से कहता है —

तुल्य स्त्रैण तृणमपि च मे शुद्धशीलप्रभावात्
प्राणासीना भवति भवती येषु येष्वासनेषु।
नेहे ह्यायतकृत रति स्तन्वि तत्रासितु तत्
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥११२॥

इस पद्य की अन्तिम पंक्ति यहां मेघदूत से नितान्त विपरीत अर्थ में प्रयुक्त की गई है। शृंगाररस की उक्तियों को इस प्रकार कई स्थानों पर शान्तरस में प्रयुक्त किया गया है।

विरह वर्णन में भी कवि ने अनुभूति की तीव्रता और विरह व्याकुलता का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। कोशा की सखी चतुरा कोशा की विरहव्यथा का वर्णन करते हुए कहती है।

एषाऽनैषीत् सुभग! दिवसान् कल्पतुल्यानियन्त
काल बाला बहुल सलिलं लोचनाभ्यां स्रवन्ती।
अस्थाद् दुःस्था तव हि विरहे भामिनं वार्त्तयन्ती
कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वंहि तस्य प्रियेति ॥८२॥

पृष्ट्वा पृष्ट्वा गणकनिचयं जीवितं धारयन्ती
नीत्वा नीत्वा कथमपि दिनान्यंगुलीभिर्लिखन्ती।
गत्वा गत्वा पुनरपि पुनर्द्वारि तस्थौ च गेहे
प्रादेशैर्न रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः ॥६४॥

विरहिणी कोशा की उत्सुकता, स्मृति और उत्कण्ठा का कवि ने कैसा सजीव चित्र यहां उपस्थित किया है।

---

१ क्ष्वेड=विष।

काव्य के आद्योपान्त पढ़ने से प्रतीत होता है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। कवि का यह कथन —

चक्रे काव्यं सुललितमहो शीलदूताभिधानम्।

अक्षरशः सत्य है। इसमें कोई गर्वोक्ति नहीं है। मेघदूत की समस्यापूर्ति स्वरूप लिखे गए काव्यों में तथा जैन साहित्य में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। काव्य का नाम भी कवि ने बड़ा सुन्दर रखा है। शील जैसे भाव को दूत का रूप देकर कवि अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है[1]।

वादिचन्द्रसूरि का पवनदूत (वि० सप्तदश शतक के लगभग)

यह पवनदूत एक स्वतन्त्र रचना है। ग्रन्थकर्ता ने काव्य के अंतिम श्लोक में ही अपना परिचय दिया है। वह श्लोक इस प्रकार है —

पादौ नत्वा जगदुपकृतौ वर्धसामर्थ्यवन्तौ
निःशब्ध्वान्तप्रसरतरणे शान्तिनाथस्य भक्त्या।
श्रोतुं चेतस्सदसि गुणिना वायुदूताभिधानम्
काव्यं चक्रे विगतवसन स्वल्पधीर्वादिचन्द्र ॥१०१॥

इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि लेखक श्री शान्तिनाथजी का भक्त है। विगतवसन विशेषण यह भी बताता है कि लेखक दिगम्बर जैन है। लेखक के काल के सम्बन्ध में कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता। इस सन्देश काव्य के अतिरिक्त लेखक ने ज्ञानसूर्योदय[2] नामक एक नाटक भी लिखा है। इस नाटक में जैनियों व दिगम्बर सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। औफ्रेट के कैटालोगस लोगो प्रथम भाग, पृष्ठ २१० पर इस नाटक का उल्लेख किया गया है। औफ्रेट महाशय इस नाटक को ई० १५८० का लिखा हुआ मानते हैं।

---

१ यशोविजय ग्रन्थमाला, बनारस, से प्रकाशित।

२ जैन ग्रन्थावली, बम्बई में प्रकाशित।

तदनुसार पवनदूत भी इसी के आसपास का लिखा होना चाहिए। श्री एस० के० दे० के अनुसार ई० सत्रहवीं शताब्दी लेखक का कार्यकाल है[1]।

काव्य की कथा

विजयनरेश नामक उज्जयिनी का एक राजा था। उसकी रानी का नाम तारा था। राजा अपनी रानी तारा से बहुत प्रेम करता था। एक दिन अशनिवेग नामक एक विद्याधर तारा को हर कर ले गया। रानी के वियोग में राजा बड़ा दुःखी रहने लगा। अपनी विरहावस्था में वह पवन को दूत बनाकर रानी के पास भेजने का प्रबन्ध करता है। अपने विरह वर्णन के बाद वह पवन को प्रिया के पास पहुँचने का मार्ग बताता है। इस प्रसग में विभिन्न वन, नदी, पर्वत, नगर और नगरों में रहने वाली स्त्रियों तथा उनकी विलासमय चेष्टाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। राजा के सदेश को लेकर पवन अशनिवेग के नगर में पहुँचता है। फिर अशनिवेग के महल में जाकर तारा को उसके प्रिय का सदेश सुनाता है। तदनन्तर अशनिवेग की सभा में जाकर उसे तारा को वापिस दे देने का परामर्श देता है। अशनिवेग विजय नरेश को युद्ध की धमकी देता है लेकिन उसकी माता उसे युद्ध न करने का परामर्श देती है और तारा को पवन के हाथ सौंप देती है। पवन तारा को लेकर वापिस लौट आता है और विजयनरेश को सौंप देता है।

साहित्यिक समीक्षा

समस्यापूर्तिमय न होते हुए भी यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। इस काव्य की कथा काल्पनिक ही है। काव्य में कुल १०१ श्लोक हैं। सब मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखे गए हैं। भाषा सरस और प्रसाद गुण-युक्त है। क्लिष्ट और लम्बे समास प्रायः नहीं ही हैं। कथा का पूर्व भाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन नहीं है। कविता में सर्वत्र प्रवाह विद्यमान है। विजय नरेश पवन से प्रार्थना करते हुए कहता है—

> दुःखानि त्वं मम गत यथोमित्र जानासि सम्य
> ग्विप्यक्प्राणं विततनुमता वृद्धकारुण्यभाव ।
> तस्मात्तेऽहं पदमुपगत सर्वलोकानपेक्ष्य
> कृत्यं मे यद्भवति सदयं तत्त्वयाऽपादनीयम् ॥२६॥

भाषा के प्रवाह और सारल्य का अनुमान कराने के लिए यह एक श्लोक ही पर्याप्त है।

---

१ दे० एस० एन० दास गुप्त का 'संस्कृत साहित्य का इतिहास,' क्लासिकल पीरियड, प्रथम भाग, पृष्ठ ३७३, पादटिप्पणी।

जिस तरह धोयि कवि ने अपने पवनदूत में पवन को कुवलयवती का दूत बनाते हुए —

वीदयावस्थां विरहविधुरा रामचन्द्रस्य देवो
यात पारं पवन सरिता पत्युरप्याजनेय
तत्तातस्याप्रतिहतगतेर्याास्यतस्ते मदर्थे
गौडी क्षोणी कति नु मलयक्ष्माधराद्य योजनानि ॥४॥

लिखा है, उसी तरह इस पवनदूत में भी पवन को दूत बनाते समय कवि कहता है .—

पुत्र सीता दशमुखहृता तावको दूरनाथा
तत्सन्देशैर्हर्षित कुशलै जीवयामास वेगात् ।
तत्कि चित्र त्वकमिह पदे संस्थितस्ता च पैत्र्ये
प्राय काय लघुजनकृत नाधिके चित्रकारी ॥१३॥

विजयनरेश का अपनी रानी तारा के प्रति बड़ा गम्भीर और सच्चा प्रेम है। वह तारा को ससार की सब स्त्रियों में श्रेष्ठ समझता है। तारा के सम्बन्ध में विजय नरेश के बड़े उच्च भाव कवि ने दिखलाए हैं। राजा कहता है —

नार्यस्तारामनु च भुवने भाग्यसौभाग्यवत्यो
नार्यस्तारामनु च भुवने शीलसम्पन्निवासा ।
नार्यस्तारामनु च भुवने भर्तृभक्त्येकरागा
नार्यस्तारामनु च भुवने दीनदानप्रदात्र्य ॥३३॥

तारा के सौभाग्य, शील, पतिभक्ति और दयालुता आदि गुणों का विजयनरेश ने बड़ा ही उत्कृष्ट चित्र अंकित किया है।

आगे चलकर फिर भी विजयनरेश तारा के गुणों की प्रशंसा करता है —

सा मे सेना मदन विजये सारसर्वांगयुक्ता
सा मे मित्र परमहित कृत्सर्व लोकेऽप्यनूनम् ।
सन्तापाना सहजहरणात्सा च दृष्टि प्रवृत्ते
सा मे भूषा तनुरुचिकरा सा च केल्यास्तडाग ॥४२॥

सा निःश्रेणिः परपदगतौ सार्गला दुःखरोधा
त्सा मे मन्त्रो त्वरयनिता-दृष्टि दोष च्छिदन्तुम् ।
सा मे वल्लि विपुल फलदा सा सरित्तृड्विनाशा
त्सा मे लक्ष्मी र्विविधविभवानन्दसंसाधनाच्च ॥४३॥

तारा के प्रति अपने अनन्य प्रेम का परिचय देते हुए राजा कहता है—

भृंग पुष्पं जलधरजलं चातको वा प्रसत्सं
आम्रं पक्वं पिक इव वने राजहंसस्तडागम् ।
चक्रश्चन्द्रं तरुकिसलयं नागराजस्तटिन्या
स्तद्वत्कान्ता कलितकमला चिन्तयेयत्र शून्यः ॥६८॥

राजा का तारा से अनन्य प्रेम है, इसीलिए तो उसके वियोग में राजा का मन और बुद्धि बिलकुल काम नहीं करते हैं —

तच्चिन्तातः सकलविषये शून्यमासीन्मनो मे
तस्माज्जाने न हितमहितं किं प्रकुर्वे ह्युपायम् ।
नो वा बुद्धिः प्रसरति परा किं प्रजल्पामि वाचं
प्रेष्यं पत्रं मम कथमयो सम्प्रमार्पे ह्यभिज्ञाम् ॥६९॥

अपनी रानी की विरहावस्था का भी राजा ने बड़ा भावपूर्ण चित्र अंकित किया है। राजा पवन से कहता है—

उष्णोच्छ्वासैः शुषितवदना शीलरक्षार्त्तचित्ता
त्यक्तस्नानामलिनवदना नेत्रमुक्ताश्रुपाते
त्वं तां दूना रागपरिचितैर्मद्वपुक्षेमवार्त्ता
स्ततोप्यारं व्यपगतशुचं सर्वथा सम्प्रकुर्याः ॥८०॥

इस प्रकार कवि ने इस काव्य में अनन्य प्रेम तथा विरह के सुन्दर भाव वर्णित किये हैं।

मेघदूत के समान इस काव्य में भौगोलिक वर्णन बिलकुल नहीं है। स्थान स्थान पर मेघदूत की छाया काव्य में स्पष्ट देख पड़ती है। मेघदूत में मेघ को दूत बनाते समय कालिदास ने लिखा है—

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥

इसी प्रकार पवन के दूत कार्य के सम्बन्ध में कवि कहता है—

दूतं मोहात्पवनमदद प्राहिणोद्यद्युनेश
प्रायो मोहो भवति भविना बोधशून्यः सहेतु ॥११॥

मेघदूत में यक्ष सूर्यदर्शन के बाद शीघ्र ही यात्रा पर चलने का मेघ से आग्रह करता है—

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥३९॥

इसी तरह विजयनरेश पवन से कहता है –

(यथ्वो विद्याधर कुलभवा)
तास्त्वं पश्यन्स्थिरतरगति र्मा स्म भूर्मित्र मार्गे
धीरा स्त्यातास्त इह भुवने येऽन्तराये न मन्दा ॥१८॥

अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में राजा के द्वारा कहा गया पवनदूत का यह पद्य –

पादौ दृष्ट्वा यनभुवि तवानन्ददौ प्रेमरंधा
दात्मानं स्वप्रणतमभितो यावदीहे प्रकर्तुम् ।
तावत्पुष्पे स्तबकपिगते सच्युतैश्छादितौ तौ
पापं तस्मिन्नपि न सहते सगम सौख्यहेतुम् ॥३८॥

मेघदूत के 'त्वामालिख्य प्रणयकुपिताम्' इत्यादि श्लोक की ही प्रतिच्छाया है।

चन्द्रमा को लक्ष्य करते हुये विजय नरेश ने कहा है –

चन्द्रश्चायं दहति विरहे योषितोऽगं तपाया
स्त्वधान तत्प्रकृतिपुरुषस्तेन सरोधयाञ्जम् ।
ससारे भो भम विचरत केवल नैव दु खं
सर्वेषा स्यात्कृतवनुमतां चक्रनेमिक्रमेण ॥४४॥

इस पद्य में मेघदूत के –

कस्यात्यन्त सुखमुपनतं दु खमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

इन पद्यों की छाया विद्यमान है।

पवनदूत की यह पंक्ति –

त्यक्तु को वा प्रभुरिह द्वयो वस्तुतो वामनेत्राम् ॥७२॥
मेघदूत की 'ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातुं समर्थ ' ॥१॥४१॥

इस पंक्ति की ही प्रतिध्वनि है।

यों तो पवनदूत एक विरह-काव्य ही है। वियोग श्रृंगार का चित्रण ही काव्यका प्रमुख उद्देश्य है। फिर भी काव्य में मनोरञ्जन के अतिरिक्त शिक्षा की भी बहुत सी सामग्री विद्यमान है। लेखक का नैतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण बड़ा ऊँचा है।

उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण पाठकों के समक्ष रखे जा रहे हैं —

१ प्रायः सन्तः सकलसमये रागभंगे न शूराः ॥ ४॥

२ कार्यं कार्यं परमविदुषाऽहिंसयैवात्र लोके ॥१५॥

३ प्रायः सन्तः शिशुतरुणिषु दयार्द्रचित्ता भवन्ति ॥१६॥

४ (भूयः) सन्तो नहि परकृतं चोपकारं सहन्ते ॥१७॥

५ स्यान्नैवार्त्याविपुलकरुणः सत्यरक्षानपेक्षः ॥३॥

६ प्रायो भवति महता संगते पापहानिः ॥५॥

स्थान स्थान पर काव्य में सुभाषित भी पाये जाते हैं—

१ केषां स्थानं भवति पुरतः स्थायिना सद्गुणानाम् ॥८॥

२ प्रायः कार्यं लघुजनकृतं नाधिके निश्चकारी ॥१३॥

३ प्रायः कार्ये कथंचिदपि पुनर्योगिनोऽपि प्रमोहाः ॥५८॥

४ धीर्यं तस्माच्चतुरमतिना नैव सर्वत्र योज्यम् ॥६॥

इस प्रकार एक जैन विद्वान् की रचना होने के कारण शृंगार रस के साथ साथ काव्य में परोपकार, दया, अहिंसा और दान आदि सद्भावों की भी प्रशंसा पाई जाती है। रचना प्रसादगुणयुक्त है। भाषा प्रवाहपूर्ण है। लेखक को इस सन्देश काव्य के लिखने में पर्याप्त सफलता मिली है। उच्च कोटि की कविता के साथ साथ काव्य में उच्च नैतिक भाव भी पाये जाते हैं[1]।

---

१ पवनदूत वादिचन्द्रसूरि हिन्दी अनुवादक-उदयलाल काशलीवाल प्रकाशक हिन्दी जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई, चन्दावाड़ी, गिरगाव।

अज्ञात कवि का चेतोदूत (समय अनिश्चित)

यह संदेश काव्य मेघदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखा गया है। इसके लेखक के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ग्रन्थ में कोई अन्तरंग साक्ष्य भी ऐसा उपलब्ध नहीं जिससे लेखक के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान हो सके।

काव्य की कथा

काव्य में कोई विशेष कथा नहीं है। एक शिष्य अपने गुरु के श्री चरणों की प्रसत्ति (कृपादृष्टि) को प्रेयसी के रूप में मान कर उसके पास अपने चित्त को दूत बनाकर भेजता है। सर्व प्रथम गुरु की वन्दना की गई है। फिर गुरु की प्रसत्ति का इच्छुक शिष्य अपने चित्त को गुरु की नगरी जाने का आदेश देता है। गुरु के यश, विवेक और वैराग्य का यथास्थान वर्णन किया गया है। गुरु की नगरी में पहुंचकर चित्त से गुरु की स्तुति करने तदनन्तर उनकी प्रसत्ति (कृपादृष्टि) को अपना सन्देश सुनाने के लिये शिष्य ने प्रार्थना की है। अन्त में गुरु की प्रसन्नता के वर्णन के साथ साथ शिष्य की सफलता बतलाते हुये काव्य समाप्त हो जाता है।

साहित्यिक समीक्षा

मेघदूत की समस्या पूर्ति होने के कारण काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। कुल १२१ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तर भाग जैसा काव्य का कोई विभाजन भी नहीं है। जैसाकि कथासार से विदित है, काव्य का विषय शृंगारिक न होकर धार्मिक है। चूंकि चित्त को दूत बनाया गया है, इसलिये काव्य का नाम चेतोदूत रखा गया है। नगरी इत्यादि के वर्णन में मेघदूत जैसा ही तारतम्य है। काव्य का दृष्टिकोण धार्मिक और ज्ञानपरक होते हुये भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह काव्य जैन धर्म से ही सम्बद्ध है। शिष्य ने अपने गुरु के लिये 'श्री सूरीन्द्रा' और 'श्री सूरीश्वर' जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है तथा श्लोक सं० ६८[1] और ७१[2] में जैनधर्म का उल्लेख किया है, अतः यह कहा जा सकता है कि यह किसी जैन कवि की ही अभिनव रचना है।

---

१ श्रीमान् श्रेय प्रतति सुभग सत्फल प्राप्ति-हेतु
स्फारोदारागमपरिणतो जैनधर्मे क्षमाभृत् ॥६८॥

२ सम्यग्धर्माधिगमसजुषा शासन जैनचन्द्रं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥७१॥

मेघदूत में विप्रलम्भ शृंगार के प्रसंग में कही गई उक्तियों को बड़े कुशल ढंग से शान्ति और भक्ति के वातावरण में प्रयुक्त किया गया है। मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी से कहता है –

भित्त्वा सद्यः किशलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीर स्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ॥२॥४६॥

इस कथन को लेकर चेतोदूत में साधु महात्माओं के सम्पर्क की पवित्रता बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई है –

धन्या मान्या विनयनिरता ज्ञानसम्पत्समृद्धा
पुण्यात्मानः सुगुणनिधयः साधवो ये मिलन्ति ।
आलिंग्यन्ते प्रणयसुभगं ते मयाऽसि प्रमोदात्
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ॥११६॥

यक्ष अपनी प्रेयसी की अद्वितीयता बतलाते हुए कहता है –

श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

चेतोदूत में गुरु की प्रसत्ति के सम्बन्ध में भी ऐसे ही समानान्तर भाव व्यक्त किये गये हैं। शिष्य कहता है —

औदार्यं त्वस्तवप्रभन्ना मेरुशैले मुनिन्द्रं
सौन्दर्यं वा शरदि शशिनो शीतलत्वं सुधायाम् ।
उत्प्रेक्षेऽहं जगदनुपमं द्रष्टुकामः स्वरूपं
हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते मौन सादृश्यमस्ति ॥[illegible]॥

यक्ष ने अपनी प्रेयसी के लिये कहा ही है –

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥[illegible]॥

इसी प्रकार शिष्य भी प्रसत्ति के सम्बन्ध में कहता है—

वृत्तोदारे हृदयसदने कल्पनाकल्पगां त्वां
कृत्वा यावद्भ्रमस विवश किंचिदिच्छामि पक्रम् ।
तावद् भाग्योद्गतमुपनता मूढता बाधते मां
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥११७॥

इस श्लोक में भी कालिदास की कल्पना के समान ही बड़ी कोमल कल्पना की गई है।

गुरु की प्रसत्ति के विरह में शिष्य भी इतना व्याकुल है जितना कि कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के विरह में व्याकुल हो सकता है। शिष्य प्रसत्ति से कहता है—

प्राणाधारस्त्वमसि दयिते तद्विना संगमं ते
प्रत्यर्थीव व्यथयति भृशं मेऽद्यपूर' कृशं माम् ॥११०॥
रात्रौ यद्वद्भवति विरहाच्चक्रवाकोऽतिशोका
कान्तस्त्वान्तोऽ ह्कमपि तथा सर्वथाऽ प्यस्मि दुःखी।
कान्ते ! तन्मे न खलु हृदये सौख्यलेशः कदाचित्
सकल्पै स्तैर्निशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गे ॥११२॥

तिष्ठन् गच्छन् स्वयमुपविशन् वाऽपि जाग्रत्स्वपन्ना
गाढं दुःखी सनिवशमना ध्यायति त्वत्प्रसत्तिम् ॥१०४॥

मेघदूत में प्रसगान्तर में आई हुई पंक्तियाँ बड़ी कुशलता से दूसरे प्रसंग में इस काव्य में विनियुक्त कर दी गई हैं। यक्ष ने अपने घर के पास बालमन्दार वृक्ष के होने का उल्लेख किया है। चेतोदूत में गुरु का वर्णन करते हुये शिष्य कहता है—

स्निग्धच्छायं सुपरिकरितं साधुपात्रैरमात्रै
र्मंगल्यश्रीरभिमतफलश्लाघनीयस्त्वमेव ।
विश्रामार्थे जगति विधिना निर्मितः शर्महेतु
र्हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दार वृक्षः ॥८५॥

गुरु को बाल मन्दार वृक्ष का रूपक देकर कवि ने उनकी उदारता की बड़ी सुन्दर व्यंजना की है।

मेघदूत में यक्ष अपनी विरहिणी प्रेयसी के लिये—

'साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां नसुप्ताम्' कहता है। चेतोदूत में कवि ने यही पंक्ति भक्त की बुद्धि के लिये प्रयुक्त की है—

गाढोद्वेगप्रमयजडतायोगतो मुद्रितत्वम्
त्वत्प्राप्त्याशाजनितपरमानन्दतः स्मेरभावम् ।

आविश्राणा स्फुरति नियतं साम्प्रतं तस्य बुद्धिः
साऽभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता ॥१०६॥

मेघदूत में अपनी विरहिणी प्रेयसी के नेत्र को लेकर यक्ष कहता है—

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥

चेतोदूत में यही उपमा बड़े कौशल के साथ शिष्य से सबद्ध कर दी गई है—

आशाबद्धो गमयति दिनान् दैन्यवानेष साक्षा-
त्तस्य स्वामिन् ! यदि नु भविता सङ्गमस्त्वत्प्रसत्तेः ।
स स्तोकाम्भःस्थितशफरिकेवातिदुःखातिरेका-
न्मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥

इस प्रकार विभिन्न उदाहरणों से यह स्पष्ट ही है कि कवि को समस्यापूर्ति में पर्याप्त सफलता मिली है। लेखन शैली तथा विचार-तारतम्य इत्यादि में मेघदूत की छाया होने पर भी विषय की नवीनता तथा पुराने वातावरण में नये भावों का समावेश करने के कारण हम इस काव्य को मौलिक माने बिना नहीं रह सकते। काव्य में परोपकार, करुणा और अहिंसा आदि पूत भावनाओं पर कवि ने बड़ा जोर दिया है। इस प्रकार काव्य-गुणों के साथ-साथ एक धार्मिक ग्रन्थ की भी विशेषतायें इस काव्य में पाई जाती हैं। अप्रत्यक्ष रूप से यह काव्य यह शिक्षा भी देता है कि भक्ति के क्षेत्र में मनुष्य तभी सफल हो सकता है जब वह सांसारिक प्रेम की तरह भगवान् के प्रेम में वैसा ही व्याकुल हो जाये। लौकिक प्रेम की तीव्रता के समान भगवत्प्रेम में भी तीव्रता होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त गुरु की कृपादृष्टि का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। गुरु की कृपादृष्टि का प्रभाव बतलाते हुये कवि ने कहा ही है—

चिन्तातीताखिलसुखकरीं त्वत्प्रसत्तिं दुरापां
प्राप्य स्वर्गं परिमितसुखं कः समीहेत विद्वान् ॥८२॥

लेखक अपने काव्य की रचना में गुरु की कृपादृष्टि को ही प्रमुख कारण मानता है। उसने काव्य के अन्त में कहा है—

सन्ति श्रीमत्परमगुरवः सर्वदाऽपि प्रसन्ना
स्तेषां शिष्यः पुनरनुपमान्यन्वभक्तिप्रयुक्तः ।
तन्माहात्म्यादपि जडमतिर्मेघदूतान्त्यपादै
श्चेतोदूताभिधमभिनवं काव्यमेतद् व्यधत्त ॥१३१॥

काव्य के अनुशीलन से यह प्रत्यक्ष ही है कि मेघदूत के शृंगार-रस पूर्ण वातावरण से प्रेरणा लेकर भी कवि ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से शान्त रस के एक सुन्दर सदेश काव्य की सृष्टि कर दी है। समस्यापूर्ति होते हुये भी काव्य में प्रसादगुण है। भाषा प्रवाहमय है। भाव भी बड़े सुन्दर हैं। मनोरंजन के साथ साथ यह काव्य पाठकों में धार्मिक अभिरुचि भी उत्पन्न करता है[1]।

विनय-विजय गणि का इन्दुदूत (वि० अष्टादश शतक का पूर्वार्ध),

श्री विनय विजय गणि का सत्ता समय वि० सप्तदश शतक का उत्तरार्ध तथा अष्टादश शतक का पूर्वार्ध है। यह वैश्य वंश के थे।[2] इनके पिता का नाम श्रेष्ठितेज पाल था। इनके जीवन के सम्बन्ध में व्यवस्थित रूप से कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। फिर भी संस्कृत, प्राकृत और गुजराती भाषाओं में लिखे गए इनके अनेक ग्रन्थों की प्रशस्ति से इनके सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है।

जिस समय इन्होंने दीक्षा ली थी, उस समय तपोगच्छ में भट्टारकाचार्य श्री विजयदेवसूरि का शासन चल रहा था। उसके बाद श्री विजयसिंह सूरि का शासन चला। तदनन्तर श्री विजयप्रभसूरि का शासन प्रारम्भ हुआ। इन विजयप्रभसूरि से ही श्री विनय विजय गणि ने दीक्षा ली थी। लगभग ४० वर्ष तक यह विविध ग्रन्थों की रचना करते रहे। इनका सम्पूर्ण जीवनकाल ७५ वर्ष के लगभग रहा होगा। यह प्राय गुजरात में ही चातुर्मास्य बिताते थे। कभी कभी मारवाड़ और मालवा में भी रह जाते थे। इन्होंने वि० स० १७३८ के आस पास श्रीपालरास नामक काव्य लिखना प्रारम्भ किया। इस काव्य को लिखते लिखते इनका स्वर्गवास हो गया। तदनन्तर उस समय के महान् तार्किक और इन के विश्वासपात्र हार्दिक मित्र श्री यशोविजयजी महाराज ने इस ग्रन्थ को पूर्ण किया। श्री विनय विजय गणिजी हस्त लेख की कला में भी बड़े प्रवीण थे। अपने गुरु के लिखे हुये विचार-रत्नाकर नामक ग्रन्थ को इन्होंने बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा है। यह प्रतिलिपि वि० स० १६९० की लिखी हुई मानी जाती है। इनके गुरुभाई श्रीकान्तिविजयजी ने बड़ौदा के भंडार में इसकी स्थापना कराई थी।

---

[1] जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से वि० स० १९७० में प्रकाशित।
[2] क्योंकि इनके पिता के नाम के साथ श्रेष्ठि शब्द लगा हुआ मिलता है।

इन्दुदूत काव्य भी श्री विनय विजय गणि का ही लिखा हुआ है। काव्य के प्रथम श्लोक –

श्री पूज्याना गुरुगुणरतामिन्दुदूत प्रभूतो
दन्त लेख लिखति विनयो लेखलेखानतानाम् ॥१॥

से पता चलता है कि लेखक का नाम विनय है तथा निम्न श्लोक –

शिष्योऽणीयान् विनयविजयो द्वादशावर्तभाजा
विज्ञप्तिं व्याहरति महता वन्दनेनाभिवन्द्य ॥१२६॥

से प्रतीत होता है कि लेखक का नाम विनय विजय है। हैम-लघु प्रक्रिया, लोकप्रकाश, कल्पसूत्रसुबोधिका तथा श्रीपाल चरित इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता, उपकेश वंश के तेजपाल के पुत्र और तपोगच्छ के विजय प्रभु सूरि के शिष्य विनय विजय तथा इन्दुदूत काव्य के लेखक विनयविजय दोनों एक ही व्यक्ति हैं। अत इन्दुदूत काव्य का रचनाकाल वि० सं० १७३४ अथवा इससे कुछ पूर्व हो सकता है। इस काव्य में वस्तुपाल के चैत्य और प्रासादों का उल्लेख पाया जाता है —

(अर्बुदाचले)

तत्र श्रीमान् विमलवसतौ भाति नाभेयदेव
सेवायत्तत्रिदशनिकर पूर्णपादोपकण्ठ ।
नेमिस्वामी दिशति च शिवान्यानताना निविष्ट
साक्षादिन्द्रालय इव वरे वस्तुपालस्य चैत्ये ॥४३॥

रूप्यस्वच्छोपलदलमयौ चित्रदोत्कीर्णचित्रौ
चञ्चच्चन्द्रोदय चयचितौ कल्पितानल्पशिल्पौ ।
श्रीयास्ता तौ विमलनृपते वस्तु पालस्य चोच्चौ
प्रासादौ तौ स्थिरतरयशोरूपदेहाविव द्वौ ॥४४॥

यह वस्तु पाल ढोलका (गुजरात) के राजा वीर धवल का मन्त्री ही है। अत किसी भी अवस्था में ई० त्रयोदश शतक से पूर्व की तो यह रचना हो ही नहीं सकती।

लेखक ने अपने गुरु को श्री तपगणपति कहा है। चन्द्रमा को संबोधन करते हुए यह कहता है—

वन्देथा श्री तप-गणपतिं सार्वभौमं युगीनं
पीन पुण्यप्रभवमुदयेर्नन्दन ! त्वं सभेया ।

प्राच्यै पुण्यै फलितमतुलैस्त्वायकीनै सुलब्ध
जन्मैतत्ते नभसि च गतिर्भावियिनी ते कृतार्था ॥१२१॥

अत यह स्पष्ट ही है कि लोक प्रकाश इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता की तरह इन्दुदूत का रचयिता भी तपगण का अनुयायी है तथा यह दोनों लेखक एक ही व्यक्ति हैं और इन्दुदूत काव्य वि० स० १७३४ या स० १६७८ ई० का लिखा हुआ है। इन्दुदूत काव्य के अतिरिक्त लगभग ३५ अन्य रचनायें भी संस्कृत, प्राकृत तथा गुजराती भाषा में इनकी लिखी हुई पाई जाती है। संक्षेप में उनका परिचय इस प्रकार है –

अंक	नाम	भाषा	काल	स्थान
१	आनन्द लेख	संस्कृत	१६६४ धनतेरस	—
२	श्री कल्पसूत्र सुबोधिका	संस्कृत	१६९६ जे० शु० २	—
३	श्री विजयदेवसूरि विज्ञप्ति	संस्कृत प्राकृत	१७०५ धनतेरस	देवपत्तन प्रभासपाटन
४	लोक प्रकाश	संस्कृत	१७०८ वै० शु० ५	
५	हैमलघुप्रक्रिया	संस्कृत	१७१० विजयदशमी	राधनपुर
६	शान्त सुधारस	संस्कृत	१७२३	गांधार
७	जिन सहस्त्र नाम स्तोत्र	संस्कृत	१७३१	
८	हैम प्रकाश	संस्कृत	१७३७ विजयादशमी	रतलाम
९	नयकर्णिका	संस्कृत		दीवबंदर
१०	षट्त्रिंशत्-जल्पसंग्रह	संस्कृत		
११	अर्हन्नमस्कार स्तोत्र	संस्कृत		
१२	श्री आदि जिन-स्तवन	संस्कृत		

इन रचनाओं के अतिरिक्त अन्य रचनायें गुजराती भाषा में लिखी हुई हैं। उनमें श्रीपाल रास (१७३८) ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सम्भव है कि संस्कृत प्राकृत के उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे हों।

काव्य की कथा

श्री विजय प्रभ सूरीश्वर महाराज सूर्यपुर (सूरत) में चातुर्मास बिताते हैं। उनकी आज्ञा से उनके शिष्य श्री विनय विजयगणिजी मारवाड़ में जोधपुर नगर में चातुर्मास बिताने के लिये आ जाते हैं। चातुर्मास के अन्त में भाद्रपद पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा को देखकर उनका विचार होता है कि उसके द्वारा अपने गुरु के पास वे अपना सांवत्सरिक क्षमापण सन्देश और अभिनन्दन भेजें। चन्द्रमा को दूत कार्य में नियुक्त करने से पूर्व वे उसका स्वागत करते हैं, उसकी कुशलवार्ता पूछते हैं

और फिर उसकी तथा उसके सबधियों समुद्र, पारिजात, लक्ष्मी और रात्रि इत्यादि की भी प्रशंसा करते हैं। अन्त में वे उससे सूर्यपुर (सूरत) जाने और वहां पहुचकर अपने गुरु श्रीतपगणपति को अपनी विज्ञप्ति सुनाने के लिये कहते हैं।

इस प्रसग में जोधपुर से सूरत नगर तक का मार्ग काव्य में वर्णित किया गया है। चू कि जोधपुर से सूरत दक्षिण की ओर है, इसलिये चन्द्रमा को दक्षिण की ओर जाने का परामर्श दिया गया है। जोधपुर से चलकर सुवर्णाचल पर्वत पर कुछ विश्राम करने और वहा श्री महावीरजी तथा श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिरों में उनकी पूजा करने के बाद जालन्धर नगर (जालोर), श्रीरोहिणी नगरी (सिरोही) और वहा के जैन मन्दिरों को देखते-देखते अर्बुदाचल (आबू पर्वत) पहुचने के लिये चन्द्रमा से कहा गया है।

अर्बुदाचल पर्वत पर स्थित श्री ऋषभदेव और श्री नेमि स्वामी के मन्दिरों तथा विमल नृपति और वस्तुपाल के प्रासादों को देखने के बाद निकट में ही स्थित अचल दुर्ग (पर्वत) जाने तथा इसके कुछ नीचे श्री कुमारपाल राजा के द्वारा निर्मित जिनगृह में पूजा करने और अर्बुद पर्वत की सैर करने का चन्द्रमा को परामर्श दिया गया है।

इसके बाद सरस्वती नदी के तट पर बसे हुये सिद्ध पुर (सिद्धपुर) में कुछ समय विश्राम कर साभ्रमती (साबरमती) नदी के तट पर स्थित राजद्रग (अहमदा बाद) जाने के लिये चन्द्रमा से कहा गया है।

तदनन्तर फिर दक्षिण की ही ओर आगे बढ़ने पर वटपद्र पुर (बड़ौदा), भृगुपुर (भड़ौंच), नर्मदा नदी और तापी नदी होते हुए चन्द्रमा के सूर्यद्रग (सूरत) पहुच जाने का उल्लेख किया गया है। सूरत नगर के वैभव का वर्णन करने के बाद कवि ने वहा के गोपीपुर नामक स्थान, श्रावकों के विश्रामालय तथा वहा के व्याख्यान मण्डप और व्याख्यान-पीठ का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। इसके बाद इन्द्रासन के समान अनुपम सिंहासन पर विराजमान श्री तप-गणपति महाराज श्री विजय-प्रभसूरि की प्रशंसा करते हुए कवि ने चन्द्रमा से उनकी वन्दना करने का अनुरोध किया है। गुरु चरणों के दर्शन से चन्द्रमा के सारे दोषों और कष्टों के नष्ट हो जाने की आशंसा कर फिर कवि ने एकान्त में अभिवन्दन-पूर्वक गुरु को अपनी विज्ञप्ति सुनाने के लिए चन्द्रमा से प्रार्थना की है। अपनी विज्ञप्ति में कवि कहता है—हे गुरुवर्य! इलादुर्ग (इडरगढ़) में आपके श्री चरणों के दर्शन के लिए मैं गया था। धर्मश्रवण के लिए भी मैं आपका उपकार नहीं भूल सकता। आपने बड़ी कृपा करके मुझे जो उपदेश दिया था, वह अब भी मुझे बड़ी प्रसन्नता दे रहा है और मेरी इन्द्रियों को संतुष्ट कर रहा है। मेरा चित्त आपके चरणों में आने के लिए अत्यन्त उत्कंठित रहता है। संसार में निद्रा को दोष माना जाता है और जागने को लोग गुण समझते हैं, लेकिन मुझे तो इसके विपरीत निद्रा ही अच्छी लगती है, क्योंकि

इसके द्वारा स्वप्न में आपके दर्शन तब भी हो जाते हैं। जब मैं जागता रहता हूँ तो आपका ही नाम जपता रहता हूँ। सोते समय भी मेरा मन आप में ही लगा रहता है। इस तरह दिन रात मैं आपका ध्यान करता रहता हूँ। आप अपनी प्रेम दृष्टि से मुझे अनुगृहीत करें ताकि मेरी समस्त प्रार्थनाएं पूर्ण हो जाय।

साहित्यिक समीक्षा

इस संदेश काव्य में केवल १३१ श्लोक हैं। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा गया है। काव्य का पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन भी नहीं किया गया है। काव्य के अन्त में "इति श्री मेघदूतच्छाया काव्यमिन्दु-दूताभिध काव्यं समाप्तम्' ऐसा लेख मिलता है। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि काव्य मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया है। लेकिन प्रक्रिया और छन्द में ही इस काव्य में मेघदूत का अनुकरण पाया जाता है। काव्य का विषय बिलकुल नवीन है। मेघदूत में शृंगार रस की प्रधानता है। इस काव्य में शान्त रस प्रधान है। काव्य का नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण भी बहुत उच्च है। जालधर नगर (जालोर) में वेश्याओं की स्थिति बतलाते हुए कवि चन्द्रमा को उनसे दूर रहने का ही परामर्श देता है —

तस्माद्दासा युवजनपृषद्याशुराणामवश्य
दूरात्त्यागो भवति हि नृणां श्रेयसेऽमुत्र चात्र।
तत्राप्यंगीकृत निज सुहृद् व्याहृते स्वादरास्य
व्यासंगो नोचित इति हित द्विस्त्रिरेतद् वदामि ॥४६॥

गुरु की महिमा और उदारता का भी कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है। गुरु का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

स्फूर्जद् भाग्यान्कतिचन दृशा स्निग्धया लोकयन्तं
कांश्चिच्चेतस्स्मित-कलनया स्वायतीन् प्रीणयन्त।
पूर्वोपात्तास्खलितसुकृतश्रं णिसौभाग्यभाज
कांश्चिन्मौली करघटनया लब्धसिद्धीन् सृजन्तम् ॥११४॥

अर्हद्धर्म तनुभृतमिवास्तोक-लोकोपकृत्यै
कैवल्य वा विदितभुवन पुस्त्वरूपोपपन्नम्।
प्रत्यक्षं वा सुकृतनिचयं शासनस्यार्हतस्य
मूलं निःश्रेयसपदतरोर्जंगमं कल्पवृक्षम् ॥११६॥

इस प्रकार गुरु की प्रशंसा में कवि ने अनेक पद्य लिखे हैं।

चन्द्रमा के सबंधियों की प्रशंसा में कवि ने बड़े सुन्दर विचार प्रस्तुत किए हैं। लक्ष्मी की प्रशंसा करते हुए कवि ने क्या ही सच्चे भाव व्यक्त किए हैं —

मूर्खं प्राज्ञीयति च कुतनु ! कामरूपीयति द्रा
ग्दीन शूरीयति च कुटिल प्राञ्जलीयत्यजस्रम् ।
क्रूर शान्तीयति गतफल सत्फलीयत्यजस्रम् ।
लोकं सोऽयं जयति निखिलस्त्वदुमगिन्या प्रभाव ॥७३॥

रात्रि का भी कवि ने बड़ा सच्चा स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है ।

या ते (चन्द्रस्य) श्यामा सुभग ! दयिता वर्धयत्युग्र-लक्ष्मीं
पक्वं पर्णं तुलयसि यया विप्रयुक्तस्त्वमिन्दो ।
साऽपि श्रान्तं भुवनमखिलं स्वस्वकर्मश्रमेण
निद्रादानात् सुखयति सदाभीष्टविश्वोपकारा ॥७४॥

रात्रि को चन्द्रमा की पत्नी माना जाता है । उसके विरह में चन्द्रमा को पके हुये पत्ते की तरह पीला बता कर कवि ने उनके अनन्य प्रेम की व्यञ्जना की है ।

काव्य में स्थान-स्थान पर नदियों और नगरों का बड़ा सरस और समृद्ध चित्र प्रस्तुत किया गया है । सिद्धपुर के निकट बहती हुई सरस्वती नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

एषा क्वापि प्रचुरतरुले कानने कम्रकूला
क्वापि क्रीडद्युवतिनिकरैरप्सरःसेवितेव ।
सद्वेषेव क्वचन विततैरुज्ज्वलैर्धौतमुक्तै
मुक्ताशुक्त्यावलि रुचिरतरै क्वाप्यलङ्कारितेव ॥६२॥

प्रीणात्येषाऽखिलपुरजनान् स्वपयःपानदाना
दुत्संगस्थान्नमयति च तान्केलि लीला विलोलान् ।
दूरादालिंगति च विततैर्वीचि-हस्तैः पुनीते
॥६३॥

इसी प्रकार सूर्यपुर (सूरत) नगर का भी कवि ने बड़ा भव्य वर्णन किया है –

नीलच्छायं क्वचिदविरलैर्नागवल्लीवनौघै
शुभ्रच्छायं क्वचन कुसुमैर्विस्मृते विभ्रमाय ।
पिङ्गं क्वचिरनिपतितैः कुत्र चित्स्वर्णगेहै
र्नानावर्णं पुरमिदमिति द्योतते सर्वदाऽपि ॥६५॥

सूरत के जैन मन्दिरों को देखकर तो स्वयं भी चकित हो जाता है —

शिल्पिप्रष्ठैः रचितरचनाश्चर्यविश्रामहर्म्यम्
दिग्भूरदायैः कनकखचितैर्भूरिदेवालयानाम् ।

दत्ताऽनन्दं सहृदयहृदां वृन्दमर्हद्गृहाणाम्
चित्रैश्चित्रं क इह न जनो वीक्ष्य विश्रीयतेऽत्र ॥१०॥

यद्यपि काव्य का शान्त रस में पर्यवसान है, फिर भी यत्र तत्र शृंगारिक वर्णन भी पाये जाते हैं। राजद्रङ्ग (अहमदाबाद) की रमणियों का वर्णन करते हुए कवि चन्द्रमा से कहता है —

क्रीडाहर्म्ये प्रियसहचरी प्रेरणाभिः प्रविश्य
शय्योत्सङ्गं प्रणयचटुभिः प्रेयसा प्रापिताश्च।
व्रीडोद्रेकाद् गृहमणिमुपाहृत्य कर्णोत्पलेन।
कान्तोपान्ते तमसि कथमप्यासते या विमुग्धाः ॥७०॥

राजद्रङ्ग की रमणियां बड़ी मुग्ध हैं। इसलिये कवि फिर चन्द्रमा को परामर्श देता है कि वह जाल मार्ग के द्वारा महलों में प्रकाश न करे —

मा कार्षीस्त्वं तरुणकिरणैर्जालमार्गप्रविष्टै-
स्तासां कान्तप्रसभहृतसच्चीनगणां प्रकाशम्।
किं कुर्युः संवरितुमनलं भूषणैस्तास्त्वदङ्गान्
मौग्ध्याद्देयानवगतधियाद्यन्नसंवृत्युपाया[1] ॥७१॥

इन पद्यों में राजद्रङ्ग की मुग्धा नायिकाओं का कैसा भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है।

जैन विद्वान् की कृति होने के कारण काव्य में यत्र तत्र जैन धर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। काव्य के आरम्भ में ही —

स्वस्तिश्रीणां भवनमवनीकान्तपंक्तिप्रणम्यम्
प्रौढप्रीत्या परमपुरुषं पार्श्वनाथं प्रणम्य।

इस प्रकार श्री पार्श्वनाथजी की वन्दना की गई है। स्थान-स्थान पर जैन मन्दिरों का वर्णन किया गया है। काव्य के आकार को देखते हुए शिल्प का सन्देश तो बहुत थोड़ा ही है। परोपकार, सदाचार, श्रद्धा और गुरुभक्ति इत्यादि सद्भावों पर यथा स्थान कवि ने बड़ा जोर दिया है। जीवन सम्बन्धी अपनी अनुभूतियों को भी कवि ने अर्थान्तरन्यास के रूप में पाठकों के समक्ष रक्खा है —

---

१ अलका की रमणियाँ भी कुछ ऐसी ही हैं।

१ न श्रान्ताना सुखयति कथा स्नि'धवर्गोदिताऽपि ।
स्वस्थे चित्ते प्रणयमधुरा गुद्धयो ह्युद्भवन्ति ॥१७॥

२ विश्व दोषान् गणयति जनो को हि रागी भगिन्या ॥३०॥

३ प्रोत्तुगाना भवति महतैतापनेयो विरोध ॥३५॥

४ पश्चात्तापस्तुदति हृदयं दर्शनीये ह्यदृष्टे ॥३६॥

५ कण्ठप्राणा नहि विरहिण कृच्छ्रमीपत्सहन्ते ॥६८॥

६ स्वादीय स्यात् कदशनमपि स्नेहधारोपसिक्तम् ॥१२॥

सम्पूर्ण काव्य के अनुशीलन से यह तो स्पष्ट ही है कि मेघदूत से वर्णन शैली और प्रक्रिया का सहारा लेकर कवि ने नितान्त नवीन विषय पर यह सन्देश काव्य लिखा है। भाषा भी प्रसाद गुण से पूर्ण है। काव्य में सर्वत्र प्रसाद पाया जाता है। कवि की वर्णन शक्ति और उच्च विचारों से सन्देश काव्यों की परम्परा में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। जोधपुर, जालोर, सिरोही, आबू पर्वत, सिद्धपुर, अहमदाबाद, बड़ोदा, भरोंच और सूरत जैसे विख्यात नगरों के मध्यकालीन वैभव पर भी यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। भारतवर्ष के इस भूभाग के भौगोलिक तथा सामाजिक अध्ययन के लिए इस काव्य की उपयोगिता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।[1]

श्री मेघ-विजय का मेघदूत-समस्या-लेख (वि० सं० १७२७)

श्री मेघ विजयजी जैन मुनि थे। यह अकबर बादशाह से जगद्गुरु की उपाधि प्राप्त करने वाले तथा बृहत्तपोगच्छ के नायक श्री कृपा विजयजी के शिष्य थे और श्री हरि-विजय-सूरीश्वर की शिष्य परम्परा में इनका पाचवा स्थान था। व्याकरण ज्योतिष, न्याय, धर्मशास्त्र और अध्यात्म इत्यादि के यह प्रकाण्ड विद्वान थे। इन विषयों पर लिखे हुए इनके ग्रन्थ विद्वत्समाज में बड़े आदर के साथ देखे जाते हैं।

---

१ श्री जैन साहित्यवर्धक सभा, शिरपुर (पश्चिमखानदेश) से प्रकाशित।

सप्तसन्धान नामक काव्य से इनकी विशिष्ट कवि प्रतिभा का परिचय मिलता है। इस काव्य में एक साथ सात कथानक सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में वर्णित किए गए हैं। देवनन्दाभ्युदय नामक सात सर्गों के काव्य में विजय देव-सूरि का जीवन वृत्त का इन्होंने वर्णन किया है। वि० स० १७२७ (ई० स० १६२१) में इस काव्य की रचना की गई।[1] शान्तिनाथ चरित में इन्होंने शान्तिनाथ का जीवनचरित वर्णित किया है। इन दोनों काव्यों में शिशुपाल वध और नैषधीय से पंक्तियाँ लेकर समस्या-पूर्ति की गई है। उदाहरणार्थ निम्न श्लोकों को देखिए —

श्रियामभिव्यक्त-मनोऽनुरक्तता विशालसालत्रितया श्रिया स्फुटा।
तया बभासे स जगत्त्रयीनिभुर्ज्वलत्प्रतापावलि कीर्तिमण्डल ॥

(नैषध) निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथा सुगं सुराज्यादिसुख बहिर्मुखम्।
प्रपेदिरेऽन्तः स्थिरतन्मयाशया सदा सदानन्दभृत प्रशंसया ॥
यथा श्रुतस्येह निपीततत्कथास्तथाद्रियन्ते न बुधा सुधामपि।
सुधाभुजा जन्म न तन्मन प्रिय भवेद्भवे यत्र न तत्कथाप्रथा ॥

सप्त-सन्धान महाकाव्य में श्री मेघविजयजी ने प्रत्येक पद्य में वृषभनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीर-स्वामी, कृष्ण और बलराम इन सात महापुरुषों का जीवन-वृत्त एक साथ ही वर्णित किया है। प्रथम पांच महापुरुष तो जैनियों के तीर्थंकर हैं। इस काव्य में सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में अनेक कथानक वर्णित किए गए हैं। कवि ने इस काव्य द्वारा संस्कृत भाषा की महान् वर्णन शक्ति का पाठकों को परिचय दिया है। उदाहरणार्थ—

अवनिपतिरिहासीद्विश्वसेनाश्वसेनाभिधदशरथनाम्ना यः सनाभिः सुरेशः।
वलि निजयिसमुद्रः प्रौढसिद्धार्थसत्र प्रसृतमरुणतेजस्तस्य भूकच्छपस्य।।१।४४।

आचार्य हेमचन्द्रजी के संबंध में कहा जाता था कि उन्होंने सप्त सन्धान नामक एक काव्य लिखा था, लेकिन चूंकि वह खो गया था, इसलिए मेघ विजयजी ने इस ग्रन्थ की रचना की। मेघविजयजी ने स्वयं लिखा है—

श्री हेमचन्द्र सूरीशैः सप्तसन्धानमादिमम्।
रचित तदलाभे तु स्यादिद तुष्टये सताम् ॥

दिग्विजय महाकाव्य में भी तेरह सर्गों में विजयप्रभसूरि का जीवन वृत्त इन्होंने वर्णित किया है। युक्ति प्रबोध नामक एक Allegorical नाटक भी इन्होंने लिखा है। इसमें अपने समकालीन कुछ विरोधी दार्शनिक सिद्धान्तों का इन्होंने खण्डन किया है।

---

१ यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, बनारस से इसका कुछ अंश प्रकाशित हुआ है।

मेघदूत समस्या लेख भी इन्हीं का लिखा हुआ है। मेघदूत के पदों की अंतिम पंक्ति को समस्या मानकर यह काव्य लिखा गया है। यद्यपि इस काव्य में कहीं भी लेखक के गुरु का नाम तथा उसका रचना काल नहीं उल्लिखित है, फिर भी काव्य के अंतिम श्लोक से कवि के संबंध में हमें कुछ ज्ञान अवश्य प्राप्त होता है। वह श्लोक इस प्रकार है —

माघकाव्य देवगुरोर्मेघदूत प्रभप्रभो
समस्यार्थ समस्यार्थं निर्ममे मेघपण्डित ॥१३१॥

इस श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरणों से यह सिद्ध होता है कि विजयदेवसूरि के जीवन वृत्त को लेकर लिखा गया समस्यापूर्तिपरक माघकाव्य तथा विजयप्रभसूरि के लिए विज्ञप्ति स्वरूप लिखा गया मेघदूत समस्यालेख दोनों ही एक कवि की रचना हैं। तदनन्तर जब हम माघकाव्यसमस्यापूर्ति काव्य की प्रशस्ति में आए हुए निम्न श्लोकों को देखते हैं —

तत्सेवासक्तचेता अनवरततया प्राप्त लक्ष्मीर्विशिष्य
शिष्य श्रीमत्कृपादेर्विजयपदभृत सत्कवेर्वाचकश्री।
मेघ एद्मप्रसादाद्विशदमनिजुषा थाव्यकाव्य चकार
देवानन्द मदैन्द्रोज्ज्वलविपुलधिया शोध्यता शोध्यमथ ॥
मुनिनयनाश्वेन्दुमिते १७२७ वर्षे हर्षेण सादडीनगरे।
ग्रन्थ पूर्ण समजनि विजयदशम्यामिति श्रेय ॥

तब ज्ञात होता है कि श्री मेघविजयजी श्री कृपाविजय मुनि के शिष्य थे तथा वि० अष्टादश शतक में विद्यमान थे। यों तो जैन मुनियों का कोई निवास स्थान नहीं, पर उपर्युक्त श्लोक से यह प्रतीत होता है कि यह मारवाड में सादडी नामक नगर में रहा करते थे। इनके प्रगाढ पाण्डित्य के कारण ही इन्हें महामहोपाध्याय कहा जाता रहा है।

काव्य की कथा

इस काव्य में कवि ने देवपत्तन में स्थित अपने गुरु तपगणपति श्रीमान् विजय प्रभसूरि के पास मेघद्वारा कुशलवार्ता इत्यादि का सन्देश भेजा है। काव्य की कथा इस प्रकार है। श्री मेघविजयजी अपने गुरु श्री विजयप्रभुजी के आदेश से नव्यरंग पुरी (औरंगाबाद) में ज्येष्ठ मास में अपना चातुर्मास्य प्रारम्भ करते हैं। भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की पंचमी आते २ गुरु के चिरवियोग से उनका हृदय व्यथित हो उठता है। इसी अवसर पर आकाश में उठते हुये मेघ को देखकर उसे वे अपना सन्देश देकर देवपत्तनस्थित अपने गुरु के पास भेजते हैं। इस प्रसंग में औरंगाबाद से देवपत्तन [गुजरात] तक का मार्ग बड़ी सरस रीति से वर्णित किया गया है। सर्व प्रथम मार्ग

में आने वाले श्री शान्तिनाथ के मंदिर में पूजा करने का मेघ को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर औरंगाबाद नगर का बड़ा समृद्ध वर्णन काव्य में पाया जाता है। औरंगाबाद से पूर्व की ओर देवगिरि नामक पर्वत पर पहुँचने के बाद देवगिरि नामक नगरी की शोभा देखने के उपरान्त एलोर पर्वत पर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है। एलोर पर्वत पर श्री पार्श्वनाथजी की स्तुति करने के बाद आगे बढ़ने पर मार्ग में तुंगिआ नामक पर्वत के मिलने का उल्लेख किया गया है। यहां पर मेघ को किसी श्रमणवृषभ को प्रणाम करने का आदेश दिया गया है। आगे बढ़ने पर मार्ग में श्रीसूर्यांख्य किसी मन्दिर का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर तापी नदी, भृगुपुर, नर्मदा नदी और मही-नदी को क्रमशः पार करने के बाद हम्मिगृह नामक नगर में मेघ के पहुंचने का वर्णन है। यहां से समुद्र तटवर्ती पर्वतशिखरों में कुछ विश्राम करने के बाद पश्चिम दिशा की ओर सिद्धशैल (शत्रुंजय नामक जैनतीर्थ) नामक पर्वत पर पहुँचने का मेघ को आदेश दिया गया है। यहां पर श्री शत्रुंजय तथा भगवान् वृषभदेव की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर मेघ के द्वीपपुरी (देवकपत्तन) पहुंच जाने का उल्लेख किया गया है। इस द्वीपपुरी में ही कवि ने अपने गुरु का आश्रम बताया है। इस अवसर पर गुरु के प्रताप, संयम और ब्रह्मचर्य व्रत का बड़ा प्रभावपूर्ण वर्णन किया गया है। प्रसंगवश गुरु के जीवन वृत्त पर भी कवि ने कुछ प्रकाश डाला है। कवि ने लिखा है कि भारतवर्ष में कच्छ देश बड़ा ही रमणीय प्रदेश है। यहां पर श्रीमनोरथ्य नामक एक बहुत ही सुन्दर नगर है। यहां पर शिवगुण नामक एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम भाणी था। कालान्तर में उनके एक समग्र गुणयुक्त तथा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम उन्होंने वैरिसिंह रख छोड़ा था। बड़े होने पर श्री विजयदेवसूरि के उपदेश को सुनकर उसे वैराग्य हो गया। उसने मातासे व्रत में दीक्षित होने की आज्ञा मांगी। माता अपने पुत्र के इस आकस्मिक विचार को देखकर बड़ी व्यथित हुई। माता की असह्य वेदना को देखकर पुत्र ने अपना विचार स्थगित कर दिया। तदनन्तर माता पिता के स्वर्गवास हो जाने पर उसने स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली। बाद में उनके गुरु ने वि० सं० १७१० वैशाख शुक्ल दशमी को गन्धपुरी में उन्हें गच्छ का नायक बना दिया। यही श्री विजयप्रभुस्वामी हैं। इनके आश्रम में निरन्तर स्वाध्याय, व्रतचर्या और कल्पपाठ इत्यादि चलता ही रहता था। श्रावक संघ निरन्तर धर्मचर्या में इनके आश्रम में लीन रहता था। इस प्रकार गुरु के जीवन वृत्त, महिमा और आश्रम का वर्णन करने के बाद मेघ से कवि ने गुरु को अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है।

सन्देश में कवि ने सर्व प्रथम गुरु के प्रताप का वर्णन किया है। तदनन्तर गुरु के वियोग में अपनी व्याकुलता और असहायावस्था का वर्णन किया है। अन्त में गुरु से प्रार्थना की गई है कि वह अवसर कब आयगा जब ध्यान मुद्रा के साथ वह गुरु की साक्षात् स्तुति कर सकेगा। फिर कहा गया है कि बचपन से ही गुरु की

सेवा करने वाले शिष्य की केवल इतनी ही विनती है कि उसे गुरु के हृदय में कुछ आश्रय मिल जाय।

गुरु को सन्देश सुनाने के बाद गुरु से कुछ प्रत्युत्तर लाने का भी मेघ को परामर्श दिया गया है।

कवि की प्रार्थना सुनने के बाद मेघ उसके गुरु के पास जाता है और कवि का सन्देश सुनाता है। तदनन्तर गुरु के प्रतिसन्देश को लेकर वह लौट आता है और कवि को उसके गुरु का प्रतिसन्देश सुनाता है। गुरु की कुशलवार्ता तथा कृपादृष्टि का समाचार पाकर कवि को बड़ी प्रसन्नता होती है।

बस यहीं पर ही काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य समीक्षा

जैसाकि काव्य के नाम से स्पष्ट है इस काव्य में मेघदूत की समस्यापूर्ति की गई है। मेघदूत के पद्य की चतुर्थ पंक्ति को समस्या मानकर यह काव्य लिखा गया है तथा साथ में मेघ को दूत भी बनाया गया है। अतः दूतकाव्य तथा समस्या पूर्ति इन दोनों दृष्टिकोणों से यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं। अंतिम श्लोक अनुष्टुभ् छन्द में है। इसमें कवि ने लेखक के रूप में अपना उल्लेख किया है। अवशिष्ट १३० श्लोकों में काव्य की कथा उपनिबद्ध है। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य का नहीं किया गयाहै। यों तो भाषा तथा शैली की दृष्टि से यह मेघदूत का ही अनुकरण है, लेकिन विषय तथा भाव की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत से नितान्त भिन्न है। किसी प्रिय का अपनी प्रेयसी के लिए सन्देश न होकर इस काव्य में एक भक्त शिष्य द्वारा अपने श्रद्धेय गुरु के पास सन्देश भेजा गया है। काव्य का मुख्य रस अथवा भाव भक्ति ही है।

जिस तरह मेघदूत में मेघदर्शन, मेघ स्वागत, सन्देश ले जाने की प्रार्थना और मार्ग वर्णन इत्यादि पाया जाता है, ठीक उसी तरह इस काव्य में भी यही वर्णनक्रम कवि ने रक्खा है। मेघदूत में मेघ के सम्बन्ध में कहा गया है —

धूमज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः॥

इसी तरह इस काव्य में भी मेघ को दूत बनाते समय कवि कहता है—

क्वायं प्रायः पवनसलिलज्योतिषां सन्निकायः
क्वार्थश्चायं प्रवणकरणैः यो विधेयः स॰ वै ॥५॥

यहा भाव तथा भाषा दोनों में ही बड़ी समानता है। जिस प्रकार उज्जयिनी नगरी का मेघदूत में बड़ा उदात्त वर्णन किया गया है, उसी तरह औरंगाबाद का भी कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। कवि मेघ से कहता है —

धन्योऽसि त्व जलद पटले ! दक्षिणस्या प्रविश्य
दृष्ट येन प्रवरनगर सारमेतज्जगत्या ।
भुक्ते,भाग्ये भुवि नु मरुता देवशैलादुद्विधाऽपि
शेषे पुण्यैर्हृतमिव दिव कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३२॥

आगे चलकर औरंगाबाद की समृद्धि का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अस्या मुक्तामरकतपविश्रीप्रसूनेन्दुरत्न
पूगान् दृष्ट्वा तरणिशशिनो भ्रान्तकान्तिस्वरूपान् ॥
पण्यश्रेणीविपणिगणितान् विद्रुमच्छेदराशीन्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषा ॥३४॥

देवकपत्तन नगर के वर्णन में भी अलका के वर्णन की छाया दिखलाई पड़ती है। कवि नगर का वर्णन करते हुए कहता है—

दण्डश्चैत्ये कुसुमनिचये बन्धन विप्रयोगो
धातुद्वारे चलकुटिलता सुभ्रुवोर्नान्य लोके ।
कोशासक्त्या हृयगुरुदहनो दुधूतधूमस्य मन्ये
वित्तेशाना न खलु च वयो यौवनादन्यदस्ति ॥७३॥

अलका नगरी का जिस तरह शृगाररसपूर्ण वर्णन किया गया है, उसी तरह इस नगर का भी शृगार रस-युक्त चित्र अकित किया गया है—

रात्रौ यस्या कथमपि समानीय संचारिकाभि
र्वासावास प्रणयिसविधे स्थापिता या नवोढा ।
तासा भोगादरिणि (?) रमणे दीपमुद्दिश्य मुक्तो
ह्रीमूढाना भवति विफलप्रेरणश्चूर्णमुष्टि ॥७४॥

अलका नगरी की तरह देवपत्तन नगर में भी रात्रि में अभिसारिकाए अपने प्रियतमों के पास आती हैं —

कामादेशाद्गमनसमयऽलक्तक यत्कपाद
न्यासैर्वासैर्मसृणघुसृणालेपनै र्यत्र भित्तौ ।
मुक्ताध्वग्म्यो विलुलितकरै कंकणै र्यौवनान्धै
नष्टो मार्गं सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥७६॥

जिस प्रकार मेघदूत में यक्ष के यहां वापी इत्यादि का वर्णन किया गया है, इसी प्रकार देवपत्तन नगर में भी तडाग और वापिया वर्णित की गई हैं —

सिन्धोस्तत्रानुज इव लसद्वीचिरामास्तडाग
उद्यानान्तस्तरणपयसो दीर्घिकास्तस्य कान्ता ।
यासां वचन्नयननलिनैर्मोहिता मानसाम्भो
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसा ॥८४॥

इस प्रकार विज्ञ पाठक देख सकते हैं कि समस्या पूर्ति के साथ २ कवि ने मेघदूत के मूल भाव को भी स्थान २ पर सुरक्षित रक्खा है।

कहीं २ कवि ने शृंगार रस के वातावरण की पंक्ति को प्रसंगान्तर में बड़ी कुशलता से व्यवहृत कर दिया है। मेघदूत में यक्ष अपने वियोग में अपनी प्रेयसी की सम्भावना करते हुए कहता है—

जाता मन्ये तुहिनमथिता पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥

इस काव्य में लेखक ने अपने गुरु के आश्रम में मोह इत्यादि की परिषद् का वर्णन करते हुए लिखा है—

प्राप्तक्षोभा विजयिनि गुरौ देवनाम्नीह पूर्वम्
मोहादीनाम समपरिषद् क्षुकया शुकुकल्पा ।
साम्राज्येऽस्य प्रशमपवनैर्वेपमाना भयात्ता
जाता मन्ये तुहिनमथितापद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥८३॥

मेघदूत में यक्ष की पत्नी के सम्बन्ध में कहा गया है —

पृच्छन्ती वा मधुर-वचना सारिका पंजरस्थाम्
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२॥२४॥

इस काव्य में कच्छ देश का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

जम्बू द्वीपे भरतवसुधामण्डनं कच्छदेशो
यत्राम्भोधिर्भुवमनुकलं पूज्यत्येव रत्नैः ।
पृच्छन्[१] पूता जननललनैः सूरिणा यैरमूनि
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥६५॥

---

१ हे रसिके ! सूरिणा यैः जनन-ललनैः त्वं पूता, भर्तुः अमूनि जनन-ललनानि त्वं कच्चित् स्मरसि ?, हि त्वं तस्य प्रिया इति पृच्छन् अम्भोधिः यत्र भुवं पूजयती त्यर्थयोजना ।

कवि ने कितने कौशल से प्रसगान्तर में मूल पंक्ति को प्रयुक्त किया है।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहता है-

साभ्रे ऽह्नीव स्थल कमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता ॥२॥२९॥

इस काव्य में वैरिसिंह जब व्रतचर्या के लिए माता की आज्ञा मागता है, तब माता की अवस्था का वर्णन करते हुए कवि लिखता है —

जाता माताऽवचनविषयाऽसह्यदुःखाभिघातात्
साभ्रे ऽह्नीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता ॥१०३॥

विरहावस्था के प्रसग में आई हुई पंक्ति को वात्सल्य भाव के प्रसंग में कवि ने कितनी कुशलता से व्यवहृत किया है। —

कहीं कहीं कवि ने शृ गार रस की पंक्ति को शान्त रस के अनुकूल बना दिया है —

मेघदूत में यक्ष अपना सन्देश सुनाते हुए कहता है कि वह —

अंगेनांगं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तम्
साम्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
सकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥२॥४१॥

उपर्युक्त पद्य की चतुर्थ पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुए कवि ने इस काव्य में लिखा है —

कर्तुं कश्चित्स्पृहयति पुनः स्तीर्थयात्रां सतंत्रम्
कश्चिद्वोढु व्रतविधिभरं योपधानानि काचित्।
इत्थं संघो गुरुगुरुलसद्भक्तिरद्यापि धर्मे
सकल्पैस्तैर्विशति विधिनाऽवैरिणाऽरुद्धमार्गः ॥११४॥

श्री विजय प्रभु स्वामी के आश्रम का यह वर्णन है। यहां प्रत्येक व्यक्ति अनुकूल दैव से स्वतन्त्र मार्ग पाकर विभिन्न सकल्पों के द्वारा धर्म में प्रवेश कर रहा है। भाव के विपर्यास करने में कवि को कुछ सन्धि-श्लेष भी उठाना पड़ा है लेकिन फिर उसका प्रयास सफल है।

इसी तरह विरहिणी यक्षिणी की स्मृति में यक्ष कहता है कि उसका सौन्दर्य अनुपम है। कहीं भी उसका सादृश्य नहीं मिलता है।—

हन्तैकस्य क्वचिदपि न ते भीरु सादृश्यमस्ति ॥२॥४२॥

इस काव्य में गुरु के तेज, शान्ति, धीरता और परोपकार का वर्णन करते हुऐ कवि कहता है —

पूर्णाचन्द्र स्तवमुखविभा भाययत्येव पूर्णाम्
तेजस्वित्व स्पृशति तरणिर्धीरता मेरुरद्रि ।
अम्भोवाह प्रवहति तथाऽन्योपकारप्रकारम्
हन्तैकस्य क्वचिदपि न तेऽभीरुसादृश्यमस्ति ॥

जहा ? कवि ने समस्या पूर्ति में भाव परिवर्तन किया है, वहा उसे मूल पंक्ति में भी कुछ क्लिष्ट कल्पना करनी पडी है। मेघदूत में यक्षिणी की विविध चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है —

प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनाना विनोदा ॥२॥२६॥

इस पंक्ति की समस्या पूर्ति में श्री विजय प्रभुस्वामी के उत्पन्न होने पर भी उनकी माता के हर्ष का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है —

गायत्युच्चै र्हसति रमते मोदते स्वालिवर्गैं
प्रायेणैतेऽरमणविरहेष्वङ्गनाना विनोदा ॥१००॥

प्रिय विरह में गाना, हसना और सखियों के साथ खेलना हो ही कैसे सकता है। अत कवि को स्वधिक्लेश उठाना अनिवार्य सा ही हो गया है।

कहीं कहीं समस्या पूर्ति के लिए कवि को बडा मानसिक परिश्रम करना पडा है। मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुए कहा गया है —

यत्र स्त्रीणा हरति सुरत ग्लानिमङ्गानुकूल
(सि शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥१॥३१॥

इस पंक्ति की समस्या पूर्ति करते समय कवि ओरगाबाद का वर्णन कर रहा है। मेघ को सम्बोधन करते हुए कवि कहता है —

आश्लेष्टु कमल रदना वीचिहस्तै सरस्य
प्रोक्ता कान्ता इव सुनयना त्वा विजानन्ति शब्दै ।
मुक्त्वा नस्त्व विरहविधुरा कुत्र गन्तासि भोग्योऽ
सि प्रावात प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकार, ॥३३॥

'असि, प्राव + (प्र + अव = रक्ष) अत ' ऐसा पदच्छेद मानकर त्व भोग्य असि, अत प्राव =रक्ष' यह अर्थ सिप्रावात पद का निकालना पडता है। समस्यापूर्ति

के कारण 'सिप्रागात' पद का जो अग भग हुआ है, उससे उसका मूल अर्थ तो लुप्तप्राय ही हो गया है। साथ में बडी क्लिष्ट कल्पना भी करनी पडी है।

यद्यपि कई स्थलों में समस्या पूर्ति के कारण कवि को मूल पंक्ति के भाव को उल्टा करना पडा है अथवा भावान्तर में बदलना पडा है, फिर भी समस्या पूर्ति में कवि प्राय सफल ही है। उपर्युक्त स्थल काव्य में थोडे ही हैं। कहीं २ तो काव्य में मेघदूत के समान ही भाव और भाषा दृष्टिगोचर होती है। औरंगाबाद का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

गीर्वाण स्त्री सदृश सुदृशा तस्य सौधोर्द्ध्वगामी
लोलापांगै यदि न रमसे लोचनै वंचितोऽसि ॥२६॥

इसी प्रकार देवगिरि नगरी का वर्णन करते हुए मेघ को परामर्श दिया गया है।

तारुण्येन स्मरपरवशा शिक्षितानाप्रवृत्तिम्
रात्रौ स्त्रीणामुपपतिगतौ श्रोणिभारालसानाम्।
देहालम्ब्य विमलतडिता दर्शयस्तत्र मार्ग
तोयोत्सर्ग स्तनित मुखरो मा स्म भू र्विक्लवास्ता ॥४१॥

उपर्युक्त दोनों पद्य मेघदूत के पूर्व भाग के 'वक्र पन्था यदपि भवत' इत्यादि तथा गच्छन्तीना रमण वसति योषिता तत्र नक्तम्' इत्यादि पद्यों से पूर्णतया मिलत जुलते हैं। इस प्रकार समस्यापूर्ति की दृष्टि से मेघदूत को समस्या मानकर लिखे गए हुए दूत काव्यों में यह काव्य सर्वोत्तम रचना है।

जैसाकि काव्य की कथा से स्पष्ट ही है, कवि ने अपने गुरु के लिए विज्ञप्ति स्वरूप यह काव्य लिखा है। अत गुरु भक्ति तथा जैनधर्म का यत्र तत्र काव्य में स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। कवि की गुरुभक्ति श्लाघनीय है। गुरु के वियोग में अपनी अवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

नित्यं चेत स्फुरति चरणाम्भोजयो सूरिराज[१]
काय सँ समयविषये सनिवद्धान्तराय[२]।
नो[२] चेद्दी दग्गुरु सुरतरु प्राप्य क स्याद्दवीयान्।[३]
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो य पराधीनवृत्ति ॥८॥

---

१ सूरिराजस्येत्यर्थ ।
२ कायस्य विषयत्वेनविघ्न शून्यत्वे।
३ अतिदूरवर्ती ।

कवि ने अपनी गुरुभक्ति का कितनी सरल और भावपूर्ण शैली में वर्णन किया है।

आगे चलकर अपने गुरु का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तत्रास्माक विभुरभिनवै पात्रवृन्दै परीत
स्फीतच्छायो बकुलकमला सनिधत्ते प्रतीकैः ।[१]
स्निग्धक्षुधो मनसि भगवाश्चारुनार्या विलासै
काक्षन्त्यन्यो मदनमदिरा दोहदच्छद्मनाऽस्या ॥८८॥

गुरु के प्रभाव, सौन्दर्य और शील का कवि ने कैसा सुन्दर चित्र यहा पर अकित किया है।

जैन-धर्म का कोई विवरण तो काव्य में नहीं पाया जाता है, लेकिन स्थान २ पर जैन प्रतिमाओं और तीथकरों का श्रद्धा के साथ उल्लेख किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मेघ को देवपत्तन नगर में जैन प्रतिमाओं की स्तुति करने तथा तज्जन्य अपूर्व कान्ति प्राप्त करने का परामर्श देते हुए कवि कहता है—

नाना रत्नाभरण किरणै र्भूषिताधूपिताच्चर्याम् ।[२]
जैनीमर्चा[३] तत्र विनमत काऽपि कान्तिर्भवित्री ॥२७॥

प्रतिमा के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

लोका कुष्ठाद्गलित वपुषो निर्विरोका सशोका
अर्हत्स्नानामृतभरसर स्नातमात्रा क्षणेन ।
भूत्वा भास्वल्ललिततनवो दिव्यभोगै भजन्ति
सो कण्ठानि प्रिय सहचरी सभ्रमालिंगितानि ॥२२॥

इसी प्रकार एलोर पर्वत पर पार्श्वनाथ[४] और तु गिआ पर्वत पर वृषभनाथ[५] तथा सिद्ध शैल पर भी वृषभ भगवान्[६] की प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है।

---

१ अगे।
दिग्विसर्गे उषिता धूपिता देवा स्तैरर्च्या पूज्याम्।
३ अर्चाम्=प्रतिमाम्।
४ दे० श्लोक स० ४२।
५ दे० श्लोक सं० ४८।
६ दे० श्लोक स० ६३।

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को काव्य के विषय, भाव, भाषा, और शैली का सम्यक् ज्ञान हो गया होगा। काव्य का मुख्य रस शान्त रस है। माधुर्य और प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति ही इस काव्य में पाई जाती है। कवि ने समस्या पूर्ति करते हुए भी काव्य को क्लिष्ट नहीं होने दिया है। काव्य के पढ़ते समय मेघदूत जैसा ही आनन्द आता है। इसका एक कारण तो यह भी हो सकता है कि इसमें मेघ को ही दूत बनाया गया है अत बिना किसी भाव विपर्यास के समस्या पूर्ति हो गई है। समीक्षा के प्रसग में इस बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि इस काव्य का लेखक भी मेघ नाम का है, समस्या भी मेघदूत से ली गई है तथा दूत भी मेघ को ही बनाया गया है। दूत काव्यों तथा मेघदूत की समस्या पूर्ति परक काव्यों में यह काव्य अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।



चतुर्थ अध्याय

जैनेतर सन्देश-काव्य

१ धोयि कवि का पवन-दूत
२ पूर्णसारस्वत का हंस सन्देश
३ वेदान्त-देशिक का हंस-सन्देश
४ अनिर्ज्ञात कवि का हंस सन्देश
५ लक्ष्मीदास का शुक सन्देश
६ वासुदेव कवि का भृंग सन्देश
७ उद्दण्ड कवि का कोकिलसन्देश
८ उदयकवि का मयूर सन्देश
९ वामन-भट्ट-बाण का हंसदूत
१० विष्णुदास का मनोदूत
११ विष्णुत्रात का कोकसन्देश
१२ रूप-गोस्वामी का उद्धव-सन्देश
१३ रूप-गोस्वामी का हंस-दूत
१४ माधवकवीन्द्र का उद्धव-दूत
१५ शतावधानकवि का भृंग-दूत
१६ रुद्रन्यायपचानन का भ्रमर-दूत
१७ रुद्रन्यायपचानन का पिक-दूत
१८ कृष्ण-सार्वभौम का पदाकदूत
१९ तैलंग ब्रजनाथ का मनोदूत
२० श्रीकृष्ण न्याय पचानन का वात-दूत
२१ भोलानाथ का पान्थ-दूत
२२ नित्यानन्द-शास्त्री का हनुमद्दूत

धोयि कवि का पवनदूत (वि० द्वादश त्रयोदश शतक)

पवनदूत एक सुन्दर सन्देश काव्य है। यह कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया है। 'धूयि' 'धोयी' 'धोई' अथवा 'धोयिक' नामक कवि इसका रचयिता है। यह कवि बंगाल के सेन-वंश के राजा लक्ष्मणसेन की सभा में राज कवि था। कविराज इसकी उपाधि थी। पवनदूत के श्लोक सं० १०१ तथा १०३ में कवि ने अपने लिए स्वयं 'कविक्ष्माभृतां चक्रवर्ती' और 'कविनरपति' कहा है। पवनदूत के अन्त में भी 'इति श्री धोयीकविराजविरचितम्' इत्यादि लेख मिलता है। लक्ष्मणसेन की सभा में केवल पांच रत्नों का उल्लेख करने वाले—

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ॥

श्लोक में कविराज पद धोयि कवि के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। किसी कवि को केवल उसकी उपाधि से ही उल्लिखित करना कोई नई बात नहीं है। बड़े २ राजाओं का भी केवल उपाधियों से ही कभी कभी उल्लेख होता है, यहां तक कि सम्राट् अशोक के लिए भी केवल प्रियदर्शी ही अधिक स्थलों पर लिखा हुआ पाया जाता है।

धोयी कवि राजा लक्ष्मणसेन की सभा में राज कवि था। राजा लक्ष्मणसेन का समय सर्वसम्मति से केवल इतना ही निश्चित है कि वह ई० बारहवीं शताब्दी के प्रथम या द्वितीय भाग में राज्यसिंहासन पर बैठा था। अतः धोयि कवि का कार्यकाल भी ई० द्वादश शतक या वि० द्वादश शतक का उत्तरार्ध और त्रयोदश शतक का पूर्वार्ध ही ठहरता है। श्रीधरदास के सदुक्तिकर्णामृत में जो कि शक सं० ११२७ अथवा सं० १२०६ ई० का लिखा हुआ है, धोयि के पद्य पाए जाते हैं। तेरहवीं शताब्दी के मध्य में जल्हण द्वारा लिखी हुई सुभाषितमुक्तावलि तथा चौदहवीं शताब्दी में लिखी गई शार्ङ्गधरपद्धति में भी धोयिरचित पद्यों का उल्लेख मिलता है। अतः तेरहवीं शताब्दी के मध्य या चौदहवीं शताब्दी से पूर्व का समय ही धोयि कवि का समय मानना चाहिए।

धोयि कवि के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात है कि वह राजा लक्ष्मणसेन का सभापण्डित था। उसके जन्मस्थान का कुछ भी पता नहीं है। उसकी जाति निश्चित करना और भी कठिन है। इस सम्बन्ध में दो अत्यन्त विरोधी विचार हमारे सामने आते हैं। प्रथम यह कि धोयिकवि ब्राह्मण था। द्वितीय यह कि वह बंगाल की वैद्य जाति का था। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने[1]

---

[1] दे० Notices Sans Mss vol I Preface P XXXVIII

लिखा है कि वशावलियों के अध्ययन से धोयिकवि पालधि गणि और कश्यप गोत्र का राढ़ीय ब्राह्मण ठहरता है।

धोयि कवि के वैद्यजातीय होने का विचार वैद्यवशावलीग्रन्थों में आए हुए दुहिसेन या धूयिसेन नाम के धोयि नाम से तादात्म्य पर निर्भर है।[१] इस प्रकार धोयि कवि की जाति के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं है। कविराज उपाधि केवल वैद्य जाति के लोगों की ही हो, ऐसा भी कुछ निश्चित नहीं है। ब्राह्मण जाति के जयदेव कवि को भी कविराज कहा ही जाता है।

धोयि कवि की केवल एक रचना पवनदूत ही हमें प्राप्त है। यह कुछ निश्चित नहीं कि इसने और भी ग्रन्थ लिखे या केवल इसी एक काव्य के आधार पर उसे कविराज कहा जाता है। कुछ फुटकर पद्य जो पवनदूत में नहीं हैं, सुभाषित ग्रन्थों में धोयि कवि के नाम से पाए जाते हैं। लेकिन धोयि के किसी और ग्रन्थ का इन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है। पवनदूत के श्लोक स० १०४ में 'वाक्सन्दर्भा कतिचिद मृतस्यन्दिनो निर्मिताश्च' इन शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि धोयि कवि ने और भी ग्रन्थ लिखे होंगे। कवि के कथन से, सुभाषित ग्रन्थों में उसके नाम से दिए गये पद्यों से तथा कविराज उपाधि से यह सिद्ध होता है कि उसने अन्य भी कई ग्रन्थ लिखे होंगे। लेकिन इस समय केवल पवनदूत ही हमें उपलब्ध है।

धोयि कवि अपने समय का एक प्रसिद्ध कवि था। उसके आश्रयदाता राजा लक्ष्मणसेन की सभा में सभी प्रकार के विद्वान् थे। जयदेव कवि ने उमापतिधर, शरण, गोवर्धन और धोयि तथा स्वयं का उल्लेख किया है।[२] यह पांच उसकी सभा के रत्न थे। कहीं २ इसको श्रुतिधर नाम से भी निर्दिष्ट किया गया है। सदुक्तिकर्णामृत में एक श्लोक आता है। उसका पूर्व भाग तो पवनदूत के श्लोक स० १०१ के पूर्व भाग से बिल्कुल मिलता है। यथा—

दन्तिव्यूहं कनककलितं चामरं हैमदण्डम्
यो गौडेन्द्रादलभत कविक्ष्माभृतां चक्रवर्ती।

और उत्तरार्ध इस प्रकार है—

ख्यातोयश्च श्रुतिधरतया विक्रमादित्यगोष्ठी
विद्याभर्तुं खलु वररुचेराससाद प्रतिष्ठाम् ॥

---

१ पुण्डरीकाक्षसेनस्य दुहिसेन सुतोऽभवत्।
धरस्य त्रिपुरारयस्य तनयागर्भ सम्भव ॥ कविकण्ठहार ।
सुधाशोरत्रेरिव पुण्डरीकसेनात्तनूजोऽजनि धूयिसेन ॥ चन्द्रप्रभा पृ० २१३

२ द्र० गीत गोविन्द ।१।४।

जयदेव ने भी धोयि कवि के लिए श्रुतिधर विशेषण का प्रयोग किया है। अतः धोयि और श्रुति धर को एक ही व्यक्ति मानना चाहिए।

पवनदूत की कथा

गौड वंश के राजा लक्ष्मण सेन की दक्षिण दिग्विजय में मलयपर्वत पर कनक नगरी में रहने वाली कुवलयवती नाम की एक गन्धर्व कन्या राजा को देखकर उससे प्रेम करने लगती है। राजा लक्ष्मणसेन बंगाल में जब अपनी राजधानी में लौट आता है, तो कुवलयवती उसके विरह में बड़ी व्याकुल रहने लगती है। वसन्त ऋतु के आने पर वसन्त की वायु को अपना सन्देशवाहक बना कर वह राजा के पास अपनी विरह व्यथा सुनाने के लिए भेजती है। काव्य की मूल कथा बस इतनी ही है। मलयपर्वत से बंगाल तक के मार्ग का कवि ने बड़ा ही कवित्वमय वर्णन किया है। राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर के वर्णन के बाद कुवलयवती की वियोगावस्था का बड़ा करुण वर्णन किया गया है। अन्त में फिर कुवलयवती का सन्देश दिया गया है।

पवनदूत का ऐतिहासिक आधार[1]

पवनदूत के श्लोक सं० ३ में 'दृष्ट्वा देव भुवनविजये लक्ष्मणं क्षौणिपालम्' ऐसा उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि राजा लक्ष्मणसेन दिग्विजय के लिए अवश्य निकला था और दक्षिण में मलयपर्वत तक गया था। अब प्रश्न यह उठता है कि यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य है या कवि ने अपने आश्रय दाता की प्रशंसा करने के लिए अपनी कल्पना से ही ऐसा लिखा है।

सेन राजाओं के अब तक प्राप्त हुए शिलालेखों से राजा लक्ष्मणसेन की दिग्विजय यात्रा का कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होता है, लेकिन विभिन्न ताम्रपत्रों में पाये गये फुटकर उद्धरणों से हम उसकी विजय-यात्रा के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हैं। राजा लक्ष्मण सेन के मधाई नगर वाले ताम्रपत्र में ऐसा उल्लेख है–

यस्य कौमारकेलि कलिंगागनाभिः।

यह पंक्ति राजा लक्ष्मणसेन के कलिंग देश पर किये गये आक्रमण की ओर ही संकेत करती है। इसी ताम्रपत्र में 'येनासी काशिराज समरभुवि जित' ऐसा आया है। इससे लक्ष्मण के काशीविजय की भी पुष्टि होती है। लक्ष्मणसेन के पुत्र विश्व

---

[1] आर० डी० बनर्जी, बंगलार इतिहास पृ० ३२४॥ गौड राजमाला पृ० ६६।

रूप सेन के एक ताम्रपत्र में लक्ष्मणसेन की विजयों का और भी विस्तृत वर्णन मिलता है–¹

> वेलाया दक्षिणाब्धेर्मुसलधरगदापाणिसंवासवेद्या
> क्षेत्रे विश्वेश्वरस्य स्फुरदसिवरणाश्लेषगङ्गोर्मिभाजि ।
> तीरोत्सङ्गे त्रिवेण्याः कमलभवमखारम्भनिर्व्याजपूते
> येनोच्चैर्यज्ञयूपैः सह समरजयस्तम्भमाला न्यधायि ॥

इस श्लोक से राजा लक्ष्मणसेन की दक्षिण में तामिलविजय तथा उत्तरपश्चिम में काशी और प्रयाग तक की विजय का प्रमाण मिलता है।

मधाई नगर के ताम्रपत्र में 'विक्रम वशीकृत कामरूप' विशेषण से लक्ष्मणसेन की पूर्व में आसाम विजय तक का प्रमाण मिलता है।

यद्यपि किसी भी शिलालेख से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजा लक्ष्मणसेन की दक्षिण-दश, काशी तथा प्रयाग और आसाम की विजय का प्रमाण नहीं मिलता है, फिर भी विभिन्न ताम्रपत्रों द्वारा और उसके समकालीन धोयि कवि के वर्णन से हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं दीखती कि राजा लक्ष्मण सेन ने भी दूसरे भारतीय शक्तिशाली राजाओं की तरह दिग्विजय के लिये यात्रा की थी। इतना सत्य निश्चित होने पर भी धोयि कवि का यह कथन कि राजा लक्ष्मणसेन अपनी दिग्विजययात्रा में मलयपर्वत माला तक पहुंचा था, ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि मलय प्रदेश की विजय का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। संभव है कि कवि ने केवल अपने अत्युक्ति प्रेम के कारण तथा अपने काव्य की नायिका को उपयुक्त स्थान प्राप्त कराने के लिये राजा लक्ष्मणसेन की मलयपर्वतमाला तक की यात्रा का वर्णन कर दिया है। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि चूंकि उसकी माता चालुक्य वंश की थी, इसलिये चालुक्य वंश के किसी राजकुमार के साथ या स्वतंत्र रूप से राजा लक्ष्मणसेन घूमने के लिये कभी मलयपर्वत पर गया होगा और उसी यात्रा का इस काव्य में कवि ने उल्लेख किया है।

पवनदूत में भौगोलिक विवरण

मलयपर्वतमाला से बंगाल में राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर तकके मार्ग के वर्णन से भौगोलिक महत्त्व की बहुत सी बातें हमें इस काव्य से मालूम होती हैं। कवि के समय में दक्षिण भारत और बंगाल के मध्य में आने जाने के सही मार्ग का तो कवि के वर्णनों से हमें वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि कवि ने उसी मार्ग का अनुसरण नहीं किया है। प्रत्युत दक्षिणभारत के बहुत से महत्त्वपूर्ण स्थानों

---

¹ जर्नल एशियाटिक सोसायटी बंगाल, १८९६ भाग १, पृ० ११।

और प्राकृतिक दृश्यों का अपनी रचना में वर्णन कर दिया है, यद्यपि ये सब स्थान साधारणतया काम में आने वाले मार्ग में नहीं पड़ते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्व में स्थित काचीनगरी से वायु को केरलदेश ले जाया गया है, ताकि माल्यवान् पर्वत और पम्पासर सरोवर न वर्णन करने का कवि को अवसर मिल सके। वास्तव में इनमें से कोई भी स्थान दक्षिण से बंगाल तक के सीधे मार्ग में नहीं पड़ता है।

काव्य की कथा मलयपर्वतमाला (पश्चिमी घाट के दक्षिण भाग) पर स्थित एक काल्पनिक गन्धर्वनगरी कनकनगरी के वर्णन से प्रारम्भ होती है। वायु से मलयपर्वतमाला से चल कर पाण्ड्य देश आने के लिये कहा गया है। यह देश मलयपर्वत श्रेणी से केवल दो कोस के अन्तर पर बताया गया है। यह अन्तर केवल आनुमानिक ही प्रतीत होता है और यह सूचित करता है कि मलयपर्वत पाण्ड्य देश के सीमा प्रदेश पर स्थित था तथा पाण्ड्य देश में सम्मिलित नहीं था। ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित उरगपुर नाम के नगर को पाण्ड्य देश की राजधानी बताया गया है। इस उरगपुर का कालिदास ने भी रघुवंश के षष्ठ सर्ग में श्लोक सं० ५९-६० में वर्णन किया है। वर्तमान उरयूर जिससे कि उरगपुर मिलता जुलता है, न तो ताम्रपर्णी नदी के तट पर है और न कभी इसके पाण्ड्य देश की राजधानी रहने का कोई प्रमाण मिलता है। चोल राजाओं की राजधानी तो यह बहुत दिनों तक रहा है। मदुरा और कोरकई में से जिनका कि इतिहास में पाण्ड्य राजाओं की राजधानी होना निश्चित है, कोरकई ताम्रपर्णी नदी के मुहाने पर अवश्य स्थित थी। सम्भव है कि कवि ने भूल से इस कोरकई को ही उरगपुर समझ लिया हो।

उरगपुर के बाद वायु से सेतुबन्ध-रामेश्वर आने के लिये कहा गया है। इसके बाद काचीपुर (आधुनिक काञ्जीवरम्) आने का वायु को परामर्श दिया गया है। काचीपुर को 'दक्षिणस्या दिशोभूषणम्' कहा गया है। श्लोक सं० १३ से पता चलता है कि काचीनगरी सुरला नाम की नदी के तट पर स्थित थी। लेकिन आज कल काञ्जीवरम् के आस पास इस नदी का कोई चिह्न उपलब्ध नहीं होता है। पालार नाम का एक नदी काञ्जीवरम् के आस पास जरूर बहती है। लेकिन पालार और सुरला नाम में ध्वनिशास्त्र के आधार पर कोई सम्बन्ध स्थिर नहीं किया जा सकता। वर्तमान काञ्जीवरम् के पास बहने वाली वेगवती नाम की नदी को हम जरूर सुरल नदी का ही दूसरा नाम समझ सकते हैं, क्योंकि सुरला और वेगवती का अर्थ एक ही है।

काचीनगरी के बाद वायु से कावेरी नदी की ओर आने के लिये कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मलयपर्वत से काची तक के मार्ग में इस नदी का वर्णन करना कवि भूल गया और फिर इस नदी के महत्त्व को देखकर किसी तरह इसका वर्णन कर दिया गया है। कावेरी नदी के बाद पूर्व की ओर माल्यवान् पर्वत पर आने

का फिर वायु को परामर्श दिया गया है। बिलारी (Bellarv) के पास कुपल, मुदुगल और रायचूर के पडोस में पाई जाने वाली पहाड़ियां ही माल्यवान् पर्वत हैं[1]। माल्यवान् पर्वत के पूर्व में पचाप्सर झील की स्थिति कुछ निश्चित नहीं है। केवल इतना ही निश्चित है कि यह विदर्भ या बरार के पूर्व में थी[2]।

इस प्रसग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि रामचन्द्रजी के वनवास से सम्बद्ध स्थानों में से कवि ने केवल दो स्थानों माल्यवान् पर्वत और पचाप्सर झील का ही उल्लेख किया है स्थान, जन दण्डकारण्य, किष्किन्धा और ऋष्यमूक पर्वत इत्यादि का कोई उल्लेख नहीं किया है।

इसके बाद आन्ध्र देश में से होते हुए कलिंग देश की राजधानी कलिंग नगरी जाने को वायु से कहा गया है। श्लोक स० ७७ से ऐसा प्रतीत होता है कि यह नगरी समुद्र से बहुत दूर नहीं थी। गजम् जिले के मुखलिंगम् स्थान से जो कि समुद्र तट से बहुत दूर नहीं है, कलिंग नगरी का तादात्म्य निश्चित हो चुका है। कलिंग देश के गग राजाओं की यह राजधानी थी।

कलिंग नगरी के बाद वायु से सीधा उत्तर की ओर बढने और विध्यप्रदेश पहुचने के लिये कहा गया है। विंध्य प्रदेश से अमरकण्टक पहाड़ी के आस पास का प्रदेश ही समझा जाना चाहिये, क्योंकि विन्ध्य पर्वत श्रेणी पर पहुँचने के बाद ही नर्मदा नदी के तटपर आने का वायु को परामर्श दिया गया है। विन्ध्य प्रदेश में रहने वाली भिल्ल जाति का भी इस अवसर पर उल्लेख किया गया है। कथा सरित् सागर (१३, ३०–४०) में भी विन्ध्यप्रदेश का भिल्ल जाति से सम्बन्ध बताया गया है।

नर्मदा के बाद वायु से ययाति नगरी जाने के लिये कहा गया है। ऐतिहासिक प्रमाणों से यह नगरी महानदी नदी के तट पर स्थित प्रतीत होती है। मध्यप्रदेश में सोनपुर राज्य में स्थित विनीतपुर (आधुनिक विनका या बीना) नामक नगर को ही ययाति नगर समझना चाहिये। ययाति के जिसको कि महाशिवगुप्त भी कहा जाता है, शासन काल में विनीतपुर को ही ययातिनगर कहा जाने लगा था।

ययातिनगरी के बाद वायु से सुह्म देश (दक्षिण पश्चिम बगाल) पहुँचने को कहा गया है। सुह्म देश बगाल का ही एक भाग है। दूसरे भागों को पुण्ड्र, वग और उत्तरराढ कहते हैं। इसके बाद हुगली जिले में स्थित त्रिवणी नामक स्थान

---

१ जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी १८९८ पृ० ३४६–७

२ " " " " " पृ० ३४६

३ द० एपिग्रेफिआ इ डिका, भाग ११ पृ० १८६

पर जाने का वायु को आदेश दिया गया है। तदनन्तर राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर का उल्लेख किया है। विजयपुर को स्कन्धावार और राजधानी दोनों ही बताया गया है। इस राजधानी की स्थिति के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ तो राजशाही जिले में स्थित विजयनगर[1] को और कुछ नदिया[2] को विजयपुर समझते हैं।

पवनदूत में पाये जाने वाले राजधानी के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह राजधानी सुह्मदेश में सम्मिलित थी और गंगा के तट पर स्थित थी तथा त्रिवेणी पार कर लोग वहां पहुंचते थे। इन सब बातों से यह निर्णय निकलता है कि नदिया प्रदेश में ही विजयपुर राजधानी सम्मिलित थी। मुस्लिम इतिहासकारों ने भी लक्ष्मणिया नामक किसी राजा की राजधानी नोदिया में बताई है[३]।

साहित्यिक समीक्षा

यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। केवल भेद यह है कि इसमें प्रेयसी की ओर से प्रिय के पास सन्देश भेजा गया है। समस्त काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। काव्य में कुल १०४ श्लोक हैं। अन्तिम चार श्लोकों में कवि ने अपना कुछ परिचय तथा तत्वज्ञान की स्पृहा व्यक्त की है। काव्य में पूर्वभाग और उत्तर भाग जैसा विषय विभाग भी नहीं किया गया है। माधुर्यव्यञ्जक वर्णों के साथ ललित भाषा में क्लिष्ट समासों का परिहार करते हुए वैदर्भी रीति में यह काव्य लिखा गया है। मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी इसमें यत्र तत्र नवीन उद्भावना के साथ सुन्दर कविता पाई जाती है। निम्नलिखित उदाहरणों से कवि की कल्पना शक्ति का पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। माल्यवान् पर्वत का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तत्राद्यापि प्रतिझरजलैर्झर्झरा प्रस्रवमाणा
सीताभर्तुः पृथुतरशुच स्तूयमत्यश्रुपातान् ॥१८॥

माल्यवान् पर्वत से बहने वाले झरनों में रामचन्द्रजी के अश्रुपात की क्या ही सुन्दर कल्पना की गई है।

विजयपुर राजधानी के वर्णन में भी कवि ने बड़ी ही प्रगल्भ कल्पना की है। कवि कहता है—

---

१ दे० गौडराजमाला पृ० ७८

२ दे० जर्नल एशियाटिक सोसायटी बंगाल १९०५ पृ० ४५

३ दे० तबाकत-ए नासिरी (रैवर्टी द्वारा अनूदित) पृ० ५५४

मूकीभूता मरकतमयीं हारयष्टिं दधाना
यस्मिन् बाला मृगमदमसीपिच्छिलेषु स्तनेषु ।
चेतोवर्तिस्मरहुतवह दीपित स्नेहपूरै
कृत्वा यान्ति प्रियतमगृहानन्धकारे घनेऽपि ॥४५॥

प्रासादाना द्विनपरिणतौ गर्भदग्धागुरूणा
आलोद्गीर्ण सजलजलदश्यामलो यत्रधूम ।
सद्य क्रीडाकुतुकरभसारूढपौरीमुखेन्दु-
ज्योत्स्नासगप्रसृमरतम श्रेणिशङ्का तनोति ॥४६॥

विजयपुर राजधानी की समृद्धि निम्न श्लोक में कितने प्रगल्भ रूप से व्यक्त की गई है—

स्निग्धश्यामारमणमणिभिर्बद्धमुग्धालवाला
पौर स्त्रीभि कुसुमतरवो रोपिता प्राङ्गणेषु ।
यत्रायत्नोपगतसलिलैर्नक्तमासिक्तमूला
नापेक्षन्ते परिजनवधू पाणि निर्धारणितास्भ ॥३८॥

राजधानी की स्त्रियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

वाच श्रोत्रामृतमनुगतभ्रूविलासा कटाक्षा
रूप हस्तोच्चयसमुचित स्निग्धमुग्धाश्च हासा ।
यात लीलाचितमकृतक यत्र नैपथ्यमेतत्
पौरस्त्रीणा द्रविणसुलभा प्रक्रिया भूषण च ॥५२॥

यहा की स्त्रियों का सौन्दर्य स्वाभाविक ही है। उन्हें किसी बाह्य प्रसाधन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।

यद्यपि कवि ने कुवलयवती के विरह वर्णन में काव्यगत परम्पराओं का ही *अनुसरण किया है। कमलमृणाल, चन्दन और कर्पूर इत्यादि शीतोपचार* सामग्री यथास्थान वर्णित की गई है। फिर भी कवि ने कुछ सुन्दर और नवीन परिस्थितियों का चित्रण किया है। कुवलयवती के विरह वर्णन में ३० श्लोक लिखे गए हैं। सस्कृत साहित्य में यह पद्य सर्वोत्तम कविता माने जाने योग्य हैं। यह विरह वर्णन बड़ा ही विशद, सजीव और करुणापूर्ण है। केवल परम्पराभुक्त वर्णन की ही भरमार नहीं है।

कुवलयवती की उत्सुकता का वर्णन करते हुए कवि ने उसका कैसा भावपूर्ण चित्र अङ्कित किया है—

विन्यस्याग्र भुवि चरणयो कौतुकोत्तम्भिताङ्गी
त्वत्सम्पर्कं प्रकृति सुभगामुन्नत श्रीनशाशाम् ।
उत्पश्यन्ती किमपि सुतनुर्लक्ष्यते सौधशृङ्गात
उद्भिन्नाश्रुस्थगितमसकृत् त्वत्समीप यियासु ॥८०॥

विरह व्यथा में कुवलयवती के शरीर की कृशता का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

मुष्टि ग्राह्य किमपि विधिना कुर्वता मध्यभाग
मन्ये बाला कुसुमधनुषो निर्मिता कार्मुकाय ॥८६॥

आगे चलकर नायिका की विरहावस्था का कवि ने और भी भावपूर्ण वर्णन किया है—

विन्यस्यन्ती शशिनि नयने दुर्दिनैरश्रुधारा
धाराश्वासैर्बकुलकुसुमामोदघ्रातुकामा ।
शुश्रूषुश्च भ्रमरविरुत मूर्च्छया रक्षितासौ
वीक्ष्यावस्था क इव करुणासागर स्यान्न तस्या ॥७८॥

कोकिल के पचम स्वर से जब वन उपवन गूँज रहे हों, तब कौन विरहिणी ऐसी होगी जो अपने को स्थिर रख सके। कुवलयवती की इसी दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

यात कृच्छ्रात्तु हिन समय सम्प्रति त्वत्सकाशा
दागच्छन्तीं पवन लहरीमप्यनासादयन्त्या ।
क सन्नद्धे परभृतवधू कलिकाचाल लोल
चैत्रे तस्या कथय सुभग प्राणरक्षाभ्युपाय ॥८८॥

लीलोद्याने परभृतवधूपचमै पीड्यमान
ताम्यन्मूर्तिर्मलयमरुता कलितातावनेषु ।
सा नैकत्र क्वचिदपि पद कातराक्षी विधत्ते
यत् सत्य न त्रिभुवनमपि प्रीतये दु खितानाम् ॥८९॥

कुवलयवती के शील और उसके प्रेम की पवित्रता का बड़ा ही विशद स्वरूप कवि ने प्रस्तुत किया है। कुवलयवती राजा से कहती है कि यदि उसे भार्या रूप में न माना जाए तो दासी ही मान लिया जाय—

राजन्नन्मु प्रणय-चतुरो दूरत प्रेमबन्ध
पुण्येन स्या तव चरणयो केन सखादासौऽपि ॥८८॥

मेघदूत की तरह इस काव्य में भी विप्रलम्भ शृंगार प्रधान है। विचारतारतम्य तथा शैली भी मेघदूत जैसी ही है। कहीं २ तो भावसाम्य के साथ साथ शब्दसाम्य भी पाया जाता है। नीचे कुछ ऐसे स्थल उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

१ तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥मेघ १ ६॥

१ तस्मादेव त्वयि खलु मया सप्रणीतोऽर्थिभाव
प्रायो भिक्षा भवति विफला नैव युष्मद्विधेषु। पवन ।८।

२ अलका नगरी के लिए मेघदूत में

"बाह्योद्यानस्थित हर शिरश्चन्द्रिकाधौत हर्म्या"। कहा गया है।

पवनदूत में गौडदेश के लिए

२ "सान्द्रोद्यान स्थगित गगन प्रांगणो गौडदेश" कहा गया है।

३ मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी से कहता है—

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुति सुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ता ।२॥४६॥ इत्यादि।

इसी प्रकार पवनदूत में भी कुवलयवती राजा से कहती है-

३ यात कुन्छ्रात्तुहिनसमय सम्प्रति त्वत्सकाशा
द्वागच्छन्तीं पवनलहरीमप्यनासादयन्त्या ॥८२॥

४ मेघदूत में—

विद्युद्गर्भ स्तिमितनयना त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तु धीर स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथा ॥२॥३७॥

४ पवनदूत में—

आसाद्यात कमपि समय सौम्य वक्तु विविक्ते
देवं नीचैर्विनयचतुर कामिनि प्रक्रमेथा ॥६१॥

५ मेघदूत में उज्जयिनी की शिप्रावात के लिए—

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूल
शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥१॥३२॥

कहा गया है

४ पवनदूत में विजयपुर की गणाङ्गना के लिए ऐसे ही भाव व्यक्त किए गए हैं—

गणाङ्गनाम्यमिव चतुरो यत्र पौराङ्गनानां
सम्भोगान्ते सपदि वितनोत्यङ्गसंवाहनानि ॥२६॥

यद्यपि धोयि कवि ने कालिदास का पर्याप्त अनुकरण किया है, फिर भी इसकी रचना में मौलिक कल्पनाएं यत्र तत्र पाई जाती हैं और अनुकरण स्थलों में भी नवीन उद्भावना दृष्टिगोचर होती है। कतिपय उदाहरणों से कवि की प्रतिभा का पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं—

१ श्रोप्यस्त्वस्मात् परमवहितो सौम्य सीमन्तिनीनाम्
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः सङ्गमात् किंचिदून (मे० २ ३६।

१ त्वत्तः श्रोप्यत्यवहितमना सोऽनुरक्ताङ्गनानाम्
जायन्ते हि प्रणयिनि सुधार्शीचयो वाचिकानि ॥ पवन १६।

२ गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दार पुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।

मुक्ता जालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः
(अलकायाम्) नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्। मे० २ ११

२ भ्राम्यन्तीनाम् तमसि निविडे वल्लभाकाङ्क्षिणीनाम्
लाक्षारागाश्चरणगलिताः पौरसीमन्तिनीनाम्।

रक्ताशोकस्तबकललिते बालमानोर्मयूखैः
नालक्ष्यन्ते रजनिविगमे पौरमार्गेषु यत्र (विजयपुर) पवन० ४२।

दोनों स्थलों में भाव साम्य होते हुए भी कल्पना में तो भेद है ही।

मेघदूत में मेघ के सम्बन्ध में कहा गया है—

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥१॥३८॥

कालिदास का मेघ तो प्रवासी पतियों को घर आने के लिए प्रेरित ही करता है, लेकिन धोयि कवि का मलयपवन तो बिरही प्रेमियों को मिला ही देता है—

दूनं तस्याः कलय मलयोपत्यकामारुत मा
कामिद्वन्द्वं घटयति मिथो विप्रयुक्तं य एषः ॥६२॥

इस प्रकार अनुकरण स्थलो में भी कवि ने कुछ विशिष्ट चमत्कार दिखाया है।

स्थान स्थान पर काव्य में कुछ सूक्तिया और सुभाषित भी पाए जाते हैं--

(१) कार्योत्तप्ते मनसि लभते नावकाश विलास । ६० ।

(२) कन्या लोके न खलु सुधियो दूषयित्वा त्यजन्ति । ६८ ।

(३) पाराथ्यकप्रवणमनस बाष्पमिश्रान्
आपन्नाना न खलु बहुश काकुवादान् सहन्ते । १०० ।

मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से यह काव्य एक सफल सन्देशकाव्य है। बगाल प्रान्त में उपलब्ध सस्कृत के सन्देशकाव्यों में यह सन्देशकाव्य सर्वप्राचीन है। साहित्यिक महत्त्व के साथ साथ इस काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व भी है, क्योंकि इस काव्य का नायक एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती का कथन है कि समस्त भारत में मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गए सन्देशकाव्यों में यह सन्देशकाव्य प्राचीनतम है।[१] लेकिन अब वस्तुस्थिति कुछ और ही है। कलकत्ते के डा० जे० बी० चौधरी ने किसी जम्बू कवि द्वारा प्रणीत चन्द्रदूत काव्य भी प्रकाशित किया है। जैसलमेर के सभवनाथ मंदिर के पुस्तक भडार में चन्द्रदूत की एक हस्त लिखित प्रति उपलब्ध हुई है[२]। इस पर वि० स० १३४२ (स० १२८६ ई०) लिखा हुआ है। अत यह तो निश्चित ही है कि चन्द्रदूत ई० त्रयोदश शतक के मध्य से बाद का लिखा हुआ नहीं है। श्री शान्तिसूरि ने जम्बूकवि के चन्द्रदूत पर टीका भी लिखी है। उत्तराध्ययनसूत्र पर देवेन्द्रगणिन् की टीका[३] तथा शान्तिसूरि के शिष्यहिता[४] नामक ग्रन्थ से यह तो स्पष्ट ही है कि शान्तिसूरि ई० एकादश शतक में हुए। स० १०४० ई० के लगभग उनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार इन प्रमाणों के आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि जम्बूकवि ई० एकादशशतक से पूर्व ही हुए होंगे। जिनशतक[५] तथा मुनिपति

---

१ दे० चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित पवनदूत की भूमिका, पृ० १।

२ दे० भाण्डारकर, स० १९०४ १९०५ और १९०५ ६ ई० में राजपूताना और सेन्ट्रल इण्डिया में उपलब्ध सस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की रिपोर्ट पृ० २५।

३ दे० कार्पेन्टियर, उत्तराध्ययन सूत्र, पृ० ५४ तथा इडियन एटिक्वेरी, भाग ११, पृ० २४३ और इ डिश्चे स्टडीन, भाग १७ पृ० ४४

४ हसविजय मुनि द्वारा सपादित जैन मदिरों में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची।

५ काव्य माला के सप्तम गुच्छक में स० १९२६ ई० में प्रकाशित।

चरित[1] नामक ग्रन्थ भी किसी जम्बू कवि के ही लिखे हुए हैं। यद्यपि जिन शतक का रचनाकाल स्पष्ट रूप से कहीं नहीं दिया गया है, फिर भी शक संवत् १०२५ (स० ११०३ ४ ई०) में इस पर टीका करने वाले साम्ब कवि के कथन से यह स्पष्ट है कि टीकाकार के समय में जम्बूकवि जीवित नहीं थे। टीकाकार ने जिस ढंग से जम्बूकवि का उल्लेख किया है[2] उससे भी यह तात्पर्य निकलता है कि जम्बू कवि टीकाकार से बहुत बरस पहिले हुए। अत ई० दशम अथवा एकादश शतक से पूर्व का ही समय इस जम्बू कवि का निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त मुनिपति चरित या मणिपतिचरित नामक ग्रन्थ भी इस कवि का लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ वि० स० १०१५ या स० ९५९ ई० का लिखा हुआ है । इस प्रकार जम्बू कवि का कार्यकाल ई० दशम शतक का पूर्वार्ध ही ठहरता है। यह जम्बू कवि तथा चन्द्रदूतकाव्य का रचयिता जम्बू कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं[3] । अत जम्बू कवि का कार्यकाल ई० नवमशतक के अन्त से ई० दशम शतक के मध्य तक निर्धारित होता है। इस प्रकार राजा लक्ष्मणसेन (ई० द्वादश शतक) के सभाकवि तथा पवनदूत के रचयिता धोयिकवि से यह जम्बू कवि दो शताब्दी पूर्व का ठहरता है और इस जम्बू कवि द्वारा प्रणीत चन्द्रदूत काव्य ही मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गए यथावधि उपलब्ध सन्देश काव्यों में सर्व प्राचीन सन्देशकाव्य ठहरता है। अत पवनदूत को अब मेघदूत का प्राचीनतम अनुकरण नहीं माना जाना चाहिए।

---

१ जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बम्बई (१९०९) के संयोजकों द्वारा संगृहीत जैनग्रन्थ माला पृ० २२६ देखिये।

२ शरदां सपञ्चविंशे शतदशके १०२५ स्वातिभे च रविवासरे ।
विवरणमिद समाप्तं वैशाखसितत्रयोदश्याम् ॥

इस प्रकार साम्ब कवि ने अपनी टीका का समय दिया है। जम्बू कवि के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

जम्बूर्नाम गुरुर्गुरूत्तमगुणोऽभूच्चन्द्रगच्छान्वये
विद्वत्संसदि लब्धगौरवपद साधुक्रियासूचन ।
किं वा तस्य निगद्यते मतिगुणो यस्येदृशीनिर्गता
सुश्लिष्टा पदसन्धिभि सुघटिते स्पष्टाऽक्षरालीं मुखात् ॥

३ इस विषय के विशेष ज्ञान के लिये डा जे० बी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा संपादित चन्द्रदूत काव्य की भूमिका देखिए।

पूर्णसारस्वत का हंस-सन्देश (वि० त्रयोदश शतक का प्रारम्भ)

इस हंस सन्देश के लेखक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं है। काव्य के अन्तिम श्लोक—

अद्य विष्णो पदमनुपतन् पक्षपातेन हंस
पूर्णज्योतिः पदयुगजुषः पूर्णसारस्वतस्य।
क्रीडत्येव स्फुटमकलुषे मानसे सज्जनानाम्
मेघेनोच्चैर्निजरसभरं वर्षता धर्षितेऽपि ॥१०२॥

से इतना अनुमान किया जा सकता है कि लेखक का नाम पूर्णसारस्वत रहा होगा।

लेखक का और कुछ इतिवृत्त उपलब्ध नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि लेखक काट्टुमाड्स (Kattumadat) वंश का केरलीय ब्राह्मण था। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि यह काञ्चीपुर का विष्णु धर्मावलम्बी ब्राह्मण भी हो सकता है। लेकिन लेखक के केरलीय ब्राह्मण होने का विचार कुछ अधिक समत माना जाता है। इसे त्रिचम्बूर (Trichambur) नामक स्थान का निवासी ही माना जाता है तथा इसका पूर्ण-सारस्वत नाम उचित ही है, क्योंकि कोचीन के पूर्णत्रयी नामक सुप्रसिद्ध मंदिर के देवता की कृपा से ही इसे कविप्रतिभा प्राप्त हुई थी। मार्ग में सुपरिचित तथा सुप्रसिद्ध स्थान पूर्णत्रयी को छोड़कर त्रिचम्बूर होते हुए हंस से आने की जो प्रार्थना की गई है, उससे कवि की देशभक्ति का परिचय मिलता है। निम्नलिखित पद्यों से कवि का त्रिवेन्द्रम् के प्रति उत्कट प्रेम तथा प्रशंसा प्रकट होती है—

(केरलाना) तेषां भूपामणिमनुपमं सेवितं योगिमुख्यैः
प्राप्यानन्तं पुरमहिशयं ज्योतिरानम्य भक्त्या।
अन्विष्येस्त्वं जनमकरुणं मन्मनश्चोरमाराद्
देशे तस्मिन् स खलु रमते देवकीपुण्यराशिः ॥२६॥

तत्रत्यानां तरुणवयसां सुन्दरीणां निवासैः
माभूत् क्षोभस्तव मतिमतो बन्धुकार्योद्यतस्य।
केशैः सान्द्रैरसितकुटिलैः केकिपिञ्छोपमेयैः
केषां न स्युर्धृतिविहतये केरलीनां मुखानि ॥२७॥

हर्म्ये हर्म्ये हरिमणिमये हेलया सञ्चरन्ती
दृष्ट्वा तन्वी प्रसरदरुणस्वच्छलावण्यदीप्ता।
मेघव्यूहस्फुरितवपुषा विद्युता सत्त्वसिन्धो!
स्मारं स्मारं मनसि किमपि व्याकुलो मा च भूस्त्वम् ॥२७॥

श्रीनगरी में शठकोपाचार्य की स्तुति करने के बाद ताम्रपर्णी नदी में विहार करते हुए पाण्ड्य देश से आगे बढ़ने का हंस को फिर परामर्श दिया गया है। इस प्रकार केरल देश और अनन्तशयन नगर (त्रिवेन्द्रम्) पहुंच कर वहां फिर हंस से कृष्ण के ढूंढने का अनुरोध किया गया है। यदि अनन्तशयन नगर में भी कृष्ण न मिलें, तो फिर रक्तद्रुम (Cemmaram) नामक स्थान पर जाने का हंस से आग्रह किया गया है। यदि वहां पर भी कृष्ण न मिलें तो उत्तर की ओर समुद्र के किनारे २ केरल देश से बाहर चले आने की हंस को आज्ञा दी गई है। इस प्रकार विभिन्न प्रदेशों को पार करते हुए मार्ग में यत्र तत्र विहार करते और कमल का पाथेय करते हुए तथा कहीं २ निर्भय स्थान में रात्रि बिताते हुए अन्त में यमुना तट पर पहुंचने का हंस को आदेश दिया गया है। तदनन्तर यमुना के किनारे २ चलते हुए वृन्दावन पहुंच कर नन्द के घोष में कृष्ण से हंस के निश्चित रूपसे मिलने की सम्भावना की गई है।

इसके बाद कृष्ण के स्वरूप का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। उनकी विविध-लीलाएं भी वर्णित की गई हैं। तदनन्तर उचित अवसर तथा कृष्ण की प्रसन्न मुद्रा देखकर हंस से सन्देश कथन की प्रार्थना की गई है।

सन्देश में नायिका ने सर्व प्रथम अपनी विरहावस्था का वर्णन किया है। तदनन्तर अपनी विरह चेष्टाएं कृष्ण को बताई हैं। अन्त में कृष्ण के दैत्य-दमन, दीन-रक्षण, शरणागतपालन तथा द्रौपदी की रक्षा इत्यादि का उल्लेख किया गया है और फिर नायिका ने अपनी रक्षा के लिए कृष्ण से प्रार्थना की है।

सन्देश सुनाने के बाद कृष्ण के कण्ठ की तुलसीमाला लेकर लौट आने का हंस को आदेश दिया गया है।

अन्त में कृष्ण के प्रसन्न होने की आशा के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य-समीक्षा

जैसा कि काव्य की कथा से स्पष्ट है, इस काव्य में नायिका ने नायक के पास हंस द्वारा अपना सन्देश भेजा है, अतः काव्य का नाम हंस-सन्देश उपयुक्त ही है। समग्र काव्य में कुल १०२ श्लोक हैं तथा मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कथावस्तु का पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य में नहीं किया गया है। इस काव्य के लेखक ने मेघदूत पर विद्युल्लता नामक टीका भी लिखी है। अतः यह तो निश्चित ही है कि मेघदूत की प्रेरणा और अनुकरण पर यह काव्य लिखा गया है। काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग भी इसी बात को पुष्ट करता है। काव्य के अन्तिम पद्य में कवि ने स्वयं मेघदूत की उत्कृष्टता स्वीकार की है—

अद्य विष्णो पदमनुपतन् पक्षपातेन हंसः
पूर्णज्योति पदयुगजुष पूर्णसारस्वतस्य ।
क्रीडत्येव स्फुटमकलुषे मानसे सज्जनानाम्
मेनैनोच्चैर्निजरसभर वर्षता धर्षितेऽपि ॥१०२॥

लेकिन फिर भी कवि ने अपने काव्य में कुछ नवीनता रखी है। मेघदूत में नायक यक्ष की ओर से विरहिणी यक्षिणी के लिए सन्देश दिया गया है। इसमें विरहिणी कृष्ण भक्त नायिका की ओर से कृष्ण के लिए सन्देश भेजा गया है। *विशुद्ध विप्रलम्भ श्रृंगार के स्थान पर इस काव्य में दिव्य कृष्ण भक्ति का आलोक* पाया जाता है। कवि ने प्रेम का दिव्य स्वरूप काव्य में चित्रित किया है।

जहा तक शिल्पविधान का प्रश्न है, कवि ने मेघदूत का ही अनुसरण किया है। हंसदर्शन, उसका सत्कार तथा कुशलवार्ता इत्यादि पूछना सब मेघदूत के समान ही है। मार्गवर्णन में भी कवि ने मेघदूत से प्रेरणा ग्रहण की है। विभिन्न देशों, नगरों तथा नदियों का बड़ा सुन्दर और आकर्षक चित्र काव्य में प्रस्तुत किया गया है। चोल-देश का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

चोलान् देशानवनितिलकान् याहि तावत् समृद्धान्
पुत्रस्नेहात् प्रचुरपयसा पोषितान् सह्यपुत्र्या ॥११॥

सह्यपुत्री कावेरी नदी में चोल देश के मातृभाव की श्लेष द्वारा कवि ने कैसी सुन्दर व्यजना की है। जिस प्रकार उत्तरभारत में गंगाजी को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है, उसी प्रकार दक्षिण भारत में कावेरी नदी को भी लोग बड़ा महत्त्व देते हैं।

आगे चलकर श्रीरंगपुर का भी विविधभावपूर्ण वर्णन कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। *श्रीरंगपुर का वर्णन प्रारम्भ करते हुए कवि कहता है—*

कल्पापायेऽप्यविगतलय कल्पक भुक्तिमुक्त्यो
श्रीरङ्गाख्यं पुरमथ विशेर्धाम भौम त्रिधाम्न ।
पौरस्त्रीणा सह रतिकलाभङ्गिगरङ्गैरपाङ्गै
स्निग्धा दृष्टिर्निपतति जने यत्र मुक्त्यङ्गनाया ॥१४॥

भुक्ति और मुक्ति दोनों के देने वाले नगर में पौरस्त्रियों के भावपूर्ण कटाक्षपात के साथ मुक्त्यङ्गना की स्निग्ध दृष्टि का लोगों पर पड़ना उपयुक्त ही है।

श्रीरंगपुर की विविध सुगन्ध से न केवल वहा की जनता का मन प्रसन्न होता है बल्कि सारा विश्व ही सुवासित बताया गया है—

नाभीपङ्केरुहपरिमलो नागशय्यस्य विष्णोः
पृथ्वीश्रेणिस्फुटितकुहलीसौरभश्च प्रसर्पन् ।
पौराणां च प्रथमवयसा स्फारतारुण्यगन्धो
वारं वारं मदयति मनो वासयन् यत्र विश्वम् ॥१८॥

श्री रंगपुर की स्त्रियों के सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में कवि कहता है—

वामाक्षीणां वहति महति स्वच्छलावण्यपूरे
सलक्ष्याणि स्मितविलसितान्याननानि प्रपश्यन् ।
माध्वीलुब्धः सरसिजवनीकौतुकादुत्पतिष्यन्
मा गा भ्रान्ति पद्मवनतेनैव मौढ्य गुणाय ॥१९॥

सुन्दर रमणियों के हसते हुए मुखों को देखकर हंस का उन्हें कमल समझ बैठना स्वाभाविक ही है। इस पद्य में कवि ने किस सुन्दर भाव भंगिमा के साथ स्त्रियों के सौन्दर्य का चित्र अंकित किया है।

केरल देश का जब प्रसंग आता है, तब एक ही पद्य में कवि ने वहां की धार्मिकता, सभ्यता और प्राकृतिक रमणीयता चित्रित करदी है।

धर्मः साक्षात् कृतयुगसखो येषु सानन्दमास्ते
मालिन्याढ्यं कलिविलसितं मन्यमानस्तृणाय ।
केलीस्थानं कमलदुहितुः केरलास्तानुपेयाः
शीतोत्सङ्गान्मरिचतिलकालिङ्गिताद्रीन्तरङ्गैः ॥२५॥

केरल देश की स्त्रियां भी कम आकर्षक नहीं हैं। इसलिए हंस को उन्हें देखकर लुब्ध तथा व्याकुल न होने का समुचित परामर्श भी दिया गया है।

तत्रत्यानां तरुणवयसां सुन्दरीणां विलासैः
माभूत् क्षोभस्तव मतिमतो बन्धुकार्योद्यतस्य ।
केशैः सान्द्रैरसितकुटिलैः केकिपिञ्छोपमेयैः
केषां न स्युर्धृतिविहतये केरलीनां मुखानि ॥२७॥

यद्यपि काञ्चीपुर से वृन्दावन बहुत दूर है तथा मार्ग में अनेक रमणीय स्थान पड़ते हैं और उन स्थानों तथा वहां के दृश्यों का वर्णन कर कवि अपने काव्य को और भी अधिक सरस तथा आकर्षक बना सकता था, लेकिन चूंकि नायिका की विरह व्यथा बढ़ी तीव्र है, इसलिए केरल देश से एक दम यमुना और वृन्दावन पहुंचने का वह हंस को आदेश देती है—

कालक्षेपं न खलु सहते कामबाणः कठोरः ॥३०॥

धन्या भानो श्रुतिमिव यति कल्पयन् याहि सीमाम् ॥३३॥

इस प्रकार हंस के यमुना पहुँचते पहुँचते नायिका कहती है—

आदौ नादं मधुमदकलं क्रीडतां सारसानां
पद्मामोदी तदनु पवनः पावितस्तोयलेशैः ।
भानोः पुत्र्यास्ततमथ तटं स्फीतमालैस्तमालै—
र्मूर्तिः पश्चान्मरतकशिलामोहिनी ते मुदे स्यात् ॥३५॥

इस पद्य में कवि ने सारसों का मधुर निनाद, कमलों से सुवासित शीतल पवन, तमालवृक्षों से ढका हुआ यमुना का तट और तदनन्तर यमुना का कैसा सुन्दर क्रम प्रस्तुत किया है। इस तरह के रमणीय स्थल को देखकर हंस का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है।

वृन्दावन में नन्द के घर का कवि ने बड़ा समृद्धिपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। नन्द के घोष में याचकों को न केवल धन बटता है, बल्कि मोक्ष भी बड़ी आसानी से लुटती हुई बताई गई है—

दीनैः प्राप्तैर्विकसितमुखैर्निष्पतद्भिः कृतार्थै—
रर्थिव्रातैः सह धनभरैर्लुण्ठ्यमानापवर्गम् ।
राजन्वन्तं महितवपसा नन्दगोपेन पश्ये—
र्घोषं घोषैर्दिशि दिशि गवां घोषितं वत्सकानाम् ॥४०॥

इस प्रकार के घोष को देखकर हंस के मन में अनेक प्रकार की शंकाएं अवश्य उत्पन्न हो सकती है। इसी बात को लेकर हंस से कहा गया है—

दत्ताना किं भजनभवनी दैत्यभीत्या निलीना
लक्ष्म्या किं वा निखिलभुवनश्रान्तिविश्रामधाम ।
कोशागारं किमिदमथवा शेवधीनामिति द्राक्
तस्मिन् दृष्टे तव बहुमुखी भाविनी तात चिन्ता ॥४१॥

नन्द के घोष के सम्बन्ध में हंस की सम्भावित चिन्ताओं से घोष की अतुल सम्पत्ति का पाठक स्वयम् अनुमान कर सकते हैं। कवि ने किस प्रकार व्यंग्य रूप से घोष की समृद्धि का वर्णन किया है।

नन्द के घोष में गोपिकाएं हमेशा ही कृष्ण की बाललीलाएं गाती रहती हैं। इसलिए तो हंस से कहा गया है—

गायन्तीनां कलिमलमुपं बाललीलां मुरारे—
र्गीतं नन्दन् गलितमनसां गद्गदं गोपिकानाम् ॥४२॥

नन्द के घोष के निकट ही कृष्ण के मिलने की सम्भावना की गई है। इस प्रसंग में कवि ने कृष्ण के मधुर स्वरूप का जो चित्रण किया है, वह बड़ा भावपूर्ण और सजीव है। कृष्ण को किसी वृक्ष के नीचे वेदिका पर विराजमान हो अपने सुरभित हास तथा मधुर वंशीरव से तीनों लोकों को मोहित करता हुआ बताया गया है—

> तस्योदारां शशिमणिमयीं वेदिकामासजन्तम्
> कन्नं पश्य कमपि सुभग कल्पकं कल्पकस्य।
> लीलाहासैः सुरभिकुसुमैः पाणिपादैः प्रवालै-
> र्वंशीनादैरपि मधुररसैर्मोहयन्तं त्रिलोकीम् ॥४१॥

इसके बाद उनके अंग प्रत्यंग का कवि ने बड़ा उत्कृष्ट वर्णन प्रस्तुत किया है। कृष्ण की भक्त नायिका हंस से कहती है—

> घोणादण्डं खगकुलपते घोषनाथस्य पश्ये
> सरक्ताभ्यां सुभगमभितः पीडितं लोचनाभ्याम् ॥४५॥

तदनन्तर कानों का वर्णन करते हुए वह कहती है—

> माणिक्याशुज्वलितमकरीकुण्डलाश्लिष्टगण्डौ
> कर्णौ शौरेः कलय सुकृतिन् श्लिष्टकर्णहारनालौ।
> घर्मस्पष्टं मृदुनि वदने वर्षशाकांशुजन्यम्
> बालाशोकद्रुमकिसलयैर्वारयन्ताविवोच्चैः ॥४६॥

इसी प्रकार ओष्ठ और दन्तश्रेणि का भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है—

> उन्मीलद्भ्यो दशनकदनैः श्लिष्टमोष्ठप्रवालं
> दन्तश्रेणीं निजरुचिसुधावृष्टिभिस्तर्पयन्तीम्।
> स्तोकालक्ष्या स्मितविकसिते पश्य वक्त्रे मुरारे-
> रत्नश्रेणीमृतकणिकापङ्क्तिमज्झद्विधीव ॥४७॥

कवि ने अंग प्रत्यंगों के उत्कृष्ट सौन्दर्य को हृदयङ्गम कराने के लिए कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षाएं दी हैं। अन्त में उनके स्वरूप के सम्बन्ध में कहा गया है—

> माधुर्याणां परममवधिं मङ्गलं मङ्गलानां
> मायायोगं कमपि सुदृशां मण्डनं मण्डनानाम्।
> किं वा जल्पैरिह बहुविधैः किञ्चिदव्यं पदार्थम्
> पायं पायं नयनचुलकैरेधि पात्रं स्पृहायाः ॥६३॥

कृष्ण न केवल सुन्दर ही हैं, प्रत्युत धर्म, ज्ञान, आनन्द और तेज की साक्षात् मूर्ति बताए गए हैं —

> धर्मो मूर्तः किमयमथवा ज्ञानराशिर्नु पुमान्-
> आनन्दो वा निखिलजगतामात्तलीलाशरीरः ।
> किञ्चित् तेजः स्फुरतु भवतः किंशुकापाटलोष्ठ
> वेणुक्वाणप्रवणविरहैरेष्टितं वत्सयूथैः ॥६४॥

इस प्रकार कृष्ण का न केवल सौन्दर्य और माधुर्य का बल्कि धर्म, ज्ञान, आनन्द और तेज का भी चरमोत्कर्ष बताया गया है।

श्रीकृष्णजी के प्रभाव और गौरव का तो अनुमान पाठक इसी से लगा सकते हैं कि इन्द्र इत्यादि देवता भी देवकार्य में परामर्श करने के लिए स्वयं उनके पास आते हैं-

> मालावालव्यजनमुकुटच्छत्रमिश्रां विभूतिं
> कृत्वा दूरे स्वयमुपगतैः कुड्मलीकृत्य हस्तान्।
> इत्यद्दैत्यप्रवरदमितैर्दीनतां दर्शयद्भिः
> शक्राद्यैर्वा रहसि विबुधैर्मन्त्र्यसे देवकार्यम् ॥६८॥

इस प्रकार कृष्ण के स्वरूप तथा प्रभाव का वर्णन करने के बाद उचित अवसर देखकर भक्त नायिका कृष्ण को अपना सन्देश सुनाने की हंस से प्रार्थना करती है। नायिका के सन्देश में कवि ने उसकी विरहावस्था का बड़ा करुण और भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। कृष्ण के प्रथम दर्शन में ही नायिका के हृदय में प्रेम का संचार बताया गया है—

> राकाचन्द्र क्षितिमिव गत राजमार्ग व्रजन्तं
> लाजैः सार्द्धं पुरयुवतिभिः कीर्यमाणं मनोभिः ।
> पश्यन्ती त्वां त्रिभुवनपते वेपितस्विन्नगात्री
> तस्थौ तन्वी नयनसरणिं यावदुल्लङ्घ्य यासि ॥७३॥

> वक्त्रेन्दोस्ते मधुरिमसुधां गाढमास्वाद्य भक्त्या
> राजीवस्य स्फुटमिव रसं राजहंसी सतृष्णा ॥७४॥

कवि ने नायिका के पूर्वराग जन्य कम्पन, स्वेद और तृष्णा का कैसा सुन्दर वर्णन किया है। आगे चलकर कहा गया है—

> साकं धृत्या तनुतरतनोः स्रंसते कङ्कणाली
> चक्रा + स्ते सह मधुपते वर्धते मोहमुद्रा।

दाराद्वेषिन्नविरतमहो बालसारङ्गनेत्रा
बाला साध हृदि गतिपतें बाष्पधारा पतन्ति ॥७७॥

कवि ने किस सुन्दर भावभंगिमा के साथ नायिका के विरहजन्य अधैर्य, कृशता, मोह और निरन्तर रोते रहने का वर्णन किया है।

नायिका के कृश शरीर को देखकर किसके हृदय में करुणा उत्पन्न न होगी। वसन्त ऋतु तो उसके लिए मृत्यु की ही सूचना समझो—

का सा कसान्तक ! सकरुणं नैव कुर्यात् कृशांगी
कालं कालं कुसुमसुरभि कल्पयन्ती पुरस्तात् ॥७८॥

प्रिय वियोग में व्यथित नायिका तत्तद् वस्तुओं में कृष्ण के तत्तद् अंगों का सादृश्य खोजती है—

रक्ताम्भोजे नयनमरुणं राजहंसे विलासान्
रत्ने शोणे ललितमधरं कान्तिमिन्दीवरेषु।
नीलाम्भोजे तव च सुभ्रुयोर्नीतिमुत्प्रेक्षमाणा
नीलापाङ्गी स्थगयति कुचौ निर्मलैरश्रुलेशैः[१] ॥७९॥

इसी प्रकार नीलवर्ण तथा विद्युद्रूपी पीताम्बरयुक्त मेघ को देखकर नायिका को कृष्ण के नीलवर्ण शरीर का ध्यान आ जाता है और वह ऐसा रोती है कि पृथिवी और आकाश का भी हृदय द्रवित हो जाए—

बाला दृष्टिं तरलजलदे न्यस्य संस्थापयमाना
विद्युत्पीताम्बरपरिगते मेचके स्निग्धकान्तौ।
रोदित्यन्तर्विलसितगिरा रोदसी द्रावयन्ती
स्मारं स्मारं मलिननयना माननीय वपुस्ते ॥८०॥

इस पद्य में कवि ने नायिका की विरहावस्था का बड़ा ही करुण चित्र अंकित किया है—

कृष्ण विरहिणी नायिका को सर्वात्मना कृष्ण में ही लीन बताया गया है—

---

१ इस पद्य में मेघदूत के—

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।

इत्यादि पद्य का भावानुकरण किया गया है।

कर्णौ पूर्णौ तव गुणगणैः कथ्यमानैः सखीभि-
र्मूर्त्या कान्त हृदयमनिशं मुद्रितं नामभिर्वा।
चित्ताह्लादप्रसभपुलकैर्दन्तुरा गात्रवल्ली
वृत्तिस्तस्यास्त्वयि यदुपते योगिनामप्यभूमिः ॥८३॥

इसके अतिरिक्त आगे पीछे, जागते सोते, दिन रात तथा उठते बैठते हमेशा ही उसे कृष्ण की भावना करते हुए बताया गया है। और तो और, सारी सृष्टि ही इसके लिए कृष्णमय हो गई है—

अग्रे पश्चादुपरि च क्षितौ जागरे स्वप्नयोगे
रात्रावह्नि स्थितिषु गतिषु त्वां सदा भावयन्त्या।
उन्मादिन्या कुवलयदृशो मुक्तसर्वप्रवृत्ते-
स्तस्याः स्वामिन् किमिह बहुना त्वन्मयी विश्वसृष्टिः ॥८४॥

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने नायिका के प्रेम की तीव्रता तथा अनन्यता का कितना उत्कृष्ट वर्णन किया है।

विरहिणी नायिका का मन कृष्ण में इतना लीन है कि वह कृष्ण का चित्र भी एकान्त में बनाती है—

दिग्धं कान्त्या रहसि भवतो दिव्यमङ्गं लिखन्ती
सद्यः स्विद्यच्चलकरगतां तूलिकामुद्वहन्ती।
मध्ये मध्ये वहति पिहिता भावना मोहवेगैः
बाला नीलैरिव जलधरैश्चन्द्रिकामिन्दुरेखा[1] ॥८७॥

नायिका की मोहवेग से ढकी हुई भावना के लिए कवि ने कैसी सुन्दर उपमा दी है। बाला, भावना और मोहवेग के लिए क्रमशः इन्दुरेखा, चन्द्रिका और जलधर कैसे सुन्दर उपमान दिए गए हैं। उपमेय और उपमान में धर्म की समानता के साथ साथ लिंग और वचन की समानता भी दर्शनीय है।

प्रियविरह में नायिका को नींद तो आती ही नहीं है। एक एक रात्रि उसके लिए सौ रात्रियों के समान लगती है—

एकैवास्याः शतमिव समा शर्वरी याति यत्नात्
कोकैः साकं विरहविधुरैः कोकिलामञ्जुवाचः ॥८८॥

---

१ इस पद्य में मेघदूत के—त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्- इत्यादि श्लोक का प्रभाव पाया जाता है।

यद्यपि उसकी सखियां उसे तरह तरह की आशाएं बंधाती हैं, फिर भी प्रिय मिलन की आशा से किसी तरह जीवन धारण करती हुई नायिका के लिए एक एक दिन कल्प के समान बीतता है—

> चिन्तासङ्गैरपि च भवतो जीवनं धारयन्त्या
> यद्यास्तस्या कथमपि दिनो कल्पकल्पाश्चलन्ति ॥८९॥

विरहिणी नायिका के लिए चन्द्रमा कोकिल, हंस और सुरभित पवन सब एक साथ ही दुःख पहुंचा रहे हैं। अपना सन्देश सुनाती हुई वह कहती है—

> चन्द्रः कान्त्या स्फुटमपि जितः कोकिलो मञ्जुजल्पैः
> हंसा गत्या बकुलसुरभिर्मारुतः श्वासजातैः ।
> एते सर्वे युगपदधुना हन्त निघ्नन्ति मुग्धां
> प्राप्ते काले क इव सहते प्राक्प्रयुक्तापराधम् ॥९०॥

इस पद्य में कवि ने नायिका की विरहावस्था का वर्णन तो किया ही है, उसके उत्कृष्ट सौन्दर्य, मधुर वाणी, अलसगति तथा सुरभित निःश्वास की भी प्रकारान्तर से व्यंजना की है।

विरहिणी नायिका को कोक, कीर, मोर, भौंरें, कोकिल और सारस पक्षी भी बड़ा दुःख पहुँचाते हैं। इस प्रसंग में कवि ने बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा प्रस्तुत की है—

> कृतः पक्षी बक इति पुरा कृष्णचन्द्र त्वयासौ
> मन्ये तेन क्षुभित हृदयैः बाधितुं त्वामनीशैः ।
> बाढमेमा भवति बलवद् बाध्यते हन्त बाला
> कोकैः कीरैः शिखिभिरलिभिः कोकिलैः सारसैश्च ॥९१॥

अपनी विरहव्यथा के वर्णन के बाद नायिका विभिन्न प्रकार से कृष्ण से अपनी रक्षा करने का अनुरोध करती है। फिर वह कहती है कि बाणासुर जैसे भयंकर राक्षसों को जब तुमने मार डाला, तो अंगहीन इस पंचबाण को, जो कि मुझ बिचारी को पीड़ित कर रहा है, दण्ड क्यों नहीं देते—

> भूते सार्धं समिति दमितो भूतपाल ! त्वयासीद्
> बाणो बिभ्रद् भुजलमयद् बाहुशाखासहस्रम् ।
> अङ्गे शून्य कुसुमविशिखैर्दयस्ता धरार्थी
> दण्ड्यः कस्मान्न खलु स खलो दृश्यते पञ्चबाणः ॥९३॥

आगे चलकर नायिका कहती है कि जब समग्र गोकुल की रक्षा कर सकते हो, तो इस दीन और असहाय जन की रक्षा करने में तुम्हें क्या भारी बोझ पड़ता है—

पातु दीन जनमशरण तात कस्तेऽनिभार ॥६०॥

अन्त में नायिका कृष्ण से निवेदन करती है—

त्वामायुष्मन्! विपदि पततामातुरेक शरण्य
कारुण्यार्द्र तव किल मन काममेवंविधोऽसि।
तन्वीं बाला त्वयि परवता चेतसा वर्तमाना
कण्ठे लग्नैरसुभिरबला मन्यसे नानुकम्प्याम् ॥६७॥

नायिका के इन वचनों में कितनी कातरता छिपी हुई है। कवि ने उसको 'कण्ठ लग्नप्राणा' बता कर उसकी दयनीय दशा का बड़ा करुण चित्र प्रस्तुत किया है।

अपनी प्रार्थना का उपसंहार करते हुए नायिका कहती है—

दीना दूना हितजमशरणा त्वत्कृते त्यक्तसर्वा
मङ्गैर्दिव्यैरमृतसरसैरर्हसि, त्रातुमेनाम्।
दाक्षिण्याब्धे तव सुरगुरो दारुणे दु:खसिन्धौ
मग्नान् जन्तून् ननु सुखयितु मर्त्यलोकावतार ॥६६॥

अपनी दीन हीन और असहाय अवस्था तथा प्रेम में सर्वत्याग का उल्लेख करते हुए नायिका ने कृष्ण भगवान् से कैसी नम्रता से अपनी रक्षा की प्रार्थना की है।

इस प्रकार प्रेम और दैन्य से भरे हुए सन्देश के बाद हंस से कृष्ण के पास जाने, सन्देश सुनाने और उनके कण्ठालिंगन की प्रतिनिधिस्वरूप तुलसीमाला लेकर शीघ्र ही वापिस लौटने के परामर्श के साथ साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को प्रतीत हो गया होगा कि यह काव्य बड़ा सरस और सुन्दर है। विप्रलम्भ शृंगार के आवरण में कवि ने नायिका की उत्कट कृष्णभक्ति का वर्णन किया है। नायिका का कृष्णप्रेम कृष्णभक्तों के लिए एक उत्कृष्ट आदर्श है। प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि यह रचना कवि की स्वानुभूतिपरक कृति है। कवि ने अपनी मनोवृत्ति को ही नायिका का रूपक देकर मन रूपी हंस द्वारा उसे कृष्ण के लिए अर्पित कर दिया है। कवि की उत्कट कृष्ण भक्ति का अनुमान तो हंस के प्रति कहे गए काव्य के अन्त में नायिका के निम्नलिखित वचनों से ही लगाया जा सकता है—

मन्ये साधो भवति भविता प्रीतिमान् वासुदेव—
स्तस्मिन् प्रीते सकलवरदे को हि न स्यात् कृतार्थ ॥१०१॥

दक्षिण भारत में लिखे गए सन्देश काव्यों में विषय की दृष्टि से यह काव्य सर्वथा नवीन है। इसके अतिरिक्त कवि की कल्पना तथा भाव विन्यास भी बड़े सुन्दर हैं। सुकुमार भाव तथा अनुभूति के वर्णन के उपयुक्त माधुर्य और प्रसाद गुणयुक्त भाषा का ही काव्य में व्यवहार किया गया है। इसी तरह वैदर्भी रीति को ही कवि ने सर्वत्र अपनाया है। मेघदूत से प्रेरणा लेने पर भी कवि ने इस काव्य का अन्धानुकरण नहीं किया है। केवल शैली में ही मेघदूत का प्रभाव कुछ दृष्टिगोचर होता है। काव्य का प्रारम्भ तो मेघदूत की तरह से ही किया गया है—

काचित् कान्ता विरहशिखिना कामिनी कामतप्ता
निध्यायन्ती कमपि दयितं निर्दयं दूरसंस्थम्।
भूयो भूयो रणरणकतः पुष्पवाटीं भ्रमन्ती
लीलावापीकमलपथिकं राजहंसं ददर्श ॥१॥

विभिन्न अवतरणों से काव्य की भाषा का तो विज्ञ पाठक स्वयम् अनुमान लगा सकते हैं। छन्द तथा शैली की समानता होते हुए भी काव्य में मेघदूत की पदावली की छाया बिल्कुल नहीं पाई जाती है। स्थान स्थान पर कवि ने सुन्दर उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का भी प्रयोग किया है। कहीं २ अनुप्रास की सुन्दर छटा भी दर्शनीय है—

१ माध्वीं माद्यन्मधुपमहिलामण्डलीमण्डितानाम्
पादपानाम् ॥८४॥

२ कुञ्जे कुञ्जे कुसुमिततले कान्तमन्विष्य यत्नाद् इत्यादि ॥८६॥

किन्हीं स्थानों के वर्णन में इस काव्य तथा दक्षिण के अन्य सन्देशकाव्यों में पर्याप्त साम्य पाया जाता है। केरल देश के समुद्र तट का वर्णन करते हुए इस काव्य में कहा गया है—

एलाबेलावनसुरभिता वीक्षमाणः पयोधेः—इत्यादि ॥३२॥

उद्दण्ड शास्त्री के कोकिल सन्देश में भी एक स्थान पर ऐसी ही पदावली पाई जाती है—

कोलाबेलावनसुरभिलाः यादि यत्र प्रयन्ते-इत्यादि ॥१॥६०॥

यहाँ २ कवि ने बड़ी सुन्दर सूक्तियाँ भी काव्य में उचित स्थान पर प्रयुक्त की हैं—

१ तन्द्रालुत्वं न खलु घटते धर्मकार्योद्यतानाम् ॥२६॥

२ सत्पक्षाणां द्रवति हि मनः सङ्गमे बान्धवानाम् ॥३७॥

३ सन्त प्राणैरपि विदधते सम्मद सश्रिताना
कामान् कुर्युं कथमिव न ते कर्मणा केवलेन ॥८॥

इस प्रकार काव्य के विभिन्न अगों का विचार करने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह सन्देशकाव्य एक सुन्दर और अभिनव रचना है। मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी कवि की मौलिक प्रतिभा इस काव्य में पाई जाती है। तत्तद् स्थानों और भावों के वर्णनों में कवि ने बड़ी चतुरता दिखलाई है। पाठकों को कृष्ण भक्त का सन्देश पहुचाने में भी कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। सन्देश काव्यों में विषय की दृष्टि से नवीनता उत्पन्न करने का कवि का प्रयास स्तुत्य है। कृष्ण भक्ति साहित्य में यह काव्य शैली तथा भाव की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान पाने के योग्य है।[१]

वेंकटनाथ या वेदान्त देशिक का हंससदेश (वि० स० चतुर्दश शतक)

श्री वेकटनाथजी रामानुज सप्रदाय के एक बहुत बड़े आचार्य हो गए हैं। दार्शनिक होते हुए भी यह कवि थे। इनका जन्म काञ्जीवरम् के निकट तुप्पिल नामक ग्राम में स० १२६८ ई० (वि० स० १३२५) में हुआ था। इनकी माता का नाम तोतरम्मा और पिता का नाम अनन्तसूरि था। इनको तिरुपति के भगवान् वेंकटेश के घण्टे का अवतार स्वरूप माना जाता है। इन्होंने अपने मामा श्री आत्रेय रामानुज के पास अध्ययन किया था। अपने सकल्प सूर्योदय नामक नाटक में इन्होंने लिखा है कि २० वर्ष की आयु में इनका अध्ययन समाप्त हो चुका था। कवित्वशक्ति की प्रगल्भता तथा शास्त्रार्थ निपुणता के कारण यह कवितार्किकसिंह कहलाते थे। वेदान्त के महान् व्याख्याता होने के कारण इन्हें वेदान्तदेशिक भी कहा जाता था। साथ ही न्याय, मीमासा, साहित्य और अन्य विषयों के विद्वान् होने के कारण सर्वतन्त्रस्वतन्त्र भी इनकी उपाधि थी। इनके तथा इनकी अलौकिक शक्तियों के सम्बन्ध में बहुत सी दन्तकथाएं प्रचलित हैं। यह जन्म से दरिद्र ही पैदा हुए थे

---

१ त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सीरीज में प्रकाशित।

और दरिद्र रहने में ही खुश थे। जब कभी इन्हें कोई दान दिया जाता था, यह प्रसन्नता के साथ अस्वीकार कर दिया करते थे। कह देते थे—

नास्ति पित्रार्जितं किंचित् न मया किंचिदर्जितम्।
अस्ति मे हस्तिशैलाग्रे वस्तु पैतामहं धनम्॥

कुछ समय तक चुड्डलूर के निकट तिरुवहीन्द्रपुरम् में तथा श्रीरंगम् में भी यह रहे। सर्वज्ञ सिंह के दरबार में भी यह गए थे। जब मलिकाफर ने दक्षिण पर आक्रमण किया, तब वे मैसूर भाग आए और उसी समय उन्होंने अपने अभीतिस्तव की रचना की। इन्होंने श्री वैष्णव सम्प्रदाय भी चलाया। वैष्णव लोग एक महात्मा के रूप में इनकी पूजा करते हैं और दक्षिण भारत के प्रायः प्रत्येक विष्णु मन्दिर में इनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। प्रसिद्ध विद्यारण्यस्वामी इनके सहपाठी थे और इन्हें बड़े आदर से देखते थे। उन्होंने कई बार इनको विजयनगर के दरबार में आदर पूर्वक बुलाया था परन्तु निःस्पृहता के कारण यह वहां न गए। यह बड़े नम्र स्वभाव के थे। इन्होंने एक स्थान पर लिखा है—

कर्मावलम्बकाः केचित् केचिज्ज्ञानावलम्बकाः।
वयं तु हरिदासानां पादत्राणावलम्बकाः॥

विद्यारण्यस्वामी तथा माध्वसम्प्रदायाचार्य अक्षोभ्यतीर्थ के शास्त्रार्थ में यह मध्यस्थ भी माने गए थे। कार्तिक पूर्णिमा वि० सं० १४२६ (स० १३७० ई०) में इनका स्वर्गवास हो गया। अपने इस दीर्घ जीवन काल (१०१ वर्ष) में यह लगातार साहित्य और धर्म की साधना करते रहे। इनके लिखे हुए करीब १२१ ग्रन्थ हैं। जिनमें से बहुत से विशिष्टाद्वैत वेदान्त पर हैं और पद्य में हैं। न्याय के ग्रन्थ गद्य में ही हैं। अनेक स्तोत्र भी इन्होंने लिखे हैं।

कालिदास के मेघसन्देश, रघुवंश और कुमारसंभव से प्रतिस्पर्धा करने के लिए इन्होंने हंस संदेश, यदुवंश (यादवाभ्युदय) और मारसंभव जैसे काव्यों की रचना की। यादवाभ्युदय २४ सर्ग का एक महाकाव्य है तथा श्रीकृष्ण का जीवन और यदुवंश का इतिहास इसमें वर्णित किया गया है। इस काव्य में काव्य की तीनों वृत्तियों का प्रयोग किया गया है। कवि ने स्वयं कहा है—

गौडवैदर्भपाञ्चालमालाकारां सरस्वतीम्।
यस्य नित्यं प्रशंसन्ति सन्तस्सौरभवेदिनः॥

इस काव्य में कवि ने कालिदास का अनुकरण तो किया ही है, स्थान स्थान पर अन्य कवियों का भी अनुकरण देखने में आता है। यों तो प्रसाद और माधुर्य गुण से यह काव्य परिपूर्ण है लेकिन षष्ठ सर्ग में कवि ने चित्रकाव्य की भी योजना की है। काव्य के भिन्न २ सर्गों में भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस

पर प्रसिद्ध अप्पय-दीक्षित की विस्तृत टीका भी है।[१] पादुकासहस्र नामक काव्य श्रीरामचन्द्रजी की पादुकाओं की प्रशंसा में लिखा गया है। कहा जाता है कि एक बार काव्यप्रतिस्पर्धा में एक रात्रि में केवल ३ घण्टों में १ हजार श्लोकों की रचना की गई थी।[२]

संकल्पसूर्योदय १० अंकों का एक महानाटक है। इस नाटक के आरम्भ में कहा गया है—

न तच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न सा कला ।
नाऽसौ योगो न तज्ज्ञानं नाटके यन्न दृश्यते ॥

इसी कथन के अनुसार कवि ने इस नाटक में वेदान्तशास्त्र और अध्यात्मज्ञान को अपने विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार प्रेक्षकों के अन्तःकरण पर प्रतिबिम्बित करने की चेष्टा की है। श्रीकृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय नाम के नाटक के अनुकरण पर ही इसका नाम संकल्प सूर्योदय रक्खा गया है। इस नाटक का प्रधान रस शान्त रस है। इस रस की प्रशंसा में नाटक में कवि ने लिखा है—

शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तखेदो रसः
अनवमगुणो यस्मिन्नाट्ये रसो नवमस्थितः ॥

इस नाटक पर अहोबिल, कौशिक श्रीशैलताताचार्य, नारायण और रामानुज इन विद्वानों की चार टीकाएं हैं[३]।

अच्युत शतक विष्णु भगवान् की प्रशंसा में लिखा गया एक प्राकृत काव्य है[४]।

श्री वेदान्त देशिक की लघुरचनाओं में निम्नलिखित रचनाएं सम्मिलित हैं—

हयग्रीवस्तोत्र,	देवराजपञ्चाशत्,	गोपालविंशति,	देहली-स्तुति,
यथोक्तकारिस्तोत्र,	अष्टभुजाष्टक,	परमार्थस्तुति,	भगवद्ध्यानसोपान,
दशावतारस्तोत्र,	अभीतिस्तव,	न्यास दशक,	न्यासविंशति,
न्यासतिलक,	श्रीस्तुति,	भूस्तुति,	नीलास्तुति,
गोदास्तुति,	सुदर्शनशतक	षोडशायुधस्तुति,	गरुडपञ्चक,
यतिराजसप्तति,	धाटीपञ्चक,	वैराग्यपञ्चक।	

---

१ मद्रास और श्रीरंगम् से प्रकाशित।
२ मैसूर और बम्बई से प्रकाशित।
३ मद्रास, श्रीरंगम्, बम्बई और वाणिविलि से प्रकाशित तथा नारायणाचार्य और रघुनाथस्वामी (श्रीरंगम्) द्वारा अंग्रेजी भाषा में अनूदित।
४ मद्रास से प्रकाशित।

रघुवीरगद्य और गरुडदण्डक राम और गरुड की प्रशंसा में लिखे गए गद्य काव्य हैं। भर्तृहरि के नीतिशतक के समान सुभाषित नीवी भी उपदेशात्मक सूक्तियों से भरा हुआ एक काव्य इनका लिखा हुआ है[1]।

श्री वेदान्तदेशिक के जीवन पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। इनमें कौशिक गोत्र के वेंकटाचार्य के सुपुत्र कवितार्किक सिंह वेदान्ताचार्य का आचार्य-विजय चम्पू मुख्य ग्रन्थ है। इसमें चम्पू शैली में श्री वेंकटनाथ (वेदान्तदेशिक) का जन्म और जीवनवृत्त वर्णित किया गया है। यह ग्रन्थ तेलगु भाषा में मद्रास से प्रकाशित हो चुका है। निगमान्त चरित, वेदान्तदेशिक-गद्य, वेदान्तदेशिक-चरित और वेदान्तदेशिक मंगलाशासन इत्यादि अन्य काव्य भी श्रीवेंकटनाथ के जीवनवृत्त और कार्यों पर लिखे गए हैं।[2]

श्री वेदान्तदेशिक का पुत्र वरद अथवा नारायणाचार्य वि० सं० १३७३ में उत्पन्न हुआ था। यह भी बड़ा विद्वान् था। इसने भी दो सन्देश काव्य कोकिल सन्देश और शुकसन्देश लिखे हैं।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीप्रतिवादिभयंकर श्रीवेदान्तदेशिक के मित्र थे। उनका पुत्र वेंकटेश वेदान्तदेशिक का शिष्य था और उसने भी वैष्णव मंदिरों की यात्रा के प्रसंग में अनेक स्तोत्र ग्रन्थ लिखे हैं।

हंस-सन्देश की कथा

इस काव्य की कथावस्तु रामायण से सम्बद्ध है। सीताजी की खोज करने के बाद जब हनुमानजी लंका से लौट आते हैं, तब श्री रामचन्द्रजी रावण से युद्ध करने की तैयारियां करने से पूर्व अन्तरिम काल में सीताजी को सान्त्वना देने के लिए राजहंस को अपना दूत बनाकर लंका भेजते हैं। इस प्रसंग में प्रथम तो हंस की प्रशंसा और उससे प्रार्थना की गई है। फिर उसे मार्ग की सुविधाएं बताते हुए लंका जा को कहा गया है। माल्यवान् पर्वत से लंका जाने के लिए दो मार्ग बताए गए हैं-सह्य पर्वत होते हुए एक पश्चिम मार्ग तथा मद्रास प्रान्त के पूर्वी समुद्र तट से होते हुए दूसरा पूर्वी मार्ग। पश्चिम मार्ग में निरन्तर वर्षा होते रहने के कारण हंस को पूर्वी मार्ग ग्रहण करने का परामर्श दिया गया है। इस प्रकार पूर्वी मार्ग से लंका की ओर

---

१ काव्यमाला, भाग ८ बम्बई से प्रकाशित।

२ डा० सत्यव्रतसिंह, एम० ए०, पी० एच० डी० का 'वेदान्तदेशिक उनके जीवन, ग्रन्थों और दर्शन का अध्ययन' नामक ग्रन्थ भी दर्शनीय है। यह ग्रन्थ चौखम्बा बनारस से प्रकाशित हुआ है।

चलने पर कर्णाट और आन्ध्र देश होते हुए अजनाद्रि[1] (वेंकटाद्रि) के मिलने का उल्लेख किया गया है। अजनाद्रि से दक्षिण की ओर चलने पर कनकमुखरी [सुवर्णमुखरी] नदी के तट पर विश्राम करने के बाद तुण्डीरमण्डल[2] में घूमते हुए सत्यव्रत-क्षेत्र तथा काचीनगरी जाने का हस को परामर्श दिया गया है। इस अवसर पर काचीनगरी के मध्य में से बहती हुई वेगा नाम की नदी तथा उसके उत्तरी तट पर स्थित हस्तिशैल पर्वत का भी उल्लेख किया गया है। तुण्डीरमण्डल के बाद चोलदेश जाने का हस को फिर परामर्श दिया गया है। चोलदेश के वर्णन में कवि ने पुगवृक्षों के समूह, कावेरी नदी श्वेतशैल, नीलीवन तथा चन्द्रपुष्करिणी का उल्लेख किया है। चन्द्र पुष्करिणी के तट पर श्री रगधाम की स्थिति बताई गई है। चोलदेश और पाण्ड्य देश के मध्य में चोरों इत्यादि से युक्त भयकर वन की स्थिति बताई गई है। अत इस वन को चुपचाप शीघ्रगति से पार करने का हस को आदेश दिया गया है। पाण्ड्यदेश में पहुचने पर सुन्दर विष्णु के निवासस्थान वृषभाचल को नमस्कार करने के बाद ताम्रपर्णी नदी और वहा से बाई ओर चलने पर दक्षिण समुद्र तट के मिलने का वर्णन किया गया है। इस समुद्र-तट से लका नगरी के लिए उडने पर मार्ग में सुवेल पर्वत के मिलने तथा वहा से फिर हस के लका पहुचने का उल्लेख किया गया है। लका में रावण के प्रासाद से सीधे अशोकवाटिका में जाने और वहा शिंशपा वृक्ष के नीचे सीताजी स मिलने का हस को परामर्श दिया गया है। इस प्रकार सीताजी के पास हस के पहुचने की सभावना कर कवि ने सीताजी की विभिन्न विरहावस्थाओं का रामचन्द्रजी के मुख से वर्णन किया है ताकि हस को सीताजी के पहिचानने में कोई कष्ट न हो। अन्त में कवि ने रामचन्द्रजी का सीताजी के प्रति दिया जाने वाला सन्देश हस को बताया है। सन्देश में सर्वप्रथम सीताजी के वियोग में उठाए हुए रामचन्द्रजी के अनेक कष्टों तथा विभिन्न ऋतुओं में उनकी विविध विरहावस्थाओं का वर्णन किया गया है। इसके बाद समुद्र का पुल बाध कर लका पहुँचने, लका का विध्वस करने और रावण के सहार के बाद सीताजी को वापिस ले आने का उल्लेख किया गया है। अन्त में सीताजी को किसी तरह अपना जीवन बनाए रखने का भी परामर्श दिया गया है। इस प्रकार मार्ग-प्रदर्शन और सन्देश कथन के बाद हस से एक दम लका जाने की प्रार्थना की गई है। सदेश कार्य करने के बाद अपनी राजहसी के साथ स्वैर विहार करने की शुभकामना भी हंस के प्रति व्यक्त की गई है।

---

१ उत्तरीय अर्काट में तिरुपति [तृपति] के निकटस्थ तिरुमलाई पर्वत। यहा पर श्री रामानुज ने शिव के स्थान में वेंकटस्वामी नाम से विष्णुभगवान् की पूजा प्रचलित की।

२ टौंडमण्डल।

इस प्रकार हंस द्वारा सन्देश भेजकर तथा सेतु द्वारा समुद्र पार कर रामचन्द्र जी लंका पहुँचते हैं। वहां रावण को मार कर और सीताजी को लेकर प्रसन्नता के साथ अपनी राजधानी अयोध्या में वापिस आ जाते हैं और भरत द्वारा रक्षित राज्य को पुनः चलाने लगते हैं। बस, यहीं पर काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्यसमीक्षा

प्रस्तुत काव्य एक सुन्दर सन्देशकाव्य है। इसमें दो आश्वास हैं। किसी को सन्देश भेजने का प्रयोजन उसे आश्वासन देना ही होता है। इसीलिए इस काव्य में कथावस्तु दो आश्वासों में बटी हुई है। प्रथम आश्वास में मार्ग प्रदर्शन है तथा द्वितीय में लंकावर्णन और सन्देश कथन है। प्रथम आश्वास में ६० तथा द्वितीय में ५१ श्लोक हैं। मन्दाक्रान्ता छन्द का ही काव्य में प्रयोग हुआ है। काव्य की शैली बड़ी मधुर है। प्रसाद और माधुर्य गुणों से काव्य ओतप्रोत है। क्लिष्ट और लम्बे समास प्रायः इस काव्य में नहीं हैं। रामायण की कथा को संक्षेप में प्रस्तुत करने के कारण इस काव्य में संक्षेप गुण भी विद्यमान है। काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ शृंगार है। यद्यपि कथावस्तु रामायण से सबद्ध है, फिर भी कवि ने हंस को दूत बनाकर अपनी स्वतन्त्र उद्भावनाशक्ति का परिचय दिया है।

काव्य में यत्र तत्र रमणीय स्थलों का बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। कर्णाट और आन्ध्र देश के सीमा प्रदेश में खेतों की रखवाली करने वाली कृषक स्त्रियों की मुग्धावस्था का बड़ा ही भावपूर्ण चित्र कवि ने अंकित किया है—

> इक्षुच्छाये किसलयमये तल्पमातस्थुषीणा
> सल्लापैर्मैर्मुदितमनसा शालिसरक्षिकाणाम्।
> कर्णाटान्ध्रव्यतिकरवशात् कर्तुरे गीतिभेदे
> मुह्यन्तीना मदनकलुष मौग्ध्यमासादयेथा ॥१॥२०॥

इसी प्रकार चोल देश के वर्णन प्रसंग में वहां की रमणियों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि हंस से कहता है—

> सन्ध्यारागं सुरभिरजनीसमयैरंगरागैः
> केशैर्ज्योत्स्नाकलहि तिमिर पालिकापीडगर्भं।
> आविभ्राणास्सरसिजदृशो हंस दोलाधिरोहात्
> आधाम्यन्त मदकलगिरस्तेषु नेत्रोत्सवं ते ॥१॥ ३७ ॥

इस पद्य में बिना किसी शृंगार विशेष के चोल रमणियों के स्वाभाविक सौन्दर्य की व्यंजना की गई है। कुछ स्त्रियां झूला झूल रही हैं। साथ में गा भी

रही हैं। हरिद्रा का अग राग उनके अग पर लगा हुआ है। इससे सध्याकालीन जैसी लालिमा उनके अगों पर व्याप्त है। काले केशों में पूग कुसुम [सुपारी के फूल] लगे हुए हैं। इससे ज्योत्स्ना के साथ साथ एक तरफ अन्धकार भी है। इस प्रकार विभिन्न रूपकों द्वारा चोलरमणियों में कवि ने रजनी के रूपक की व्यजना की है।

विक्रमारण्य के सपर्क से शोभायमान समुद्र का वर्णन करते हुए कवि बडी सुन्दर २ उपमाएं देता है—

> दारासक्त धनमिव नभस्सन्ध्ययेवानुविद्ध
> सिन्दूराक्त द्विपमिव हरि स्वाम्बरेणेव जुष्टम्।
> विद्युद्भिन्न घनमिव सखे विक्रमारण्ययोगात्
> देहेनैक मिथुनमिव च द्रक्ष्यसि त्व पयोधिम् ॥ १ ॥ ५५ ॥

इस से लका नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने लका में राजहसी की बडी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

> तस्मिन् दृश्या तदनु मरतश्चारसौधावदाता
> लका सिन्धोर्महति पुलिने राजहसीव लीना।
> त्यामायान्त पवनतरलैर्या पताकापदेशै
> पक्षैरभ्युज्जिगमिषुरिव स्यास्यति व्याव्यनादा ॥१॥६०॥

रावण के यहा बन्दी जीवन बिताती हुई सीताजी की करुण अवस्था का भी बड़ा हृदय-द्रावक चित्र खींचा गया है—

> शुद्धामिन्दोश्शरणच भवने कौमुदीं निष्फुरन्तीं
> आनीता वा विपतरुवने पारिजातस्य शाखाम्।
> सूक्तिः रम्या खलपरिसरे सत्कवेः कीर्त्यमाना
> मन्ये दीना निशिचर गृहे मैथिलस्यात्मजाताम् ॥२॥०३

> वर्षाक्षीणामिव कमलिनीं व्याहतार्थामिवोक्तिम्
> पकाश्लिष्टामिव बिसलता पल्लपेतामिवेभीम्।
> मेघच्छन्नामिव शशिकला विच्छदामिवाशा
> व्याघ्रग्रस्तामिव मृगवधू भूतले ज्यामिवाम्ताम् ॥२॥०४॥

> अंगैर्लाचलकिसलयसमैरञ्जिभता कल्पपुष्पै
> गाढाश्लिष्टा वपुषि विमल बिम्बिताभिर्लताभिः।
> सतापोष्णश्वसनपरपच्छायया किं च दीना
> बन्दीभूता निशिचरगृहे नन्दनस्येव लक्ष्मीम् ॥-॥२१॥

अन्त में सीताजी की दीनावस्था का भी बड़ा करुण चित्र प्रस्तुत किया गया है। रामचन्द्रजी सीता के सम्बन्ध में कहते हैं—

शून्या दृष्टिश्श्वसितमधिकं मीलितं वक्त्रपद्मं
धाराकारं नयनसलिलं सानुबन्धो विलापः।
इत्थं दैन्यं किमपि विधिना दुर्निवारेण नीता
सा मे सीता तनुतरतनुस्तप्यते नूनमन्तः ॥२॥२३॥

इस श्लोक में कवि ने सीता की विरहावस्था का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर दिया है। 'सानुबन्धो विलाप' से मन सग, संकल्प और प्रलाप अवस्थाएं व्यक्त की गई हैं। 'शून्या दृष्टि' से जागरावस्था और अरति, 'तनुतरतनु' से कार्श्य, 'धाराकारं नयनसलिलम्' तथा 'सानुबन्धो विलाप,' इन पदों से लज्जात्याग और 'तप्यते नूनमन्त' से सज्वर अवस्था व्यक्त की गई है। 'शून्या दृष्टि' से उन्माद अवस्था का भी बोध होता है। 'मीलितं वक्त्रपद्मम्' से मूर्छा की व्यंजना हो जाती है। 'सा मे सीता' इन शब्दों के द्वारा कवि ने सीता के प्रति राम के आत्मीय भाव की बड़ी विशद अभिव्यक्ति की है।

रामचन्द्रजी के द्वारा सीता के प्रति भेजे जाने वाले सदेश में कवि ने रामचन्द्रजी की विभिन्न ऋतुओं की तत्तत् विरहावस्थाओं का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है। वसन्त ऋतु में कोयल कूक रही है। मल्लिका पुष्प खिले हुए हैं। चारों तरफ भौंरे गूंज रहे हैं। मलयाचल की सुरभित हवाएं धीरे धीरे चल रही हैं। हृदय में विरह का भार लिए रामचन्द्रजी स्तब्ध खड़े हुए हैं। ऐसी अवस्था में इस डर से कि इन्हें कुछ हो न जाय, लक्ष्मणजी वायु के वेग से दूर रहने का रामचन्द्रजी से आग्रह करते हैं—

पार्श्वे लोलैः परभृतकुलैर्मुक्तकोलाहलानां
मल्लीरेणुस्थगितवपुषां मन्दरं निर्गतानाम्।
भीतनादं भ्रमरपटलीशृङ्खलासंकुलानाम्
मार्गे तिष्ठन्मलयमरुतां वारितो लक्ष्मणेन ॥२॥३६॥

वर्षाऋतु में मेघों के गरजने तथा बिजली के चमकने पर अपनी प्रेयसी के साथ नृत्य करते हुए मोर को देखकर राम का ध्यान बलात् उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है—

चक्षो नैव त्यजति चपलाहेमकोणाभिघातात्
धीरोदात्तस्तनितमधुरात्ताण्डवारम्भमिच्छन्।
यातो मुक्तं कुटजकुसुमैर्वासितं शैलशृङ्ग
रस पीडारहितध्वनिरालपन्यो मयूर ॥२॥४८॥

मयूर को राक्षसों की पीड़ा से मुक्त अपनी प्रेयसी के आलिंगन से धन्य बता कर रावण द्वारा अपहृत सीता के वियोग से दुःखित राम ने अपनी अधन्यता व्यक्त की है।

दुःसह विरहवेदना में अपने जीवन की गतिविधि का वर्णन करते हुये रामचन्द्रजी सीताजी से कहते हैं—

देहस्पर्शं मलयपवने दृष्टिसंभेदमिन्दौ
धामैकत्वं जगति भुवि च्याभिन्नपर्यङ्कयोगम्।
ताराचित्रे वियति वितर्ति श्रीवितानस्य पश्यन्
दूरीभूता सुतनु विधिना त्वामहं निर्विशामि ॥२॥८०॥

अन्त में सीता के पतिपरायणता, सुशीलता तथा सुकुमारता इत्यादि गुणों की प्रशंसा करते हुए और अपनी निष्ठुरता तथा परिताप का वर्णन करते हुए रामचन्द्रजी कहते हैं—

तातादेशात्सपदि भरते न्यस्तराज्याभिषेकं
या मामेका वनमनुगता राजधानीं विहाय।
तामेव त्वामुचितशयनां यान्तुमन्ये मदीये
दूरे कर्तुं गुणवति मुहुर्दूयते जीवितं मे ॥२॥८६॥

इस प्रकार इस काव्य में राम और सीता के विरह का बड़ा भावपूर्ण चित्रण पाया जाता है।

यह सन्देश काव्य मेघसन्देश का एक सफल अनुकरण है। भाषा, भाव, छन्द और प्रक्रिया सभी दृष्टियों से कवि को अपने प्रयास में सफलता मिली है। छन्द तो मन्दाक्रान्ता है ही, साथ में भाषा भी मेघसन्देश के समान माधुर्य और प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। प्रक्रिया की दृष्टि से भी यह काव्य मेघसन्देश जैसा ही है। स्थान स्थान पर भाव-साम्य भी काव्य में पाया जाता है। पाठकों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए दोनों काव्यों से समानान्तर अवतरण दिए जाते हैं—

राजहंस के विषय में हंस-सन्देश में कहा गया है—

कृत्वा तस्मिन् बहुमतिमसौ भूयसीमाञ्जनेयात्
गाढोन्मादः प्रणयपदवीं प्राप वार्ताऽनभिज्ञे।
विश्लेषेण क्षुभितमनसा मेघशैलद्रुमादौ
याच्ञा दैन्यं भवति किमुत क्वापि सवेदनादे ॥१॥७॥

मेघसन्देश में मेघ के सम्बन्ध में कवि इस प्रकार कहता है—

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं (मेघ) ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥५॥

पाण्डय देश की स्त्रियों के प्रसग में हस से कहा गया है—

स्रस्तापीड प्रचलदलक व्यक्तताटकरत्नम्
मुक्ताचूर्णस्फुरिततिलक वक्त्रमुत्तानयन्त्य ।
देशे तस्मिन् कुवलयदृशो जातकौतूहलास्त्वा
मालादीर्घमधुरनिरत मानयिष्यन्त्यपागैः ॥१॥४८॥

इस पद्य में मेघसन्देश के निम्नलिखित पद के भावों की झलक स्पष्ट विद्यमान है। मेघ सन्देश में महाकाल के मंदिर के पास कुछ काल तक ठहरने का मेघको परामर्श देते हुये कहा कहा गया है—

पादन्यासै क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरै क्लान्त हस्ता ॥१॥३६॥इत्यादि

मेघ सन्देश में अलकापुरी का वर्णन करते हुये कवि ने अलका के प्रासादों की की तत्तद् विशेषताओं को लेकर प्रासादों और मेघ में समानता वर्णित की है। यथा—

विद्युत्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा
सगीताय प्रहतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम्
अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तु गमभ्र लिहाग्रा
प्रासादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥२॥१॥

इसी तरह हससन्देश में भी लका में लाई हुई सुरयुवतियों द्वारा हस के अनुरक्त किये जाने का वर्णन करते हुये कवि ने सुरयुवतियों और हस में समानता वर्णित की है—

लीलालोल ललितगमनाश्चारनाद सशिजा
भल्लाक्ष त्वा स्मरशरदृशो गौरमापाण्डुराग्य ।
मुग्धालाप मधुरवचसो मानसार्ह मनोज्ञा
यत्रानीतास्सुरयुवतयो रजयेयुस्समक्षम् ॥२॥१॥

इस पद्य में विषय भेद होते हुये भी मेघसन्देश की छाया स्पष्ट ही देख पड़ती है।

मेघ सन्देश में मेघ से निम्नलिखित प्रकार से सन्देश प्रारम्भ करने के लिये कहा गया है—

भर्तुर्मित्र प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाह
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागत त्वत्समीपम् ।

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥१॥३८॥

इसी प्रकार हंस सन्देश में हंस से सन्देश प्रारम्भ करने के लिये कहा गया है–

पत्युर्देवि प्रणयसचिवं विद्धि दीर्घायुषो मां
जीवातुं ते दधतमनघ तस्य सन्देशमन्तः ।
शरणां यश्शरदुपगमे घोरपल्लीरगणां
समानाद् समयमुचितं सूचयेत्कूजितैस्त्वं ॥२॥२८॥

हंस को केवल सन्देश वाहक न बनाकर युद्ध के समय की सूचना देने वाला भी बताया गया है। रामचन्द्रजी के प्रणयसचिव को होना भी ऐसा ही चाहिए, जो उन्हें युद्ध के उचित समय की सूचना दे सके ताकि वे ठीक समय पर युद्ध कर शीघ्रातिशीघ्र सीताजी के पास पहुँच सकें।

मेघ सन्देश में मेघ के परिचय के बाद अपनी पत्नी की उत्सुकता का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है—

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैव ।
श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः सङ्गमात् किंचिदूनः ॥२॥३६॥

इसी प्रकार हंस के परिचय के बाद रामचन्द्रजी सीताजी की उत्कण्ठा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

पश्यन्ती सा रघुपतिवधूस्त्वामशेषावदातं
प्रत्याश्वासादधिगतरुचिः प्राक्तनीन्दुलेखा ।
मत्सदेशे तदनु सुमुखी सावधाना भवित्री
किं न स्त्रीणां जनयति मुदं कान्तवार्तागमोऽपि ॥२॥३०॥

मेघसदेश में मेघ से सर्वप्रथम कुशल पूछने के लिए कहा गया है—

अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः ॥२॥४०॥

हंससदेश में भी सर्वप्रथम सीताजी की कुशल ही पूछी गई है—

पश्चादेवं कथय भवतीभागधेयेन जीवन्
कल्याणीं त्वां कुशलमनघं कोसलेन्द्रोऽनुयुङ्क्ते ॥२॥३१॥

'अव्यापन्न,' और 'भवतीभागधेयेन जीवन्' इन दोनों कथनों में भावसाम्य तो है ही, प्रत्युत 'भवतीभागधेयेन जीवन्' इस कथन द्वारा हंससंदेश में सीताजी के प्रति आदरभाव भी व्यक्त किया गया है।

मेघ सन्देश में यक्ष मेघ से निम्न प्रकार से सन्देश प्रारम्भ करने के लिए कहता है—

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ॥२॥४२॥ इत्यादि

हंस सन्देश में भी बड़ी कोमल कल्पना की गई है। वस्तु भेद होते हुए भी मूल भाव भिन्न नहीं है। देखिए, हंस को किस प्रकार सन्देश प्रारम्भ करने के लिए कहा गया है—

यस्या यस्मिन् व्यरचि रमणद्भूषणालपनादि
नीतामेनां नियतिविभवादन्तरीपं दवीयः ।
प्रत्यासीदन्निव नयनयोर्वर्त्मनि स्थापयित्वा
स त्वामेव वदति कुशली देवि सख्या मुखेन ॥२॥३२॥

मेघ सन्देश में यक्ष अपनी प्रेयसी को आश्वासन देता है—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान् मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥२॥४९॥ इत्यादि

इसी प्रकार रामचन्द्रजी भी सीताजी को ऐसा ही आश्वासन देते हैं—

रक्षोमौलिस्तबकलवनाद्दुर्भरान्धे विमुक्ते
गत्वा चोर्वीं गगनपदवीस्वैरिणा पुष्पकेण ।
सिद्धारम्भो सपदि भवतामाधिराज्याभिषेकात्
संप्राप्स्यावश्चिरविरहतस्संचितान्देवि भोगान् ॥२॥४४॥

यक्ष ने अपने संदेश में कहा है—

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ॥२॥४८॥

रामचन्द्रजी भी सीताजी को ऐसा ही परामर्श देते हैं—

रक्षात्मानं कथमपि शुभे जीवितालम्बनं मे ॥२॥ ८॥

मेघ संदेश में यक्ष के दूत के रूप में मेघ की सत्यता प्रमाणित करने के लिए एक अभिज्ञान घटना भी उसे बताई गई है—

भूयश्चाद त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे ॥२॥५०॥ इत्यादि

उसी तरह हस सन्देश में भी हस के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार के सन्देह के निवारण के लिए रामचन्द्रजी ने हस के द्वारा सीताजी को एक व्यक्तिगत घटना की याद दिलाई है—

चित्ते कुर्यात्तदपि भवती यज्जनस्थानयुद्धात्
सप्राप्त मा दशमुखसमान्मारयित्वा खरादीन्।
शस्त्राघात स्तनकलशयोरूष्मणा रोपयद्भि
र्गाढाश्लेषैरपिहितवती गद्गदा हर्षबाष्पे ॥२॥४५॥

मेघ सन्देश के समान इस काव्य में भी सन्देश पहुँचाने के बाद हस के प्रति शुभकामनाए व्यक्त की गई है—

स्वैर लोकान् विचर निखिलान् सौम्य लक्ष्म्येव विष्णु
सर्वाकारैस्त्वदनुगुणया सेवितो राजहस्या ॥२॥४८॥

इस प्रकार विज्ञ पाठक समझ सकते हैं कि इस काव्य में मेघसन्देश का भाषा और भाव दोनों दृष्टि से पर्याप्त अनुकरण किया गया है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस काव्य में रामरूपी पर ब्रह्म से सीतारूपी जीव का विरह मनरूपी दशानन के द्वारा ससार रूपी समुद्र के पार ले जाने के कारण उत्पन्न कर गुरु रूपी हस को जीव ब्रह्म के मध्य में सन्देश-वाहक बनाकर शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए शान्त रस का परिपोष किया गया है। लेकिन काव्य में इस धारणा की पुष्टि करने वाले अवतरण प्राय नहीं ही हैं। चू कि लेखक वैष्णव सम्प्रदाय का एक विशिष्ट आचार्य है तथा दार्शनिक भी है, अत यत्र तत्र 'धर्म और दर्शन का प्रसग आ जाना'स्वाभाविक ही है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित श्लोक देखिए—

सविन्याना तदनुतुलसीदामभिस्त्वामभिख्या
तम्या वेषामाविदधती श्यामल हव्यवाहम्।
भोगैश्वर्यप्रियसहचरे काऽपि लक्ष्मी कटाक्षे
भूयश्यामा भुवनजननी देवता सन्निधत्ते ॥१॥३२॥

इस श्लोक में हस्तिशैल पर स्थित लक्ष्मीजी के साथ नारायण के विग्रह का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल में सीताजी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने योग का प्रसग उपस्थित किया है। यथा–

चेतोवृत्तिं शमयति बहिस्सार्वभौमे निरोधे
मय्येकस्मिन् प्रणिहितधिय मान्मथेनागमेन।
अभ्यस्यन्तीमनितरजुषो भावनाया प्रकर्षात्
स्या तेनान्तर्विलयमृदुना निर्विकल्प समाधिम् ॥२॥२२॥

इस श्लोक में रामचन्द्रजी के प्रति सीताजी के एकाग्रभाव का वर्णन करते हुए कवि ने निर्विकल्पक समाधि का रूपक प्रस्तुत किया है। लेकिन यह सब गौण है। शान्त रस के परिपोषण की ओर कवि की दृष्टि कभी नहीं रही है। काव्य के प्रारम्भ में ही कवि ने रामचन्द्रजी की अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है-

वंशे जातस्सरितुरलघे मानयन्मानुषत्वं
देवश्श्रीमान् जनकतनयान्वेषणे जागरूकः।
प्रत्यायाते पवनतनये निश्चितार्थस्स कामी
कल्पाकारा कथमपि निशामाविभात विषेहे ॥१॥१॥

इस पद्य में 'जनकतनयान्वषणे जागरूक' तथा 'निश्चितार्थस्स कामी' इन पदों से राम के मन राग और स्वरूप तथा 'कल्पाकारा कथमपि निशाम्' इत्यादि कथन से जागरावस्था, औत्सुक्य और चिन्ता की व्यंजना की गई है। इस तरह यह स्पष्ट है कि इस काव्य में वियुक्त सीता रूप आलम्बन, शरद् ऋतु और एकान्त धाम इत्यादि उद्दीपन, शय्यापरिवर्तन इत्यादि अनुमानगम्य अनुभाव, चिन्ता और औत्सुक्य इत्यादि सचारिभाव तथा रोमांच, स्वेद और वैवर्ण्य इत्यादि सात्विक भावों के द्वारा श्री रामचन्द्रजी के रतिस्थायिभाव की ही पुष्टि की गई है। अत विप्रलम्भ शृ गार ही इस काव्य का मुख्य रस है और यह विप्रलम्भ भी यहा पर प्रवासजन्य है, क्योंकि रामचन्द्रजी और सीताजी का परस्पर मिलन पहिले तो हो ही चुका है। विप्रलम्भ शृ गार के साथ साथ करुण रस भी काव्य में विद्यमान है।

काव्य के परिशीलन से इतना तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य बहुत सरल और मधुर है। मेघसन्देश के अनुकरण पर लिखे होने पर भी काव्य में मौलिकता है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार है। राम जैसे धीरोदात्त और इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति को काव्य का नायक बनाकर कवि ने अपने सन्देश काव्य को मेघ सदेश की अपेक्षा कुछ विशिष्ट रूप दे दिया है तथा नायक नायिका के दृष्टि-कोण से सन्देशकाव्यों के क्षेत्र को और भी विस्तृत कर दिया है।

हस के दूत बनाए जाने का विचार कवि ने नलदमयन्ती वृत्तान्त से ही ग्रहण किया है। सन्देश की समाप्ति पर हस की प्रशसा करते हुए रामचन्द्रजी कहते हैं-

प्रागप्येर परिणतगुणा नैषधे वीक्ष्य वार्ताम्
आर्तत्राणे व्रतमिति विदुहंस शुद्धात्मना व ॥२॥८७॥

इस पद्य से यह नितान्त स्पष्ट है कि नलदमयन्ती वृत्तान्त से ही कवि ने हंस के दूत बनाने का विचार ग्रहण किया है। भाषा, भाव, छन्द तथा प्रक्रिया इन सभी दृष्टियों से यह सन्देश काव्य एक सुन्दर रचना है तथा सन्देशकाव्यों की परम्परा में विभिन्न साहित्यिक विशिष्टताओं के कारण इसका अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

किसी अनिर्ज्ञात लेखक का हंस संदेश (वि० पञ्चदश शतक)

यह काव्य त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित हुआ है। श्री के० साम्बशिव शास्त्री ने इसका सम्पादन किया है। इस काव्य पर पद्यमय एक व्याख्या भी है। लेकिन कवि तथा टीकाकार दोनों के ही विषय में कुछ ज्ञान नहीं है। हिज हाईनेस श्री विशाखम् तिरुनल महाराज ने, जो कि संस्कृत विद्या के प्रेमी थे और स्वयं भी बड़े विद्वान् थे, इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में रायल एशियाटिक सोसाइटी के पत्र सं० १६ सं० १८८४ ई० पृष्ठ ४४० पर लिखा है—

"The other Hamsa sandesha whose author's name could not be found out, is quite of a different nature The subject is a philosophical one It is probable that some rival poet of the Vaishnava Vedantacharya has written this, as he (the Vedantacharya) has composed a Nataka named "Sankalpa suryodaya" to match the Prabodhachandrodaya"

हिज हाईनेस श्री विशाखम् तिरुनल महाराज की यह भी राय है कि यह काव्य तथा और भी सन्देश काव्य केरल देश के ही कवियों की रचनाएं हैं और जिस तरह कृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय नामक नाटक के अनुकरण पर श्री वेदान्तदेशिक ने अपना संकल्प सूर्योदय नामक नाटक लिखा, उसी तरह यह काव्य

भी वेदान्तविषय को सुगम बनाने के लिए लिखा गया है। श्री वेदान्तदेशिक ने भी हंस सन्देश लिखा है, लेकिन यह काव्य उनके काव्य से केवल नाम में ही समता रखता है। विषय की दृष्टि से बिल्कुल भिन्न है।

काव्य में-'यत्नश्लेषे सति नु गुरुणा शङ्करेणाप्यभिन्नम्' ॥२॥३६॥ पद से श्री शङ्कराचार्य के लेखक के गुरु होने की भी सम्भावना की जा सकती है। सम्भव है कि लेखक श्री शङ्कराचार्य का साक्षात् शिष्य न हो और उनकी परम्परा में होने के कारण उन्हें गुरु रूप से मानता हो।

इस तरह यह तो निश्चित ही है कि यह काव्य श्री शङ्कराचार्य तथा श्री कृष्णमिश्र के परवर्ती किसी कवि की रचना है। सम्भवतः श्री वेदान्तदेशिक के समकालीन किसी कवि ने इसे लिखा हो। अतः इस काव्य का रचनाकाल वि० चतुर्दश शतक के कुछ बाद ही होना चाहिये।

कथासार

इस सन्देशकाव्य में कथावस्तु जैसी कोई चीज नहीं है। वेदान्त विषय को रोचक ढंग से समझाने के लिये प्रतीक शैली (allegorical way) में यह सन्देश काव्य लिखा गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है—

कोई शिवभक्त शिवभक्ति रूपी अपनी अनन्य प्रेयसी के सुखद सम्पर्क से अद्वैतानन्द में मग्न था। अपने पूर्व कर्मों के प्रभाव से माया के वशीभूत हो जाने के कारण वह शिवभक्ति से वियुक्त हो जाता है। किसी तरह कुछ दिन बीतने के बाद वह अपने मनरूपी हंस को दूत बनाकर शिवलोक में स्थित अपनी प्रेयसी शिवभक्ति के पास प्रेम सन्देश देकर भेजता है।

इस प्रसंग में भूमि से शिवलोक पर्यन्त मार्ग, तदन्तर्गत देश तथा उस स्थान के देवताओं का वर्णन किया गया है। सर्व प्रथम हंस से उत्तर दिशा की ओर चलने को कहा गया है। तदनन्तर गंगा (पिंगला), यमुना (इडा) और सरस्वती (सुषुम्ना) इन के संगम पर स्थित मूलस्थान तीर्थ होते हुए तथा वहा पर विराजमान ईश, गणपति, तारकारि और दुर्गा की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर पास में ही पार्वती का तपोवन बतलाया गया है। वहा से उत्तर की ओर चलने पर कीचकवन, वल्मीकरन्ध्र, महामेरु, सिद्धों द्वारा वन्दनीय मणिमय मण्डप तथा वहा पर किराती रूप में विराजमान अपर्णा देवी के दर्शन करने का क्रमशः हंस को परामर्श दिया गया है। वहा से फिर ऊपर की ओर सिद्धों द्वारा वन्दनीय कोई पूर्णगिरि आश्रम तथा वहा पर विराजमान मंगलाख्या देवी का उल्लेख किया गया है। वहा से आगे चलने पर जालन्धर देश तथा वहा पर लम्बिका में विराजमान भगवान् शिव की स्तुति करने के बाद आगे बढ़ने पर कैलाश नामक स्थान में विहार करने का हंस

को परामर्श दिया गया है। इसी कैलाश पर द्वादशान्त नामक शिवलोक बताया गया है। शिवलोक के वर्णन के बाद वहां पर स्थित चन्द्र मण्डल, दीर्घिका, ज्ञानकमल तथा उसके मध्य में प्रकाशमान स्वर्णरूप कर्णिका का वर्णन किया गया है। इस ज्ञान कमल में ही शिवजी और पार्वतीजी को विहार करता हुआ बताया गया है। यहां पर शिवजी की श्रद्धा पूर्वक पूजा करने के बाद शिवभक्ति से हंस के मिलने का उल्लेख किया गया है। शिवभक्ति को शान्ति के साथ विहार करता हुआ देखकर फिर सन्देश सुनाने की हंस से प्रार्थना की गई है। सन्देश में भक्त ने अपनी दीना वस्था तथा शिवभक्ति की महिमा का वर्णन किया है।

अन्त में हंस की कार्यक्षमता तथा उसके प्रति शुभ कामनाओं से काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्यसमीक्षा

विषय की दृष्टि से यह सन्देश काव्य बिल्कुल नए ढंग का है। सन्देश-काव्य प्राय विप्रलम्भ शृंगार को ही प्रधान मानकर लिखे जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में रामचन्द्रजी के दूत के रूप में हनुमान्‌जी का सीताजी के पास जाना विरहकालीन घटना है और कालिदास के मेघदूत में भी मेघ को प्रेयसी के विरह प्रसंग में ही प्रिय का दूत बनाकर भेजा गया है। अत यह स्पष्ट है कि सन्देश काव्य प्राय विरहप्रसंग को ही लेकर लिखे गए हैं। इस हंस सन्देश का लेखक भी इस बात को जानता है। उसने कतिपय स्थलों में रामचन्द्रजी, सीताजी और हनुमान्‌जी का उल्लेख भी किया है—

रामो यद्वज्जनकसुतया दण्डकारण्यभूमौ
क्षेत्रे प्राप्त क्वचन पुण्य कल्पयामास वासम् ॥१॥१॥

काव्य के अन्त में भी शिवभक्ति से अपने मिलने का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

काम दत्वा बहुसुखमथ प्रेयसीं नामवाप्स्ये
यद्वत् पूर्व रघुकुलपतिर्मैथिलीं मान्यशीलाम् ॥२॥४६॥

इसी प्रकार हंस को दूत बनाने के प्रसंग में हनुमान्‌जी का भी उल्लेख किया गया है—

क्षेत्रे तस्मिन् सह विहरतामिन्द्रियाणां मृगाणाम्
कृत्वा तृप्तिं विषयकवलैर्यापयित्वा दिनानि।
संसाराब्धे प्रतरणविधावाञ्जनेयं यथा यं
हंस कश्चित् सहचरमसौ मानसस्थं ददर्श। १॥२॥

इन सब अवतरणों से यह स्पष्ट है कि इस काव्य को लिखते समय कवि के ध्यान में वाल्मीकि रामायण का यह प्रसग अवश्य था । कालिदास का मेघदूत भी एक आदर्श सन्देशकाव्य के रूप में कवि के समय में प्रसिद्ध था और कवि की यह महत्त्वाकाक्षा रही होगी कि उसका काव्य भी देश भर में प्रसिद्ध हो। इसीलिए काव्य में कालिदास का अनावश्यक रूप से उल्लेख भी पाया जाता है । कालीदेवी को एक बार प्रणाम करने से कालिदास की तरह हस के भी ख्यातिप्राप्त होने का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

> कालीं कालाम्बुदनिभरुचिं ता सकृत् तत्र नत्वा
> प्राप्तासि त्व प्रथितमहस' कालिदासस्य कीर्तिम्।
> सूक्तिज्योत्स्नासु विचिततिभि स्वर्धुनीस्पर्धिनीभि
> आर्यं काव्य भुवि रचयता मातृका यत्प्रबन्धा' ॥१॥३८॥

टीकाकार ने भी लिखा है कि कवि ने कालिदास की महिमा गाने के लिए ही कालिदास का उल्लेख कर दिया है—

> किञ्चिन्निमित्तमाश्रित्य कालिदास महाकविम् ।
> उपश्लोकयितु प्राह कवि श्लोक सुबोधक

इन सब बातों से यह नितान्त स्पष्ट है कि कवि सन्देशकाव्यों की विषयपरम्परा से सर्वथा परिचित था। यह उसकी अपनी नवीन कल्पना ही है कि उसने वेदान्त और भक्ति के विषय को सन्देशकाव्य के रूप में पाठकों के सामने रखा है। कवि को हस का नल के सम्बन्ध में किया गया दूतकार्य ज्ञात ही है जैसा कि उसने स्वय उल्लेख किया है—

> प्रेषित त्वा नल परिसरादागत राजहस
> वैदर्भीव प्रियवचनतो भूयसाऽह्लादयन्तम् ॥२॥३१॥

तथा कवि ने स्वय—

> आप भर्तुस्तव सहचरश्चित्तसज्ञोऽस्मि हस
> त्वत्सन्देशादुपगत इहेत्येवमाचक्ष्व तस्यै ॥२॥२६॥

इस पद्य में चित्त को हंस स्वरूप माना है, अत हस को सन्देश वाहक बनाना उचित ही है । इसके अतिरिक्त श्री वेदान्त-देशिक जो कि रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी थे और विशिष्टाद्वैत के मानने वाले थे, हस-सन्देश नामक सन्देश काव्य रामचन्द्रजी की कथा के आधार पर लिख चुके थे, उनके समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी होने के कारण कवि का अपने काव्य का हंस-सन्देश नाम रखना और भी उचित जान पड़ता है।

विषय की दृष्टि से सर्वथा भिन्न होते हुए भी यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। काव्य में दो भाग हैं। पूर्व भाग में ४० और उत्तरभाग में ४१ श्लोक हैं। छन्द मन्दाक्रान्ता ही है। भावानुकूल सरस और प्रसाद गुणयुक्त भाषा में ही यह काव्य लिखा गया है। शान्त रस की ही काव्य में प्रधानता है।

काव्य में दो मार्गों का प्रतिपादन किया गया है—एक आध्यात्मिक मार्ग जो कि परमार्थ स्वरूप है तथा उसका सहायक योगमार्ग। आध्यात्मिक मार्ग का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने प्रारब्ध कर्मों के प्रभाव से संसार में जन्म लेता रहता है। जब श्रद्धा, ज्ञान, श्रवण, धृति, शान्ति और तपस्या के द्वारा उसके सांसारिक बन्धन नष्ट हो जाते हैं और वह अपने स्वरूप में आ जाता है, तब परमात्म प्रेम रूपी भक्ति के द्वारा उसे शिवसायुज्य प्राप्त हो जाता है। कवि ने काव्य के प्रथम श्लोक में ही कहा है—

कश्चिन्मायामृग वश गत कर्मणा मुह्यमानो
भक्त्या शम्भोश्चरणभजया विप्रयुक्तो विपण्ण ॥१॥११॥

तथा एक अन्य स्थल पर भी अध्यात्म मार्ग का चित्र कवि ने इस तरह दिया है–

न त्यक्ष्यामि क्षणमपि चिरात् सश्रिता ता तु साध्वीं
तस्या-सक्त सुचिरमनघ स्वाधिराज्य प्रपत्स्ये।
श्रद्धा मेधा श्रुतिमपि धृति शान्तिदान्ती च मुक्ति
कृष्णो गोपीजनमिव भजन् निर्वृ तस्त्य च भूया ॥

इस अध्यात्ममार्ग का सहायक दूसरा मार्ग योगमार्ग है। इस मार्ग में सुषुम्णा से लेकर द्वादशान्तेन्दु मण्डल तक विभिन्न अवस्थाओं में से होते हुए मन की यात्रा का वर्णन किया गया है। अन्त में मन भक्ति के साथ अमृतयोग अवस्था में पहुँच कर पूर्ण विश्रान्त हो जाता है। योग मार्ग का वर्णन कवि ने इस तरह दिया है–

मूले लिंग प्रहितभुजगीमौलिरक्षायमानम्
संसर्पन्त्या शिशिरसुधया द्वादशान्तेन्दुधाम्नात्।
भक्त्या युक्तस्तत सहजया,भूयसै वाभिषिक्त–
स्तत्तोयेन प्रियसग तनु प्लावयित्वा सुखी स्या ॥२॥८७॥

इन दोनों धाराओं–अध्यात्म और योग–के अतिरिक्त काव्य में शैवसिद्धान्त की भी झलक पाई जाती है। इस प्रसंग में निम्न अवतरणों पर विचार करना अनुचित न होगा–

दिव्यां शक्तिं परमपुरुषप्राप्तये श्रद्दधाना
मूले तस्मिन् निवसति चिरं सा सुषुम्नाद्रुमस्य ॥१॥२२॥

सैषा गौरी सरसविसिनीकाण्डनन्तपभागी
भूतेशेन प्रथितमहसा सङ्गतं प्रार्थयन्ती।
मूले तस्मिञ्ज्वलितमनलं त्रिः परिक्रम्य सम्यक्
प्रायस्तन्वी चरति सुचिरं तापहन्त्री तपांसि ॥१॥२३॥

इसके अतिरिक्त शिवभक्ति के पास ही तो इस के द्वारा संदेश भेजा गया है। इस प्रकार शैव सिद्धान्त की भी अन्तर्धारा काव्य में स्पष्ट ही प्रतीत होती है।

उपर्युक्त शास्त्रीय विषयों के साथ-साथ काव्य में मधुरता लाने के लिए कवि ने भक्ति को उत्तमनायिका तथा भक्त को उत्तमनायक के रूप में वर्णित किया है और उनके विरह को इस तरह ही पाठकों के सामने रखा है मानो किसी प्रिय का अपनी प्रेयसी से विरह हो। इस को देखकर भक्त की क्या दशा होती है। कवि कहता है–

दृष्टे तस्मिंश्चिरविरहिता प्रेयसीं चन्द्रभक्तिं
स्मारं स्मारं सजलनयनस्तत्र तूष्णींबभूव।
उच्चैः स्थित्या हतविधिवशात् प्राप्तवाहविधाना
मूकीभावः खलु समुचितो बान्धवानां पुरस्तात् ॥१॥३॥

भक्ति का विरहिणी नायिका के रूप में निम्न श्लोक में कैसा दयनीय चित्र प्रस्तुत किया गया है–

काश्यं यायात् खलु विधिवशात् प्रायशः साम्प्रतं सा
कालुष्यं वा मयि पुनरनाचारमाशङ्कमाना।
शोचेत् किं वा प्रियसहचरी दुर्लभं मां विदित्वा
किं किं बाला प्रियविरहिता नैव सञ्चिन्तयन्ति ॥२॥२६॥

भक्ति का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

या सा वाचि प्रकृतिमधुरा या च चित्ते दयालु-
र्या या भव्या वपुषि विनयाद् या च नेत्रे प्रसन्ना।
साध्व्यास्तस्याः किमिह बहुभिर्वर्णनानां प्रकारैः
सैषा काचित् सरसिजमुखी मानसी चारिरन्या ॥२॥२५॥

इस पद्य में कवि ने भक्ति को एक उत्तम नायिका के रूप में कितने सुन्दर ढंग से वर्णित किया है। जिस तरह कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के गुणों की प्रशंसा करे, इस तरह ही भक्त भक्ति के गुणों की प्रशंसा कर रहा है।

कवि ने शिवजी का वर्णन करते हुए लिखा है—

> मौलौ कुन्दोल्लसितमलकं सेन्दुलेशं कपर्दं
> काश्मीराङ्कं तिलकमलिके लोचनं सस्फुलिङ्गम्।
> कण्ठे कालागुरुमपि च य कालकूटं च धत्ते।
> क्षौमं धत्ते जघनपुलिने नूपुरं व्यालमङ्घ्रौ ॥२।८६॥

भक्तों के हृदय को प्रभावित करने वाला शिवजी का यह स्वरूप वर्णन कितना सुन्दर है।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट ही है कि अध्यात्म और योग के शुष्क विषय को कवि ने बड़े सरस ढंग से प्रतिपादित किया है। मेघदूत के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है। भिन्न विषय को लेते हुए भी कवि ने मेघदूत की शैली का सफल अनुकरण किया है। कवि ने अपने विषय को ठीक उसी ढंग से व्यवस्थित किया है जैसा कि मेघदूत में पाया जाता है। भक्त का भक्ति से विरहित पुरुष के रूप में वर्णन, हंस दर्शन, हंस स्वागत, मार्ग वर्णन, सन्देशकथन और आश्वासन तथा हंस के प्रति शुभकामनाएं यह सब मेघदूत की ही प्रेरणा है। कहीं कहीं भावसाम्य और शब्दसाम्य बिल्कुल प्रत्यक्ष ही है। मेघदूत में मेघ के द्वारा सन्देश पहुँचाने की इच्छा से यक्ष मेघ का स्वागत करता है और उसके लिये अर्घ भी देता है—

> जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्।
> स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
> प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥१।४॥

इसी तरह इस सन्देश काव्य में भी कहा गया है—

> आत्मोदन्तं प्रियजनमसौ प्रापयिष्यन् प्रहृष्टः
> कल्प्तार्घाय प्रशमकुसुमैः स्वस्ति तस्मै जगाद ॥१।४॥

दोनों पद्यों में कितनी समानता है।

मेघ को सन्देश ले जाने के लिए नियुक्त करते समय कामार्त होने के कारण यक्ष की विवेक शून्यता बतलाई गई है—

> इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
> कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१।५॥

इसी तरह इस काव्य में शिवलोक में मनरूपी हंस से जाने की प्रार्थना करते हुए भक्त के सम्बन्ध में कहा गया है—

भक्त्यानास पशुपतिपद गन्तुमेन ययाचे ।
नैनाविन्दत् तदिह वचसा चेतसामप्यभूमिम्
युक्तायुक्तेष्वपि हि निदुषामर्थिना नो विवेक ॥१॥५॥

मेघदूत का मार्ग-कथन के प्रसग में आया हुआ निम्न श्लोक—

मार्ग तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूप
सन्देश मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।
खिन्न खिन्न शिखरिषु पद न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीण क्षीण परिलघु पय स्रोतसा चोपयुज्य ॥१॥१३॥

तथा इस काव्य का मार्ग कथन के ही प्रसग में आया हुआ यह श्लोक—

आदौ तावच्छृणु कथयतो मार्गमत्यान्त मे
सन्देश ■ श्रवणसुभग सौम्य ! वक्ष्यामि पश्चात् ।
पीत्वा पीत्वा शशि निगलिता यत्र पीयूषधारा
पद्मे पद्मे निहितवसति प्रत्यह यास्यसि त्वम् ॥१॥६॥

देखिए । दोनों श्लोकों में शैली, भाव तथा शब्दों की समानता कैसी दर्शनीय है ।

मेघदूत में यक्ष ने अपनी विरहिणी प्रेयसी की विरहावस्थाओं के सभावना प्रसग में कहा है—

आलोके ते निपतति पुरा सा
पृच्छन्ती वा मधुरवचना सारिका पञ्जरस्था,
कच्चिद्भर्तु स्मरसि रसिके त्व हि तस्य प्रियेति ॥२॥२४॥

इसी तरह इस काव्य में भी विरहिणी भक्ति की विरहावस्था का वर्णन करते हुये कहा गया है कि सभव है वह उपनिषत् रूपी शारिका से यह पूछ रही हो कि उसे (शारिका को) कभी भक्त की याद भी आती है या नहीं—

पृच्छेद्वासौ चिरमुपनिषच्छारिकामन्तिकस्था
पु स किन्तु स्मरसि रसिके त्व हि तत्प्रेमपात्रम् ॥२॥२५॥

उपनिषत् को शारिका मानकर कवि ने यहा पर कैसी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है तथा मेघदूत से लिये हुये भाव को भक्ति के प्रसग में कितनी मौलिकता के साथ एकरस कर दिया है ।

मेघदूत का—त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागै शिलायाम्—
आत्मान ■ चरणपतित यावदिच्छामि कर्तुम् ॥२॥४८॥ इत्यादि

पद्य की छाया लेकर भक्ति के सम्बन्ध में कवि ने क्या ही सुन्दर कल्पना की है–

> सन्निद्धातु द्रवमतितरा स्वच्छमासाद्य मद्य
> प्रज्ञासद्मामपि च फलका तूलिका ध्यानरूपाम्।
> शान्ता मू त तव विलिखितु मायायाम्येव यावत्
> तावद् वैरी नयनयुगलं वाष्पपूरो निरुन्धे॥

ज्ञान के रस से प्रज्ञा रूपी फलक पर ध्यान रूपी तूलिका से भक्ति की शान्त मूर्ति का भक्त चित्र बनाना चाहता ही है कि उसकी आँखों से लगातार आँसू बरसने लगते हैं और चित्र बनाने का विचार अपूर्ण ही रह जाता है।

भक्ति के पूर्णरूप की खोज में भक्त योगियों, व्रतियों, यतियों तथा जटाधारियों के समीप आ चुका है, लेकिन कहीं भी उसे भक्ति का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध नहीं हो सका है—

> योगीन्द्रेषु श्रवणमननध्यानशीलेषु नित्य
> मौनस्थेषु व्रतिषु यतिषु ब्रह्मविद्वत्सु सत्सु।
> भस्मच्छन्नेष्वपि च जटिलेष्वंशतस्त्वा विपश्यन्
> पूर्णाकारा क्वचिदपि विधेर्वभ्रमान्नो लभे त्वाम्॥२॥२६॥

इस श्लोक में मेघदूत के—श्यामास्वङ्ग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात
वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना वर्हभारेषु केशान्॥२॥४२॥ इत्यादि

पद का भावानुकरण किया गया है।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाओं की सभावना के पश्चात् कहता है—

> वाचाल मा न खलु सुभगम्मन्यभाव करोति
> प्रत्यक्ष ते निखिलमचिरात् भ्रातरुक्त मया यत्॥२॥३३॥

इसी तरह इस काव्य में भी भक्ति की विरहावस्थाओं की सभावना के बाद भक्त कहता है—

> आत्मश्लाघा वरमिति न मे सौम्य! आर्नाहि वाक्य
> साक्षात्कर्तुं प्रभवति भवान् क्षिप्रमेवामुमर्थम्॥२॥५७॥

इस तरह मेघदूत और इस हंस-सन्देश में समान भाव तथा पदावली वाले अनेक स्थल पाए जाते हैं।

धार्मिक विषयों का प्रतिपादन करते हुए भी कवि ने अपनी साहित्यिक रुचि का यथास्थान परिचय दिया है। योग के गहन मार्ग को सरल उपमाओं द्वारा सुगम बनाने की चेष्टा की है। सुषुम्णा मार्ग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-

मोहे लाक्षागृह इव तदा दह्यमाने समन्तात
सौषुम्न तत् प्रविश सुषिर वृत्तिभेदैश्च शक्त्या।
भ्रात्रा सुप्ते सह च सहजैर्भीमसेन सुरुङ्गा
यद्वत् प्राप्तो विदुरगुरुणा पूर्वमेवोपदिष्टाम् ॥१॥३१॥

महाभारत की प्रसिद्ध कथा से उपमाएं संगृहीत कर कवि ने अपने विषय को कैसा सरल बनाया है।

इसी तरह वेदान्त के विषय को सर्वसुगम उपमाओं द्वारा कितना सरल बनाकर निम्न श्लोक में समझाया गया है—

नष्टो मायामृग इव खरो दूषणश्चैव पाप्मा
व्यामोहाय प्रसरति पर वासनाराक्षसी मे।
संसाराख्ये किन्तु विगलति स्वप्नरूपेऽन्धकारे
बोधादित्येऽप्युदितवति सत्याश्रयो स्याद्धि योग ॥२॥३८॥

ज्ञान के उदय होने पर ही भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। इस सिद्धान्त को कवि ने कितनी अच्छी तरह सरल उपमाओं द्वारा समझाया है।

शिवलोक में हंस के साथ भक्ति के आने का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

इत्येव त्वय्युदितवति सा सानुकम्पा तदा त्वा—
मन्वग्यायात् प्रणयभरिता गौरिवात्मीयवत्सम् ॥२॥४४॥

भक्ति की भक्तवत्सलता व्यक्त करने के लिए 'गौरिवात्मीयवत्सम्' उपमा कितनी भावपूर्ण दी गई है। इस तरह कवि ने वेदान्त, योग और भक्ति के विषय को काव्य मय ढंग से इस काव्य में प्रतिपादित किया है।

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को भली भांति काव्य के विषय, भाव, शैली, छन्द और भाषा से परिचय हो गया होगा। मेघदूत से प्रेरणा लेकर भी कवि ने अपनी कल्पना से काव्य में एक नवीनता उत्पन्न कर दी है। शृंगार रस के अनुकूल वातावरण में शान्त रस का संचार कर दिया है। सन्देशकाव्यों की परम्परा में यह काव्य विषय की दृष्टि से एक नई दिशा का निर्देश करता है। श्री वेदान्तदेशिक ने श्रीकृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अनुकरण पर विशिष्टाद्वैतपरक अपना

सट्रूपसूर्योदय नामक नाटक लिखा । इस नाटक से कवि के हृदय में रूपकमय किसी काव्य के लिखने की प्रेरणा हुई होगी। लेकिन वेदान्तदेशिक के हंस सन्देश देखकर उसने सन्देशकाव्य ही 'एलीगोरीकल' (Allegorical) ढंग से लिखना ठीक समझा तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी के सन्देश-काव्य को तुच्छ बनाने के लिए वेदान्त, योग और भक्ति से युक्त अपने काव्य का नाम हंस सन्देश रख दिया। यदि इस काव्य को मानससन्देश या ऐसा ही कुछ और नाम दिया जाता तो भी अनुपयुक्त न होता। अस्तु, सन्देश काव्यों की परम्परा में भक्ति-काव्य या शान्तरस प्रधान काव्य के रूप में इस काव्य के महत्त्व को भुलाया नहीं जा सकता। खेद है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्य के रचयिता का नाम इत्यादि अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। काव्य में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लेखक का कुछ भी परिचय नहीं मिलता है। इस काव्य के टीकाकार का भी समय और स्थान कुछ भी ज्ञात नहीं है। टीका की विशेषता यह है कि यह पद्यात्मक रूप में लिखी हुई है। वेदान्त और भक्ति के अनुयायी विद्वानों का अपने विषय में ग्रन्थ में कहीं भी कुछ भी न लिखना स्वाभाविक ही है।

लक्ष्मीदास का शुकसंदेश (वि० पंचदश शतक)

मालाबार प्रान्त के संदेशकाव्य-लेखकों में लक्ष्मीदास का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस सहृदय कवि की कोई और रचना अब तक उपलब्ध नहीं हुई है, लेकिन इसका यह शुकसंदेश ही मालाबार में बहुत दिनों से प्रथम कोटि का एक काव्य माना जाता रहा है। मालाबार के प्रसिद्ध कवि तथा कँगनोर राजवंश से सम्बद्ध स्वर्गीय श्री कुन्हुकुट्टन थम्पन के मलयालम अनुवाद सहित श्री टी० के० कृष्णमेनन द्वारा मलयालम लिपि में यह काव्य प्रकाशित किया जा चुका है। पं० पी० एस० अनन्तनारायण शास्त्री द्वारा संक्षिप्त भूमिका और टिप्पणी के साथ देवनागरी लिपि में मंगलोदय कम्पनी, त्रिचूर (कोचीन) से भी यह काव्य प्रकाशित हुआ है।

केरल देश में 'करिटूडम्पिल्लि' नाम से आजकल प्रसिद्ध स्थान ही लक्ष्मीदास का जन्म स्थान था। ऐसा ही सब का विचार है। है भी यह उचित ही, क्योंकि

इस स्थान पर ब्राह्मणों के ही घर अधिक पाए जाते हैं। लेकिन लक्ष्मीदास के समय क सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। केरलीय विद्वानों में प्राय ऐसा देखा जाता है कि वे अपने रचनाकाल का अक्षरों की सख्या द्वारा उल्लेख करते हैं। इस प्रकार कुछ विद्वानों का विचार है कि लेखक ने काव्य के प्रारम्भ में ही 'लक्ष्म्या रमे शरदि शशिन' इन पदों द्वारा मुद्रालकार में अपने काव्य का निर्माण समय बता दिया है। गणना करने पर कलियुग का ३२१३ वा वर्ष इस काव्य का निर्माणकाल ठहरता है। दूसरे शब्दों में स० ११२ ई० इस ग्रन्थ का निर्माणकाल आता है। लक्ष्मीदास ने कालिदास का अनुकरण तो किया ही है और कालिदास का समय भी उस समय से कुछ पूर्व ही बहुत विद्वानों द्वारा माना जा चुका है। अत स० ११२ ई० में लक्ष्मीदास द्वारा शुक सदेश का लिखा जाना कुछ भी असभव नहीं है।

इसके विपरीत कुछ विद्वानों का विचार है कि प्रथम पद्य के 'दूरलीन स लक्ष्या' इन पदों से ही कवि काव्यनिर्माण का समय बताता है। यह पद कलि दिनों की सख्या बताते हैं। इस प्रकार ६६६ वा कोलम्ब वर्ष ही शुकसदेश का रचना काल है। ६६६ कोलम्ब वर्ष सन् १४९१ ई० ठहरता है। अत यही समय ग्रन्थ का रचना काल है

चूँकि उदयकवि के मयूरसदेश में शुकसदेश और कोकिलसदेश इन दोनों काव्यों का अनुकरण पाया जाता है और शुकसदेश को सभी लोग कोकिलसदेश से भी प्राचीन मानते हैं अत कम से कम वि० पचदशशतक के प्रारम्भ को इस काव्य का रचना काल मानना उचित रहेगा। (विशेष अध्ययन के लिए काव्य की भूमिका देखिए)।

काव्य की कथा

गुणकापुरी अथवा गुणपुर[१] में शरद् ऋतु की रात्रि में अपने प्रासाद के ऊपर दो प्रेमी सुखमय विहार में मग्न थे। इतने में नायक को अकस्मात् ऐसा स्वप्न आता है कि वह अपनी प्रेयसी से वियुक्त गया है और घूमते २ रामेश्वर के समीप रामसेतु पर पहुँच गया है। तदनन्तर स्वप्न में ही वह अपनी प्रेयसी के पास गुणकापुरी में एक शुक के द्वारा अपना सदेश पहुचाता है। इस प्रसग में रामेश्वरम् से गुणकापुरी तक के मार्ग का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

---

१ गुणकापुरी प्राचीन समय में एक प्रसिद्ध नगरी थी। सभवत आजकल के वन्करणामनिलक का ही यह नाम रहा हो। आजकल यह एक छोटा सा ग्राम रह गया है।

रामेश्वरम् में शिवजी की पूजा करने के बाद समुद्र तट होते हुए सेतुबंध, ताम्रपर्णी नदी, पाण्ड्यदेश तथा पाण्ड्यदेश की राजधानी मणलूर नगरी (मनालोर) और सह्य पर्वत को पार कर केरलदेश पहुचने के लिए शुक से कहा गया है। तदनन्तर केरलदेश में कुछ दूर पर स्थित कन्याकुमारी क्षेत्र को दूर से ही प्रणाम कर पुन सह्यपर्वत पर आ जाने के बाद शिवजी के एक मन्दिर तथा ब्राह्मणों के एक अग्रहार का उल्लेख किया गया है। इस अग्रहार के बाद थोड़ी दूर पर ही स्यानन्दूर [त्रिवेन्द्रम्] नगर बताया गया है। इस नगर में भगवान् अनन्तशयन के मन्दिर में सायंकालीन पूजा में भाग लेने तथा वहां पर ही बाहर किसी आम्र वृक्ष पर विश्राम करने के बाद रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही शुक से फिर आगे बढने के लिए कहा गया है। इस तरह आगे चलने पर समुद्र तट पर स्थित कूपकराजाओं की नगरी कुलपुरी, तदनन्तर कोलम्बदेश (क्विलान), वल्लभग्राम (तिरुवल्ल), त्रिम्पलीनगरी (चेम्पनाट) तथा त्रिम्पली के राजाओं के स्कन्धावार सिन्धुद्वीप (कतलतुरुत्तु) के मिलने का उल्लेख किया गया है। इस के बाद कुरला नामक (मुन्वात्तुपुभ) नदी को पार कर ब्राह्मणों के कुछ ग्रामों, सुब्रह्मण्य मन्दिर, पशुपतिक्षेत्र तथा इसके पास बहती हुई चूर्णी (अल्वयं या पेरियार) नामक नदी को पार करने के बाद उत्तर की ओर चलने पर केरल देश के राजाओं की राजधानी महोदयपुरी (तिरुवञ्चिक्कुलम्) पहुचने का शुक को परामर्श दिया गया है। इस नगरी के बाद पास में ही स्थित चण्डिका के मन्दिर का वर्णन किया गया है। तदनन्तर मंदिर के पास में ही स्थित गुणकापुरी में सूर्यास्त होते २ पहुच जाने के लिए शुक से कहा गया है। गुणकापुरी (तृक्कणामतिलकं) के वर्णन के बाद नायक अपनी प्रेयसी के निवास स्थान का वर्णन करते हुए निकटवर्ती कूप, वापी और क्रीडोद्यान का भी वर्णन करता है। उद्यानस्थित तिलक, कुरबक तथा आम्रवृक्ष के वर्णन के बाद अपने प्रासाद में स्थित विरहिणी नायिका का फिर बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

नायिका के वर्णन के बाद नायक शुक से उचित अवसर पाकर नायिका से अपना सन्देश सुनाने के लिए कहता है। इस प्रसग में नायक ने अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए अपनी प्रेयसी को सान्त्वना भी दी है। अन्त में अपने सम्बन्ध में सन्देह निवारण के लिए कई अभिज्ञान घटनाएं बताई हैं। इस तरह मार्गवर्णन, नायिका की विरहावस्था तथा सन्देश कथन के बाद शुक के प्रति मगलकामना के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्यसमालोचना

मालाबार प्रान्त में लिखे गए सन्देश काव्यों में यह सन्देश काव्य एक महत्त्व पूर्ण सन्देशकाव्य है। मेघदूत के अनुकरण पर ही यह लिखा गया है और दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में मार्ग वर्णन और द्वितीय में नायिका की विरहावस्था

तथा सन्देश कथन है। समग्र काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द ही प्रयुक्त किया गया है। शृंगार रस के अनुकूल प्रसादगुणयुक्त ललित भाषा में ही काव्य की रचना की गई है।

काव्य की कथावस्तु से पाठकों को विदित ही है कि नायक का अपनी प्रेयसी से वियोग केवल स्वप्नजन्य है। इसलिए कथानक में वह स्वाभाविकता नहीं है जो कि मेघदूत में पाई जाती है। चूंकि यह दोष प्रायः सभी सन्देश काव्यों में पाया जाता है, अतः इसे दोष न मानना ही उचित रहेगा। कवि का शुक को दूत बनाना उचित ही है क्योंकि शुक में मनुष्यों की वाणी यथानुपूर्व उच्चारण करने की बड़ी क्षमता पाई जाती है। श्रीहर्ष कवि ने भी अपने नैषध काव्य में हंस की वाक्शक्ति का परिचय देते हुए 'स कीरवन्मानुषवागवादीत्' इस कथन से शुक की मनुष्यों जैसी उच्चारण शक्ति का समर्थन किया ही है। इस तरह शुक के सन्देश ले जाने में स्वाभाविक सौकर्य को देखकर ही कवि ने इसे दूत बनाया है। शुक की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कवि स्वयं कहता है—

सम्यक् श्रोतुं सहृदभिहितं सर्वदैवावधातुं
दीर्घालम्बे पथि विचरितुं व्यक्तमाभाषितुं च।
आधिं यूनोरधरयितुमप्यार्तयोर्विप्रयोगे
ताम्राग्रोत्रामरण निपुणस्ताम्रतुण्डस्त्वमेव ॥१॥१२॥

इसी तरह शुक भी सन्देश प्रारम्भ करने से पूर्व अपना परिचय देते हुए कहता है—

मुक्तव्याजं परजनमुखाकर्णिता नाम वाणी
वाच्येत्यवं भुवनविदितं यस्य यशस्तत मे ॥२॥४७॥

कविता की दृष्टि से भी इस काव्य का सन्देशकाव्यों में एक विशिष्ट स्थान है। अलंकार-योजना, भावपूर्ण सरस वर्णन तथा कोमल कल्पनाओं से यह काव्य भरा हुआ है। शुक से अपनी प्रेयसी के पास सन्देश ले जाने की प्रार्थना करते हुए नायक कहता है—

प्रख्यातायां प्रचुरकरुणादीपणीभाजि धृत्वा (धृत्वा)
तीर्त्वा वर्तन्युदधिमचिरात्तीव्रचिन्ताकुलाया।
अस्मद्वार्ताधनसमुदयामम्बुजाक्ष्या हरस्वे-
दार्तप्राणान्गुरु सुकृतमप्रातरस्त च हस्ते ॥१॥१०॥

प्रचुर करुणारूपी नौका दण्ड से युक्त प्रभा रूपी नौका में रखकर तथा मार्ग रूपी समुद्र को पार कर बहुत दिनों से तीव्र चिन्ता में व्याकुल और कमल जैसे नयनों वाली मेरी प्रेयसी के पास यदि मेरा सन्देश रूपी धन तुम पहुंचाओगे, तो

हें किसी दुःखी की रक्षा करने से बड़ा पुण्य मिलेगा। इससे बढ़कर और अ(तर किराया) तुम क्या चाहते हो ?

कवि ने इस श्लोक में कैसे सुन्दर रूपक की सृष्टि की है।

स्यानन्दूर नगर (त्रिवेन्द्रम्) में भगवान् अनन्त शयन के मन्दिर में साय लीन पूजा के अवसर पर उपस्थित तरुणियों का वर्णन करते हुए कवि ने यानुप्रास की कैसी अनुपम छटा दिखलाई है—

> तत्सेवार्थं तरुणसहितास्ताम्रपादारविन्दा
> स्ताम्यन्मध्यस्तनभरनतास्तारहारावलीका।
> तारेशास्यास्तरलनयनास्तर्जिताम्भोदकेश्य-
> स्तत्रस्था स्युः स्तवकित करास्तालवृन्तैस्तरण्य ॥१॥४३॥

इस श्लोक में तरुणियों के उत्कृष्ट वर्णन के साथ-साथ तकार का कैसा सुन्दर नुप्रास पूर्ण प्रयोग किया गया है।

विभिन्न नदी, नगरी तथा अन्य प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करने में कवि ने न्दर स्थलों को पहिचानने में जरा भी भूल नहीं की है। ताम्रपर्णी नदी का वर्णन रते हुए कवि कहता है—

> चक्षुर्लीला चटुलशफरैरूर्मिभिर्भ्रूविलासान्
> फेनैर्हासश्रियमपि मुखे व्यञ्जयन्ती स्रवन्ती।
> आत्मासङ्गे जनयति रुचिं भर्तुरन्यास्वदृश्यै
> स्वेदच्छेदैरदयिभिरसौ स्वच्छमुक्ताच्छलेन ॥१॥७६॥

नदी के इस सश्लिष्ट वर्णन में कवि ने किस तरह समासोक्ति अलकार का द्वारा लेकर एक अनुरक्त और उत्कण्ठित नायिका का भी वर्णन कर दिया है।

इसी प्रकार ताम्रपर्णी की एक सहायक नदी चूर्णी नदी का भी कवि ने ऐसा सश्लिष्ट वर्णन किया है—

> स्र सद्वीचीसिचयपुलिनश्रेणिश्रिशानहर्सी
> काञ्चि भ्राम्यच्छफरजयन कीर्णशैवालकेशम्।
> आसीदन्तीमतिरसभरादानतावर्तनाभिं
> दृष्ट्वा क्लान्ता कथमिव भवास्तामसभाव्य याता ॥१॥६७॥

नदियों के इन सश्लिष्ट वर्णनों में कवि ने कैसे उत्कृष्ट ढग से नदियों में नायिका व्यवहार का आरोप कर दिया है।

आगे चलकर गुणकापुरी का भी कवि ने बड़ा सरस और भावपूर्ण वर्णन किया है। गुणकापुरी में ऊंचे २ प्रासाद तो हैं ही, उन प्रासादों में रहने वाली रमणियां भी कम सुन्दर नहीं हैं। चन्द्रमा भी उनके मुख को देखकर लज्जित हो जाता है और समय से पूर्व ही अस्त होने लगता है—

आलोक्यारादधिरजनि यत्रात्मन सौधसद्म
न्यासीनाना मुहुरतिशयीन्यङ्गनाना मुखानि।
पूर्वामाशामुपरिगमनप्रेप्सया सगृहीता
हित्वा सद्य पतनविधये पश्चिमामेति चन्द्र ॥२॥४॥

गुणकापुरी की नृत्तशालाओं का वर्णन करते हुए कवि ने बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

यस्या मूर्च्छन्मुरजनिनदा नृत्तशाला समीरे
णोद्धूताग्रैर्ध्वजपटभुजैरुत्तमाना नटीनाम्।
नृत्यन्तीनामुपरि गुरुभिस्ते स्तनारोहभारै-
र्नीता कम्प निपतनभियाऽन्योन्यमालम्बयन्ति ॥२॥६"

नृत्तशालाओं पर झण्डियां लगी हुई हैं। वायु के वेग से ये एक दूसरे से मिलती हैं। इसी दृश्य को लेकर कवि कहता है कि नृत्य करती हुई नर्तकियों के गुरु स्तन भार से कांपकर जैसे नृत्तशालाएं एक दूसरे का सहारा ले रही हों।

गुणकापुरी की पुष्पवाटिकाओं में पुष्परेणुओं के बिखरे हुए परमाणुओं को देखकर ऐसा लगता है कि मानों शिवजी की नेत्राग्नि से कामदेव के पूर्व शरीर के भस्म हो जाने पर फिर से कामदेव के नवीन शरीर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो रहा हो—

यत्पर्यन्त परमसणवो रेणव पुष्पवाट्या
पौष्पा पक्तश्वसनचलिता पक्तिशो चापमीर्या।
प्लुष्टे नेत्राग्निचिपि पुरजिता पौर्विके पुष्पकेतो-
रन्य देह घटयितुमत श्लाघनीय घटन्ते ॥२॥७॥

इसके साथ साथ गुणकापुरी में सर्वदा सभी ऋतुओं का होना भी कवि ने वहां की स्त्रियों के अंगों की तत्तद् विशेषताओं के आधार पर उपमाओं की योजना द्वारा बड़ी अच्छी तरह प्रतिपादित किया है—

यत्रे नीपं दृशि सरसिज कसर नाभिचक्रे
कुन्दच्छायं मृदुनि हसिते सौकुमार्यं शिरीषम्।
गण्डे लोध्रद्युतिमपि सम यत्र सदर्शयन्ती
कामोद्याने विलसति सदा कामिनीष्वार्तवश्री ॥२॥१०॥

विरही नायक ने शुक से अपनी प्रेयसी का जो वर्णन किया है, उसमें कवि की कल्पना अपनी पूर्ण कोमलता के साथ सजग हो उठी है। नायक शुक से कहता है—

तस्या प्राय सकलजगता चक्षुषोर्भागधेय
तन्त्राणापाविषयफलद पञ्चबाणस्य वश्यम्।
नारीशिल्पाभ्यमनजनित नैपुण्य विश्वयोने
र्विश्लेषाशीविषविषरुजामौषध वल्लभा मे ॥२॥२७॥

प्रेक्ष्या तन्व स्फटिकरदना पद्मरागाधरोष्ठी
कम्रश्यामोपलकचभरा स्निग्धमाणिक्य कान्ति।
मुक्ताजालोल्लसितहसिता वेधसो मुख्यवृत्त्या
नोत्कृष्टरत्नं परमपरैर्गाङ्गना रत्नसृष्टि ॥२॥२६॥

इसी तरह अपनी प्रेयसी की मधुर वाणी का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

अन्तर्ग्रोटा अनयतितरामन्यपुष्पागनानाम्
लीलागार स्मरमधुलिहा माधुरीजन्मभूमि।
पीयूषस्य प्रतिनिधिविधिष्टकृतिर्मारमौर्व्या
वाणी वीणारवसहचरी वामिनीना शिखाया ॥२॥३२॥

एक आदर्श रमणी रत्न की वाणी का वीणा के रव की तरह मधुर होना स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि उसकी प्रेयसी एक साथ ही उसकी समग्र इन्द्रियों को तृप्त करने वाली है, क्योंकि उसकी कान्ति, वाणी का माधुर्य, अगों की शीतलता, शरीर का सौरभ और अमृत से भरे हुए अधर कुछ ऐसे ही अद्वितीय हैं—

सा कान्ति सा गिरि मधुरता शीतलत्व तदङ्गे
सा सौरभ्योद्गतिरपि सुधासोदर सोऽधरोष्ठ।
एकासार्ध भृशमतिशयादन्यलाभेन यस्मि—
न्नेकीभाव व्रजति विषय सर्व पञ्चेन्द्रियाणाम् ॥२॥३४॥

अपनी प्रेयसी के स्वरूप वर्णन के बाद नायक उसकी विरहजन्य दुरवस्थाओं का चित्र शुक के सामने प्रस्तुत करता है। इस विरहवर्णन में कवि ने अपनी सुन्दर भावव्यजना द्वारा काव्य में चित्रोपमता और सजीवता का समावेश कर दिया है। ऐसे ही कतिपय भाव चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किए जा रहे हैं। नायिका विरह में कान्तिहीन हो गई है। उसका शरीर पाण्डुवर्ण का हो गया है और वही

गहरी २ सासें लेती है। नायिका की इस अवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

सा निश्वासैरनिभृततरैर्मध्यभाजा वलीना—
मालोलानामुपरि कुचयोर्द्वन्द्वमान्दोलयन्ती।
विभ्रत्यङ्गे विलसितरुचि वीचिभङ्गोद्गतीव
पातैश्चक्राह्वयशकुनयोर्भाति भागीरथीव ॥२॥४२॥

लहरों के ऊपर चक्रवाक पक्षियों के युग्म को आन्दोलित करती हुई भागीरथी की तरह ही विरहिणी नायिका अपने स्तनयुग्म को ईषच्चचल त्रिवलिरेखाओं के ऊपर गहरी सासों के कारण आन्दोलित करती हुई शोभायमान लगती है। कवि ने यहां पर कैसी उपयुक्त उपमा दी है।

अपनी प्रेयसी की विरहजन्य मलिनता तथा प्रियदर्शन की उत्सुकता का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

आसीनेन क्वचन विटपे सा त्वयालोकनीया
नीलाम्भोदैरिव शशिकला निह्नुताङ्गी रजोभिः।
चञ्चत्पक्ष्म व्यजनपवनैश्चामरग्राहिणीना
चक्षुर्मद्वीक्षणसमुचिते वर्त्मनि प्रेरयन्ती ॥२॥४७॥

प्रिय विरह में नायिका इतनी व्याकुल हो उठती है कि वह क्रोध में आकर प्रिय को इस तरह का उपालम्भ देने लगती है कि इतने समय के लिए मुझे छोड़कर तुम कहां चले गए हो। लेकिन वाक्य पूरा करते २ भय और ताप के कारण उसकी वाणी रुक जाती है और वह रोने लगती है तथा उसे ऐसा लगता है कि उसका प्रियतम उसके चरणों के पास ही उपस्थित है—

एतावन्तं समयमिह मामेवमित्यर्धवाक्ये
रोषातङ्कव्यतिकरवती रोदितुं वा प्रवृत्ता।
उच्छ्वासा प्रचलदधरा स्तोकनम्रोत्तरोष्ठी
पश्यन्ती मां चरणपतितं भावनाचक्षुषाऽग्रे ॥२॥४१॥

इस श्लोक में कवि ने नायिका के क्रोध, भय, ताप तथा स्मृति जैसे भावों को एक साथ संश्लिष्ट कर दिया है।

अन्त में विरहिणी की परस्परविरोधी भावनाओं का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि आशा निराशा तथा जीवन मरण के बीच संघर्ष करती हुई उसकी प्रेयसी की विरहावस्थाओं का वर्णन ठीक २ नहीं किया जा सकता—

आशास्ते वा मदभिगमनं किन्तु तस्मिन्नुदास्ते
धत्ते तापप्रशमनविधीन् किन्तु तानेव रुन्धे ।
एवप्राया प्रणयिनि जने गाढमुत्कण्ठितानाम्
कैर्गण्यन्ते क्षणनवनवाः कामिनीनामवस्थाः ॥२॥५४॥

विरहिणी नायिका के वर्णन के बाद नायक ने अपना सन्देश सुनाया है। सन्देश में प्रथम नायक की विरहावस्था का वर्णन किया गया है। नायक अपनी उद्विग्न अवस्था का वर्णन करते हुए कहता है कि शरद् ऋतु की जो सुन्दर वस्तुएं संयोग समय में बड़ी सुखद प्रतीत होती थीं, वे ही उसकी प्रेयसी के पास न होने पर मन को बड़ा दुःखी बनाती हैं—

मङ्गल्याङ्गि स्मरशरमयीमाश्विनीमश्नुवाना-
मेनामाशावलयमकृशामीक्षमाणस्य लक्ष्मीम् ।
तत्तच्चिताकवलितधियस्तन्वि मे क्षीणपुण्य-
स्यान्तस्तापं जनयतितरामन्तिकानीक्षणं ते ॥२॥६३॥

प्रेयसी के वियोग में जब जब नायक भ्रमरों के कर्णप्रिय तथा हृदयाह्लादी गुञ्जन को सुनता है, तो उसका मन अधीर हो उठता है और उसे मूर्च्छा आ जाती है—

मारोन्मादी मदकलगिरामत्र भृङ्गाङ्गनानां
श्रावं श्रावं श्रवणहृदयमाहिनीगीतामृतानि ।
धृत्वाभोगस्तवकवहनव्यानतानां लतानां
मूले मूले मुकुलितधृतिर्मूर्च्छनामभ्युपैमि ॥२॥६४॥

प्रेयसी के वियोग में सभी सुखदायक और शान्ति-दायक वस्तुएं नायक के लिए दुःखदायी हो गई हैं। सुन्दर और मनोहर दृश्यों को देखकर उसे अपनी प्रेयसी की याद आ जाती है। स्मृति की इस भावना का कवि ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। नदियों में मछलियां तैर रही हैं, कमल खिले हुए हैं और लहरें उठ रही हैं। इस दृश्य को देखकर नायक को चंचल नेत्रों, कम्पमान स्तनों तथा चंचल भ्रू वाली अपनी प्रेयसी की स्मृति आ जाती है और वह कह उठता है—

आश्लिष्यन्त्या स्मरदधिगुणे प्रेमकोपप्रयाणे
चक्षुर्नेत्रं चलदुरसिजं चञ्चलभ्रूलतं ते ।
उद्यन्मीना कमलमुकुलैरुल्लसन्त्यः प्रसन्ना
कल्लोलिन्यः कलुषकलुषं कुर्वते मानसं मे ॥२॥६५॥

प्रेयसी की सन्निधि में चन्द्रमा, वापी, भ्रमरों का गुञ्जन तथा मन्द २ बहती

हुई ठण्डी हवाएं जो चित्त को प्रसन्न किया करती थीं, वे अब उसके वियोग में प्रिय के मन को लेशमात्र भी आनन्द नहीं पहुचाती हैं.—

> प्रेते चारु प्रकृतिरमणीयाङ्गि पूर्णेन्दुबिम्ब
> क्रीडावापीमधुकरकलालापमन्दानिलाद्या ।
> तत्त्वाध्यासं भ्रमवमुपगताः सन्निधौ ते समग्रा
> यस्मा नेमे किमपि रमयन्त्यद्य रम्याः पदार्थाः ॥२॥६६॥

प्रेयसी की चिन्ता में नायक को नींद तो आती ही नहीं है, इसलिए वह स्वप्न में तो अपनी प्रेयसी को देख ही नहीं सकता। चित्र बनाना चाहता है, लेकिन आखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने के कारण चित्र भी नहीं बना सकता है। मानसिक सन्ताप से वह प्रेयसी का ठीक २ स्मरण भी नहीं कर सकता। अपनी इस अधीरता का नायक ने बड़ा ही हृदयद्रावक चित्र प्रस्तुत किया है—

> स्वप्नेऽपि त्वं मम न सुलभा ध्वस्तनिद्रागमत्वा-
> दस्रोत्पीडादधिमणिशिलं लेखनीया न भूयः ।
> स्मर्तुं ताण्डवपटु च मनस्तत्र तत्रोत्पतिष्णो-
> र्मध्येकालं फडिति फलयत्येव वामं हि दैवम् ॥२॥७१॥

प्रतिकूल दैव की कठोरता तथा नायक की विवशता का कवि ने यहां पर कैसा भावपूर्ण चित्रण किया है।

अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद नायक प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आश्वासन देते हुए विविध मनोरंजनों द्वारा चित्त को प्रसन्न बनाए रखने का परामर्श देता है। नायक का विचार है कि प्रेमियों का परस्पर प्रेम चिरविरह में भी टूटता नहीं है। वह कहता है कि विरहरूपी सर्प के गहरी २ सांसें लेते होने पर विरह के दिन जो ज़हर उगलते दिखाई पड़ते हैं, वे ही समागमरूपी चन्द्रमा के उदय हो जाने पर अमृत की दुगुनी वर्षा करेंगे—

> किं चोदग्रं श्वसिति सहसा विप्रयोगोरगेन्द्रे
> यान्यद्यान्तर्विषमिव वमन्त्यायतीर्वासराणि ।
> तान्येवाग्रे त्वरितमुदयं याति न सङ्गमेन्दौ
> सपत्स्यन्ते द्विगुणममृतस्यन्दसन्दोहनानि ॥२॥७८॥

संयोग और वियोग के लिये यहां पर कवि ने कैसे उपयुक्त रूपक प्रयुक्त किये हैं। अन्त में अपनी कुशल का पूर्णरूप से विश्वास कराने के लिये नायक ने अभिज्ञान रूप से कई व्यक्तिगत घटनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ तो सर्वसाधारण हैं। केवल दो घटनाओं में कवि ने कुछ विशिष्ट कल्पना दिखलाई है। नायक की प्रसङ्गान्तर में कही हुई उक्ति से नायिका को यह भ्रम हो जाता है कि

उसका प्रिय किसी और भी नायिका से अनुराग रखता है और वह क्रुद्ध होने लगती है लेकिन ज्योंही 'कीरस्य=शुकस्य' कथन द्वारा वह अपने वाक्य को पूरा करता है तो नायिका लज्जा और क्रोध के साथ अपनी सखियों की ओर देखने लगती है—

पश्यासौ मे त्वमिव रुचये पक्वबिम्बाधरेति
प्रक्रान्तोक्तौ मयि कलुषित भीरु नेत्रोत्पल ते।
कीरस्येति स्थितिमति पुन स्मेरमाणि स्मितेषु
व्रीडासूयाव्यतिकरगुरु क्षिप्तमालीमुखेषु ॥१॥८१॥

'न मानिनी ससहतेऽन्यसङ्गमम्' इस कथन के अनुसार नायिका भी बड़ी मानिनी प्रतीत होती है, तभी तो पर नारी से अपने प्रियतम के प्रेम की ज़रा सी शंका होते ही उसकी आंखों में क्रोध आ जाता है।

इसी तरह का एक दूसरा अभिज्ञान बतलाते हुए नायक कहता है कि एक बार उसने जब यह पूछा था कि अशोक वृक्ष के किशलयपुट से मधुपूर्ण तथा ईषद्रक्त फूल जिस समय भ्रमर को प्राप्त होते हैं ऐसी बसन्त ऋतु कब आती है, तब दूसरे लोग तो बसन्त ऋतु का हिसाब लगाने लगे थे, लेकिन मेरे वास्तविक तात्पर्य को कि मैंने यह शब्द तेरे अधरामृत पान करने की इच्छा से कहे हैं, जानकर तू श्रोताओं की मूर्खता तथा मेरी विदग्धता पर हंस दी थी और लज्जा के साथ तूने ताम्बूल से युक्त अपने मुख को नीचा कर लिया था। निम्न श्लोक में यही अभिज्ञान दिया गया है—

क्लिन्न माध्व्या किसलयपुटाज्ज्ञम्यतेऽशोकयष्टे
र्यत्राताम्र कुसुममलिना स्यात् कदाऽसौ वसन्त ।
इत्युत्कण्ठागिरि मयि जनै तद्गणे त्व सलज्जं
स्मित्वा मुग्ध मुखमनमयस्त्वन्नि ताम्बूलगर्भम् ॥२॥८६॥

घटना यद्यपि छोटी सी ही है, पर इस ढग से घटित हुई बताई गई है कि भुलाई नहीं जा सकती, अत अभिज्ञान वस्तु के रूप से इसका वर्णन करना उचित ही है।

इस तरह अभिज्ञान घटनाओं के वर्णन के बाद यह सन्देशकाव्य समाप्त हो जाता है। मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गये सन्देश काव्यों में यह काव्य अद्वितीय है। विषय, भाव, रस और प्रक्रिया इन सभी दृष्टियों से यह काव्य मेघदूत का अनुसरण करता है। जिस तरह यक्ष के घर के पास वापी, क्रीडाशैल और रक्ताशोक इत्यादि की स्थिति बतलाई गई है, उसी तरह इस काव्य में भी नायक अपनी प्रेयसी के मन्दिर के निकट कूप, वापी, क्रीडोद्यान तथा वहां पर स्थित तिलक, कुरबक और

आम्रवृक्ष का वर्णन करता है। विरहवर्णन में कहीं २ शुक सन्देश में मेघदूत की अपेक्षा कुछ अधिक भावप्रवणता पाई जाती है। कवि ने कुछ स्थलों को मेघदूत की अपेक्षा अधिक पल्लवित करने की चेष्टा की है। कहीं २ इस काव्य में मेघदूत के समानान्तर भाव भी पाये जाते हैं। मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी को धैर्य बंधाते हुये कहता है—

> कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
> नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥२॥४८॥

शुक सन्देश में शुक भी नायिका को उसके प्रिय का सन्देश सुनाते हुये कहता है—

> दुजतिऽह पवनज इव प्रेषित प्रेयसा ते
> सेलो, सीताहृदयदयितेनेव पूर्वं महाद्रे।
> सेव त्व च त्यज शुचमितः सेवितासे प्रियाणि
> प्राय सर्वं स्पृशति विपद सम्पदश्च क्रमेण ॥२॥५६॥

मेघदूत में भी हनुमान्जी के सीताजी के पास पहुँचने का उल्लेख किया गया है जैसा कि इस काव्य में यहां पर पाया जाता है।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी को अभिज्ञान घटना के सुनाने के बाद कहता है—

> स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्
> इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥२॥५२॥

कालिदास के अनुसार स्नेह वियोग में घटता नहीं है, बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। इसी तरह शुक सन्देश में भी वियोग में स्नेह के टूट जाने का विचार केवल मूर्खों का प्रवाद माना गया है। नायक अपनी प्रेयसी को सम्बोधित करते हुये कहता है—

> अन्योन्यस्य त्रुटति विरहे प्रायशः कामुकानां
> मन्दं मन्दं चिरतरमनालोकनात् प्रेमबन्ध ।
> एवं मूढ प्रवदति जनस्तत्र खिन्ने मयि त्व
> मा गा शङ्का सुतनु सुहृदालयितात्मानुमाना ॥२॥७७॥

मेघदूत में यक्ष अपने सन्देश के अन्त में मेघ से पूछता है कि तुमने मेरे कार्य को पूरा करने का विचार तो कर ही लिया होगा, लेकिन मेघ से कोई उत्तर नहीं प्राप्त होने पर भी वह चिन्तित नहीं होता है और कहता है—

> निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्य
> प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥२॥५३॥

इसी प्रकार शुक-सन्देश में भी शुक से दूतकार्य करने की प्रार्थना करते हुये नायक ने कहा है—

> जातोदन्यां न हि जलमुचश्चातका प्रार्थयन्ते
> तूष्णीमेषामभिमतममी तूर्णमापूरयन्ति ॥१॥११॥

दोनों उद्धरणों में भावों की कितनी समानता है। मेघदूत में मेघ से प्रार्थना तब भी की जाती है, लेकिन शुकसन्देश में तो प्रार्थना न करने पर भी मेघों के द्वारा जल बरसाने का उल्लेख किया गया है।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुये कहता है कि इस सुदीर्घ विरह काल में प्रबल वेदना के कारण उसकी प्रेयसी तुषारपात से आहत पद्मिनी की तरह अन्यरूप हो गई होगी—

> गाढोत्कण्ठा गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बाला
> जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२॥२२॥

इसी तरह शुक-सन्देश में भी नायक अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुये कहता है–

> एव मन्ये विरहदिवसैरभिरेणेक्षणा सा
> क्षामक्षामा चिरमनशनध्यानशोकानुबन्धैः।
> न्यूनन्यूने मम सुचरितैः नूनमन्यादृशी स्या-
> द्वन्यस्तम्बेरमनिलुलिता सल्लकीमञ्जरीव ॥२॥३६॥

नायक के पास न होने से उसकी प्रेयसी का अनशन, ध्यान तथा शोक के कारण नितान्त कृश हो जाना और पहिचानने में न आना स्वाभाविक ही है। क्षीण तथा हीन प्रेयसी की वन्य हाथी के द्वारा विलुलित सल्लकी (शल्लकी) मञ्जरी से उपमा देकर कवि ने नायिका का वास्तविक चित्र उपस्थित कर दिया है। दोनों काव्यों में उपमान की भिन्नता होते हुये भी भाव साम्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

इस तरह अन्य भी कई स्थलों में मेघदूत जैसे समानान्तर भाव इस काव्य में पाये जाते हैं।

इस प्रकार काव्य के अनुशीलन से स्पष्ट है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। सन्देश काव्य के उपयुक्त प्रवाहमयी ललित भाषा में कवि ने यह बड़ी सुन्दर रचना की है। भाषा की विशदता का अनुमान निम्न अवतरणों से बड़ी अच्छी तरह लगाया जा सकता है। नायक शुक को अपना वृत्तान्त सुनाते हुय कहता है—

अन्यत्राट् प्रियसहचरी यावदन्यत्र जातो
जाता चाग्रे मनसिजशरा शारदीयं विभूति ।
मन्दो वायुर्मधुरमुदकं मञ्जुरावा मराला
सज्जामोदा सरसिजवनी सान्द्रभासश्चन्द्रमाश्च ॥१॥७॥

शरद् ऋतु की विभूति का कवि ने बड़ा सुन्दर चित्र यहां अंकित कर दिया है।

आगे चल कर शुक को मार्ग बताते हुये उसकी यात्रा का कैसा सरस चित्र कवि प्रस्तुत करता है—

स्थायं स्थाय तरषु धरणीस्थायिनो वञ्चयित्वा
ग्राहं ग्राहं मदन हृदय-ग्राहिणीं सस्यपङ्क्तीं ।
पायं पायं परिलघु पयः पद्मिनीनामजस्रं
गायं गायं पुनरपि भवान् गाहितां व्योम येषु ॥१॥१६॥

अवतरण की तृतीय पंक्ति में अनुप्रास की कैसी अनुपम छटा कवि ने दिखलाई है।

काव्यगत विशिष्टताओं के अतिरिक्त केरलप्रान्त के सामाजिक तथा ऐतिहासिक अध्ययन के विचार से भी यह काव्य बड़ा महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल में केरल देश में कौन २ से नगर थे, वहां किन २ राजाओं का शासन रहा था तथा जनता का उस समय जीवन किस तरह का था—इन सब बातों पर यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। कन्याकुमारी से लेकर गुणकापुर तक का केरल देश का भाग इस सन्देशकाव्य में वर्णित किया गया है। यह गुणकापुर नगर आज कल का तृक्कणा-मतिक्कलम् है। प्राचीन काल में मालाबार की यह राजधानी था। अब तो यह एक छोटा सा ग्राम ही रह गया है। कोई कोई गुणकापुर को किसी अन्य स्थान का ही नाम बताते हैं। काव्य में विभिन्न नदियों, नगरों, ग्रामों और मन्दिरों का वर्णन किया गया है। इससे भी केरलदेश की तत्कालीन भौगोलिक परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आगे चल कर यह सन्देश काव्य दक्षिण भारत के अन्य कवियों के लिये एक आदर्श बन गया और दक्षिण भारत में इसका पर्याप्त प्रचार भी हुआ। उदय कवि के मयूरसंदेश में मेघदूत के अतिरिक्त इस काव्य का भी प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उद्दण्ड कवि के कोकिलसन्देश में भी इस काव्य की छाप स्पष्ट दिखलाई पड़ती है।

अस्तु, यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कवि ने मेघदूत से प्रेरणा प्राप्त करने पर भी अपनी रचना का स्तर बड़ा ऊँचा रक्खा है। भाषा, भाव, प्रक्रिया, प्रकृति वर्णन और विरहवर्णन सभी में कवि ने अपनी परिष्कृत रुचि का परिचय दिया है।

सन्देशकाव्य के उपयुक्त ललित और प्रवाहपूर्ण भाषा में ही यह काव्य लिखा गया है। शुक की वाणी की तरह ही काव्य की भाषा बड़ी मधुर है और भावमाधुर्य का का तो कहना ही क्या। मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गये सन्देश काव्यों में निश्चय ही यह एक उत्कृष्ट और सरस सन्देश काव्य है।

वासुदेवकवि का भृंगसन्देश (वि० पचदश-षोडश शतक)

यह भृंगसन्देश दक्षिणभारत के किसी वासुदेव नामक कवि की रचना है। काव्य के अन्त में लेखक ने एक पद्य दिया है—

> सन्देशेऽस्मिन् कथमपि गुरश्रीपदाम्भोजयुग्म-
> ध्यानोद्धूतप्रबलतमसा वासुदेवेन बद्धे।
> पूर्णे दोषैरपि यदि गुणाना कणा संप्रयेर-
> स्तेतान् प्रीत्या मनसि परिगृह्णन्तु सन्तो महान्त ॥

इस पद्य से केवल इतना निश्चित होता है कि इस काव्य का लेखक वासुदेव नामक कोई कवि है। इसके रचनाकाल के सबन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। श्री एम० कृष्णमाचारियर ने अपने 'सस्कृत साहित्य के इतिहास' में पृ० २५० पर भृंगसन्देश के लेखक वासुदेव के सबन्ध में इस प्रकार लिखा है—"वासुदेव महर्षि और गोपाली का पुत्र था। महर्षि कनि मालाबार में पय्यूर भट्टमान के जो कि ई० पन्द्रहवीं के अन्त के लगभग विद्या का एक प्रसिद्ध केन्द्र था, रहने वाले थे। महर्षि के सस्कृत विद्या के सर्व शास्त्रों में पारगत नौ पुत्र तथा एक कन्या थी। वासुदेव कवि तथा नाटककार उद्दण्ड का मित्र था, अत यह कहा जा सकता है कि वासुदेव कवि भी स० १४२३ ई० के लगभग विद्यमान था। कालीकट का प्रसिद्ध राजा मानविक्रम ज़मूरिन इसका आश्रयदाता था। इसके भृंगसन्देश के मिलने पर ही उद्दण्ड कवि ने अपने कोकिलसन्देश की रचना की। बाद में यह राजा रविवर्मा और गोडवर्मा के राजदरबार में चला गया था। पाणिनि के सूत्रों पर व्याख्यास्वरूप वासुदेव विजय नामक काव्य भी इसने लिखना प्रारम्भ किया था। यह अपूर्ण ही रह गया था। बाद में सभवत इसके भानजे नारायण कवि ने धातुकाव्य नाम से इसको पूर्ण किया।

इसके अतिरिक्त लेखक ने ६ आश्वासों में यमक शैली के साथ देवी चरित नामक एक काव्य लिखा है। इसमें गोपाली देवी की जिसकी कि वेदारण्यम् अथवा कुन्ननगोलम् में देवकी की आठवीं सन्तान और श्रीकृष्ण की बहिन के रूप में पूजा की जाती है, कथा वर्णित की गई है। अपने 'सत्यतप कथा' नामक काव्य में कवि ने तीन आश्वासों में सत्यतप की कथा वर्णित की है। यह सत्यतप महर्षि के नाम से विख्यात लेखक के एक पूर्वज ही हैं, जिन्होंने कि वेदारण्यम् और निला नदी (भरतप्पोल) के तट पर तपस्या की थी। शिरोदय नामक काव्य में ग्रन्थकार ने अपना और अपने आठ भाईयों का इतिहास दिया है। अच्युतलीला नामक यमक-काव्य में वेदारण्यम् में विराजमान भगवान् अच्युत का वर्णन किया गया है। गजेन्द्र-मोक्ष भी उसी की रचना प्रतीत होती है।" इस तरह श्रीकृष्णमाचारियर के अनुसार ई० पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ कवि का रचना काल ठहरता है।

यह काव्य त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से प्रकाशित हुआ है। श्री के० साम्बशिव शास्त्री ने जो कि इसके सम्पादक हैं, लेखक के रचनाकाल पर भी पुस्तक की भूमिका में कुछ प्रकाश डाला है। उनका कथन है-

"वासुदेव नाम के कई कवि हुये हैं। युधिष्ठिरविजय तथा अन्य ग्रन्थों का लेखक एक, सुभद्राहरण जैसे ग्रन्थों का लेखक दूसरा और भृंगसन्देश का रचयिता तीसरा। इनमें से मेरा विचार है कि भृंगसन्देश का लेखक सब से अधिक अर्वाचीन है और यमककाव्य (युधिष्ठिर विजय) का लेखक सबसे प्राचीन। इस सन्देश काव्य में श्रीनारायण भट्टपाद का जो कि युधिष्ठिरविजय तथा सुभद्राहरण इन दोनों के लेखकों से उत्तरकालीन है तथा उसके (श्री नारायण भट्टपाद के) समकालीन श्रीमातृदत्तपण्डित का नाम आया है-

हेरम्बेण प्रथितविभवा मातृदत्तद्विजेन्द्र-
श्रीमच्छिष्योत्करसुचरितैरास्तृता शास्त्रघोषैः।
आयान्नारायणकविवचःस्यन्दमाधुर्यनन्द-
द्वार्णामन्दस्मितसुरभिलायाहि पाटीर पाटीम्॥१॥६१॥

सूक्तिं नारायणकविमुखाम्भोजनिष्यन्दमाना
पीत्वा वापीकमलमधुपु प्राप्तनिर्वेदमार।
बिम्बे भानोरपरगिरिशृङ्गेण सञ्चुम्ब्यमाने
सम्बेधास्य भ्रमर धरणी वल्लभप्रोषितस्त्वं॥१॥६२॥

इस काव्य में उल्लिखित नारायण कवि से नारायणीय तथा अन्य ग्रन्थों के रचयिता, मेलपट्टूर निवासी महाकवि और शास्त्रकार श्री नारायणभट्टपाद का ही ग्रहण करना चाहिये, जैसा कि निम्न श्लोक से प्रतीत होता है—

तस्मात् प्रत्यक् प्रहितनयनं कुण्डगेहाधिवासम्
सर्वज्ञं तं प्रणम गिरिशं भक्तिमानच्युतं च ।
एकस्माद् वहति शिरसि ज्योतिषामेकमिन्दुं
ज्योतिश्चक्रं निखिलमपरो धारयत्यन्तरङ्गे ॥१॥८६॥

लेखक ने अपने गुरु और ज्योतिःशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् श्री अच्युत पिषरोटी का भी उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित ही है कि वासुदेव कवि ई० सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वभाग में था। ई० सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वभाग ही अच्युत के शिष्य श्री नारायण मुनि का सत्तासमय है।

कवि ने अपने काव्य में त्रिवेन्द्रम् के तत्कालीन राजा श्री वीरवर्मन् कुलशेखर की भी प्रशंसा की है--

राज्यं दृष्ट्वाऽऽकलय रविवर्मावनीन्द्रस्य सम्यक्—
प्राज्यं वारयन्तारितत्रिशिखोद्भ्रममग्रे समग्रम् ।
चित्रोत्कीर्णत्रिदशनिवहैः स्थूलनीलोपलौघै—
र्धाम्ना तुल्यं त्रिभुवनपतेर्धाम येन प्रतने ॥१॥२८॥

अतः हमें यह विश्वास रखना चाहिये कि इस कवि का समय भी श्री नारायण भट्टपाद का समय ही है। निम्नलिखित श्लोक से यह प्रतीत होता है कि श्री नारायण भट्टपाद ने नारायणीय नामक अपने स्तोत्रकाव्य को गुरुवायुपुर में स्थित श्री कृष्ण के मन्दिर में भगवान् के चरणों में जब अर्पित करने के बाद स्वास्थ्य लाभ कर लिया था और श्रीकृष्ण की एक महान् चिकित्सक के रूप में ख्याति हो चुकी थी, उसके बाद यह काव्य लिखा गया है--

इत्थं नुत्वा भुवनपितरौ तौ समामन्त्र्य तस्मा—
दस्मत्प्राणप्रियं सख समीरालयं शीलयेथाः ।
यस्मिन् देवः स्वयमपि महापावनः पावनाना—
मातङ्कानामुपशमयिता भासते वासुदेवः ॥१॥७६॥

अतः वासुदेव कवि को ई० सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में ही मानना चाहिए।"

श्री के० आर० पिशरोटी, बनारस[1] के अनुसार जनवरी १५७५ इस काव्य का रचना काल होना चाहिए। उनका कथन है--

१ विशेष विवरण के लिये सिद्धभारती, भाग २, (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर) में पिशरोटी जी का—वासुदेव का भृङ्गसन्देश – ए हिस्टारीकल स्टडी – नामक लेख देखिए।

"इस काव्य में मालाबार के संस्कृत कवियों में अग्रगण्य नारायण भट्टातिरि का केवल एक सरस कवि के रूप में उल्लेख है न कि शास्त्रकार या भक्त दार्शनिक के रूप में[1]। इसके अतिरिक्त अच्युत पिशरोती अथवा गुरुवयूर मन्दिर से भी उनके सबद्ध होने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है[2]। अत आवश्यक रूप से यह कहा जा सकता है कि नारायण कवि के अपना नारायणीय स्तोत्र (जिसमें कि गुरुवयूर मन्दिर तथा अच्युत पिशरोती से उसका सम्बन्ध बतलाया गया है) लिखने से पहिले यह सन्देशकाव्य लिखा गया था और ई० १५८९ के लगभग ही यह लिखा गया होगा। इससे लेखक की उत्तर-सीमा तो निश्चित हो ही जाती है। हमें यह तो मालूम ही है कि मामकम् महोत्सव (माघोत्सव) ई० १५९९ में हुआ था और चूं कि यह उत्सव बारह वर्ष में एक बार हुआ करता था, अत पीछे चलते हुए हम कह सकते हैं कि ई० १५८७ और फिर ई० १५७५ में यह उत्सव हुआ होगा। चूं कि लेखक की उत्तर सीमा निश्चित हो चुकी है, इसलिये काव्य में उल्लिखित[3] मामकम् महोत्सव फरवरी मार्च १५७५ ई० का माना जाना चाहिये। इस तरह इस सन्देश काव्य का रचनाकाल जनवरी १५७५ हो सकता है।

वातक्कूर के राजा के उल्लेख[4] से भी यह समय सामञ्जस्य पाता है। हफ (Hough) ने अपने 'क्रिश्चियनिटी' (Christianity) नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ई० स० १५७८ में वातक्कूर में एक रानी राज्य करती थी। उसने २४ वर्ष तक राज्य किया। स० १५९९ ई० में भी वह राज्य कर रही थी तथा आर्कबिशप मेन्ज़ीज जब उसके राज्य में आया, तब भी वह शासन कर रही थी। अत यदि गोडवर्मा को राज्य करता हुआ माना जाये, तो या तो यह १५७८ ई० से पूर्व होना चाहिये या कम से कम १६०२ ई० से बाद में। चूं कि लेखक की उत्तर सीमा निश्चित हो चुकी है, अत प्रथम कल्प ही केवल उचित है। अर्थात् गोडवर्मा के जो कि सभवत १५७५ के बाद लेकिन १५७८ से पहिले, गुजर चुका हो, अन्तिम दिनों में यह काव्य लिखा गया है।

---

१ दे० काव्य का पूर्व भाग श्लोक ६१ ६२ पूर्व उद्धृत।

२ ऐसा कहा जाता है कि नारायण ने अपने गुरु से यह वात रोग अपने ऊपर ले लिया था। फिर गुरुवयूर में आकर यह भजन करने लगा और इसी समय उसने अपना प्रसिद्ध स्तोत्रग्रन्थ नारायणीय लिखा।

३ श्लाघो माघोत्सवमपि तिष्ठते दुष्टहन्ता ॥१॥६०॥

४ इत्थ नत्वा गिरिवरसुता गोदवर्मक्षितीन्दो—
रम्ये समाविष पुरवर प्रस्फुरद्धर्मसालम् ॥१॥३८॥

लेखक का यह रचनाकाल लेखक के इस विचार से और भी पुष्ट होता है कि १५६३ ई० से १६०२ ई० तक कोचीन में जो राजा राज्य करता था, वह रविवर्मा था। सन्देश काव्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि करप्पुरम् राजा रविवर्मा के प्रताप से उज्ज्वल था[1]।

अतः हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह सन्देश काव्य स० १५७४ ई० में लिखा होना चाहिये न कि अगली शताब्दी के पूर्वभाग में। इस समय में कोचीन के राजा तथा कालीकट के जमूरिन में युद्ध चलता रहा था और इन युद्धों का काव्य में कहीं उल्लेख आता है।

कथासार

इस काव्य में एक विरही प्रेमी ने स्यानन्दूर (त्रिवेन्द्रम्) से श्वेतदुर्ग (कोट्टक्कल) में स्थित अपनी प्रेमिका के पास भृंग के द्वारा अपना सन्देश भेजा है। कथा इस प्रकार है कि किसी समय रात्रि में नायक अपनी प्रेमिका के साथ अपने प्रासाद पर निद्राविहार कर रहा था।। इसी अवसर पर कोई यक्षी उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे मलयपर्वत पर उड़ा कर ले जाने लगी। मार्ग में अपने पक्ष को प्राता देखकर वह उसे (नायक को) स्यानन्दूर में छोड़ जाती है। स्यानन्दूर में पद्मनाभस्वामी के मन्दिर के निकट पुष्पाराम में जब वह नायक जागता है, तब अपने को अकेला पाकर उसे बड़ा दुःख होता है। इस अवसर पर एक भृंग उड़ता हुआ उसके पास आता है। बस, वह उसको ही अपना दूत बनाकर श्वेतदुर्ग में स्थित अपनी प्रेयसी के पास भेजता है। इसी प्रसंग में स्यानन्दूर से श्वेतदुर्ग तक का मार्ग वर्णित किया गया है।

पद्मनाभ स्वामी के दर्शन करने के बाद उत्तर की ओर चलने पर सर्वप्रथम राजा रविवर्मा के राज्य, तदनन्तर कूपक राजाओं की राजधानी कुलपुरी (किलान), सुललिता नदी, वल्लभग्राम तथा तिरुवल्लस्थित विष्णुमन्दिर होते हुए उदयमार्तण्ड राजा की दक्षिण विञ्चली नगरी पहुँचने का भृंग को परामर्श दिया गया है।

कोणी नदी के दक्षिण तट पर स्थित विञ्चली राजाओं की इस राजधानी के बाद क्रमशः कुमारग्राम, गोदवर्म राजा की नगरी (वानक्कक्कूर), अम्बरपुल में राजा देवनारायण की राजधानी, तदनन्तर राजा रविवर्मा के राज्य में से होते हुये व्याघ्रालय (करप्पुरम्, वैक्कम्), पूर्णत्रयी (त्रिपुणीतीर्थ), राजा राजराज की नगरी (कोचीन), पचरङ्गाधिनाथ (तिरुवञ्चिक्कुलम्), कुरुम्बाधिनाथ (कुरुम्बोक्कतु) गुणकापुरी

---

१ दृष्ट्वा नन्दिष्यसि फलभरैरानता नालिकेर-
श्रेणीर्देशानिपु रविवर्मप्रतापोज्ज्वलासु ॥१॥८४॥

(तृक्कण्णाम तिलकम्) सम्भग्राम (इरिञ्जलकुड), वलयगेहाधिनाथ (उरकम् और निचूर), समीरालय (गुरुवयूर), कवि नेत्रनारायण का गृह (परमवनतली) तथा उसके पास के देश, मुक्तिस्थान (मुक्कोल), निला नामकी नदी, नावाक्षेत्र और फिर कुण्डगेह तथा वल्लभक्षोणिबन्धु का राज्य (वल्लभकोनतिरि) इन स्थानों को पार करने के बाद अन्त में उसकी प्रेयसी के निवासस्थान श्वेतदुर्ग का उल्लेख किया गया है। इस नगरी में स्फटिकमणियों से निर्मित सरोवर के उत्तर में बाल वस्त नामक गृह में बालनीली नामक नायक की प्रेयसी रहती हुई बताई गई है।

तदनन्तर नायिका के घर में स्थित उद्यान, वापी, कुरवकतरु, मालती और आम्रवृक्ष इत्यादि के वर्णन के बाद नायिका तथा उसकी विरहावस्थाओं का वर्णन किया गया है। तदनन्तर भृङ्ग से नायक ने प्रेयसी को अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश में नायक ने अपनी विरहावस्था, नायिका के लिये आश्वासन और अभिज्ञान घटनाये वर्णित की हैं। अन्त में नायक ने पुनर्दर्शन की अभिलाषा प्रकट करते हुए भृङ्ग को आशीर्वाद देकर सन्देश समाप्त कर दिया है।

काव्य समीक्षा

यह सन्देशकाव्य भी दक्षिणभारत में लिखे गये सन्देशकाव्यों में एक प्रमुख सन्देश काव्य है। ऐसा कहा जाता है कि इस भृङ्ग सन्देश की प्राप्ति पर ही उद्दण्ड कवि ने उत्तर स्वरूप अपना कोकिलसन्देश लिखा। मेघदूत के अनुकरण पर ही यह सन्देश काव्य लिखा गया है। पूर्वभाग और उत्तर भाग इन दो भागों में काव्य बटा हुआ है। पूर्व भाग में स्यानन्दूर (त्रिवेन्द्रम्) से श्वेतदुर्ग (कोट्टक्कल) तक के मार्ग का वर्णन है। उत्तर भाग में प्रेयसी के गृह का वर्णन, उसकी विरहावस्थायें और सन्देश दिया गया है। काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही व्यवहार किया गया है। पूर्वभाग में ६४ और उत्तरभाग में ८० श्लोक हैं।

कथावस्तु काल्पनिक ही है। दक्षिण भारत के अन्य सन्देश काव्यों—मयूरसन्देश, शुकसन्देश और कोकिल सन्देश—की तरह इस काव्य में भी नायक सोते समय ही रात्रि में किसी यक्षी के द्वारा अपहरण किये जाने के कारण अपनी प्रेयसी से बिछुड़ जाता है। उपर्युक्त सन्देश काव्यों में भी विरह का कोई ऐसा ही कारण उपस्थित किया गया है।

मार्गवर्णन में कवि ने आकर्षक स्थलों पर कुछ ठहरने की चेष्टा की है तथा पाठकों के सामने अपने सरस वर्णनों से तत्तत्स्थलों के सुन्दर शब्दचित्र उपस्थित किये हैं। अत मार्गवर्णन नीरस नहीं होने पाया है। इस प्रसङ्ग में काव्य में आये हुये दो एक उदाहरण देना अनुचित नहीं होगा। कूपक राजाओं की राजधानी विलान का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इसके बाजारों में मणियाँ बड़ी प्रचुर मात्रा में बिखरी पड़ी रहती हैं मानों समुद्र ने स्वयं अपने हाथों से उन्हें फैला दिया हो—

पारेपाथोनिधि सुलपुरी कृपकन्मापतीनाम्
लब्ध्वा लक्ष्मीविहरणकलासम्पदो हेमलब्धा।
फेनक्षौमाम्बरनिचुलितान् यत्निपयासु (राजार) ह्यान्
वीचीहस्तैर्विकिरति मणीन् नित्यमम्भोधिरेव ॥१॥२४॥

आगे चलकर निला नामक नदी का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

अग्रे भाविन्यथ तत्र निला लम्बिता सिन्धुवीची-
नीलक्षौमाम्बरपरिसरे हारवल्लीव भूमेः ॥१॥८३॥

निला नदी को समुद्र की लहरों के नीले रेशमी वस्त्रों के साथ धारण की हुई पृथ्वी की हारवल्ली बताकर कवि ने बड़ी सुन्दर उपमा दी है।

निला नदी में स्नान कर चुकी हुई स्त्रियों के वक्ष स्थल पर प्रतिबिम्बित भृंग को सुवर्ण कलश पर स्थित नील रत्न की कितनी उपयुक्त उपमा कवि ने निम्न पद्य में प्रदान की है—

तत्र स्त्रीणां दिनसविरतिस्नानधौताधराणा-
मुत्तीर्णानां अजनपुलिनामकसून्माम्बराणाम्
भानुच्छायाप्रणयिनि कुचे बिम्बितात्मा मुहूर्त
धर्तासि त्व कनककलशीनीलरत्नोपमानम् ॥१॥८४॥

अग्रिम श्लोक में कवि कहता है—

कान्तैः सार्ध पिकमृदुगिरस्तत्र सक्रीडमाना
पश्यन्त्यस्त्वा पवनचलिते बिम्बित वीचिजाले।
छिन्नस्रस्त मरकतमणीदाम वक्षोपदादि-
त्युद्भ्राम्यन्त्य सलिलकुहरे हस्तमावर्तयेयु ॥१॥८५॥

नदी में अपने अपने पतियों के साथ विहार करती हुई स्त्रियों का जल में भृंग की प्रतिच्छाया देखकर तथा उसे टूट कर गिर पड़ी हुई मरकत मणिमाला समझकर जल में हाथ डालना स्वाभाविक ही है।

मार्ग में पड़ने वाले मन्दिरों में तत्तद् देवताओं की पूजा और स्तुति करने का भी भृंग को परामर्श दिया गया है। इस प्रसंग में आए हुए स्तुत्यात्मक पद्यों में कवि ने बड़े सुन्दर और सरस भाव व्यक्त किए हैं। शिवजी की स्तुति में कहा गया निम्न पद्य देखिए—

आशा यस्मै तव बहुतरा पूर्णकाम किल त्वम्
पीतं कण्ठे लगति गरलं नीलकण्ठोऽसि लोके।

श्रीकण्ठ त्वां कथयति जनः कण्ठलग्ना च गौरी
तस्माद् विस्मापकमयि कथं प्रस्तुमस्त्वां नमस्ते ॥१॥४८॥

शिवजी के व्यक्तित्व को कवि ने किस प्रकार आश्चर्यजनक बना दिया है।

एक श्लोक में कवि ने शिवजी और पार्वतीजी दोनों की एक साथ स्तुति की है—

गौरीकान्त त्रिनयनमनोरत्नलभे देव देवि।
प्रेमोद्रेको जयति जगतामीश्वयोरीदृशोऽयम्।
एवं यो या खलु कथलयन्नर्धगात्रं नितान्ते
विश्लेषार्तिप्रदरमविदन्तौ मिलन्तौ भवन्तौ ॥१॥७४॥

शिवजी और पार्वतीजी के अनन्य प्रेम का कवि ने कैसा सुन्दर चित्र यहां अंकित किया है।

दक्षिण निम्बली में स्थित मन्दिर में कृष्ण की स्तुति करने के लिए भृंग को परामर्श देते हुए कवि कहता है—

वन्द्यस्त्वं भ्रमर पुरतः कश्चिदाश्चर्यबाल
घोषाद् घोषमन इव मुहुर्गोरस चोरयन्तम्।
अस्य ग्रम कथमिव पयोलुब्धता यो विशुद्धां
मुक्तिं दत्त्वा विषकटु पयः पीतवान् पूतनायाः ॥१॥३१॥

इस पद्य में कवि ने कृष्ण के मक्खन चुराने तथा दूध पीने के लालच का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

जिस तरह मेघदूत में यक्ष ने अलका नगरी का सरस और शृंगार रस पूर्ण वर्णन किया है, उसी तरह इस काव्य में भी श्वेतदुर्ग का वर्णन बड़ा सरस और सुन्दर है। श्वेतदुर्ग राजधानी का वर्णन प्रारम्भ करते ही नायक कहता है कि यह नगरी अपने तत्तद् विशेषणों से भृंग को मस्त बनाने में पूर्ण समर्थ है। कवि ने भृंग से मिलते जुलते विशेषणों का ही नगरी के साथ प्रयोग किया है—

मञ्जुध्वाना सललितपुरन्ध्रीजनारब्धगीता
माध्वीलोला नवमधुकरीलोलजालाम्बुजाला।
कान्तासक्ता सुदृढदयितारागमूर्च्छोलपौरा
हंसैमायैर्मदयितुमलं त्वामसौ राजधानी ॥२॥१॥

उपर्युक्त श्लोक से नगरी के संगीत तथा विलास से पूर्ण जीवन का अनुमान किया जा सकता है।

श्वेतदुर्ग नगरी के महलों की छतों पर चलते हुए मूर्च्छनाशाली सगीत को सुनकर गन्धर्व तक मूर्छित हो जाते हैं और अपनी प्रेयसियों द्वारा कमल से मारे जाने पर ही उन्हें होश आता है—

यत्सौधाग्रे कुवलयदृशा मूर्च्छनाशालि गीतम्
श्रुत्वा मूर्च्छामिव गतवतां कौतुकस्तम्भितानाम् ।
गन्धर्वाणामनुगतनिजप्रेयसीरोपदत्त
क्रीडापद्मप्रहरणमहो जायते बोधनाय ॥२॥४॥

एक और श्लोक में कहा गया है कि श्वेतदुर्ग नगरी की सड़कें स्फटिक मणि के साथ साथ वैडूर्य (नीलम) की बनी हुई हैं और उन पर कमल के समान मुख वाली स्त्रियां जब चलती होती हैं, तो हंसों को सचमुच कमलवन का भ्रम हो जाता है और वे उन पर मडराने लगते हैं—

यस्यामच्छस्फटिक मणिसम्भिन्नवैडूर्यरोचि
र्वीचीभङ्गप्रसरतरले राजमार्गान्तराले ।
गच्छन्तीनां कुवलयदृशां वीक्ष्य वक्त्राणि दूरे
हंसा हैमाम्बुजवनधिया सञ्चरन्तो वलन्ते ॥२॥६॥

नगरी के वैभव तथा वहां की रमणियों के सौन्दर्य का एक साथ कवि ने कैसा सुन्दर वर्णन किया है।

नगरी के वर्णन के बाद नायिका का वर्णन किया गया है। नायिका वर्णन कवि ने सरस भाषा द्वारा नायिका का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है।

नायक अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए कहता है—

यत्सौन्दर्यं सकलजगतां नेत्रपीयूषजुष्टम्
यत्तारुण्यं कुसुमधनुषो जैत्रमस्त्रं यमस्त्रम् ।
यत्सौजन्यं बुधजनमनोहारि यद्व भूरिसारं
विद्युल्लिप्सा जयति विमला सृष्टिरम्भोजयोने ॥१॥१४॥

नायिका के सौन्दर्य, तारुण्य और सौजन्य की कैसे सुन्दर ढंग से प्रशंसा की गई है। ब्रह्मा की विमलसृष्टि बताकर नायिका के उत्तमशील और पातिव्रत्य की भी व्यञ्जना की गई है।

आगे चलकर नायक कहता है कि उसकी प्रेयसी का मुख निरुपमेय है। चन्द्रमा और कमल इत्यादि से उसके मुख की उपमा देना सौन्दर्य को कम करना ही होगा। ब्रह्मा का सारा शिल्प इसकी रचना में लग गया है—

यस्त्र तत्तादृशमतिमनोहारि नैरोपमाभि-
र्न्यूनीकुर्व शशिकनकपङ्केरुहाद्याभिरत्र ।
पश्यन्तो न खलु विवदन्ते जना किं नु कर्त्री-
स्तस्या सृष्टौ परिणतमभूत् स्वर्गशिल्प विधातु ॥२॥२६॥

नायिका के स्वरूप का वर्णन करते हुए विरही नायक एक स्थान पर भृग से कहता है--

प्राणान् वीणामधुरनिनदान् आतपालोकयेथा
श्यामग्राह्या‌ऽधनपुलिने मध्यदेशे मनोज्ञे
मुष्टिग्राह्यानुरसिजभरे हेमशैलोपमयान् ॥२॥२७॥

सा कल्याणी मम सहचरी सौम्य विज्ञापयित्व-
त्यात्मान ते मुहुरभिनवैरेव शोभाविशेषै ॥२॥२३॥

नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए 'प्राणान्' 'कल्याणी' और 'सहचरी' इन शब्दों से नायक ने अपने प्रेम को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। पूर्व वर्णित नायिका के सम्बन्ध में आगे चलकर नायक कहता है कि विरह में उसके अंगों की शोभा नष्ट होगई होगी—

एना म्लानामधिकमधुना कल्पये विप्रयोग
व्यालक्ष्वेलो (विष) द्युतिभिरयथापूर्वशोभाङ्गलेशाम्
राहुक्षोभादिव शरदिजा कौमुदीं दारवह्नि
ज्वालादाहादिव च मधुमासोज्ज्वला बालवल्लीम् ॥२॥२८॥

शरत्कालीन चन्द्रिका तथा वसन्त ऋतु में उत्पन्न हुई बाललता बताकर नायिका की सुन्दरता तथा सुकुमारता को कैसी अच्छी तरह पाठकों के सामने रक्खा गया है।

अपने प्रिय के विरह में नायिका की बड़ी करुण अवस्था का चित्र अंकित किया गया है। प्रिय विरह में नायिका भस्मप्राय सी वर्णित की गई है। उसकी केवल यही प्रार्थना है कि उसकी भस्मराशि मन्द वायु के द्वारा उसके प्रिय के मार्ग में डाल दी जाए-

स्वामिन् ! मन्दानिल ! किमिदमारभ्यत हन्त दग्धु
तीव्रोत्कण्ठाविषशिखिशिखायग्धशेष मदङ्गम् ।
एषा याच्ञा मम हि चरमा मन्दमादाय भस्म-
चोदनेतान् दयितमिलित दिङ्मुखे पातयेथा ॥२॥३८॥

प्रिय विरह में नायिका निरन्तर रोती ही रहती है। उसकी सखिया किसी तरह उसको आश्वासन देती हैं और सोने की प्रार्थना करती हैं -

अङ्क पर्यङ्केसहनवदलैरास्तृते केलिसख्या
गाढोत्कण्ठामृदितमृदितैरङ्गकैरास्खलन्ती।
बाले ! मा मा रुदिहि दयितस्ते समायास्यति द्राग्
निद्रां तावद् भज निभृतमित्येवमाश्वासिता वा ॥२॥४२॥

विरहावस्था में नायिका के बेहोश तक हो जाने की सभावना की गई है। सखियों द्वारा शीतल जल के छिड़कने तथा आखें खोलने पर उसके होश में आने का वर्णन किया गया है—

हा हा कष्ट सुन्दरि ! जगन्नेत्रपीयूषवर्षी
बाले ! बाले ! कथमिव दशामीदृशीमागतासि।
नेत्राम्भोज स्तिमितमिदमुन्मूलयन्त्यालिवर्गे
सिञ्चत्यङ्ग तुहिनपयसा बोधमासेदुषी वा ॥२॥४७॥

इस तरह नायिका की विभिन्न विरहावस्थाओं की सभावना करने के बाद अन्त में भृग से नायक ने अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश में नायक ने सर्व प्रथम अपनी प्रेयसी को अपने शीघ्र आने का समाचार दिया है—

इत्थ तन्वे कथय सुदति ! त्वां प्रियो मन्मुखेन
व्यक्त श्रुते नवमनुभवन्नीदृश विप्रयोगम्।
पादाम्भोज तव सुवदने ! सूडितु प्रस्थितोऽहं
तस्मा मा तनु तनुलता दीपित तापवह्नौ ॥२॥५०॥

तदनन्तर कुछ समय तक प्रतीक्षा करने का परामर्श दिया गया है—

(सन्देशवाणीम्) ता लब्ध्वा च प्रणयिनि पुन सम्प्रतीक्षस्व कालम्
बलत्क्रीडातरलमनसा सार्धमालीजनेन ॥२॥५५॥

तदनन्तर अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि जब से तुम्हारा वियोग हुआ है, कामदेव अपने धनुष का तुम्हारी भ्रूवल्ली के द्वारा उपहास होने की वजह से वैर मानकर मेरे चित्त में लाखों बाण मार रहा है-

त्वद्भ्रूवल्ल्या धनुषि हसिते मय्युपात्तद्वयैरो
मारश्चित्त मम वितनुते बाणलक्षस्य लक्ष्यम् ॥२॥५६॥

वापियों में कलरव करती हुई हसिया, कलियों से लदी हुई लताएं तथा

हिरनियों के झुण्ड देखकर नायक को अपनी प्रेयसी की स्मृति आजाती है और वह पागल सा घूमता है—

कूले कूले मुखरकलहंसीकुले वापिकानाम्
मूले मूले पृथुलकलिकासन्नताना लतानाम् ।
यूथे यूथे वलिततरलालोकिनीना मृगीणाम्
स्मारं स्मारं तव सुमधुरान् विभ्रमानुद्भ्रमामि ॥२॥६२॥

नायक अपनी विरहदशा का वर्णन करते हुए एक स्थान पर कहता है कि प्रात काल में जब चक्रवाकमिथुन को प्रेम का पाठ पढाती हुई शीतल हवाएं चलती हैं और जब मैं तुम्हें नहीं देख पाता हूँ तो मेरे मन में विरह की बडी तीव्र ज्वालाएं उठती हैं —

वातैर्मञ्जुक्वणदलिकुलारब्धविश्लेषमूर्च्छत्
कोकद्वन्द्वप्रथमसुरताचार्यकै सेव्यमाना ।
उद्यद्धूम मदनशिखिन त्वन्मुखालोकशून्या
प्रत्यूषा मे मनसि नवपद्माक्षि ! सन्धुक्षयन्त ॥२॥६०॥

अन्त में नायक कहता है कि तीव्र उत्कण्ठा रूपी अग्नि, क्रुद्ध कामदेव रूपी सर्प तथा मोह रूपी ग्राह से युक्त और हृदय सन्ताप रूपी विष से भरे हुए विरह-सागर में वह अपने दुर्भाग्यवश पडा हुआ है। पुनर्मिलन की आशा रूपी जहाज के सहारे ही वह जी रहा है—

तीव्रोत्कण्ठादहनभरिते स्मरमाराहिजुष्टे
मोहग्राहे हतहृदयसन्तापकाकोलपूर्णे ।
विश्लेषाब्धौ सुमुखि ! विधिना पातित. सङ्गमाशा—
पोतालम्बी तव सहचर प्राणिति प्राणनाथे ॥२॥६४॥

इस तरह अपनी विरहावस्था का वर्णन करने के बाद नायक ने अपनी प्रेयसी को कुछ पूर्वघटनाओं की भी याद दिलाई है ताकि उसे अपने प्रिय की कुशल का निश्चय हो जाए। इन अभिज्ञान घटनाओं में से कुछ एक तो बडी सरस हैं तथा *नायक और नायिका की प्रणयभावनाओं का बड़ा सुन्दर चित्र पाठकों के सन्मुख* रखती हैं। कन्दुकक्रीडा के समय की एक घटना का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

स्मर्तव्यं तन्मधुरमुखि ! यत् कन्दुकक्रीडितेषु
व्यासक्ताया त्वयि तमहरं पाणिपद्मादहं ते ।
याता रोषादिव सवयसा मध्यतो मन्दिरान्त-
र्मामालिङ्ग्य स्फुरितमदिधास्तत्र ताम्राधरं मे ॥२॥६६॥

इस घटना में नायिका के रोष और प्रसन्नता का कैसा अपूर्व समिश्रण छिपा हुआ है।

इसी तरह एक और अभिज्ञान में भी नायिका के घनिष्ठ प्रेम का परिचय दिया गया है। नायक के केवल अपने जाने की सूचना से ही नायिका क्षुब्ध हो जाती है। उसके अंग शिथिल हो जाते हैं और रोने लगती है—

तद् वृत्त ते धृतिमपहरत्यस्मदीया प्रवासे
गच्छामीति स्थिरमतिरुपामन्त्र्य त्वामहेतो ।
सद्यश्शय्याभुवि निपतिता सन्नगात्री मया त्वम्
भूयोभूयस्तदनु रुदती गाढमालिङ्गिताऽमूः ॥२॥७३॥

सन्देश के अन्त में नायक ने अपनी प्रेयसी को शीघ्र ही मिलने की आशा भी दी है—

निर्भङ्क्ष्याव सुचिरमचिरात् सङ्गमानन्दपीयू-
षाब्धौ यावद्विरहशिखिनस्ताप एति प्रशान्तिम् ।
सौधेष्वद्यप्रभृति मुदितौ पुष्पशय्याञ्चितेषु
क्रीडिष्यावो बहलविगलच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥७७॥

इस तरह भृंग को सन्देश बताने के बाद भृंग के पुनर्दर्शन और स्वप्न में भी उन दोनों का वियोग न हो, इस शुभ कामना के साथ काव्य समाप्त हो गया है—

भूयान्मे प्रियसख पुनर्दर्शनं मा वियोग
स्वप्नेऽपि स्याद् भवतु युवयो सर्वमङ्गल्यलक्ष्मी ॥२।८०॥

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य एक सरस रचना है। विप्रलम्भ शृंगार की ही काव्य में प्रधानता है। यों तो मेघदूत के अनुकरण पर ही यह काव्य लिखा गया है। मार्ग वर्णन, नायिका की नगरी का वर्णन, उसके गृह तथा विरहावस्थाओं और नायक के सन्देश इत्यादि में सर्वत्र ही मेघदूत से प्रेरणा ली गई है। कहीं-कहीं भाव साम्य भी स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

मेघदूत में यक्ष मेघ को मार्ग बताते हुए कहता है—

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपम्
सन्देशं मे तदनु जलद ! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ॥इत्यादि ॥१॥१३॥

इसी से मिलता जुलता भृंगसन्देश का निम्नलिखित श्लोक देखिए—

वार्तामार्तां प्रति कथयितुं प्रेयसीं मे प्रवृत्तो
मार्गं तावच्छृणु शुभमितस्तन्निकेतावसानम् ।

नीत्वा नीत्वा श्रममनुगत येन गन्तासि भूय
पीत्वा पीत्वा मधु समसलिन्या नलिन्या नलिन्या ॥१॥२१॥

दोनों पद्यों में मार्गकथन तो है ही। शब्दसाम्य भी स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त विषय भेद होते हुए भी शैली की एकरूपता विज्ञ पाठक स्वयं देख सकते हैं। इसी तरह भृ ग को अपनी प्रयसी के पास सन्देश लेकर भेजते हुए नायक कहता है—

विश्लेषार्त्ता विधुरमलसा वल्लभामामुदन्त
प्राणान् धीरापरिमृदुगिरा कण्ठनालेऽपि रुन्धे ॥१॥१४॥(दे० मेघदूत २,३८॥)

मेघदूत में अलका नगरी के प्रासादों का वर्णन करते हुए प्रासादों और मेघ में परस्पर सादृश्य बताने वाले विशेषणों द्वारा एक दूसरे की समानता प्रतिपादित की गई है। इसी तरह भृ ङ्ग सन्देश में भी श्वेतदुर्गराजधानी और भृ ग में परस्पर सादृश्य बताने वाले विशेषणों द्वारा राजधानी का वर्णन किया गया है (दे० श्लो० सं० ॥२॥१॥ ३१० पृष्ठ पर उल्लिखित)

मेघदूत में अलका नगरी की स्त्रियों की मुग्धता व्यक्त करते हुए कवि ने जो लिखा है, उसी के समानान्तर भाव को लेकर भृ ग सन्देश में कहा गया है—

यस्यामन्तर्मणिनिलयने वल्लभैर्नीविरुद्धे
सद्यस्त्राना नवपरिणयव्रीडिताना वधूनाम् ।
लीलाम्भोज प्रहृतिभिरनिर्वापिते रत्नदीपे
भ्रान्तोद्गारी सपदि निगलत्कुन्तलो बन्धुरासीत् ॥२॥७॥

मेघदूत में यक्ष ने अपनी प्रेयसी को शीघ्र मिलने का आश्वासन दिया है। इसी तरह भृ ग सन्देश में भी शीघ्र मिलन का आश्वासन दिया गया है और तदनन्तर यह इच्छा प्रकट की गई है—

सौधेष्वद्यप्रभृति मुदितौ पुष्पशय्याश्रितेषु
क्रीडिष्यावो बहलविगलच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥७७॥

दोनों स्थलों में भावसाम्य के साथ-साथ शब्दसाम्य भी पर्याप्त रूप में दिखलाई देता है।

भौगोलिक दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण भारत के नगरों, मन्दिरों तथा प्रमुख विहारों के वर्णन ने काव्य की उपादेयता और भी बढ़ा दी है। इससे तत्कालीन राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता

है। अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि सुन्दर भावों के साथ ललित भाषा में लिखा गया यह काव्य सहृदय पाठकों को मुग्ध करने वाला है और एक सफल सन्देशकाव्य है।

उद्दण्ड कवि का कोकिलसन्देश (वि० पंचदश-षोडश शतक)

विक्रम १६ वें शतक के प्रारम्भ में कालीकट (कुक्कुटक्रोड) में जमूरिन मानविक्रम नामक राजा राज्य करता था। यह बड़ा विद्वान् और साहित्यप्रेमी था। इसके दरबार में अठारह कवि और एक अर्धकवि सम्मिलित थे। अठारह कवियों में पय्यूर पट्टेरी वंश के आठ भाई और एक पुत्र, तिरुवेगपुर के पाक्क ब्राह्मण तथा मल्लपिल्लि पट्टेरी, चेन्नासु नारायण नम्बूद्रि, काक्कस्सेरी नम्बूद्रि और उद्दण्डकवि यह लोग शामिल थे। पुनाट्टु नम्बूद्रि को अर्धकवि कहा जाता था क्योंकि उनकी कविता मलयालम और संस्कृत मिश्रित होती थी। कोकिलसन्देश का रचयिता उद्दण्ड कवि इस कविमण्डल का प्रमुख व्यक्ति था। कहीं कहीं इसे उद्दण्ड शास्त्री भी कहा गया है। इसके माता पिता का नाम क्रमशः रङ्गाम्बा और रङ्गनाथ था तथा यह वाधुलगोत्र का था। काञ्ची के निकट लाटपुर नामक ग्राम में यह रहा करता था। मल्लाकवि ने सुभद्रा परिणय[1] नामक अपने नाटक में लिखा है कि उद्दण्ड कवि चोल देश के तंजोर जिले के कन्द्रमाणिक्क नामक ग्राम का रहने वाला था। उद्दण्ड कवि का पिता रंगनाथ भी उसी ग्राम का निवासी था तथा बड़ा विद्वान् था। चतुर्वैगुण्यप्रायश्चित्तम्[2] नामक एक मूलग्रन्थ और पद्ममञ्जरी तथा कौमुदी पर उसकी टीकाएं पाई गई हैं। अतः यह भी सम्भव है कि कन्द्रमाणिक्क नामक ग्राम में उद्दण्ड कवि का जन्म हुआ और बाद में वह काञ्ची के निकट लाटपुर नामक ग्राम में

---

१ दे० ट्रीनिअल कैट० आफ संस्० एम० एस० एस० इन ओरियंटल लाइ० मद्रास, १ १०४०।

२ दे० डिस्क्रिप्टिव कैट० आफ संस्० एम० एस० एस० इन ओरियंटल लाइ० मद्रास २ न० ११६६ और ट्रीनिअल कैटालाग, १, ३६८।

रस गया हो। यह नाटककवि भी कदर मानिक का निवासी है तथा वि० षोडश शतक इसका रचना काल है। ऐसा ही इसने अपने सुभद्रापरिणय नामक नाटक में उल्लेख किया है। उद्दण्ड कवि दक्षिण भारत के विभिन्न विद्याकेन्द्रों में अपना साहित्यिक जीवन बिताकर अन्त में यश की खोज में मालाबार पहुंचा और वहां राजदरबारों में इसने अपने विरोधियों को परास्त किया। जमूरिन मानविक्रम राजा ने इसको संरक्षण दिया। राजदरबार में इस सफलता को देखकर लोगों में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगी और ऐसी जनश्रुति[1] है कि किसी पंडित की स्त्री ने इसको परास्त करने वाले पुत्र को उत्पन्न करने का प्रण किया तथा समकालीन पंडितों की प्रार्थनाओं और मन्त्रशक्ति की सहायता से उसके ऐसा ही प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न भी हुआ। इस पुत्र का नाम काकासेरी भट्टातिरि था। इसने बारह वर्ष की अवस्था में ही उद्दण्ड कवि को खुली चुनौती देकर परास्त कर दिया तथा संस्कृत में इन्दुमतीराघव और मलयालम में वसुमतीविक्रम[2] नामक नाटकों की रचना की।

उद्दण्ड कवि ने मल्लिकामारुत नाम का दस अंकों का एक प्रकरण[2] भी लिखा है। भवभूति के मालतीमाधव का इसमें अनुकरण किया गया है। इस प्रकरण में मल्लिका और मारुत तथा रमयन्तिका और कलकण्ठ की प्रेमभावनाएं वर्णित की गई हैं। मन्दाकिनी मालती माधव की कामन्दकी से और कालिन्दी अवलोकिता से मिलती जुलती है।

कवि ने कोकिल सन्देश में एक प्रेमी का कालीकट में स्थित अपनी प्रेयसी के पास कोकिल द्वारा सन्देश पहुंचाया है। कालिदास के मेघ सन्देश की यह एक सुन्दर अनुकृति है। ऐसा कहा जाता है कि रविवर्मा और गोडवर्मा के दरबार में स्थित वासुदेव नामक कवि ने अपना भृङ्गसन्देश नामक काव्य उद्दण्ड कवि के पास भेजा। उसके उत्तर में ही उद्दण्डकवि ने यह सन्देश काव्य लिखा है।

शंकर नगर उद्दण्ड कवि का मित्र था। गुरुवयूर के मन्दिर में इन दोनों की भेंट हुई थी तथा शंकरकवि ने उद्दण्ड द्वारा प्रारब्ध एक कविता की पूर्ति भी की थी। शंकर कवि का श्रीकृष्णविजय[3] नामक एक अन्य काव्य भी पाया जाता है।

---

१ दे० त्रावन्कोर स्टेट मैनुअल, ४३३।

२ दे० ट्रीनिअल कैट० आफ संस्क० एम० एस- एस० इन ओ० लाइ० मद्रास, ४, ८७३८। केवल दो अंक उपलब्ध हैं।

कलकत्ता और मैसूर से प्रकाशित।

३ त्रिचूर से प्रकाशित।

सुकुमार अथवा प्रभाकर नामक एक और युवक कवि भी उद्दण्ड कवि का समकालीन था। कृष्णविलास[1] नामक उसका काव्य उसके नाम के समान ही सुन्दर और सरस है।

जिस तरह भवभूति का जन्म का नाम श्रीकण्ठ था परन्तु—

साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः। अथवा

तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव।
गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ॥

पद्यों के जिनमें "भवभूति" शब्द आया है, लिखने के कारण इसका नाम भवभूति पड़ गया, उसी तरह उद्दण्ड कवि का यह नाम भी साहित्यिक नाम प्रतीत होता है। सामूतिरि महाराज की सभा में प्रथम प्रवेश के अवसर पर कवि ने महाराज के श्री चरणों में निम्न पद्य भेंट किया था—

उद्दण्ड परदण्डमैरव भवधात्रासु जैत्रश्रियो
हेतुं केतुरतीत्य सूर्यसरणिं गच्छन् निवार्यस्त्वया।
नो चेत्तत्पुटसम्पुटोदरलसच्छार्दूलमुद्राङ्कयत्
सारङ्गः शशिबिम्बमेष्यति तुलां त्वत्प्रेयसीनां मुखैः॥

इस पद्य के उद्दण्ड शब्द के आधार पर ही कवि का नाम उद्दण्ड पड़ गया।

कवि ने कोकिल सन्देश में केरल देश की पस्ली और कौणी नदियों के मध्य में स्थित ब्राह्मणों के अग्रहारों का वर्णन किया है। इसी प्रसग में रणपत्तल (पोक्किल) में स्थित पय्यूर वंश के अग्रज विद्वत्प्रवर महर्षि के घर का वर्णन बड़ी श्रद्धा के साथ किया गया है—

किञ्चित्पूर्वं रणतलभुवि श्रीमदध्यक्षवेधा।
तन्मीमांसाद्वयकुलगुरोः सद्म पुण्यं महर्षेः।
निद्रद्वन्द्वे विवदितुमनस्यागते यत्र शश्वद्
द्व्यार्याशालायतमभिनिलयस्तिष्ठते कीरसङ्घः॥[1]॥७८॥

यह महर्षि कवि राजा मान विक्रम अमूरिन् का राजकवि था। अतः इन दोनों का समकालीन होना स्पष्ट ही है।

इसके अतिरिक्त कवि ने अपने काव्य में शङ्कर कवि का उल्लेख किया है। कोकिल को कोलदेश (उत्तरी मालाबार में चिरक्कल देश) जाने का परामर्श देते हुए कहा गया है—

---

१ रामपाणिवाद की टीका के साथ पालघाट से केवल चार सर्ग प्रकाशित।

कोलानेलापनसुरभिलान् याहि यत्र प्रयन्ते
केलार्तं तत्प्रथितवचसः शंकराद्या कवीन्द्राः ॥१॥६०॥

इस पद्य से उद्दण्ड कवि शंकर कवि का भी समकालीन सिद्ध होता है। इस शंकर कवि ने अपने श्रीकृष्णविजय नामक काव्य में लिखा है कि यह काव्य कोलदेश के राजा उदय वर्मा के संरक्षण में लिखा गया है। राजा उदय वर्मा का शासनकाल प्रायः ई० १५ वीं शताब्दी का पूर्व भाग माना जाता है। मलयालम काव्य चन्द्रोत्सव में भी शंकर कवि का उल्लेख आया है। यह शंकर कवि तथा उद्दण्ड द्वारा उल्लिखित शंकर कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इस बात में तो कोई सन्देह ही नहीं है। मालाबार में एक और लोकप्रिय जनश्रुति यह भी है कि पुनम् नामक मलयाली कवि भी उद्दण्ड का समकालीन था। चन्द्रोत्सव काव्य में पुनम् कवि भी एक प्रसिद्ध कवि के रूप में उल्लिखित किया गया है। एक दूसरी दन्तकथा यह भी है कि चेन्नास नारायण नम्बूद्रि भी जिसने तन्त्र समुच्चय (त्रिवन्द्रम् सं० सी० सं० ६७) लिखा है, उद्दण्ड कवि का समकालीन है। तन्त्रसमुच्चयकार ने अपना रचना काल ग्रन्थ के अन्त में कलिवर्ष ४५२६ दिया है—

कल्यब्देष्वतियत्सु नन्दनयनेष्वम्भोधिसंख्येषु च
सम्भूतो भृगुवीतहव्यमुनियुङ्मूले सवेदोऽन्वये।
प्रादुर्भूय जयन्तमङ्गलपदं धाम नारायण
सोऽयं तन्त्रमिदं व्यधाद्बहुविधात्उद्धृत्य तन्त्रार्णवात् ॥
(नन्द ६, नयन २, इषु ५, अम्भोधि ४)

कलिवर्ष ४५२९ वि० सं० १४८५ से मिलता है। इसके अतिरिक्त कोलदेश के राजा उदयवर्मा से संबद्ध शंकर कवि का समय भी वि० सं० की १५ वीं शताब्दी का उत्तरभाग है। अतः इन दो कवियों की समकालीनता के आधार पर उद्दण्ड कवि को वि० सं० के १५ वें शतक के अन्त में निश्चितरूप से रक्खा जा सकता है।

कवि ने अनन्तपलपुरी (तिरुवञ्चिक्कुलम्) का वर्णन करते हुए जगद्गुरु श्री शंकराचार्य का उल्लेख किया है—

रम्या हर्म्यध्वजपटमरुद्वीजितप्रान्तयुग्मा
मध्ये पश्यानन्तपलपुरीमाश्रिता शङ्करेण ॥१॥८७॥

इससे भी कम से कम यह तो निश्चित ही होता है कि उद्दण्ड कवि श्रीशंकराचार्य से बाद में ही हुआ है।

काव्य की कथा

कोई प्रेमी अपने प्रासाद पर प्रेयसी के साथ प्रेमालाप करते २ सो जाता है। प्रात काल होने पर वह देखता है कि कम्पा नदी के तट पर स्थित काची नगरी में भवानी के मन्दिर के पास वह पड़ा हुआ है। इसी अवसर पर उसे एक आकाश वाणी सुनाई पड़ती है कि वरुणपुर से विमान द्वारा आती हुई अप्सराए उसको यहा ले आई है और यदि वह पाच महीने तक काची में निवास करेगा, तो फिर कभी उसका अपनी प्रेयसी से वियोग नहीं होगा। इस आकाशवाणी को सुनकर वह प्रेमी काची में निवास करने लगता है। अपनी इस विरहावस्था के दो तीन महीने तो वह किसी तरह काट लेता है लेकिन चैत्र लगते ही वसन्त ऋतु के आने पर वह बड़ा विह्वल हो जाता है और पास में कोकिल को कूकता हुआ देखकर तो उसके हृदय में प्रेयसी की स्मृति और भी जागृत हो जाती है तथा वह उसके प्रेयसी के पास अपना सदेश ले जाने की प्रार्थना करता है। इस प्रसग में काची नगरी से चूर्णी नदी के दक्षिण तट पर स्थित जयन्तमगल नामक (आधुनिक वेन्न मगल) देश तक के मार्ग का कवित्वपूर्ण वर्णन किया गया है।

काची नगरी के निकट कम्पा नदी के तट पर स्थित किसी उद्यान से कोकिल की यात्रा प्रारभ होती है। मार्ग में श्री कामाक्षी, श्री विष्णु, कामपीठ तथा श्री महादेवजी के दर्शन करने के बाद काची देश से पश्चिम की ओर क्षीरसिन्धु नामक नदी (पालार) के मिलने का उल्लेख किया गया है। इस नदी से दक्षिण की ओर चलने पर ब्राह्मणों के अग्रहारों, चोलदेशस्थित विरचक्षेत्र, तदनन्तर घने जगलों को पार कर कावेरी नदी तथा इसके तट पर स्थित होसल देश पहुचने का कोकिल को परामर्श दिया गया है। होसल देश से सह्यपर्वत होते हुए केरलदेश में वाड्मयी नदी के तट पर महादेवजी और भद्रकाली के दर्शन करने के बाद पुरली (कोट्टयम्) के राजाओं की राजधानी का वर्णन किया गया है। यहा से दक्षिण की ओर जाने के आवश्यक होने पर भी पश्चिम की ओर बढ़ने का ही कोकिल को आदेश दिया गया है। मार्ग में महादेवजी का मन्दिर, सम्पद्ग्राम तथा यहा के ब्रह्मेन्द्र इत्यादि विद्वानों के दर्शन कर वहा पर ही रात बिता कर प्रात काल होने पर शम्बर देश में बालकृष्ण भगवान् के दर्शन करते हुए दक्षिण दिशा की ओर बढ़ने पर कोल देश के आने का उल्लेख किया गया है।

कोलदेश से समुद्रतट होते हुए कुक्कुटकोड (कालीकट) नगर, तदनन्तर प्रकाशदेश (वेट्टत्तुनाट्) में श्वेतारण्य (तृप्रड्गोट्) के निकटवर्ती मृत्युञ्जय भगवान् के दर्शन करने के बाद निला नाम की नदी को पार करते हुए नेत्रनारायण (तम्पुराक्कल्) वश के ब्राह्मणों के देश पहुचने का कोकिल को परामर्श दिया गया है। यहा से कुछ पूर्व की ओर रत्नगल देश (पोर्कलम) में महर्षि पयपूर के आश्रम को देखने के बाद वृषपुरी (श्री शिवपुर-त्रिच्चूर) में महादेवजी तथा उसके समीप

ही कनक भवन में पार्वतीजी की पूजा करते हुए सगमग्राम (इरिञ्ञालक्कुट) पहुचने का उल्लेख किया गया है।

सङ्गमग्राम में कृष्णजी के दर्शन करने के बाद आगे बढ़ने पर श्रीकुहम्र नामक वन में कालीजी के मन्दिर का वर्णन किया गया है। तदनन्तर अञ्जनखलपुरी (तिरुवचिक्कुल) नामक नगरी को देखते हुए चूर्णी नदी के पार करने पर दक्षिण की ओर जयन्त मगल नगरी के मिलने का उल्लेख किया गया है।

इस तरह मार्गवर्णन के बाद अन्त में जयन्तमगल नगरी का वर्णन किया गया है। इस नगरी में विष्णु क्षेत्र से दक्षिण की ओर ही प्रेयसी का घर बताया गया है। प्रेयसी के घर में स्थित लीलावापी, उद्यान, आम्रवृक्ष, चम्पक, चन्दन वाटिका, लतामण्डप, कुरवक तरु इत्यादि स्थानों में प्रेयसी के न मिलने पर माहेन्द्रनील नामक प्रासाद में तो उसके मिलने की अवश्य ही आशा की गई है। इस प्रसग में प्रेमी ने अपनी प्रेयसी की विरहावस्था का विविध भावभगिमाओं के साथ वर्णन किया है। अन्त में सूर्य के ताप के कुछ शान्त होने पर मध्याह्न के बाद कोकिल से प्रेयसी को प्रियतम का सन्देश सुनाने की प्रार्थना की गई है। सन्देश इस प्रकार है। प्रेमी कहता है—हे कल्याणाङ्गि ! तुम्हारे वियोग में मेरी इन्द्रिया बिल्कुल शिथिल हो गई हैं और मन तो दिन रात तुम्हारी ओर ही लगा रहता है। रात्रि में जब सारा ससार सोता होता है तब मैं रोता ही रहता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव को आजकल और कोई काम नहीं है। नितान्त रूप से मेरे चारों ओर ही घूमता रहता है। मलय पवन के स्पर्श से हिलती हुई लताए देख कर मुझे तुम्हारी याद आ जाती है। इस दु सह वियोग में केवल भावना का सहारा लेकर मैं जी रहा हूँ। तुम भी अपनी सखियों के आग्रह से स्नान इत्यादि निरन्तर करती रहना। पार्वती की कृपा से विरहकाल समाप्त सा ही हो गया है। दो मास का विरह और सह लो। उसके बाद तो हम लोगों का मिलन अवश्य ही होगा। अन्त में दो तीन अभिज्ञान घटनाए बतला कर, और कोकिल को आशीर्वाद देकर सन्देश समाप्त कर दिया गया है।

बस, यही काव्य की कथा है।

काव्य समीक्षा

केरल देश में लिखे गए सस्कृत के सन्देश काव्यों में कोकिल सन्देश एक महत्वपूर्ण सन्देशकाव्य है। मेघदूत का यह एक सफल अनुकरण है। काव्य दो भागों में विभक्त है। पूर्व भाग में मार्गवर्णन तथा द्वितीय में नायिका की विरहावस्था और सन्देश दिया गया है। छन्द भी समग्र काव्य में मन्दाक्रान्ता ही है। श्रृगार रस के अनुकूल प्रसादगुणयुक्त ललित भाषा में यह काव्य लिखा गया है। वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में कोकिल को सन्देशवाहक बनाकर कवि ने अपनी कल्पनाशक्ति का

अच्छा परिचय दिया है। कोकिल के पचम स्वर ही को सुनकर तो विरही प्रेमी को अपनी प्रेयसी की मधुर वाणी की स्मृति आती है तथा कोकिल ही अपने मधुर कूजन के द्वारा मानिनी नायिकाओं को अपने प्रेमियों से मिलने के लिए प्रेरित करता है। अत कोकिल के द्वारा सन्देश भेजना उचित ही है। दूसरे कोकिल स्वयं इतना भावुक है कि पत्रों के बीच में यदि कहीं उसकी प्रेयसी छिप जाती है, तो क्षण भर में ही वह बड़ा व्याकुल हो जाता है। अत वह विरहियों के ताप को बहुत शीघ्र समझ सकता है। प्रेमी स्वय कहता है—

अन्तस्तोष मम वितनुषे हन्त जाने भवन्तम्
स्कन्धावारप्रथमसुभट पचबाणस्य राज्ञ ।
कूजायाजाद्धितमुपदिशन् कोकिला याज्ञबन्धो
कान्तै साक ननु घटयसे मानिनीर्मानभाज ॥१॥७॥

किञ्चिल्लीना किसलयपुटे कोकिलामाकुलात्मा
त्व चापश्यन् बत विरहिणा वेत्स जानासि तापम् ॥१॥८॥

सन्देश सुनाने के अवसर पर कोकिल भी अपने सम्बन्ध में कहता है —

जात विद्धि श्रुतिसुखगिरा कोकिलाना कुले मा
ये पञ्चेषो किमपि पथिकाकर्षण पद्यमस्थम् ॥२॥४७॥

मार्ग-वर्णन के प्रसग में कवि ने सुरम्य स्थलों तथा दृश्यों को बड़े भावपूर्ण ढग से पाठकों के सम्मुख रक्खा है। क्षीरसिन्धु (पालार) नदी के तट पर स्थित उद्यानों तथा नदी में स्नान कर चुकी हुई द्रविड सुन्दरियों को लेकर कवि कहता है—

आम्रे आम्रे कुसुमकलिका त्वा च दृष्ट्वा समेतम्
बालाशोकाहननमकरीरविभिस्तन्वतीनाम् ।
तन्वङ्गीना श्रवणसुभगैर्नूपुराणा विरावै
र्वाचाला स्युर्नियतमभित कूलमारामसीमा ॥१॥२३॥

स्नातोत्तीर्णा सजलकबरिकासुन्दरीरोजकुम्भा
(हरिद्रा)श्यामापङ्के शुभपरिमले स्पृष्टमाङ्गल्यसूपा ।
तीरे तस्या द्रमिडसुदृशो दर्शनीया विलोक्य
प्रायो भावी क्षणमिव सखे गच्छतस्ते विलम्ब ॥१॥२४॥

इसी तरह विल्वक्षेत्र में कोकिल के पहुचने पर वहा के उद्यानों द्वारा कोकिल के सत्कार की बड़ी कोमल कल्पना की गई है—

पक्षिस्वानैः पटुमदकलैः स्वागतानि ब्रुवाणा
व्याकीर्णार्घ्या कुसुममधुभिर्वीजयन्त्य प्रवालैः ।
तत्रारामाः सुरभिसचिव त्वा सखे मानयेयु-
स्तुल्यप्रीतिर्भवति हि जनो राजवद्राजमित्रे ॥१॥६५॥

कुक्कुट क्रोड (कालीकट) नगर का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि यहां तो लक्ष्मी साक्षात् निवास करती है और देश देशान्तरों से रत्नों से भरी हुई नौकाएं जो यहां आती हैं वह तो मानों समुद्र की अपनी पुत्री (लक्ष्मी) के लिए भेंट हो—

यत्र ज्ञात्वा कृतनिलयनामिन्दिरामात्मकन्या
मन्ये स्नेहाकुलितहृदयो वाहिनीनां विवोढा (समुद्र)।
नानाद्वीपान्तरशतसमानीतरत्नौघ पूर्णा
नौकाजाल मुहुरुपहरन् वीचिभिः श्लिष्यतीव ॥१॥६६॥

आगे चलकर प्रकाश नामक देश (वेट्टनाट्) में श्वेतारण्य (तृमङ्कोट्) नामक स्थान के निकट शिवजी के मन्दिर के पास बहती हुई निला नामक नदी के सम्बन्ध में कवि ने बड़ी सुन्दर उपमा दी है—

पार्श्वे यस्य प्रवहति निला नाम कल्लोलिनी सा
सन्ध्यानृत्तभ्रमिषु पतिता मस्तकाज्जाह्नवीव ॥१॥७१॥

ग्रीष्म काल में क्षीणकाय, शैवाल से आच्छन्न कमलवाली तथा सैकत देश में फिरते हुए हंसों से युक्त नदी की कल्पना से कवि ने विरही नायक के हृदय में उसकी प्रेयसी का ध्यान जागृत करा दिया है। नायक कहता है—

शैवालौघच्छुरितकमला सैकतभ्रान्तहंसा
नीता कार्श्य तपनकिरणैर्ग्रीष्मसरेष्वेपु सिन्धुः ।
व्याकीर्णश्यामलकनिकरे श्रोणिनिम्न शिकार्या
मन्ये दीना विरहदशया प्रेयसी मेऽनुयायात् ॥१॥७३॥

नदी और नायिका के लिए बिम्बप्रतिबिम्ब भाव वाले विशेषणों का प्रयोग कर कवि ने दोनों का सादृश्य प्रस्तुत कर दिया है। मार्ग-वर्णन के अन्त में चूर्णी नदी का वर्णन करते हुए भी कवि ने नदी में नायिका का आरोप किया है—

चारुस्वच्छा शफरनयना चक्रवाकस्तनश्री
कल्लोलभ्रूः कमलवदना कच्छशैवालकेशा ।
संसेव्या स्यात् सरसमधुरा साऽनुकूलायतीर्णा
दुर्गोदार्यैरिति हि सरितां काऽपि गाम्भीर्यभाजाम् ॥१॥८६॥

यहा पर रूपक अलकार के द्वारा नदी को नायिका का रूप दिया गया है ।

अलकापुरी के वर्णन के समान ही इस काव्य में जयन्त मगल नगरी का भी शृ गारमय वर्णन किया गया है। इस नगरी में अभिसारिकाएं दिन में भी अपने प्रेमियों के पास नि शङ्क जाती हुई बतलाई गई है—

वीथ्या वीथ्या वलरिपुशिला (इन्द्र नीलमणि) भङ्गउद्रस्थलाया
सम्मूर्च्छद्भि किरणपटलैस्तद्गगरुज्जालनीलै ।
यत्रारब्धे दिनकरकरैरप्यहार्यऽन्धकारे
लोलाक्षीणा भवति दिवसे निर्विशङ्कोऽभिसारः ॥१॥३॥

नगरी में स्थित चन्द्रशालागृहों की ऊचाई का अनुमान निम्न श्लोक से भली प्रकार लगाया जा सकता है—

वीचीक्षिप्ता इव सुरधुनीजालशैवालमाला
यत्रोदीर्णां मरकतरचयचन्द्रशालागृहेभ्य ।
घासभ्रान्त्या गगनपदवीदीर्घपाथ्यायमाना-
श्चञ्चत्प्रोथ (प्रोथ=नासिका) तरणितुरगाश्चुम्बितु प्रारभन्ते ॥२॥४॥

मरकत मणियों की किरणों को हरी घास समझ कर सूर्य के घोड़ों का उनकी ओर झुकना स्वाभाविक ही है।

विरही नायक ने अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए कोकिल के सामने नायिका का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, जरा उसे भी देखिए—

सा नेत्राणाममृतगुलिका सृष्टिसारो विधातु
सौन्दर्यन्दो प्रथमकलिका दीपिका भूतधात्र्या ।
कन्दर्पस्य त्रिभुवनविभो काञ्चनी केतुयष्टि
शृङ्गाराब्धे शशधरकला जीवित मे द्वितीयम् ॥२॥१६॥

ऐसी स्त्री का पहिचानना कोई कठिन काम नहीं है। इसी आशय को लेकर विरही प्रेमी कहता है—

पश्यन्नेना वदनसुषमामण्डलान्तर्निमग्नाम्
मध्येऽन्यासामपि चलदृशा ज्ञास्यसे नो कथ त्वम् ।
ज्योत्स्नाजालस्नपितभुवना तारकाणा समीपे
चान्द्री मूर्ति कथय जगतो ज्ञाप्यते केन रात्रौ ॥२॥२०॥

निम्न श्लोक में विभिन्न उपमानों के द्वारा उपमेय भूत नायिका के अगों का सौष्ठव नायक ने कैसी अच्छी तरह प्रतिपादित किया है। केशभार, मुखपद्म, कुच

कलश, रोमराजि, कटिभाग, जघन, ऊरु और चरणों की क्रमिक उपमाएं देखते ही बनती हैं—

> सान्द्रामोदस्तिमिरनिकरश्चन्द्रमा निष्कलङ्क
> शैलौ हैमौ भ्रमरपटलीकीलितो व्योमभाग ।
> कम्रं चक्रं मृदुकरिकरद्वन्द्वमब्जे सलीले
> सर्वं चैतन्मदनघटितं सौम्य सम्भूय साऽभूत् ॥२॥२१॥

ऐसे रमणी विशेष की विभिन्न चेष्टाएं भी कुछ विशिष्ट ही होनी चाहिए। आगे चलकर विरही नायक फिर अपनी प्रेयसी का वर्णन करता है—

> नीचीकुर्वन्त्यलसवलिता नेत्रपाता कुरङ्गान्
> वीचीगव हरति निखिलं विभ्रमान्दोलिता भ्रू ।
> पाणी कल्पद्रुमकिसलयप्राभव न क्षमेते
> वाणी तस्या वहति भवता पञ्चमैर्बालमैत्रीम् ॥२॥२२॥

विरही नायक का मन अपनी प्रेयसी की ओर इतना अनुरक्त है कि वह उसे भुला ही नहीं सकता। उसके मुख से अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में बरबस यह शब्द निकल ही पड़ते हैं—

> सा कान्तिश्चेद्दूषयति कनक तन्मुखं चेत् क इन्दु
> सा चेद्बिम्बाधरमधुरता तिक्ततामेति माध्वी ।
> सा वा तस्या यदि तनुलता मालती लोहतुल्या
> तौ चेदूरू कनककदलीस्तम्भयो क्वापि डम्भ ॥२॥२३॥

अपनी प्रेयसी के स्वरूप का वर्णन करते करते विरही प्रेमी को अकस्मात् प्रेयसी की विरहावस्था का ध्यान आ जाता है। वह कहता है कि आजकल अवश्य ही उसकी सुकुमार प्रेयसी कल्पसमान इन विरह दिनों में बड़ी दुःखी होगई होगी-

> सजायेत प्रबलविरहोद्वेजिता पेशलाङ्गी
> मूर्च्छद्धर्मज्वरपरवशा नीलकण्ठीव¹ खिन्ना ॥ (१ = मयूरी)

विरही प्रेमी कहता है कि उसके वियोग में उसकी प्रेयसी हमेशा चिन्तित रहती होगी तथा गालों पर हाथ रक्खे बैठी होगी—

> यत्पापाङ्गघनिकषचिते किञ्चिदुत्सार्य केशान्
> वृत्त प्रेम्णा दिनमनु मया दीर्घिकारक्तपद्मम्
> तस्मिन्नस्या भवति नियतं हन्त चिन्ताकुलाया
> गण्डन्यस्त करकिसलय पर्णमाहेऽप्यतस ॥२॥२६॥

कर्णमूल में कमल के स्थान पर हाथ ही उसकी शोभा बढ़ाते होंगे।

विरहिणी नायिका के निरन्तर रोते रहने का उत्प्रेक्षा के आवरण में कितना मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया गया है। नायक कहता है—

क्रीडाशैलौ मदननृपते कान्तिपूरस्य कोकौ
स्याता तस्या प्रथमुरसिजौ किञ्चिदापाण्डुमूलौ
मद्विश्लेष शरदुडुनिभा त्याजयन् हारमाला
मन्ये भीतो वितरति तयोरश्रुधाराभिरन्याम् ॥२॥२६॥

अन्त में नायक कहता है कि मेरी प्रेयसी अवश्य ही आजकल पृथ्वी पर पड़ी रहती होगी, उसके नेत्रों से लगातार अश्रुधारा बहती होगी, हाथ पर गाल रक्खे रहती होगी, विरहताप को दूर करने के विचार से उसने बिसलताओं के हार पहिन रक्खे होंगे और मलिन वस्त्र पहिने होगी—

पृथ्वीरेणूनलकनिकरे नेत्रयोर्बाष्पपूर
हस्ते गण्ड सितबिसलताहारजाल स्तनाग्रे।
श्रोण्या क्षौमं मलिनमरुण सा वहत्येव हन्त—
स्यान्तामेनद्बहुविलपितै र्माऽस्तुकालातिपात ॥२॥३४॥

इस पद्य में कवि ने विरहिणी नायिका का पूर्णचित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर दिया है।

आगे चल कर विरहिणी नायिका की विभिन्न विरह-चेष्टायें भी बड़े भावपूर्ण ढग से वर्णित की गई हैं। अपने प्रेमी के विरह में नायिका बिल्कुल उन्मत्त सी हो गई है। उसे चित्र तथा यथार्थ का भेद ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता है। चित्रशाला में एक चित्र में जब वह अपने प्रिय को अपने पैरों पर पड़ा हुआ देखती है तब एकदम वह अपने प्रिय को मनाने लगती है—

प्रासादस्था परिजनकरै प्राप्य वा चित्रशाला
मुग्धा स्वस्याश्चरणपतित वेति त मा निरीक्ष्य।
एह्युत्तिष्ठ प्रिय न कुपिताऽस्मीति बाष्पाकुलाक्षी
गाढाश्लेषप्रचलितकरा रुध्यमाना सखीभि ॥२॥३८॥

ऐसे ही एक और स्थल में धूसर अलकों से आच्छन्न अपने मुख को शुद्ध स्फटिक मणियों द्वारा निर्मित भित्तिभाग में प्रतिबिम्बित देखकर वह उसे मेघखण्डों से आच्छन्न चन्द्रमा समझ बैठती है और सखियों से डर के साथ पूछती है कि यह चन्द्रमा यहा कौन ले आया है—

गण्डालम्बैर्लुलितमलकैर्धूसरैर्वक्त्रबिम्बम्
दृष्ट्वा शुद्धस्फटिकघटिते बिम्बितं भित्तिभागे ।
अन्तर्गेहं जलदशकलैरावृतो रोहिताङ्क (चन्द्रमा)
केनानीतः पुर इति भिया व्याहरन्ती सखीर्या ॥२॥४०॥

विभ्रम के साथ साथ भय की भी इस पद्य में सम्भावना की गई है ।

अन्त में विभिन्न शुभ निमित्तों से प्रिय के आने की आशा लगाती हुई तथा अपने प्रिय का ध्यान करती हुई विरहिणी प्रेयसी की सम्भावना की गई है–

यत्किञ्चाङ्ग सुहृदुपगमं दक्षिणे क्षीरवृक्षे
वामं नेत्रं स्फुरति सुचिरादुच्छ्वसित्यद्य चेतः ।
किञ्च स्वानः श्रवणमधुरो जायते कोकिलानाम्
प्रायोऽप्याशामिति कथमपि भ्रातराबध्नती या ॥२॥४२॥

मुक्त्वा सौभाग्यसुखममिति प्रीलिता विस्मिता या
तत्सङ्गाशा पुनरिह परं हेतुरित्यासिता या ।
शोचन्ती मां दयितमयशा विप्रयोगासहिष्णु ॥२॥४३॥

नायिका की विरह चेष्टाओं के वर्णन के बाद प्रिय का सन्देश प्रारम्भ होता है । इस सन्देश में नायक ने अपनी विरहावस्था का बड़ा करुण चित्र उपस्थित किया है । प्रेयसी के विरह में नायक हमेशा चिन्ता में डूबा रहता है, उसकी सासें चलती रहती हैं और अर्धरात्रि में जब संसार सोता होता है, तो यह रोता ही रहता है, इस घटना को केवल चक्रवाक ही जानते हैं—

मायद्भृङ्गे कुमुदपवनैस्तर्ज्यमानस्य घोरै–
रातङ्काढ्ये सरसि लुठतो हा निशीथे निशीथे ।
निद्रामूकं जगति रुदतः श्वासचिन्ताकुलो मे
संक्रन्दन्तश्चटुलनयने चक्रवाकाः सहायाः ॥२॥५०॥

बसन्त ऋतु में मलयपवन के स्पर्श से हिलती हुई तथा भौंरों के गुञ्जन से युक्त सुन्दर लता वल्लरियों को देखकर प्रिय के हृदय में बरबस प्रेयसी की स्मृति जाग उठती है—

काले यास्मिन् कन्दलिभृतः कम्पिताग्रप्रवालाः
क्वापि वल्ल्यः किमपि मरुता चुम्बिता दक्षिणेन ।
किञ्चिद्दष्टाधरकिसलया प्राङ्मया भोगकाले
सीत्कुर्वाणा धुतकरतला त्वां प्रिये स्मारयन्ति ॥२॥५३॥

तीव्रताप से युक्त तथा विरह के कारण अत्यन्त लम्बी रात्रि को बिताकर सूर्योदय होने पर जब चक्रवाकी अपने चक्रवाक से मिलती है, तब इस दृश्य को देखकर विरही नायक के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगती है–

दीर्घां रात्रिं विरहमहतीं तीव्रतापा कथञ्चिद्
दृष्ट्वा भानो किरणसरणं जम्भशत्रोर्दिगन्ते।
प्रत्युद्यान्तीं त्वरितमबला श्लिष्यत भाग्यसीम्ने
सारङ्गादि स्पृहयति मनो हन्त चक्रास्ययूने ॥२॥५५॥

अन्त में विरही नायक कहता है कि इस कठोर वियोग में केवल भावनारूपी कल्पवल्ली के सहारे ही मैं जीवित हूँ और किसी न किसी तरह धैर्य धारण कर रहा हूँ—

हा हन्तास्मिन्नसुलभमिथोदर्शने विप्रयोगे
सैवालम्बो मम भगवती भावनाकल्पवल्ली ॥२॥५८॥

सत्य तैस्तै कृतधृतिरहं प्राणिमि प्राणनाथे ॥२॥६०॥

अपनी प्रेयसी को भी वह धैर्य रखने का परामर्श देता है, क्योंकि विरहरूपी सागर अब समाप्तप्राय हो चला है। दो मास का ही और कष्ट है। फिर तो वे मिलेंगे ही–

त्वञ्च स्नानादिषु सवयसा प्रार्थना मा निषेधी ॥२॥६०॥
तीर्णप्रायो विरहजलधि' शैलकन्याप्रसादात्
शेष मासद्वितयमबले सह्यता मा विषीद।
धूपोद्गारै सुरभिषु ततो भीरु! सौधान्तरेषु
क्रीडिष्यावो नवजलधरध्यानमन्द्राण्यहानि ॥२॥६१॥

विरह में बुद्धि के लुप्त हो जाने से विरही नायक दिन में भी क्रीडा की आशा करता है।

संदेश के बाद कई अभिज्ञान घटनायें भी वर्णित की गई हैं ताकि प्रेयसी को अपने प्रिय की कुशल का पक्का ज्ञान हो जाये। दो एक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

आश्लिष्यन्तं विटपभुजया तत्र वल्लीरनेका
क्रीडारामे कमपि तरुणं वीक्ष्य माकन्दवृक्षम्। (आम्र)
साचीकृत्य स्फुरदधरया चण्डि! वक्त्रं भवत्या
सभ्रभंग' सजलकरिक' प्रेषितो मय्यपाङ्ग ॥२॥६३॥

कच्चिच्चित्ते स्फुरति चपलापाङ्गि

पुरुष प्रायः कई स्त्रियों से प्रेम करते होते हैं। इस विचार से कोप के साथ मुख तिरछा कर नायिका का नायक की ओर देखना उचित ही है।

एक दूसरे अभिज्ञान में एक बहुत छोटी सी घटना की याद दिलाई गई है। हंस हठात् अपनी सहचरी का चुम्बन ले रहा था। नायक और नायिका दोनों इस दृश्य को देख रहे थे। तब इस अवसर पर नायिका ने बड़ी लज्जा के साथ नायक की ओर देखा था। इसी घटना को नायक निम्न पद्य में अपनी प्रेयसी के लिये बतलाता है—

भूयश्चैकं शृणु सहचरि! धूतनैकानुनीतिम्
केली हंसे स्मरजुषि हठाच्चुम्बतीयत्स्वजन्तीम्
दृष्ट्वा त्वं स्मृतमिमपि बहुलव्रीलमालोकथा माम् ॥२॥६१॥

अभिज्ञान वर्णन के बाद सन्देश समाप्त करते हुए कोकिल को आशीर्वाद देने में भी कवि ने बड़ी चतुरता दिखाई है। प्रायः 'परैः भृतः' इस अभिप्राय से कोकिल को 'परभृत' कहा जाता है। लेकिन नायक कहता है कि अब 'परान् बिभर्ति परभृत्, तं परभृतम्' इस अभिप्राय से कोकिल को 'परभृतम्' कहा जायगा। आशीर्वाद में कोकिल का उसकी प्रेयसी से कभी एक बार भी वियोग न हो, यह शुभकामना प्रकट की गई है—

मान्यश्री स्यान्मदननृपतेः कोकिला तेऽनुकूला
भूयान्मैव सकृदपि तया विप्रयोगप्रयोगः ॥२॥६६॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को यह स्पष्ट प्रतीत हो गया होगा कि यह सन्देश काव्य विप्रलम्भ शृङ्गार से पूर्ण है तथा एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के पास इसमें सन्देश भेजा है। भावों के अनुकूल सरस और प्रवाह पूर्ण भाषा का ही कवि ने सर्वत्र व्यवहार किया है। कहीं कहीं अनुप्रास की छटा भी देखने योग्य है। विरहिणी नायिका के वर्णन में अनुप्रास के साथ साथ उपमा का भी कवि ने सन्निवेश कर दिया है—

तत्र त्र्यक्षस्यखिलमहिमामौलिमालायमानाम्
बालामेनां नियतमधुना मद्वियोगेन दीनाम्।
कल्याणी सा कनककदलीकन्दलीकोमलाङ्गी
कन्दर्पाग्निं कथमिव कुकूलाग्निकल्पं सहेत ॥१॥७२॥

भवभूति के मालतीमाधव के अनुकरण में कवि ने जिस तरह मल्लिकामारुत नाम का प्रकरण लिखा है, उसी तरह मेघदूत के अनुकरण पर यह सन्देशकाव्य

लिया गया है। मेघदूत की शैली, छन्द, विषयव्यवस्था तथा भावयोजना से यह काव्य पूर्णतया प्रभावित है। कोकिल का स्वागत, मार्गदर्शन, जयन्तमंगलपुरी के ऐश्वर्य तथा प्रेयसी के गृह का वर्णन, लीलावापी, आम्रवृक्ष, इसके पास ही स्थित सुवर्णमय आलवाल से युक्त चम्पक वृक्ष तथा नाचते हुए मयूरों से पूर्ण चन्दन, यष्टिका यह सब मेघदूत की ही छाया है। कहीं कहीं भाव साम्य के साथ साथ शब्द साम्य भी पाया जाता है। कोकिल से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करते हुए विरही नायक कहता है—

> कान्तोदन्तः सुहृदुपनतो विप्रयोगार्दितानाम्
> प्रायः स्त्रीणां भवति किमपि प्राणसंधारणाय ॥१॥१०॥

इसी तरह प्रभात में सूर्योदय होने पर कोकिल को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है—

> प्रस्थातुं त्वं पुनरपि सखे प्रक्रमेथाः प्रभाते
> स्यात्मक्लेशः सुहृदुपकृतौ त्वादृशानां सुखाय ॥१॥४८॥

मेघदूत में उज्जयिनी के वर्णन प्रसंग में शिप्रानदी की वायु को लेकर व्यक्त किये गये भावों की तरह यहां पर भी अञ्जनरालपुरी (तिरुवञ्चिकुलम्) का वर्णन करते हुए चूर्णी नदी की वायु के सम्बन्ध में समानान्तर भाव व्यक्त किये गये हैं—

> यत्राश्लिष्टो वरयुवतिभिश्चुम्बति स्विन्नगण्डम्
> चूर्णीवातः प्रिय इव रतिश्रान्तमास्यारविन्दम् ॥१॥८७॥

मार्ग में पड़ने वाली आम्रवल्लियों के रसास्वादन की सम्भावना करते हुए कोकिल से कहा गया है—

> भोक्तासि त्वं कमपि समयं तत्र माकन्दवल्लीं
> कान्तारागे सति विकसिते कः पुमांस्त्यक्तुमीष्टे ॥१॥३७॥

इस अवतरण की अन्तिम पंक्ति को देखकर मेघदूत का यह पद—

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥१॥४२॥ याद आ जाता है।

मेघदूत में यक्ष ने अपनी प्रेयसी को—

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयम्—कहा है।

इस सन्देशकाव्य में भी नायक अपनी नायिका के लिए—

'शृङ्गाराब्धेः शशधरकला जीवितं मे द्वितीयम्' ॥२॥१६॥ कहता है।

इस तरह परस्पर भाव तथा शब्द साम्य वाले अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। मेघदूत में स्नेह के सम्बन्ध में यक्ष ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है-

स्नेहानाहु: किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥२॥५१॥

इसी तरह यहा भी प्रेमी अपने सन्देश की समाप्ति पर कहता है-

रागो नाम त्रुटति विरहेणेति लोकप्रवाद-
स्त्वत्सङ्गो मम शतगुण सगमाद्विप्रयोगे ॥२॥६७॥

दोनों अवतरणों में कितना भाव साम्य है। विज्ञ पाठक स्वय जान सकते हैं।

स्थान स्थान पर शिवजी, रगनाथजी, भद्रकाली, चण्डिका, श्रीकृष्ण, पार्वतीजी इत्यादि देवी-देवताओं के वर्णन से कवि की आस्तिक्यभावना का परिचय मिलता है। कवि ने मार्ग में पड़ने वाले देवी देवताओं की समान श्रद्धा के साथ स्तुति की है। इससे कवि की धार्मिक उदारता भी प्रतीत होती है।

कोकिल के सम्बन्ध में कवि ने एक स्थल पर कहा है--

श्लाघ्यच्छन्दस्थितिमयि मया शोभनेऽर्थे नियुक्तम्
श्राव्य शब्दे सरससुमनोभाजमभ्रान्तवृत्तिम्।
दुरप्राप्त्या प्रशिथिलमिव त्वा सखे! काव्यकल्प
धीमान् पश्येत् स यदि ननु ते शुद्ध एव प्रचार: ॥१॥८०॥

कोकिल को काव्य-कल्प बताते हुए श्लिष्ट विशेषणों द्वारा कवि ने अपने काव्य का ही कुछ परिचय दिया है। इस काव्य में छन्द भी श्लाघ्य है, अर्थ भी निर्दुष्ट है, विद्वानों के मन को कर्णमधुर शब्दों द्वारा यह काव्य वश में करता है तथा इसकी शैली और प्रवाह निर्दुष्ट हैं। कवि का यह कथन सर्वथा सगत है। मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी काव्य की उपादेयता कुछ कम नहीं है। कोकिल को सन्देश वाहक बनाकर कवि ने अपने सन्देश काव्य को और भी सुन्दर बना दिया है।

उदय कवि का मयूरसंदेश (वि० स० पंचदशशतक)

आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक पर अभिनवगुप्त ने लोचन नाम की टीका लिखी। इस लोचन पर भी कई टीकाएं लिखी गईं। उनमें एक कौमुदी नाम की भी टीका है। यह टीका चार उद्योतों में से केवल प्रथम उद्योत पर ही पाई जाती है। इस टीका में लेखक ने एक श्लोक स्वरचित रचना के रूप में उद्धृत किया है –

आदिदीपक यथाममैव मयूरदूते काव्ये–
सा जागर्ति स्वपिति च मुधा मूकतामेत्यवस्थ
प्रते रोदित्यधिकमतुलं धैर्यमालम्बते च।
मूर्च्छां प्राप्नोत्यपि च भजते चेतनामित्यशक्तो
वक्तु वेधा अपि विरहजव्यापृतीरंगनानाम्

यह श्लोक इस सन्देश काव्य के उत्तर भाग में [श्लोक स० ६४] पाया जाता है। अत यह तो निश्चित ही है कि कौमुदी तथा इस सन्देशकाव्य का रचयिता एक ही व्यक्ति है।

कौमुदी टीका के लेखक का नाम स्पष्ट रूप से टीका में कहीं नहीं दिया गया है। फिर भी लेखक के नाम को निश्चित करना कठिन नहीं है। टीका की भूमिका के अन्त में यह श्लोक पाया जाता है—

आशासिता रसिकलोकचकोरवृन्दै
राविर्भवत्युदयतोऽमृतगौरधारा।
आचन्द्रतारकमिदं नवकौमुदीव
प्रीतिं दधातु जगतां विवृतिर्मदीया॥

इस पद्य में 'उदयत' शब्द का कोई विशेष अर्थ नहीं निकलता, जब तक कि इससे कवि या टीकाकार के नाम का ज्ञान न करें। सम्पूर्ण श्लोक से यह ध्वनि निकलती है कि कौमुदी टीका का रचयिता उदय नामक कोई व्यक्ति है। इस विषय पर अधिक विवाद अथवा स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त कौमुदी टीका में प्रथम उद्योत की समाप्ति पर निम्न श्लोक पाया जाता है—

इत्थं मोहतमोनिमीलितदृशां ध्वन्यर्थमार्गे यता
व्याख्यामासमहोज्ज्वलज्वरजुषा प्रेक्षावता प्रीतये।
उत्तुङ्गादुदयक्षमाभृत उदेयुष्यामयुष्यामयं
कौमुद्यामिह लोचनस्य विवृतावुद्योत आद्यो गत ॥

इस श्लोक में भी टीका के लेखक का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। लेखक का नाम उदय है। इसके अतिरिक्त उपरिलिखित श्लोक यह भी बतलाता है कि लेखक राजवंश का है। 'क्षमाभृत्' शब्द 'पर्वत' और राजा इन दोनों अर्थों में यहां पर प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि 'उत्तुंग' शब्द के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है कि यह 'पर्वत' तथा लेखक दोनों से सम्बद्ध है, लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि 'उत्तुंग' शब्द केवल पर्वत के विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त हुआ हो। हां, इतना निश्चित है कि कौमुदी टीका का लेखक उदय नामक कोई राजा है।

बाह्य साक्ष्य से केवल इतना निश्चित होता है कि कौमुदीटीका का लेखक ही मयूरसन्देश का लेखक है। अब हमें यह देखना है कि मयूरसन्देश से लेखक के सम्बन्ध में हमें क्या ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सर्वप्रथम हमें यह निर्णय करना है कि काव्य का नायक और लेखक दोनों एक ही व्यक्ति हैं। चूंकि विरोध में कोई प्रमाण नहीं है, अतः हम स्वाभाविक रूप से ऐसा मानते ही हैं कि काव्य का नायक ही काव्य का लेखक है। काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि नायिका का पितृदत्त नाम 'उमा' है और कवियों के द्वारा उसे 'मारचेमन्तिका' [भाग २, श्लोक ३६] कहा जाता है तथा वह 'तच्चप्पिटिल' वंश की है [भाग २, श्लोक १६]। पूर्वभाग श्लोक संख्या ८३ में नायिका के ग्राम का नाम श्वेतच्छदतट और श्लोक संख्या १०६ में सितगरसीर बताया गया है। केरलभाषा में आजकल अन्नकर नाम से पुकारे जाने वाले इस ग्राम में तच्चप्पिल्लि नाम का एक परिवार आजकल भी पाया जाता है। लेकिन मालाबार में पत्नी का वंश पति के वंश के समान नहीं होता है। अतः नायिका के वंश से नायक तथा काव्य के लेखक के वंश का कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता।

काव्य के द्वितीय श्लोक में काव्य की नायिका मारचेमन्तिका को 'श्री कण्ठो र्वीपतिविहृमत' बताया गया है। चतुर्थ श्लोक में यह भी कहा गया है कि कुछ देवताओं ने राजा को अपनी रानी उमा के साथ अपने प्रासाद के ऊपर विहार करता हुआ देखकर भूल से साक्षात् श्री कण्ठ (शिव) समझ लिया। यह भूल तभी हो सकती है जब कि यह राजा किसी दूसरे रूप में भी श्रीकण्ठ हो। अतः इन पद्यों से यही अर्थ निकलता है कि काव्य का नायक स्वयं राजा श्रीकण्ठ है और कौमुदी टीका का रचयिता उदयक्षमाभृत् मयूरसंदेश के नायक तथा लेखक श्री कण्ठोर्वीपति से भिन्न नहीं है। उदय इसका वास्तविक नाम है और श्रीकण्ठ इसकी कुलक्रमागत उपाधि है तथा मालाबार में ही कहीं का यह राजा है।

मलयालम भाषा में लिखे गए उन्नुनीली सन्देश नामक सन्देशकाव्य से यह मयूरसन्देश बहुत कुछ मिलता जुलता है। उन्नुनीली-सन्देश में नायिका को विन्गिलि प्रदेश के राजा मणिकण्ठ द्वारा धारण किए जाने वाला मुक्ताहार बतलाया गया है। राजा मणिकण्ठ नायिका का पति नहीं है। नायिका विन्गिलि राजवंश के एक अन्य व्यक्ति

की पत्नी है। इस प्रकार मयूर सन्देश में भी 'श्रीकण्ठोर्वीपति वल्लभत' इस पद का यह भी अर्थ हो सकता है कि नायिका मारचमन्तिका श्रीकण्ठोर्वीपति द्वारा शासित प्रदेश की केवल एक प्रतिष्ठित महिला है।

इसके अतिरिक्त चन्द्रोत्सव नामक मलयालम भाषा के एक अन्य काव्य में भी मारचेमन्तिका नाम आता है। काव्यगतवर्णनों से केवल इतना पता चलता है कि यह मारचेमन्तिका राजवंश से सम्बद्ध है। चन्द्रोत्सव काव्य में पाई जाने वाली नायिकाओं में मारचेमन्तिका का तृतीय स्थान है। चन्द्रोत्सव का राजा कटनकोट (संस्कृत श्रीकण्ठ) संरक्षक है। जिस स्थान पर चन्द्रोत्सव मनाया गया था, वह मयूरसन्देश की नायिका मारचेमन्तिका के निवासस्थान से दूर नहीं है। इन बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मलयालम काव्य चन्द्रोत्सव की मारचेमन्तिका तथा मयूरसन्देश की नायिका मारचेमन्तिका दोनों एक ही हैं। यदि मारचेमन्तिका राजा कटनकोट (श्रीकण्ठोर्वीपति) की पत्नी रही होती, तो चन्द्रोत्सव काव्य में उसे प्रथम स्थान दिया गया होता। चूँकि उसे तृतीय स्थान दिया गया है, अतः यह मानना पड़ेगा कि यह राजवंश के किसी अल्पवयस्क व्यक्ति की पत्नी है। मलयालम काव्य चन्द्रोत्सव में और मयूरसन्देश में एक और बात में भी साधर्म्य पाया जाता है। मयूरसन्देश का लेखक ध्वन्यालोक की लोचन नामक टीका पर कौमुदी नाम की स्वयं अपनी टीका लिखता है। इससे यह स्पष्ट है कि काव्यमीमांसा के विषय में यह लेखक ध्वनिसम्प्रदाय का अनुयायी है। चन्द्रोत्सव काव्य में भी इस बात का कुछ सूक्ष्म संकेत मिलता है। काव्य की भूमिका में एक श्लोक द्वारा ध्वनिसम्प्रदाय के अनुयायियों से चन्द्रोत्सव काव्य पर भी कृपादृष्टि करने की प्रार्थना की गई है। मयूरसन्देश तथा कौमुदी टीका के रचयिता किसी राजा को ही लक्ष्य कर यह लिखा गया है।

चन्द्रोत्सव काव्य की नायिका मारचेमन्तिका का पति राजा श्रीकण्ठ के परिवार का केवल एक अल्पवयस्क व्यक्ति है तथा मयूरसन्देश भी लेखक की प्रथम रचना है जिसका कि नायक स्वयं लेखक ही है, अतः यह मानना अधिक संगत होगा कि श्रीकण्ठोर्वीपति इस सन्देशकाव्य का नायक तथा मारचमन्तिका का पति दोनों ही नहीं है बल्कि इस काव्य के द्वितीय श्लोक में उल्लिखित राजा श्रीकण्ठोर्वीपति के परिवार का कोई राजकुमार ही इस सन्देशकाव्य का नायक है।

लेखक के विषय में इतना ज्ञान लेने के बाद अब हमें इस काव्य के रचनाकाल पर भी विचार करना है। मलयालम भाषा के उन्नुनीली सन्देश नामक सन्देश काव्य में राज्य के उत्तराधिकारी किलान (कोलम्ब) के राजकुमार आदित्यवर्मा को सन्देश-वाहक नियुक्त किया गया है। यह आदित्यवर्मा इरवि वर्मा के बाद जिनको कि काव्य में किलान का तत्कालीन शासक बताया गया है, राजगद्दी पर बैठा। इन दोनों का शासन काल निश्चित है। उन्नुनीलीसन्देश में आदित्य वर्मा द्वारा तुरुष्क

सेना के हटाए जाने का भी वर्णन है। अतः उन्नुनीलीसन्देश को हम ई० चतुर्दश शतक की रचना मान सकते हैं। मयूरसन्देश में प्रारम्भ में उन्नुनीलीसन्देश की शैली का अनुकरण किया गया है। अतः हम कह सकते हैं कि मयूरसन्देश ई० चतुर्दशशतक के अन्त का लिखा हुआ है।

इसके अतिरिक्त मयूरसन्देश के पूर्व भाग श्लोक संख्या ८३ में उद्दण्ड नामक कवि का उल्लेख मिलता है (उद्दण्डाख्य सुरभिकवितासागरेन्दु कवीन्द्र ॥८३॥)। इस श्लोक से केवल इतना निश्चित होता है कि मयूरसन्देश उद्दण्ड कवि की समकालीन रचना है। लेकिन उद्दण्ड कवि का समय स्वयं निश्चित नहीं है। उद्दण्ड कवि ने अपने कोकिल सन्देश में कोलदेश में [उत्तरीय मालाबार में चिरक्कल देश] रहने वाले एक शंकर कवि का उल्लेख किया है। इस शंकर कवि ने श्रीकृष्ण विजय नामक अपने काव्य में कोल देश के राजा उदयवर्मा को अपना संरक्षक बताया है। ई० पञ्चदश शतक का पूर्वार्ध राजा उदयवर्मा का शासन काल माना जाता है। मलयालम काव्य चन्द्रोत्सव में भी एक शंकर कवि का उल्लेख आता है। यह शंकर कवि और उद्दण्ड कवि द्वारा उल्लिखित शंकर कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रोत्सव काव्य में पूनम नामक एक अन्य विशिष्ट कवि का भी नाम पाया जाता है। मालाबार की दन्त कथाओं में पूनम और उद्दण्ड समकालीन कहे जाते हैं। एक और दन्तकथा के आधार पर तन्त्रसमुच्चय (त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज, सं० ६७ और ७१) के लेखक और उद्दण्ड कवि को भी परस्पर समकालीन माना जाता है। तन्त्रसमुच्चय के अंत में ग्रन्थ का रचनाकाल कलिवर्ष ४५२६ दिया हुआ है। कलिवर्ष ४५२६ ई० १४२८ से मिलता है और ई० पञ्चदशशतक के पूर्वार्ध में शासन करने वाले कोलदेश के राजा उदयवर्मा से सबद्ध शंकर-कवि के आधार पर निश्चित किए गए उद्दण्ड के रचना काल से भी इस कलिवर्ष का सामंजस्य ठीक बैठ जाता है। अतः ई० पञ्चदश शतक का पूर्वार्ध अथवा सं० १४०० ई० के कुछ बाद का समय ही मयूर सन्देश का रचना काल है। विक्रम संवत् के अनुसार ग्रन्थ का रचना काल वि० सं० के पञ्चदशशतक का उत्तरार्ध अथवा पूर्वार्ध का अन्त ही समझिए। विशेष ज्ञान के लिए ओ० बी० ए० पूना से प्रकाशित इस काव्य की भूमिका देखना चाहिए।

काव्य की कथा

मालाबार के राजा श्रीकण्ठ के परिवार का कोई राजकुमार अपनी रानी मारचेमन्तिका के साथ प्रासाद की छत पर विहार कर रहा था। विद्याधर भूल से उसको पार्वती के साथ स्वच्छन्द विहार में संलग्न साक्षात् शिव समझ बैठे। उनकी इस भूल पर यह राजकुमार उनका उपहास करने लगा। विद्याधरों ने इस पर राजा को एक मास के लिए अपनी प्रेयसी से वियुक्त रहने का शाप दे दिया। राजा के प्रार्थना करने पर किसी तरह विद्याधरों ने उसे स्यानन्दूर (त्रावनकोर की राजधानी

आधुनिक त्रिवेन्द्रम्) में रहने की अनुमति दे दी। अपनी प्रेयसी के विरह में निमग्न यह राजा वर्षा ऋतु में एक मोर को देखता है और उसके द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अन्नकर नगरी में सन्देश भेजता है। इस नाम का एक ग्राम कोचीन राज्य में आधुनिक त्रिचूर के पश्चिम में लगभग आठ मील पर अब भी स्थित है। त्रिवेन्द्रम् से अन्नकर तक के मार्ग का काव्य में बड़ा ही सुन्दर वर्णन पाया जाता है। मार्ग में पड़ने वाले नगरों, मन्दिरों तथा मालाबार के विभिन्न राज्यों के वर्णन के साथ-साथ नदियों और समुद्रतट का भी तत्तत् स्थान पर वर्णन किया गया है। मार्ग वर्णन के बाद अन्नकर नगरी, तच्चप्पिल्लि नामक नायिका के गृह, समीप में ही स्थित आम्र वृक्ष, पुष्पोद्यान, बकुलवृक्ष, अशोकवृक्ष, वापी, कूप, गृहवाटिका, वाटिका के मध्य में स्थित मण्डप, उसके पास मालतीलता और अन्त में आम्रवृक्षों से घिरे हुए प्रेयसी के प्रीतिस्थान लता मन्दिर का उल्लेख किया गया है। इस लतामंदिर में ही परिजनों द्वारा निर्मित शीतोपचार युक्त विरहशय्या पर पड़ी हुई नायिका के मिलने की सम्भावना की गई है। समीपवर्ती किसी तमालवृक्ष पर बैठकर अपनी प्रेयसी के देखने के लिए राजकुमार मयूर से कहता है। इस अवसर पर प्रथम तो राजकुमार ने अपनी प्रेयसी के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है। फिर उसकी विभिन्न सम्भाव्यमान विरहावस्थाओं का बड़ा ही भावपूर्ण करुण चित्र अंकित किया है। अन्त में अपनी प्रेयसी के लिए कहा जाने वाला अपना सन्देश मयूर को बताया है। मयूर को सन्देश सुनाकर तथा उसके द्वारा प्रेयसी के पास सन्देश पहुंचाने की सम्भावना कर अन्त में राजकुमार उसके प्रति शुभ कामना व्यक्त करता है। बस, यहीं पर काव्य की कथा समाप्त हो जाती है।

साहित्यिक समीक्षा

मेघसन्देश के अनुकरण पर तो यह सन्देश काव्य लिखा ही गया है। साथ में मालाबार प्रान्त के तीन अन्य सन्देशकाव्यों का भी इस पर प्रभाव पड़ा है। इन तीनों सन्देशकाव्यों में एक सन्देश काव्य तो मलयालम भाषा का उन्नुनीली-सन्देश है। अवशिष्ट दो संस्कृत के हैं—प्रथम तो लक्ष्मीदास का शुकसन्देश, द्वितीय उद्दण्ड कवि का कोकिलसन्देश। मयूर सन्देश तथा उपर्युक्त अन्य तीन सन्देशकाव्यों में गन्तव्य स्थान तथा मार्ग वर्णन में यत्र तत्र पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है।

मेघ-सन्देश की तरह इस काव्य में भी पूर्वभाग और उत्तरभाग इन दो भागों में कथा-वस्तु बटी हुई है। पूर्व भाग में १०७ और उत्तरभाग में ९० श्लोक हैं। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा हुआ है। केवल प्रथम श्लोक मालिनी छन्द में है और इसमें गणेशजी की वन्दना की गई है। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ के कुछ अन्य पद्यों में काव्य की भूमिका भी पाई जाती है। सन्देशकाव्य की यह शैली मलयालम भाषा के उन्नुनीली सन्देश से इस काव्य में गृहीत की गई है।

मेघ सन्देश में यक्ष और उसकी प्रेयसी के विरह का कारण तथा वे परिस्थितियां जिनमें कि सन्देश भेजा गया है, नितान्त स्वाभाविक हैं। लेकिन इस काव्य में विरह की अवधि केवल एक मास है, अतः विरहव्यथा के किसी प्रबल कारण के न होने से परिस्थितियां कुछ कृत्रिम सी हैं।

जिस प्रकार मेघसन्देश में अलकापुरी का बड़ा उदात्त और शृंगाररस पूर्ण वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इस काव्य में भी नायिका की नगरी सितगरुत्तीर (अन्नकर) का बड़ा भव्य चित्र प्रस्तुत किया गया है—

यस्या छायातरनिरवकाशेन्दुभानुप्रचारे
ष्वारामेषु प्रचुरजटिताश्चन्द्रसूर्याश्मपुञ्जा ।
बालार्काभैरधरमणिभिर्लीलयामेक्षणाना
मामेदुयन्ते निगलितकलङ्केन्दुभिर्वैश्च वक्त्रैः ।

यस्या मान्द्यं गतिहसितयोरेव मालिन्यमुद्रा
केशेष्वेव स्फुरति कुटिलत्व च कार्श्यप्रसङ्ग ।
मध्येष्वेव स्तनकलशयोरेव सघर्षयोगो
नेत्रेष्वेव श्रुतिपथसमुल्लङ्घिता मञ्जुवाचाम् ॥२॥११॥

अन्नकर नगरी में स्फटिक खण्डों से सर्वत्र ही प्रकाश फैला रहता है। सूर्य और चन्द्रमा तो केवल कमल और कमलिनी के विकासमात्र के लिए उदित होते हैं—

शुद्धच्छायस्फटिकशकलश्रेणिशोशुभ्यमाने—
रस्तं नीते तिमिरनिकरे भासुरैर्भूविभागे ।
यस्या प्राय सरसिजरजनीकैरवोद्बोधमात्रे
जागर्ति स्म द्युमणिशशभृद्दीधितीना प्रयास ॥२॥६॥

आगे चलकर नायक विरहिणी नायिका का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन करता है। वह मयूर से कहता है—

स्वैरं निर्वर्ण्य सुवदना मेघखण्डाद्रखण्डे
विद्युद्वल्लीमिव निपतिता भूतल वपमानाम् ॥२॥३१॥

अपनी प्रेयसी का वर्णन प्रारम्भ करते हुए नायक कहता है—

सौन्दर्येन्दोरुदयशिखरी सौकुमार्यप्रपञ्च—
स्यैका मूलप्रकृतिरुदधि कान्तिकल्लोलिनीनाम् ।
सिद्धान्तार्थस्थितिरविचला चित्तजन्मागमाना
। वक्षाद्वद्य तरलनयनं जीवितं मामकीनम् ॥२॥३२॥

मेघ सन्देश में यक्ष भी अपनी प्रेयसी को 'जीवित मे द्वितीयम्' बताता है। आगे चल कर फिर राजकुमार अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में कहता है—

वेणीभागो विहसतितरां वैभवं वारिवाह—
श्रेणीभासां वदनसुषमा सोदरी शारदेन्दोः ।
वाणीं वीणामधुरिमधुरामातुरीकर्तुमीष्टे
नारीयासौ नयनयुगलीविभ्रमा पन्नगाक्ष्या ॥२॥३७॥

शय्यायेते करसरसिजे पल्लवाडम्बराणाम्
कल्याणाद्रेः करसिजभरः कल्पमानं क्षिणोति
कोदण्डज्या कुसुमधनुषः कोमला रोमरेखा
खेदं धत्ते कुवलयदृशः कुञ्चिता मध्यवल्ली ॥२॥३८॥

अपनी इस अद्वितीय सुन्दरी और सुकुमार प्रेयसी के जब विरहदुःख का राजकुमार को ध्यान आता है, तब वह कहता है—

सा मृद्वङ्गी जलदसमये सद्मनि प्राग्भवीये—
दुःखोदर्कं दुरितनिवहैः दूरितप्राणनाथा ।
जाता नूनं मनसिजशिखिज्वालजालावलीढा
मध्येऽरण्यं दवहुतभुजा दह्यमाना मृगीव ॥२॥४२॥

विरहाग्नि में तड़पती हुई नायिका के लिए चारों तरफ से वन की अग्नि में जलती हुई हिरनी की बड़ी ही उपयुक्त उपमा प्रदान की गई है। विरहिणी प्रेयसी की कुछ अवस्थाओं का उल्लेख करते हुए राजा श्रीकण्ठ कहता है कि सम्भव है—

अभ्यर्णस्थानपि भसितयत्युद्भटो देहदाह-
स्तन्वन् सलिलनिधय सन्ततैरश्रुपूरैः ।
श्वासा वासावसथवलभीदीपनिर्वाणदक्षम्
द्राघिष्ठत्वं दधति दलितेन्दीवरान्तर्दलाक्ष्या ॥२॥५१॥

विरहिणी नायिका के वर्णन में कवि ने २५ श्लोक लिखे हैं। भावों की कोमलता तथा विरह की तीव्रता की दृष्टि से यह पद्य बड़े ही अनूठे हैं। कहीं २ तो विरह का बड़ा करुण चित्र अंकित किया है। विरहावस्थाओं का वर्णन करते हुए अन्त में नायक कहता है—

आस्ते शेते भ्रमति भजते मूकतां वह्वयद्
स रोदित्युदितकरुणं धैर्यमालम्बते च ।
मूर्च्छां प्राप्नोत्यपि च लभते चेतनामित्यशक्तो
वक्तुं वेधा अपि विरहजान्यङ्गनाचेष्टितानि ॥२॥६५॥

अपनी प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाओं की संभावना करने के बाद राजकुमार मयूर को प्रेयसी के लिए सुनाया जाने वाला अपना सन्देश बताता है। सन्देश में सर्व प्रथम उसने अपनी विरहावस्थाओं का वर्णन किया है, बाद में प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आश्वासन दिया है और अन्त में कुछ अभिज्ञान घटनाएं मयूर की सत्यता प्रमाणित करने के लिए उल्लिखित की हैं। राजकुमार ने अपने विरह का भी बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया है। अपनी दशा का वर्णन करते हुए वह कहता है—

> निःश्वासैर्मे दहनलहरीमुद्गिरद्भिः समन्ता
> न्निःसर्पद्भिः परिसरजुषो दीर्घिका दीर्घनेत्रे।
> शोशुष्यन्ते नयनगलितैः सन्ततैरम्बुपूरैः
> श्चित्रं चित्रं पुनरपि दशां प्राक्तनीं प्राप्नुवन्ति ॥२॥७७॥

कवि ने प्रेयसी के विरह में विह्वल नायक की सन्ताप और अश्रुपात अवस्थाओं का कैसा आश्चर्य पूर्ण चित्र यहां प्रस्तुत किया है।

विरही नायक प्रेयसी के विरह में उसके अंगों की तत्तत् प्राकृतिक रम्य वस्तुओं में शोभा देख देखकर किसी तरह अपना जीवन बिताता है—

> अम्भोदाम्भोरुहशशिसुधा शैल शैवालवल्ली
> व्योमश्रीमत्पुलिनकदलीकाण्डबालप्रवालैः ।
> त्वद्गात्रश्रीग्रहणसुभगभागुकैश्चित्ररम्यै-
> स्तैस्तैर्भावैः कथमपि कुरङ्गाक्षि कालं क्षिपामि ॥

काले काले मेघों में प्रेयसी के केशों की शोभा, कमलों में नेत्रों की शोभा, चन्द्रमा में मुख की शोभा, सुधा में अधरमाधुर्य, शैलों में कुचसौन्दर्य, शैवालवल्ली में रोमावली की शोभा, आकाश में मध्यदेशकी तनिमा, पुलिनप्रदेशों में नितम्ब भाग की गरिमा, कदली-खण्डों में प्रेयसी की जंघाओं का सौन्दर्य तथा बालप्रवालों में प्रेयसी के चरणों की लालिमा देख-देख कर विरही राजकुमार का अपना समय काटना स्वाभाविक ही है। कवि ने इस पद्य में बड़ी सुन्दर २ वस्तुओं का समवाय प्रस्तुत किया है। कालिदास का यक्ष भी प्रकृति के विभिन्न सुन्दर रूपों में अपनी प्रेयसी के सादृश्य के पाने की चेष्टा करता है। (द्र० मेघसन्देश का—श्यामास्वङ्गं चकितहरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातम्—इत्यादि पद्य ॥२॥४२॥)

अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद राजकुमार अपनी प्रेयसी को शोक न करने तथा धैर्य रखने का परामर्श देता है—

> त्वद्विश्लेषादिति समुदितामस्मदीयामवस्था
> विज्ञायाशु प्रशमय शुचं शारदाम्भोजनेत्रे।

मुग्धे सत्थापय च सुनरामात्मनात्मानमाम्ब
स्वैरं यावन्मदभिगमनं जातविश्वासयोगा ॥२॥८६॥

मेघ सन्देश की तरह इस काव्य में भी सन्देश ग्राहक तथा सन्देश की सत्यता प्रमाणित करने के लिए कुछ अभिज्ञान घटनाएं वर्णित की गई हैं। सर्व प्रथम राजकुमार कहता है—

कान्ते तत् किं स्मरसि ननु यत् सार्धमालीजनेन
स्वैरं सायं कुसुमनिचये प्रस्तुते पुष्पवाट्याम्।
आश्लेषोत्के मयि सविधगे भीतभीतैर हा हा
बाध्ये भृङ्गैरहमिति सरोमाचमालिंगथा माम् ॥२॥८७॥

इसके बाद एक दूसरी घटना भी फिर वर्णित की गई है—

त्वद्वक्त्रालोकनरसभृश स्विन्नगात्रं मुहुर्मां
पश्यन्ती त्वं गुरुसविधगा शङ्कमानाऽन्यसङ्गम्
आसीः कोपात् कलुषनयना तावदेवात्मयाणी
हन्त्यात्मानं परमिति सखीबोधितागाः प्रसादम् ॥२॥८८॥

लेकिन यह दोनों अभिज्ञान घटनाएं कुछ उच्चकोटि की नहीं हैं तथा नीरस और परम्पराभुक्त सी हैं। कालिदास ने भी कोई बड़ी भावपूर्ण घटना अभिज्ञान स्वरूप वर्णित नहीं की है। लेकिन इस काव्य में एक तृतीय अभिज्ञान घटना भी वर्णित की गई है—

मुक्त्वा सायं प्रहसितमुखीं पद्मिनीं षट्पदोऽसौ
भोक्तुं भूयः कुवलयवनीं पश्य याति प्रदोषे।
इत्थं सायंसमयविभवं वर्णयन्त प्रिये मां
निर्यद्बाष्पैर्निभृतमभिनः कोपरूक्षैः कटाक्षैः ॥२॥८९॥

भावोत्कर्ष की दृष्टि से यह अभिज्ञान घटना बड़ी ही उच्च कोटि की है। प्रिय के मन में दो प्रेमिकाओं के उपभोग की उत्सुकता देख कर ही प्रेयसी के कुपित होने का इस पद्य में उल्लेख किया गया है। इस काव्य की नायिका मेघ-सन्देश की नायिका से भी कहीं अधिक मानिनी है, क्योंकि वह प्रिय के मन में किसी अपर नायिका के प्रति उत्सुकता की भावना से ही कुपित हो जाती है। वास्तव में उदय कवि ने यहां पर कालिदास का भी अतिक्रमण कर दिया है। इस प्रकार के उत्कृष्ट अभिज्ञान वाक्य अन्य सन्देशकाव्यों में प्राय कम ही मिलते हैं।

संदेश के अन्त में मेघ की तरह मयूर को भी आशीर्वाद दिया गया है—

मा भूत्कान्तविरहघटना किं च जन्मान्तरेऽपि ॥२॥६२॥

इस प्रकार मार्गवर्णन, अनन्तपुर नगरी तथा नायिका के गृह इत्यादि का वर्णन विरहिणी नायिका तथा विरही नायक के विरहवर्णन और सन्देश कथन में मेघसन्देश का ही इस काव्य में अनुसरण किया गया है। विचार-तारतम्य, वस्तुवर्णन, छन्द तथा शिल्पविधान की दृष्टि से यह काव्य मेघ सन्देश का एक सफल अनुकरण है। माधुर्य और प्रसाद गुण होने पर भी काव्य में लम्बे और क्लिष्ट समास स्थान २ पर पाए ही जाते हैं—

१ अविरतमदधाराधोरणीवारणोद्यन्
मदमधुकरमालाकूजितोद्घोषिताशम् ॥१॥१॥

२ स्वर्गारामद्रुमनवलतासूनसौरभ्यलोभ
भ्राम्यत्पुष्पंधय कलकलध्वानवाचालिताशे (सौधे) ॥१॥२॥

३ स्थूल स्थूल प्रचुर फल सभार भग्नोत्तमाग—
स्वगतैरचितिश्रनिकराबद्धसान्द्रान्धकारा।
पृथ्वीकान्तातिलकरचनास्फीतिमान दधाना
प्रीतिं दद्युस्तव नयनयोरिंगुदीभूविभागा ॥१॥४७॥

इस प्रकार के समस्त पद एक विरहकाव्य में कुछ कम ही सुन्दर लगते हैं।

समस्त पद बहुल होने पर भी इस सन्देश काव्य को कवि ने 'हृष्यन्मल्लीमधुर मधुनिष्यन्दि सन्देशकाव्यम् (१.२)' कहा है। कवि का यह कथन केवल आत्म श्लाघामात्र नहीं है। कर्णमधुर अनुप्रास और यमक यत्र तत्र काव्य में बिखरे पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित अवतरण देखने योग्य हैं—

१ सन्देशं तं नयविरहिणं साम्प्रतं मे प्रतीतं
सन्देशं तं नय नयनिधे यत्र सा पद्मलाक्षी ॥१॥२१॥

२ आनीहि त्व अनितजनतानन्द आयावियुक्तम् ॥१॥१६॥

३ कोऽलं वक्तुं कविरनुपमामृद्धिमित्यर्थयास
कोलम्बेति ध्रुवमयिक्लो यत्र जागर्ति शब्द. ॥१॥४२॥

४ कुंजे कुंजे कुसुमितलते यत्र कूजाच्छलेन ॥२॥८॥

उपर्युक्त समीक्षा से यह तो स्पष्ट ही है कि कालिदास का अनुकरण करने पर भी कवि ने अपनी उत्कृष्ट मौलिक प्रतिभा का स्थान-स्थान पर काव्य में परिचय दिया

है। कवि की शैली प्रभावपूर्ण है और भाषा भी कवित्वमय तथा विचारों से समृद्ध है। भारतवर्ष में वास्को डि गामा के आने से एक शतक पूर्व अर्थात् ई० चतुर्दश शतक के अन्त में केरल प्रदेश के राजनैतिक भूगोल पर भी यह काव्य बड़ा प्रकाश डालता है। अतः इतिहासकारों के लिए यह सन्देशकाव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण भारत के संस्कृत सन्देशकाव्यों में इस काव्य का साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टि से प्रमुख स्थान है।

वामनभट्ट बाण का हंसदूत (वि० पंचदश शतक)

वामन-भट्ट बाण राजा वेमभूपाल का राजकवि[1] था। वेमभूपाल के अमरुशतक पर शृङ्गारदीपिका टीका[2], सप्तशतीसार[3] और साहित्यशास्त्र पर साहित्यचिन्तामणि[4] यह ग्रन्थ लिखे हुए पाए जाते हैं। यह राजा सं० १४०३ ई० के लगभग

---

१ दे० वेमभूपालचरितम् (श्रीरंगम्) पृ० २, श्लोक ७-८
कविरभिनवबाणः काव्यमत्यद्भुतार्थं भुवनमहितभूमा नायको वेमभूपः।
त्रिभुवनमहनीयख्यातिमानेष योगः प्रकटयति न केषां पण्डितानां प्रहर्षम् ॥७॥

चूडामणिर्नृपाणां दुर्मतिपरिपन्थिशिम्बरिद्म्भोलिः।
सर्वज्ञ-चक्रवर्ती पेद्दकोमटिवेमभूपतिर्जयति ॥८॥

वेमभूपाल के परिवार के विशेष विवरण के लिए वेमभूपाल चरित (वीरनारायण-चरित) पढ़िए।

२ दे० शेषगिरि शास्त्री की रिपोर्ट, भाग २, पृ० १६३-१६४, मद्रास ओरियंटल एम० एस० एस० लाइब्रेरी।

३ संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, मद्रास, २२, ८७०८

४ त्रावंकोर का संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, सं० ८०

कुमारगिरि के बाद कोण्डविडु के राज सिंहासन पर बैठा था। इसने विभिन्न अव-सरों पर ब्राह्मणों के लिए अनेक ग्राम उपहार में दिए।[1]

वामन भट्ट ने शब्दचन्द्रिका नामक अपने कोषग्रन्थ में स्वामी विद्यारण्य और सार्वभौम जैसे सत्कवियों के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।[2] विद्यानगर अथवा विजयनगर राज्य के संस्थापक स्वामी विद्यारण्य अथवा माधवाचार्य ई० चतुर्दश शतक के अन्त और पञ्चदशशतक के प्रारम्भ में हुए।[3] अत यह स्पष्ट ही है कि राजा वेमभूपाल का राजकवि और स्वामी विद्यारण्य का शिष्य यह वामनभट्ट बाण ई० पञ्चदशशतक के पूर्वार्ध में रहा होगा तथा स्वामी विद्यारण्य का यह एक अल्पवयस्क शिष्य होगा। अपने शब्दरत्नाकर के प्रारम्भ में—

वरदाग्निचित पौत्र' पुत्र कोमटियज्वन ।
जागर्ति वामनो बाणो वत्सवंशशिखामणि ॥

और अन्त में 'इति वत्सकुलवामन भट्ट विरचिते शब्दरत्नाकरे' ऐसा वामनभट्ट ने लिखा है।[4] इससे पता चलता है कि यह वत्स गोत्र के वरदाग्निचित् का पौत्र तथा कोमटियज्वन् का पुत्र था। अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में राजा हरिहर के समृद्ध शासन काल (स० १३८४–१४२६ ई०) में यह विजयनगर राज्य में रहा। यहां इसने शृंगारभूषण[5] नामक एक भाण लिखा जो कि विरूपाक्ष के उत्सव पर

---

१ स० १४११ ई० में नृसिंह नामक किसी ब्राह्मण के लिए मल्लवर नामक कोई ग्राम इस राजा ने दिया। एपेग्रैफिया इ डिका, भाग ४, सं० ४६, श्लोक २६ देखिए (प्लेट २, दूसरी तरफ)।

श्री शाके गुण रामविश्वगणिते कार्तिक्यहेऽब्दे वरे
प्रादात् काटयवेमय स्त्ववनितामल्लारिकानामत ।
ग्राम मल्लवर नृसिंह विदुषे कारणद्विजायादरा-
दाचन्द्रार्कसुदर्शनालसमति सर्वार्थभोगाष्टकम् ॥

२ विद्यारण्यगुरून् सार्वभौमाद्यखिल सत्कवीन् ।
नमस्कृत्याथ बाणेन क्रियते शब्दचन्द्रिका ॥
स्वर्गे सारस्वतपुरी भोगभूमिस्तु सैरिक' ।
गीर्वाणनगरी धीर-साधारण पुरीति च ॥

३ डा० जे० बी० चौधरी द्वारा प्रकाशित काल-माधव-लक्ष्मी, पृ० ३५–३८ देखिए। "सोरसेज आफ विजयनगर हिस्ट्री" पृ० ४७-५१ भी देखना चाहिए।

४ दे० तंजोर कैटालाग आफ एम० एस० भाग ६, सं० ५०५१।

५ काव्यमाला में बम्बई से तथा मद्रास से प्रकाशित।

खेल' गया था। इस भाण में विलासशेखर की विलासमय चेष्टाओं के वर्णन प्रसग में कवि ने मधुर छन्दों में सुन्दर कल्पना के साथ तत्कालीन सामाजिक जीवन का चित्र अंकित किया है। इससे पता चलता है कि कवि को तत्कालीन सामाजिक जीवन का निकट परिचय प्राप्त था। लगभग तीस वर्ष की आयु होने पर कोण्ड विडु के शासक राजा पेद कोमटि वेमभूपाल (स० १४०३-१४२० ई०) की राजसभा में यह चला आया। वामन भट्ट बड़ा ही अद्वितीय विद्वान् था और इसकी कविता भी बड़ी उच्च कोटि की मानी जाती थी। सद्भाषावल्लभ और कविसार्वभौम इसकी उपाधियां थीं। गद्य काव्य के क्षेत्र में कादम्बरी के रचयिता बाण भट्ट का यह अनुकरण करना चाहता था। बाणभट्ट भी वत्सगोत्र का था। इसलिए वामनभट्ट गद्य काव्य के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त करना अपना पैतृक अधिकार समझता था। यह अपने को बाण का अवतार मानता था और अपने लिए अभिनवभट्ट बाण कहा करता था। बाण ने अपने संरक्षक हर्ष वर्धन के जीवन पर हर्षचरित लिखा। इसी रचना के अनुकरण पर वामनभट्ट ने अपने संरक्षक राजा वेमभूपाल अथवा वीरनारायण के जीवन पर वेमभूपालचरित या वीरनारायणचरित लिखा। बाण के बाद कोई भी कवि सुन्दर गद्यकाव्य न लिख सका, इस अपयश को दूर करने के लिए ही वामनभट्ट ने वेमभूपालचरित लिखा[1]। बाण का अनुकरण करने में वामनभट्ट को सफलता भी पर्याप्त प्राप्त हुई है।

वामनभट्ट की रचनाएं

(१) काव्य-ग्रन्थ

(अ) नलाभ्युदय —इस काव्य की कथावस्तु स्वत स्पष्ट है। दुर्भाग्यवश कोई भी पूर्ण हस्तलिखित प्रति इसकी उपलब्ध नहीं है। श्री डॉ० गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज में प्रकाशित पुस्तक (स० ३) भी अपूर्ण है और नवम सर्ग के श्लोक स० ३ के बाद काव्य समाप्त हो जाता है।

(ब) रघुनाथ-चरित —यह काव्य ३० सर्गों में पूर्ण होता है और अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति तंजोर हस्तलिखित पुस्तक संग्रह (जिल्द ६, स० ३७२१) में है और दूसरी अड्यार पुस्तकालय (७, ७७) में है।

---

१ वाणीविलास प्रेस, श्रीरंगम् से प्रकाशित वेमभूपालचरित की भूमिका, पद्य सं० ६ देखिये-

> बाणादन्ये कवय' काणा' खलु सरसगद्यसरणीषु।
> इति जगति रूढमयशो वामनबाणोऽपमार्ष्टि वत्सकुल ॥

हंसदूत —कालिदास के मेघसंदेश के अनुकरण पर लिखा गया यह एक संदेशकाव्य है तथा मेघसंदेश की ही कथावस्तु इसकी कथावस्तु है।

(द) बाणासुर विजय —ओरियन्टल लाइब्रेरी मद्रास की त्रिवर्षीय हस्तलिखित-पुस्तकसूची, ६, सं० ७१८१। यह पुस्तक पूर्ण है और ग्रन्थाक्षरों में लिखी हुई है।

(२) नाटक-ग्रन्थ

(अ) पार्वतीपरिणय-कुमारसंभव की ही कथा के आधार पर यह नाटक लिखा गया है। इसमें पांच अंक हैं। लेखक ने इस नाटक में अपने सम्बन्ध में लिखा है-

> अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिकौस्तुभो बाण'।
> नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखरंग लासिका वाणी ॥

(ब) कनकलेखा – इस नाटक में चार अंकों में व्यासवर्मन् के साथ कनकलेखा के विवाह का वर्णन किया गया है। कनक-लेखा और व्यासवर्मन् दोनों विद्या धर थे लेकिन किसी ऋषि के शाप से मनुष्य रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न हुए थे। यह नाटक अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। हस्तलिखित पुस्तक के लिये त्रिवर्षीय सूची मद्रास भाग ६, सं० ७१०० (कनकरेखाकल्याण) तथा कुप्पूस्वामी की रिपोर्ट (१९१६), पृ० ४१-४२ देखिये।

(स) शृंगारभूषण भाण — यह एक भाण ग्रन्थ है और साहित्य शास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट भाण ग्रन्थ के सारे लक्षण इसमें पाये जाते हैं। विलासशेखर नामक एक धूर्त व्यक्ति इस भाण का नायक है। यह रचना एक अंक में ही समाप्त हो जाती है। नायक एक ऐसे व्यक्ति से वार्तालाप करता है जिसको कि केवल वह ही देखता और सुनता है। इस नाटक में कोई अन्य पात्र नहीं है। शृंगार और वीर रस का उचित प्रयोग किया गया है तथा वस्तु भी काल्पनिक ही है।

(३) गद्यग्रन्थ–जीवन चरित

(अ) वेमभूपाल चरित — पुस्तक के अन्त में 'सर्वोत्कर्षेण वर्तमान साक्षात्लक्ष्मी समुच्चारितजयशब्द निभ विश्वम्भरा-पाल मौलिमालामकरन्दसुरभितचरणार विन्दो जयति विशदाधिकरिमश्रो वेमभूपाल' इस कथन से यह बात निःसंदिग्ध हो जाती है कि यह रचना वेमभूपाल के जीवन-काल में ही पूर्ण हो गई थी जीवन-चरित की विशिष्टताओं के साथ ? इस रचना में बहुत से ऐतिहासिक तथ्य भी पाए जाते हैं। साहित्यिक महत्त्व के साथ साथ इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है। श्रीरंगम् से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।

[४] कोषग्रन्थ

(क) शब्दचन्द्रिका —यह रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। हस्तलिखित प्रति के लिए त्रिवर्षीय सूची मद्रास, भाग ३, संख्या ३३८०, मैसूर केटालाग, ६०६ और तंजोर केटालाग भाग ६ सं० ५०५० देखिए।

(ख) शब्दरत्नाकर —यह ग्रन्थ भी अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। हस्तलिखित पुस्तक के लिए अड्यार लाइब्रेरी केटालाग भाग २, १६ तथा तंजोर केटालाग भाग ६, सं० ४०५८-६१ देखिए।

हंसदूत की कथा

हंसदूत की कथा मेघसंदेश जैसी ही है। अलकापुरी से निर्वासित एक यक्ष अपनी प्रियतमा के पास अपना विरह संदेश भेजता है। केवल इतना भेद है कि हंसदूत में यक्ष रामगिरि पर्वत पर न रह कर सुदूर दक्षिण भारत में कैलाश पर्वत पर रहता है और मेघ के स्थान पर हंस को अपना दूत बनाता है।

पूर्वभाग में मार्ग वर्णन है। उत्तरभाग में अलका नगरी, यक्षगृह तथा नायिका के वर्णन के बाद संदेश बतलाया गया है। मार्गवर्णन में मलयपर्वत से हिमालय स्थित अलकापुरी तक के मार्ग में आने वाले स्थानों का वर्णन किया गया है। मलयपर्वत से चलकर ताम्रपर्णी नदी के किनारे किनारे उड़ते हुए मदुरा नगरी और वहां से फिर कावेरी नदी की शोभा देखते हुए रंगदेश, चोलदेश और पुण्डरीक नगर आने के लिए हंस से कहा गया है। उसके बाद क्रमश: काञ्जीपुरम्, पुण्यकोटि, करियगिरि और कृष्णा नदी आने का हंस को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर अञ्जनाद्रि, काल हस्तिपर्वत और कनकमुखरी नदी के बाद आन्ध्र देश और वहां से फिर कृष्णवेणी, तुंगभद्रा तथा गोदावरी नदी होते हुए विन्ध्य पर्वत पहुंचने का हंस को आदेश दिया गया है। इसके बाद नर्मदा, यमुना और गंगा नदियों को पार कर काशी नगरी तथा इक्ष्वाकु राजाओं की राजधानी अयोध्या नगरी, तदनन्तर सरयू और गण्डक नदी होते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचने का हंस को परामर्श दिया गया है। वहां से फिर हिमालय, क्रौंचरन्ध्र और कैलाश पर्वत को पार कर हंस के अलकापुरी पहुँच जाने का उल्लेख किया गया है।

अलका के वर्णन के बाद यक्ष के गृह का वर्णन किया गया है। तदनन्तर विरहिणी नायिका की विभिन्न विरहावस्थाओं की संभावना के बाद यक्ष ने हंस को अपनी प्रेयसी के प्रति दिया जाने वाला संदेश बताया है। अन्त में हंस के प्रति शुभ कामना के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

साहित्यिक समीक्षा

यह संदेश काव्य मध्यकालीन भारत का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है। विभिन्न नगरों, नदियों, पर्वतों और जातियों का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है। दक्षिणभारत और उत्तर भारत में यातायात के मार्ग पर भी यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। कालिदास के मेघ संदेश के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है। काव्य में दो भाग हैं। प्रथम भाग में मार्गवर्णन तथा द्वितीय में अलकावर्णन, यक्षगृहवर्णन, नायिका का विरहवर्णन और सन्देश कथन हैं।

पूर्वभाग में ६१ तथा उत्तर भाग में ६० श्लोक हैं। मन्दाक्रान्ता छन्द का ही सम्पूर्ण काव्य में प्रयोग हुआ है। माधुर्य और प्रसाद गुण युक्त भाषा में ही काव्य की रचना की गई है। कवि की सरसता का तो इसी से पता चल जाता है कि वह हंस से साथ में अपनी पत्नी के भी ले जाने का अनुरोध करता है। थकी हुई हंसिनी को विश्राम पहुचाने का हंस के लिए कवि ने बड़ा ही सरस परामर्श दिया है —

> क्लाम्येत्तन्वी गगनपदवीलंघनक्लेशतस्ते
> क्लान्तामेनां मृदुलसुमन केसरोद्गारपक्षाम्।
> छायालाना पनसविटपिना सीम्नि विश्रम्य पश्चा —
> दस्यै दद्या सरसिजमधु स्वेन चञ्चूपुटेन ॥१॥६॥

ताम्रपर्णी नदी के द्वारा हंस के आतिथ्य की कवि ने बड़ी सुन्दर कल्पना की है—

> अम्बूद्गीर्णैर्नवमणिगणै कल्पितार्घोपहारा
> सा तिष्ठेत स्तिमितगमना तुभ्यमभ्यागताय।
> आतिथ्याय भ्रमरनिरुतैं किं च याचिष्यते त्वा
> त्वं चास्वाद्यकमलमधुरसस्तत्र तां प्रीणयेथा ॥१॥१४॥

गंगा वर्णन में भी कवि ने बड़ी सुन्दर उपमाए और रूपक प्रयुक्त किये हैं—

> सा लोकाना दुरिततमस शारदी चन्द्रलेखा
> भूषा मुक्तामणिविरचिता या च सुरस्त्यगनाया।
> प्रजीभूता मुनिपरिषदा या पुन पुण्यधारा
> दूराद्देना त्रिदशतटिनीं भक्तिनम्रो भजेथा ॥१॥८६॥

> आधत्ते या हिमवति गिरावुत्तगसगलक्ष्मीं
> मौले शम्भोर्विलसति च या मालतीमालिकेव ॥१॥४४॥

कालिदास के भावों की छाया लेकर स्वतन्त्र रूप से कवि ने बड़ी सरस कल्पनाएं प्रस्तुत की हैं। यक्ष अपनी पत्नी कन्दर्प लेखा का वर्णन करते हुए कहता है—

विद्युद्गौरी विमलदशना वृत्तगम्भीरनाभि
ताम्यन्मध्या तरलशफरीताडिताम्भोरुहाक्षी।
तु गापीनस्तनभरनता दुर्वहश्रोणिभागा
सौन्दर्याणां सरणिरिव या तत्र दृश्येत तन्वी ॥२॥६७॥

ज्ञातव्या सा मम सहचरी जीवितस्य द्वितीया ॥२॥६४॥

इन पंक्तियों को पढ़ते ही मेघसंदेश की—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभि ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम् ॥२॥२१॥

ता जानीथा परिमितकथा जीवितं मे द्वितीयम् ॥२॥२२॥

यह पंक्तियां बरबस ध्यान में आ जाती हैं।

अपने गृह की पहिचान के लिए विभिन्न लक्षणों को बताकर अन्त में अपनी अनुपस्थिति के कारण गृह की कान्तिहीनता का विचार कर यक्ष कहता है—

प्राय कान्तिर्न भवति पर प्राक्तनी मद्वियोगात्
किं शोभायै भवति गगनं विप्रकृष्टेन्दुबिम्बम् ॥२॥८८॥

मेघसन्देश में कालिदास ने भी ऐसे ही विचारों को व्यक्त किया है।

हंस के यक्ष गृह में जाने के लिए प्रस्तुत होते समय चलने वाली वायु को लेकर कवि ने बड़ी सुन्दर और सरस उत्प्रेक्षा की है—

अन्तर्यातु चलितमनसो मत्प्रिया सन्दिहानो-
राह्लादं ते वपुषि किलयन्नध्वखेदापनोदी।
वास्यत्यग्रे परिमलवतीर्मन्दमाधूय वल्ली-
र्वार्तां पृच्छन्निव मधुरता गीतिभिर्मातरिश्वा ॥२॥८९॥

वामनभट्ट का विरहवर्णन परम्परामुक्त नहीं है। इसमें तीव्रता और गम्भीरता दोनों पाई जाती हैं। प्रियविरह में कन्दर्पलेखा की दीन अवस्था का जो चित्र उपस्थित किया गया है, वह करुणा और शोक दोनों से ही पूर्ण है। निम्न पद्यों में कवि ने विरहिणी कन्दर्पलेखा का क्या ही करुण चित्र अंकित किया है—

वैलक्षण्यं वपुषि दधती स्वेदिनी वेपमाना
विध्वस्तांगी विकलकरणा बिभ्रती रोमहर्षम् ।
जातस्तम्भा मुकुलनयना मोहमासादयन्ती
सा दृष्टेव स्मरविषमुचा याति तां तामवस्थाम् ॥२॥९९॥

विन्यस्यन्ती करकिसलये स्वेदिनीं गण्डपालीं
मस्राम्भोभिः स्तनकलशयोरादधानाऽभिषेकम् ।
अन्तश्चिन्तास्तिमितनयना सा मुहुर्जं स्मितेन
श्वासोष्णेन स्मरहुतभुजो वेदना वेदयेद्वा ॥२॥१००॥

लेखामिन्दोरिव दिनमुखे हीनतामश्नुवाना
मग्नोपघ्नामिव नवलतां छायया मुच्यमानाम् ।
मेघापाये सरितमिव तां बिभ्रतीमेकवेणीं
दृष्ट्वा यावद् भवसि करुणाशोकयोरेकपात्रम् ॥२॥१०१॥

नायिका की विरहावस्थाओं को देखकर हंस ही क्या, कोई भी सहृदय बिना दुःखी हुए नहीं रह सकता।

जिस प्रकार कालिदास ने मेघदूत में यक्षसन्देश की भूमिका प्रस्तुत की है, उसी प्रकार वामनभट्ट बाण भी अपने हंसदूत में यक्ष सन्देश की प्रस्तावना करता है। हंसदूत में भी यक्ष सर्वप्रथम यही कहता है—

गाढाश्लेषे तव किल पुरा य स्तनोत्तुङ्गभूपा
मन्योन्याङ्गव्यतिकरविधेरन्तरायं विवेद ।
सोऽयं दिष्ट्या सुतनु सुतरां दूरवर्ती पतिस्ते
जातोत्कण्ठो वदति भवतीमित्थमस्मन्मुखेन ॥२॥१०४॥

वस्तु भेद होते हुए भी यह श्लोक मेघदूत के 'शब्दाख्येयं यदपि किल ते त्वत्स खीनां पुरस्तात्' ॥२॥४०॥ इत्यादि पद्य से प्रभावित हो कर ही लिखा गया है।

कालिदास का यक्ष कम से कम अपनी प्रेयसी का चित्र तो बना लेता है लेकिन इस काव्य में यक्ष चित्र में तो क्या, अपने चित्त में भी प्रेयसी की रूप रेखा स्थिर नहीं कर पाता है—

चित्रे कर्तुं व्यवसितमतिस्तूलिकायां धृतायां
भग्नारम्भो नयनसलिलैश्चेतसि त्वां लिखामि ।
तत्रापि द्रागरतिरधिकोत्लासिनी मे विदन्ती
यत् सत्यं नो वरतनु विधिः संगमे साभ्यसूयः ॥२॥११२॥

यक्ष अपनी प्रेयसी से कहता है—

स्वप्ने लब्ध्वा कथमपि समाश्लिष्य सानन्दगाप्य
त्वामुत्कण्ठागलपितवपुष यावदामन्त्रयामि।
मिथ्या नेद पुनरिति मया तत्क्षण चिन्त्यमाने
तावद्दैव विघटयति नो तूर्णमुत्पाद्य बोधम् ॥२॥११७॥

यक्ष के इस कथन में उसके विरह की तीव्रता तथा असहायावस्था का कवि ने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

सदेश के अन्त में इस काव्य में भी यक्ष अपनी प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आश्वासन देता है—

सेयं दीर्घा विरहरजनी हन्त किंचिदुविभाता
शापस्यान्त सपदि भविता वासरै कैश्चिदेव।
मासावेतौ गमय तदनु मान्य भोक्ष्यावहे तान्
भोगानिष्टान् रजनिषु पर प्रौढचन्द्रातपासु ॥२॥१२०॥

सदेश पहुंचाने की प्रार्थना के बाद यक्ष ने हस को आशीर्वाद भी दिया है—

कृत्वा कार्य मम पुनरिद कीर्तिमेवा च लब्ध्वा
प्रत्यावृत्त पुनरपि तथा (हस्या) सगत संगत सन्।
चेतोरम्ये विहर सलिले स्वेच्छया निम्नगाना-
मव्यापन्ना विहग युवयोरस्तु सयोगलक्ष्मी ॥२॥१२१॥

यद्यपि यह सदेश काव्य मेघसदेश की कथा को ही लेकर लिखा गया है तथा भाव, छन्द और शैली में भी कवि ने मेघसदेश का ही अनुकरण किया है, फिर भी इस काव्य को मेघसदेश का अन्धानुकरण नहीं कहा जा सकता। स्थान स्थान पर भावपूर्ण सूक्तियां और उदात्त वर्णन इस काव्य में दृष्टि गोचर होते हैं —

१ को वा लोके विरहजनिता वेदना सोढुमीष्टे ॥१॥२॥

२ पात्रे न्यस्तं भवति हि पर वस्तु लोकाभिनन्द्यम् ॥१॥२८॥

३ मित्रस्यार्थे विदितमनसा कालहानि क्व स्यात् ॥१॥३०॥

४ विम्बाकाना फलमुपनतं येन वा स्वादनीयम् ॥१॥४२

कवि ने अलका नगरी का भी बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है। साथ में शृंगार रस की छटा भी दर्शनीय है। अलका की स्त्रियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

यत्र स्त्रीणां वपुषि तनुता वक्रता भ्रूलतायां
लौल्यं दृष्ट्योः कुचकलशयोरेव काठिन्यवार्ता।
मान्द्यं लीलागतिषु सदसत्संशयो मध्यभागे
भङ्गः केशेष्वधररुचके रागयोगप्रसङ्गः ॥२॥६२॥

मेघसन्देश की तरह इस काव्य में भी अभिसारिकाओं का वर्णन पाया जाता है—

तिर्यग्नीताः शिशिरशुभ्र कुटीचन्द्रमःकौमुदीभि-
र्यस्यां रात्रौ रमणवसतिं यातुकामा रमण्यः।
सान्द्रस्निग्धैः सपदि कबरीकल्पितैरन्धकारै-
रन्याः श्यामामभिसरणतो नूनमापादयन्ति ॥२॥६४॥

रमणियों के केशसौन्दर्य का तो कवि ने यहां पर बड़ा ही अपूर्व चमत्कार दिखाया है।

यक्ष के उद्यान का भी बड़ा उत्कृष्ट वर्णन किया गया है—

सीमा तत्तद्विटपिजनुषां सम्पदामानवीना
योग्या भूमिर्मलयमरुतामालयः शीतलिम्नाम्।
गुञ्जाशाला मधुपसुदृशां केलिसौधं पिकानाम्
उद्यानं मे तव नयनोत्सवं तत्र कुर्यात् ॥२॥८३॥

काव्य में यत्र तत्र अनुप्रास की छटा भी दिखलाई पड़ती है—

(१) पुण्यैः प्राप्य पुरमुपसरे पुण्डरीकाभिधानम् ॥१॥७४॥
(२) माद्यन्माद्यन्मधुपमिथुना दीर्घिका दर्शनीया ॥२॥८६॥ इत्यादि

काव्य के परिशीलन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह सन्देश काव्य प्रथम कोटि की एक साहित्यिक रचना है। कवि ने अनुकरण करते हुए भी अपनी उदात्त वर्णनशक्ति, भावप्रवणता और सुकुमार कल्पना का परिचय दिया है। भाषा पर तो कवि का पूर्ण अधिकार है ही। इन सब तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए वामन भट्ट बाण को एक सफल सन्देशकाव्यकार मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

विष्णुदास का मनोदूत (विक्रम षोडश शतक का पूर्वार्ध)

सन्देशकाव्यों की परम्परा में इस मनोदूत काव्य का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि परम्पराप्राप्त शृंगार रस को छोड़कर शान्त रस ही इस काव्य में अपनाया गया है। इस काव्य का लेखक बंगाल के श्री चैतन्य महाप्रभु का मातुल था जैसा कि काव्य के प्रारम्भ में 'श्री चैतन्यदेव मातुल विष्णुदास विरचितम् मनोदूतम्' इस कथन से प्रतीत होता है। भारवि के किरातार्जुनीय के अनुकरण पर कृष्णार्जुनीय नामक महाकाव्य का लिखने वाला गोपीनाथ कविकण्ठाभरण इस मनोदूत के लेखक का जामाता था। पूर्व बंगाल के धानुका प्रदेश में रहने वाले वैदिक कृष्णात्रेय गोत्र के कविकण्ठाभरण के वंशजों तथा रथीतर गोत्र के विष्णुदास के वंशजों में भी ऐसी प्रसिद्धि है कि विष्णुदास ने अपना यह काव्य अपने जामाता के लिए भेंट किया था। श्री चैतन्य महाप्रभु (जन्म शक संवत् १४०७ = ई० सन् १४८५, मृत्यु शक संवत् १४५५ = ई० स० १५३३) से सम्बद्ध होने तथा उसके पुत्र और पुत्री दोनों की तरफ से उपलब्ध वंशपरम्परा सबन्धी विवरण के आधार पर इस कवि को ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी में कहीं पर रखा जा सकता है। काव्य के अनुशीलन से यद्यपि कवि के पूर्ण वैष्णव होने का तो विश्वास नहीं होता है, फिर भी वैष्णव सम्प्रदाय की ओर कवि की दृढ प्रवृत्ति का परिचय अवश्य मिलता है। कवि के वंश में वैष्णव सम्प्रदाय से कुछ अनुराग रखने की परम्परा, ऐसा प्रतीत होता है, आगे भी कई पीढ़ियों तक चलती रही और उसी के वंशज किसी रामाराम कवि ने स्वयं भी मनोदूत नामक काव्य लिखा। इस काव्य का भी विषय विष्णुदास के मनोदूत जैसा ही है तथा विष्णुदास का उल्लेख भी इस काव्य में पाया जाता है। यद्यपि संस्कृत साहित्य परिषद् कलकत्ता में इस मनोदूत की केवल एक खंडित प्रति सुरक्षित है। संभव है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र तथा धार्मिक प्रवृत्तियों को परिवर्तित करने में उनकी माता, मामा और नाना इत्यादि का अवश्य कुछ प्रभाव रहा हो। विष्णुदास के इस मनोदूत की केवल तीन हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हुई हैं —

(१) संस्कृत साहित्य परिषत् कलकत्ता की खंडित प्रति जिसमें केवल २६ श्लोक हैं।

(२) इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित एक अन्य प्रति जिसका कि लायब्रेरी के विस्तृत सूचीपत्र (सं० ७, पृ १४७०) में वर्णन किया गया है।

(३) ढाका विश्वविद्यालय में उपलब्ध एक अन्य प्रति।

इन तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर संस्कृत साहित्य परिषत् कलकत्ता ने यह काव्य श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती, एम० ए० द्वारा सपादित करा कर मूलमात्र प्रकाशित किया है।

ढाका विश्वविद्यालय से उपलब्ध हस्तलिखित पुस्तक में अन्त में निम्नलिखित दो श्लोक और भी पाए जाते हैं —

> सुन्दरष्टकालेन्दुमिते शकाब्दे प्रणम्य भक्त्या हरिपादपद्मम् ।
> मासे तपस्ये तपनात्मजाहेऽलखीदद काव्यमरागहेतु ॥
>
> श्रीकृष्णचरणे भक्तिर्मतिस्तत्प्रतिपादके ।
> ग्रन्थे यस्य दिवारात्र स मनुष्य इति भ्रम ॥

प्रथम श्लोक में कवि कहता है कि फाल्गुन मास शक सं० १३८६ में उसने यह काव्य लिखा। तदनुसार (शक स १३८६ = वि० सं० १५२१) वि० सं० १५२१ इस काव्य का रचना काल निश्चित होता है।

काव्य की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है इस काव्य में मन को दूत बनाया गया है। कवि विष्णुदास स्वयं एक भक्त के रूप में पाठकों के समक्ष इस काव्य में आते हैं। ससार में लोगों के पापों और दुखों की चिन्ता करते करते विकल होकर वे भगवान् कृष्ण की शरण में आने का विचार करते हैं। मनुष्य स्वयं कर्मबन्धनों से बंधे होने के कारण भगवान् की भक्ति नहीं कर पाता है, अत वे अपने मन को दूत बनाकर भगवान् के चरण कमलों में अपना नम्र निवेदन सन्देश के रूप में भेजने की चेष्टा करते हैं। इस प्रसग में मन के लिये कुछ मार्ग भी बताया गया है तथा साथ में शम, दम, क्षमा और दया इत्यादि गुणों को ले जाने और मात्सर्य, दम्भ, मद, मान, विमोह, लोभ, क्रोध और स्मय इत्यादि को छोड़ कर जाने का परामर्श दिया गया है।

यद्यपि भगवान् सर्वव्यापक है और ससार से विरक्त भक्त पुरुषों के सामने तो सर्वदा ही उपस्थित रहता है, फिर भी उसकी सासारिक लीलाओं से सम्बद्ध स्थानों गोकुल, यमुना और वृन्दावन में मन को जाने का परामर्श दिया गया है, क्योंकि इन स्थानों में भगवान् के साक्षात् दर्शन किए जा सकते हैं। सर्व प्रथम गोकुल और यहां की कृष्ण-लीलाओं का वर्णन किया गया है। तदनन्तर यमुना और वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा वर्णित की गई है। इस प्रसग में इन स्थानों से सम्बद्ध कृष्ण के जीवन चरित्र का भी वर्णन किया गया है।

वृन्दावन में ही कहीं पर कृष्ण को पाकर उचित अवसर देखकर अपना सदेश निवेदन करने की कवि ने मन से प्रार्थना की है।

कवि ने असख्य चिन्ताओं, दुखों और सासारिक प्रलोभनों में फंसे हुए जीवों की दीन हीन अवस्था तथा भगवान् की महिमा का अपने सन्देश में संकेत किया

है। अपनी न्यूनताओं के होते हुए भी भगवान् की भक्ति में अवशिष्ट जीवन बिताने तथा भगवान् का ही गुणगान करते रहने की सन्देश में कवि के द्वारा वही उत्कट इच्छा व्यक्त की गई है।

अन्त में भगवान् के चरणों में निरन्तर वास करते रहने की मन के प्रति शुभ कामना प्रकट करते हुए कवि ने सन्देश समाप्त कर दिया है।

काव्य समीक्षा

काव्य की कथा से पाठकगण यह तो अनुमान कर ही सकते हैं कि यह दूत-काव्य शान्तरसप्रधान है। मेघदूत से प्रेरणा लेकर भी कवि ने मेघदूत का विषय, भाव और छन्द इत्यादि की दृष्टि से बिल्कुल अनुकरण नहीं किया है। काव्य में वसन्ततिलका छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कुल १०१ श्लोक ही काव्य में पाए जाते हैं। पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा काव्य में कोई कथावस्तु का विभाजन भी नहीं पाया जाता है। इस सदेश काव्य की प्रमुख विशेषता यह ही है कि सदेशकाव्यों के शृंगाररसप्रधान वातावरण में शान्तरस का सञ्चार किया गया है। मन के लिए कोई मार्ग बताना अनावश्यक ही है और भगवान् तो फिर सर्व व्यापक हैं, अतः इस काव्य में मार्ग वर्णन का न होना कोई दोष की बात नहीं है। फिर भी कवि ने भगवान् कृष्ण के ऐहिक जीवन से सम्बद्ध स्थानों का बड़ा सरस और भक्तिपूर्ण वर्णन किया है। गोकुल का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

गोगोपगोपतनुगोपसुतासुतेन
रम्येण सम्यगनुरञ्जितसविभागम्।
क्ष्मामण्डलीमुकुटमण्डलरत्नमास्ते
जानीहि गोकुलमनाकुलसर्वलोकम् ॥२७॥
यत्र स्वयं वसति चन्द्रकिरीटमौलि-
रत्नाशुरञ्जितपदाम्बुरुहो मुरारि ॥२८॥

पृथ्वी के मुकुट में रत्न के समान जो स्थान हो तथा भगवान् स्वयं जहाँ निवास करते हों, वहां की जनता के सुखी और शान्त होने की बात ही क्या ?

गोकुल की प्रातःकालीन चहल पहल का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन कवि ने निम्न पद्य में प्रस्तुत किया है—

प्रातर्मुकुन्दकलवेणुनिनादभिन्नै—
(?) र्गाकारशारितदधिपयर्वर्जनानाम्।
धेनुं वनं नयत रे व्रजतेति बाल—
कोलाहलैश्च बधिरा श्रुतिरेव यत्र ॥३०॥

इसी तरह गोकुल के सायंकालीन दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

दोहाय क्वचन कुत्र च वत्सरोध,
क्रीडानिमग्नमुकुलालसमानसाया ।
भाण्डस्य दोहविषये गृहिणा गृहिण्य
कुत्रापि वृद्धकुलमृद्धसम नियुक्तम् ॥३२॥

गोकुल में गोचारण करते हुए कृष्ण का कैसा सुन्दर चित्र कवि ने निम्न पद्यों में अंकित किया है—

कोऽप्येष नूपयति दृशो नटयन् अनाना
मुद्गायतीन्द्रियगणं अडयन् कुतोऽपि ।
आलोकनैकपरमान् विहगान् मृगाश्च
कुर्वन् गवा क्वचन चारयते कुलानि ॥४१॥

जिस तरह कृष्ण को गायों से बड़ा प्रेम था, उसी तरह गाएं भी कृष्ण को बड़े प्रेम से देखती थीं। इसी बात को कवि कितनी सुन्दर रीति से कहता है—

गावश्च वत्सनिवहैस्तमुदीक्ष्य दूरा-
दुत्पूरकर्णपुटक तरसाभिपत्य ।
आलोकयन्त्यनवलोकितवत् सदापि
जिघ्रन्त्यपूर्ववदलीढवदलिहन्ति ॥४२॥

गायों की इन चेष्टाओं में कितनी स्वाभाविकता भरी हुई है।

आगे चलकर कवि कहता है कि बड़े २ मुनि अपने मन तथा वाणी से जिसका ध्यान नहीं कर पाते हैं, वह भगवान गोकुल में गोपालों के घर आंगन में धूल में लोटता फिरता है। श्रुति रूपी स्त्रियां जिसका ध्यान ही करती रहती हैं, गोपाङ्गनाएं उसको अपने नेत्रों से चारों तरफ घूमता हुआ देखती हैं—

दूरेऽपि वाङ्मनसयोर्मुनिपुङ्गवानाम्
धूरेणुचुम्बिततनु पशुपाङ्गनेऽपि ।
यो मृग्यते श्रुतिवधूभिरपाङ्गतर्षेण
गोपाङ्गनाभिरभितः परिपीयते स ॥४४॥

गोकुल तथा वहां की कृष्ण लीलाओं का वर्णन करने के बाद कवि ने यमुना का भी वर्णन किया है। अन्य नदियों से यमुना की विशिष्टता बतलाते हुए कवि कहता है—

यासा तरन्ति पुरुषा पयसापि सद्य
श्मामण्डलैकमहिता' कति तां न नद्य'।
अन्या पुनर्मिहिरजा यदिहोरुकीर्ते
स्नानावगाहनविनोदनपानचर्य्या ॥४७॥

यमुना के बाद कवि ने वृन्दावन का वर्णन किया है। वृन्दावन का वर्णन प्रारम्भ करते हुए ही कवि कहता है—

यागाङ्गनस्थलमिवोज्ज्वलकृष्णवर्त्म
शाखाश्रितैर्द्विजगणैर्महित सुघोषै ।
तस्यैव नातिशयदूरतरं व्रजस्य
वृन्दावन रसमय वनमस्ति चेत ॥५६॥

यज्ञभूमि में जिस तरह अग्नि प्रदीप्त रहती है और अपनी अपनी शाखाओं का उच्च स्वर से ब्राह्मण पाठ करते हैं उसी तरह वृन्दावन में भी उज्ज्वल और कृष्ण वर्ण के मार्ग (वर्त्म) हैं तथा वृक्षों की शाखाओं पर विभिन्न द्विज (पक्षी) कलरव करते रहते हैं। कवि ने श्लेष अलङ्कार की सहायता से यज्ञभूमि और वृन्दावन में कितना सुन्दर सादृश्य उपस्थित कर दिया है।

वृन्दावन में वंशी बजाते हुए कृष्ण का बड़ा सजीव और सुन्दर चित्र कवि ने निम्न पद्यों में प्रस्तुत किया है—

तस्मिन् क्षण शिखिशिखण्डकृतावतंसम्
वंशं मनागधरसीमनि सन्दधानम्।
गोरोचना पटुपटीरकृताङ्गरागम्
तं सानुरागमनिश हृदयावधेहि ॥६०॥

कृष्ण जब मुरली बजाते हैं तब पहाड़ों से सरिताएं मानों फूट पड़ती हैं और हिरनों के मुख से तो आधी चबाई हुई घास ही निकल पड़ती है—

तस्मिन्नयं मुरलिका मुखरीकरोति
तत्राश्मनस्तत इत सरिदाविरासीत्।
अर्धावलीढगलितै प्रथमैर्मृगाणा
क्षोणीतलञ्च कवलैरपिधीयते स्म ॥६१॥

हिरन गाने का तो प्रेमी होता ही है। फिर कृष्णजी जैसे मधुर वंशी बजाने वाले की वंशी ध्वनि सुनकर हिरनों का मुग्ध हो जाना और मुख से घास को गिरा देना कोई बड़ी बात नहीं है।

कृष्ण और राधा की परस्पर प्रेमलीलाओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

लीलाश्रमाम्बुचयचुम्बित कृष्ण गौर-
कान्त्योस्तयोरभिमुखं हरिगोपवध्वोः ।
अन्योऽन्यदेहरचिरप्रतिबिम्बयोगात्
गौरो हरिः किमपि गोपवधूश्च कृष्णा ॥६६॥

अनन्य प्रेम का इससे बढ़कर उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है।

वृन्दावन का वर्णन करते हुए अन्त में कवि कहता है—

चेत कलिन्द दुहितु पुलिन नवीनम्
वृन्दावन रसमय सभयो वसन्त ।
गोपाङ्गनान्तरुणिमामृतपूरपूर्णा
कृष्णा कलाकुलगृहं किमहं ब्रवीमि ॥६७॥

इतने सुन्दर दृश्य का कोई कवि पूरा पूरा वर्णन कर ही कैसे सकता है?

वृन्दावन की गोपियों के विभिन्न चरितों को कवि बड़ी भक्ति के साथ देखता है। वह कहता है—

तासां च मानस मुकुन्दपदारविन्द-
द्वन्द्वार्पितैहितमनस्तनुजीवितानाम् ।
प्रेमोत्तराणि चरितानि हरिप्रियाणा
मेयानि वरलवकुरङ्गविलोचनानाम् ॥७२॥

जिन्होंने भगवान् के चरण कमलों में अपनी कामनाएं, मन, तन, तथा जीवन लगा दिया हो, उन गोपियों के प्रेम पूर्ण चरित्र का कौन भक्त गायन नहीं करेगा।

गोकुल, यमुना और वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा यहां की कृष्ण लीलाओं का वर्णन करने के बाद कवि ने भगवान् कृष्ण के चरण कमलों में निवेदनार्थ अपना सन्देश मन को सुनाया है। सन्देश में भक्त की दीनता, हीनता और असहायावस्था साकार हो उठी है। सन्देश के प्रारम्भ में ही कवि कहता है—

आपादमस्तकमयं दुरितार्णवान्त-
र्मग्नश्चिरं निगडितो हतवासनाभिः ।
दत्तामयं चरणतामरसं त्वदेव-
मुद्दिश्य कोऽपि मधुसूदन रारटीति ॥७४॥

दीनं यथोचितनिजाचरणै विहीनम्
हीनं परं परमपापमहाधुरीणम्

एवं त्वदीयचरणं शरणं स्मरन्तम्
सीदन्तमन्तकभयादनुकम्पयेश ॥७६॥

आगे चलकर कवि कहता है—

ध्यात न तेऽङ्घ्रिकमलं कमलाङ्कलग्नम्
गीतं न वा निखिलमङ्गलधाम नाम।
नाकर्णितं जगदनर्घ्यतमं चरित्रम्
किन्तत् प्रभो विहितमार्तहिताय यत् स्यात् ॥७८॥

यात दिनं किमिति यामवतीयमर्धं
साप्याजगाम विरतिं दिनमेति भूयः।
एवं स्वपञ्चनपटुमधुकैटभारे
न त्वां स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि ॥७६॥

इन पद्यों में कवि का भक्त हृदय बड़े वेग से उमड़ रहा है। एक सच्चे भक्त की तरह कवि कहता है कि उसे महेन्द्रपदवी नहीं चाहिए। वह तो भगवान् के चरणों की सेवा का ही इच्छुक है। उसकी तो यही इच्छा है कि वह भगवान् के कोटि कोटि नामों को जपता रहे—

ईहामहे न हि महेन्द्रपदं मुकुन्द
स्वीकुर्महे चरणदैन्यमुपागतं वा।
आशा पुनस्तव पदाब्ज कृताधिवासाम्
आशास्महे चिरमियं न कृशा यथा स्यात् ॥८१॥

कोटिः शिरांसि मम सन्तु शिरोऽनुकोटि-
र्वक्त्राणि वक्त्रमभितो रसनाश्च कोटिः।
वाणीरतेऽनुरसनं परितस्तवैव
नामानि कोटिरनुकोटियुगं स्फुरन्तु ॥८३॥

अन्त में कवि अपनी प्रार्थना बताते हुए कहता है—

मुक्तिर्न कर्णपथमेति किमेव सिद्धिः
काऽप्यपुण्यनिलयार्थनमेतदेव।
त्वां ध्यायतः क्वचन काननसन्निवेशे
शेषं प्रयान्तु मम जन्मशताहतानि ॥८३॥

जन्मावसानमपि जन्म तथावसानं
यत्र क्वचिन्मम सुरोत्तम आवर्ततु।

किन्तु श्रुतिं स्पृशतु काऽपि सुधाप्रवाह
सन्दोह निर्भर-पद्भवदीयवार्ता ॥८८॥

इस प्रार्थना में सांसारिक सुखों से निःस्पृहता तथा भगवत्प्रेम में ही कवि की अनुरक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है।

अपनी असहायावस्था का निवेदन करते हुए कवि कहता है—

दष्टोऽस्मि कालभुजगेन किमप्यपार-
संसारपामरदवानलदह्यमान ।
निर्यामि तामरसनाभ कदा त्वदङ्घ्रि
लीला कथामृत महातटिनी प्रवाहे ॥९३॥

इस प्रकार कवि के सन्देश में भक्त की दीनता, हीनता, असहायावस्था और भगवान् से मिलने की आतुरता छिपी हुई है।

भ्रमर को अपना सन्देश सुनाने के बाद अन्त में उसकी शक्ति तथा गुणों की प्रशंसा की गई है और उसके प्रति शुभकामनाएं व्यक्त करने के साथ साथ काव्य भी समाप्त हो जाता है—

बन्धुस्त्वमेव हृदयार्यपथ प्रपन्न
सत्य रिपुर्विपथगामितया त्वमेव ।
तत् कातरे मयि विधेहि कृपा यदेत
दुःख कुदथ्य मुरवैरिपदे रमस्व ॥१०१॥

काव्य के आद्योपान्त अनुशीलन से यह स्पष्ट ही हो जाता है कि यह संदेश काव्य शान्तरसप्रधान एक भक्ति काव्य है। गोकुल, यमुना और वृन्दावन का वर्णन बड़ा सरस तथा भक्तिपूर्ण है। भावों की सरलता तथा सरसता के साथ साथ भाषा भी बड़ी मधुर और ललित है। शान्त रस के अनुकूल काव्य में माधुर्य गुण और वैदर्भी रीति का ही अनुसरण किया गया है। कवि का शब्द विन्यास नैपुण्य भी दर्शनीय है। वृन्दावन-वर्णन में अनुप्रासपूर्ण मधुर कोमलपदों का कैसा सुन्दर विन्यास कवि ने किया है—

हिन्ताल-ताल-वट-शाल-रसाल आल-
ताली-तमाल-कृतमाल-पियाल-कोले ।
जम्बीर-बीरतरु-बिल्व-कदम्ब-जम्बू-
खर्जूर-निम्ब-हरिचन्दन-सिन्धुवारे ॥५६॥

इस तरह दल, कुसुम और फल प्रधान वृक्षों का उल्लेख कर कवि कहता है कि वृन्दावन इन वृक्षों से हमेशा भरा रहता है—

पतैर्दलानि कुसुमानि फलानि सम्यक्
थी आनि पाणि कमल प्रह-मानितानि ।
रुणाणि सर्वसमयेऽपि सम दधानै
नीरन्ध्रमाधृतमनावृतपुण्यपुञ्जे ॥५८॥

इस तरह आदि से अन्त तक सभी श्लोक बड़े सरस और मधुर हैं और कवि के हृदय का बड़ा शुद्ध और उदात्त चित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर हैं। वसन्ततिलका छन्द ने भी काव्य को बड़ा प्रवाहपूर्ण बना दिया है। इस छन्द से काव्य में भक्ति की मन्दाकिनी सी बहती जान पड़ती है। काव्य की कथा-वस्तु यों तो नितान्त काल्पनिक ही है, लेकिन कवि ने इस काव्य में मनुष्यमात्र के लिए एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सन्देश दिया है। और वह सन्देश यह है कि यदि कोई मनुष्य पापों, दुःखों तथा जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा पाना चाहता है, तो उसे अपना मन भगवान् की ओर लगाना चाहिए। मन में शम, दम, दया और क्षमा इत्यादि गुणों का विकास करना चाहिए तथा मात्सर्य, दम्भ, मद, मान, विमोह, लोभ, क्रोध और स्मय इत्यादि अवगुणों को बिलकुल ही छोड़ देना चाहिए। इस तरह शुद्ध मन से जब मनुष्य भगवान् की भक्ति करेगा, तभी वह संसार रूपी दावानल से छुटकारा पा सकेगा। केवल भगवान् ही दीनों का सहायक है तथा पतितों का उद्धारक है। सन्देश काव्य के आवरण में कवि ने संतप्त मानवता के लिए यह शान्ति-पूर्ण सन्देश इस काव्य में दिया है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि भाव, विषय, भाषा और छन्द की दृष्टि से काव्य सर्वथा सुन्दर है। कविता और भक्ति इन दोनों का इस काव्य में अपूर्व संगम हो रहा है। मध्यकाल के वैष्णव साहित्य में इस सन्देश काव्य को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। मन को दूत बनाकर कवि ने दूतों की सूची में एक और शीघ्रगामी तथा विज्ञ दूत की वृद्धि कर दी है। साहित्यिक तथा धार्मिक दोनों ही रुचि के पाठकों के लिए यह काव्य अत्यन्त उपादेय है।

विष्णुत्रात का कोक-सन्देश (ई० षोडश शतक)

यह काव्य त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज़ से प्रकाशित हुआ है। काव्य के सम्पादक श्री के० साम्बशिव शास्त्री हैं जिन्होंने कि संक्षेप में कुछ भूमिका भी लिख दी है। काव्य का लेखक विष्णुत्रात नामक कोई कवि है—

आसीद् विप्रो हरिनतिरतः कोऽपि रम्याविहारे
विष्णुत्रातो द्विजपरिवृढब्रह्मदत्तस्य मित्रं ।
तस्यैतस्मिन् सपदि रचितं कोकसन्देशकाव्ये
पूर्वस्तावत् समजनि रसैश्चाप्यसौ पूर्वभागः ॥१॥१२०॥

जैसा कि उपरिलिखित श्लोक से स्पष्ट है, विष्णुत्रात का ब्रह्मदत्त नामक कोई ब्राह्मण बड़ा घनिष्ठ मित्र था। यह ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण श्री नारायण भट्टपाद का समकालीन था, यह तो सर्वविदित ही है। अतः इस कवि का रचना काल भी ई० १६ वीं शताब्दी के आसपास ही होना चाहिए (देखिए काव्य की भूमिका)। इसके अतिरिक्त इस लेखक के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

कथा सार

इस काव्य में एक राजकुमार ने श्रीविहारपुर से कामागम नामक नगर में अपनी प्रेयसी के पास कोक के द्वारा अपना प्रेमसन्देश भेजा है। कथा इस प्रकार है—

एक राजकुमार अपने नगर में अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहा करता था। एक दिन एक मान्त्रिक उसको उपहार स्वरूप एक ऐसा यन्त्र (तावीज) दे गया जिसके कि सिर से लगाने पर ही लगाने वाला अपने देश से दूर पहुँच जाता था। कुतूहलवश राजकुमार ने एक दिन उस यन्त्र को अपने सिर से लगा लिया। बस क्या था, इतने ही में वह अपने प्रासाद से दूर किसी स्थान पर पहुंच गया। प्रेयसी के वियोग में वह व्याकुल तो था ही कि एक चक्रवाक पक्षी उसे दिखलाई पड़ा। चक्रवाक को देखते ही वह उसे अपना और अपनी प्रेयसी का विरह वृत्तान्त सुनाने लगता है तथा अन्त में चक्रवाक से प्रेयसी के पास अपना सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना करता है। इस प्रसंग में नायक के निवासस्थान श्री विहारपुर से प्रेयसी के निवासस्थान कामागम नगर तक के मार्ग का वर्णन किया गया है।

प्रातःकाल होने पर निकटवर्ती मन्दिर में विष्णु भगवान् के दर्शन करने के बाद श्री विहारपुर से चक्रवाक की यात्रा प्रारम्भ होती है। कुछ दूर पर स्थित वारणारण्यस्थली में गणेश मन्दिर में गणेशजी की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर किसी पर्वत और उद्यान का उल्लेख किया गया है। इस उद्यान में स्थित मन्दिर में पार्वती की स्तुति करने के बाद करीब आधा कोस आगे चलने पर एक विशाल आम्रवृक्ष तथा सुन्दर नामक सरोवर बतलाया गया है। मध्याह्न हो जाने से कुछ

देर विश्राम करने तथा निकटवर्ती शिवमंदिर में शिवजी की पूजा करने के बाद आगे चलने पर मचन्द्रा नामक राजधानी में चक्रवाक के पहुँचने का उल्लेख है। इस नगरी की सुरम्य वापियों और उद्यानों की शोभा देखकर आगे बढने पर क्रमश शान्ताकार नामक नगर, वहां का कृष्णमन्दिर, तदनन्तर कुछ दूर पर रम्या नदी के मिलने का वर्णन किया गया है। रम्या नदी से दक्षिण की ओर घन वनों को पार करते हुए तथा आलों लातों से अपनी रक्षा करते हुए आगे बढ़ने पर लोकभद्र नामक शिवक्षेत्र में चक्रवाक के पहुचने का उल्लेख किया गया है। सन्ध्या होने से पहिले ही शिवजी के दर्शन कर लेने के बाद मन्दिर के किसी गोपुर में ही किसी तरह विरहपूर्ण रात्रि (क्योंकि रात्रि में चक्रवाक का अपनी सहचरी से वियोग हो जाता है) बिताकर प्रातःकाल होते ही चक्रवाक को आगे बढ़ने का परामर्श दिया गया है। मार्ग में मुनियों के आश्रमों को देखते हुए अयोध्या नगरी (?) तथा अन्य देशों को पार कर मार्ग में आए हुए किसी अश्वत्थवृक्ष की परिक्रमा करके आगे बढने पर किसी जम्बू वृक्ष पर मध्याह्न में विश्राम करने के बाद आगे बढने का चक्रवाक को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर पूर्णानन्द नामक भूतनाथ के क्षेत्र में भूतनाथ (शिव) की पूजास्तुति करने के बाद उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर चलने पर प्रेयसी के निवासस्थान कामाराम नामक नगर में चक्रवाक के पहुँचने का उल्लेख किया गया है।

इस तरह मार्गवर्णन के बाद कामाराम नगरी का वर्णन किया गया है। वहां पर विष्णु भगवान् के मन्दिर में भगवान् की स्तुति करने के बाद पूर्व दिशा की ओर चलने पर एक बहुत बड़े बाजार में से होते हुए किसी वट वृक्ष पर पहुचने तथा उसी पर रात्रि बिताने का चक्रवाक को परामर्श दिया गया है। सूर्योदय से पूर्व ही उत्तर दिशा की ओर चलने पर नायक के अपने घर के मिलने का वर्णन किया है। वापी, उद्यान, नमेरुवृक्ष, केतकी-वाटिका, प्रियाल वृक्ष, दाडिम (अनार) चम्पकवृक्ष, जाती (नमेली), क्रीडाशैल, मोर के बैठने की विद्रुम की वासयष्टि, हिरनी के बांधने का स्थान तथा कुटज वृक्ष जैसे सुन्दर दृश्यों के दर्शन करने के बाद पूर्व दिशा में नायक का घर बतलाया गया है। घर के पास ही स्थित एक आम्रवृक्ष पर बैठ कर वातायन मार्ग से फिर घर का सारा वृत्तान्त देखने के लिए चक्रवाक से कहा गया है।

घर के वृत्तान्त का वर्णन करते हुए नायक ने अपनी प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाएं सम्भावित की हैं। इस प्रसंग में नायिका के प्रत्येक अंग का पूर्व सौन्दर्य तथा विरहजन्य परिवर्तन वर्णित किया गया है। बाद में नायिका की विभिन्न करुण चेष्टाएं वर्णित की गई हैं। अन्त में किसी तरह नायिका द्वारा भ्रमवश चक्रवाक के हस्तगत जाने की संभावना करके चक्रवाक से फिर अपना सन्देश सुनाने की [illegible]

नायक का सन्देश सुनाने से पहिले चक्रवाक नायिका को उसके प्रिय का सारा वृत्तान्त सुनाता है। फिर नायक का सन्देश देता है। इस सन्देश में नायक की विरहावस्थाएं, शीघ्र आने का आश्वासन तथा कुछ अभिज्ञान घटनाएं बतलाई गई हैं। अन्त में नायिका से अनुमति लेकर अपनी प्रेयसी के साथ इच्छानुसार देश देशान्तरों का भ्रमण करने की चक्रवाक के प्रति शुभकामना प्रकट की गई है।

बस, यही काव्य की कथा है।

साहित्यिक समीक्षा

उपर्युक्त कथानक से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य विप्रलम्भ शृंगार से पूर्ण एक सन्देश काव्य है। नायक का अपनी प्रेयसी से वियुक्त हो जाना इस काव्य में एक यन्त्र (करन्ड, तावीज़) की शक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अन्य प्रमुख सन्देश काव्यों की अपेक्षा इस काव्य में यह एक नवीनता है। मेघदूत के अनुकरण पर ही यह काव्य लिखा गया है। काव्य दो भागों में बटा हुआ है। पूर्वभाग में नायक का विरही के रूप में वर्णन, चक्रवाक से सन्देश प्रस्ताव और फिर मार्गवर्णन है। द्वितीय भाग में नायिका की नगरी, उसके गृह के आस पास के सुरम्य दृश्य, नायिका की विरहजन्य अवस्थाएं और नायक का सन्देश है। पूर्वभाग में १२० और उत्तर भाग में १८६ श्लोक हैं। श्लोक संख्या की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत से लगभग तिगुना है। कवि ने मन्दाक्रान्ता छन्द का ही व्यवहार किया है। वर्णनों की अधिकता से काव्य का आकार बहुत बढ़ गया है। कवि ने प्रेयसी के निवासस्थान कामाराम नामक नगरी के वर्णन में ही ५० श्लोक लिखे हैं। इसी तरह प्रेयसी के गृह तथा आसपास की वस्तुओं के वर्णन में छोटी-छोटी बातों पर भी कवि का ध्यान गया है। इसके अतिरिक्त काव्य में विरहिणी नायिका के केशभार से लेकर पादयुग्म तक का वर्णन किया गया है। लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। चक्रवाक से साथ में अपनी सहचरी को ले जाने का परामर्श देने से कवि की भावुकता और भी स्पष्ट हो जाती है। मार्ग में पड़ने वाले स्थानों और मन्दिरों में प्रतिष्ठित देवताओं के चित्रण में कवि ने बड़ी सहृदयता से काम लिया है। मार्गवर्णन कोरा भौगोलिक ही नहीं है। तत्तद् स्थान की रूपरेखा साहित्यिक और सरस ढंग से वर्णित की गई है। सचन्द्रा नामक राजधानी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

नैशोद्यान सुरत रचितं यत्र वृन्दं च यूनाम्
नैगमात्या ह्यनलसदृशो रत्नभाभिर्गृहाश्च ।
नो योद्धारः परमसिचयोद्भासिता किन्तु योधा
स्तत्पोधो नो मृदुलसितगुः किन्तु केलीशुकोऽपि¹ ॥१॥५८॥

---

१ सुरतद + चितम्, सुरत + रचितम्। अनलस + दृशो। अनल + सदृशो। परम् + असिचयोद्भासिता। परम + सिचय + उद्भासिता.। मृदुल + सित + गो-मृदुलसितगु। गो = वाणी, भूमि।

इस श्लोक में खण्डश्लेष की सहायता से कवि ने नगरी का बड़ा सुन्दर चित्र अङ्कित किया है।

आगे चलकर वहां की युवतियों का वर्णन भी सरल भाषा में कवि ने बड़ी सुन्दर रीति से किया है—

मन्दं यान्त्यः सततमधिकं श्रोणिदेशे महत्त्व
काश्चीमन्त्यः पृथुकटितटे कुङ्कुमं लिम्पयन्त्य ।
शोभायन्त्यः प्रविगलतलं हारजाले सुवृत्त्यः
सन्मालत्यश्चिकुरनिचये भान्ति यस्यां युवत्यः ॥१॥५६॥

रम्या नामक नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसके तट पर ब्राह्मणों का निवास है और वे ब्राह्मण बड़े आस्तिक तथा कर्मनिष्ठ हैं, अतः रम्या नदी गंगा के समान ही जानो—

चातुर्वेद्य पठति सकलेऽप्यागमे याज्ञक
धर्मप्राप्य बहुविधफलं नित्यमर्चन्मुकुन्दम्
दीने सत्क्षिति सिमजने धारय सद्द्विजन्म
ब्राह्मण्यं तत्त्वनिरतमपार्श्वीरमास्ते हि यस्याः ॥

भूदेवाना समयविहितस्नानपुण्याम्बुपूरा
तत्सन्तानैरधिकरुचिरैर्व्याप्तरम्यप्रदेशा ।
पर्यन्तोपात्तस्फटिकसुपमासङ्गता शुभ्ररूपा
गङ्गादेश्या जयति धरणीमण्डले या नितान्तम् ॥१॥७३॥७४॥

शान्ताकारा नामक नगरी में कृष्णजी की स्तुति करने के बाद चक्रवाक के आगे बढ़ने के प्रसंग में कवि कहता है कि यह नगरी अवश्य ही तुम्हें रोकना चाहेगी—

उच्चैर्भागा मणिगृहसरत्कान्तियादालताभि-
र्दीव्यन्तीभिः क्षणमिव पुरी रोद्धुकामेव सा स्यात् ॥१॥७१

यहां पर नगरी में बड़ी सुन्दर रीति से कवि ने अनुरक्त नायिका का भाव आरोपित कर दिया है।

मेघदूत में अलकापुरी का जैसा वर्णन किया गया है, वैसा ही कामाराम नगरी का भी इस काव्य में बड़ा उदात्त और शृंगारमय वर्णन किया गया है। ० श्लोकों में कवि ने नगरी का ही वर्णन किया है। नगरी के राजमार्ग, राजा और प्रजा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

रथ्या यस्या गगनसदृशार्थी सदालोककान्ता
पृथ्वीपाल सुरपतिसमश्चामरश्लिष्टपार्श्वः ।
सर्वे लोकास्त्रिदिवसमिताश्चारसन्तानरम्या
स्त्रीणां वक्त्रं रघुपतिनिभं ध्वस्ततारेशगर्वम्[1] ॥ ॥८६॥

इस श्लोक में श्लिष्ट विशेषणों से कवि ने नगरी का बड़ा ही समृद्धिशाली वर्णन किया है।

नगरी में किसी भी ऋतु में लोग कष्ट नहीं उठाते हैं। सुख और शान्ति वहां पर व्याप्त है—

सर्वाशोकोद्‌यसुमधुरा भूमिपालप्रताप-
व्याप्ता प्रोद्भासितबहुलजातिर्लसत्पद्मिनीका ।
निश्चक्षोणीतलगमहिमा चन्द्रकान्तालयोद्य-
च्छैत्या यासौ लसति किल सर्वर्तुधर्माभिरामा ॥२॥४२॥

इस तरह विभिन्न भाव भंगिमाओं के साथ नगरी की समृद्धि का वर्णन किया गया है। नगरी में स्थान स्थान पर स्फटिकमणि का फर्श लगा हुआ है और नृत्य करती हुई रमणियों के मध्य में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जब उस फर्श पर पड़ता है तो ऐसा लगता है मानों चन्द्रमा वहां की रमणियों के चरणों में प्रणाम कर रहा हो—

यत्रत्याया स्फटिकधरणौ बिम्बितः शीतभानुः
क्रीडन्तीनामिह मृगदृशां निर्जितो वक्त्रबिम्बैः ।
भूयोऽप्येतत्परिभवसमाशङ्कया नूनमासां
पादाम्भोजे प्रणमनविधिं गीतगर्वं करोति ॥२॥१८॥

नगरी के वर्णन के बाद प्रेयसी के गृह तथा निकटस्थ सुरम्य दृश्यों का भी बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया गया है। वापी में निरन्तर उठती हुई लहरों का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

नायाता सा कमलनयना स्नातुमद्यात्र किं वा
जातं तस्या इति हि कलयन्ती तदालोकनाय ।

---

1 सदा + आलोककान्ता, सत् + आलोककान्ता। अमरैः आश्लिष्ट पार्श्वं यस्य स, अमराश्लिष्टपार्श्वः, चामरैः + आश्लिष्ट पार्श्वं यस्य स। ध्वस्त तारेशस्य चन्द्रस्य चालिनो च। गर्वं येन तत्।

भूयोभूयस्तटमुपगतैः स्थूलकल्लोलजालैर्-
यो यान्तीरे स्फुरति दयितायाससौधप्रदेशम् ॥२॥७४॥

पालतू हिरनी का भी निम्न पद्य में बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है—

स्याद्दूर्वां मृद्वीमधिकहरिता यत्र वेदीधरण्या
मृण्या तृणवत्यपि विदधती चापि गेहान्यचेष्टाम्।
सेयं क्रीडाहरिणतरुणी विस्मृतारण्यदेश-
स्वैरायासा नियमति सुख प्रेमपात्री प्रियायाः ॥२॥१०६॥

आगे चलकर नायक ने फिर अपनी प्रेयसी की विरहावस्था बड़े भावुक ढंग से वर्णित की है। वह कहता है कि विरहताप को शान्त करने के लिए कोमल पत्रों से उसकी शय्या बनी होगी तथा पास में शीतल जल, चन्दन, कमलपत्र और ताल वृन्त इत्यादि रखे होंगे। फिर भी उसे शान्ति न मिलती होगी—

तल्पे तस्मिन्नधिकमलसाङ्गी शयाना लुठन्ती
पाण्डुच्छाया कृशतनुलता नेत्रपीयूषधारा।
दृष्टव्या सा मम सहचरी नीलकण्ठो! तत्र स्यात्
तोयोन्मुक्ता मृदुबिसलतातापक्लिष्टरूपा ॥२॥१२४॥

'तोयोन्मुक्ता बिसलता' से प्रिय विरहित प्रेयसी की कितनी सुन्दर उपमा यहाँ दी गई है।

विरह में क्षीण तथा कृशकाय प्रेयसी का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि उसके हाथों से सुवर्णकङ्कण भी मानों इसीलिए गिर पड़े हैं कि कहीं उनके पहिनने से उसे कष्ट न हो—

मामा पीडा भवतु नितरां क्षीणमस्याङ्गमस्ते'
अस्या हस्तमहानवशतो नूनमित्याकलय्य।
धाटामालाद् विलुलितमृणालीलतालोभनीया
स्पन्दं मन्दं कनकवलयं प्रस्थितं मञ्जुशिञ्जं ॥२॥१२६॥

कवि ने इस पद्य में बड़ी सुन्दर हेतूत्प्रेक्षा की है।

अपनी प्रेयसी की कुछ विरहचेष्टाएं भी चक्रवाक के सामने संभावना के रूप में रखते हुए नायक कहता है कि आषाढ़ में उसकी प्रेयसी वातायनमार्ग से काले काले बादलों को बरसते देखने के लिए आकाश में उमड़ता हुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल हो जाती होगी या चुप चाप पड़ी रहती होगी—

इत्थं तास्यत्सकलकरणस्वागमका साम्प्रतं सा
नीलाम्भोदान् नभसि लिविडान् वर्षणायावरूढान् ।
वातावाप्त्यै निघटितकवाटेन वातायनेन
प्रेक्ष प्रेक्ष क्षणमतितरां व्याकुला वा शयाना ॥२॥१५०॥

विरह दुःख से उसके नेत्र बन्द रहते होंगे, मुख म्लान होगा, सारा शरीर उसका निश्चेष्ट हो गया होगा और अपनी परिचारिकाओं के द्वारा आवाज दिए जाने पर भी वह होश में न आती होगी तथा वे सब बड़ी शंका के साथ उसकी ओर देखती होंगी—

विश्लेषार्तिप्रसरणवशाद् दूरमामीलिताक्षी
म्लायद्वक्त्रा विरहितपरिस्पन्दनाशेषगात्रा ।
आहूताऽपि प्रियपरिजनैरात्मबोधं न यान्ती
जातातङ्कं यत कृतमिथोवीक्षणैरीक्षिता वा ॥२॥१५४॥

प्रेयसी की विरहचेष्टाओं के वर्णन करने के बाद उचित समय देखकर चक्रवाक से सन्देश सुनाने के लिए कहा गया है । सर्वप्रथम नायक की विरहदशा वर्णित की गई है । मयूरों की नृत्यलीला तथा चमेली के फूलों पर मडराते हुए भौंरों को देखकर नायक को प्रेयसी के खुले केशपाश तथा सुन्दर कटाक्षों की स्मृति आ जाती है और वह मूर्च्छित हो जाता है—

सोऽयं पश्यन् दिशि दिशि सतीं बर्हिणां नृत्तलीलां
जातीजाते तरलमधुपश्रेणिकां चाभिरामाम् ।
धम्मिल्लं ते गतिविगलितं मञ्जुलं वा कटाक्षम्
स्मारं स्मारं हहह बहुशो मूर्छनामभ्युपैति ॥२॥१६६॥

फिर कहा गया है कि नायक विद्युल्लेखा को भूल से अपनी प्रेयसी समझ लेता है और वार्तालाप करने लगता है, लेकिन फिर वहां उसे (प्रेयसी को) न पाकर उसे रोना आ जाता है—

विद्युल्लेखां मुहुरपि समुद्वीक्ष्य विद्योतमानाम्
सद्य खिद्यन्नयि सहचरीत्यालपन्नुत्थितोऽहम् ।
त्वद्बुद्ध्या तां किमपि गदितुं सम्प्रवृत्तस्तदानीं
तत्रादृष्ट्वा कमलनयने भूरिबाष्पं वमामि ॥२॥१७३॥

वर्षाऋतु में संयोगावस्था में जो दृश्य नायक को प्रसन्न किया करते थे वे ही वियोगावस्था में उस को कष्ट पहुंचाते हैं—

तऽमी केकारवजलधरारावविद्युल्लताद्या
विश्लेषे ते सहचरि ! परं वेदयन्त्यद्य कष्टम् ॥२॥१७४॥

अन्त में नायक कहता है कि विश्लेष रूपी अग्नि में मेरा शरीर जल रहा है और मैं केवल तेरे ध्यानरूपी अमृत की वर्षा से इस अग्नि को कुछ कम कर रहा हूँ—

लीलापाङ्गैः स्मरशरमिषादिन्धनं योजयित्वा
भूयो भूयो जलदपवनेनाशु सन्धुक्षितस्य।
विश्लेषाग्नेर्मम तनुमिमां दग्धुमत्युन्मुखस्य
त्वत्कध्यानामृतविकिरणैः स्तोकतामातनोमि ॥२॥७६॥

अपनी विरहावस्था के बताने के बाद नायक कहता है कि वह यद्यपि बड़ा दुःखी और खिन्न है फिर भी धीरे धीरे पैदल आ रहा है और प्रेयसी को भी धैर्य रखना चाहिए तथा अपनी सखियों के साथ विभिन्न लीलाओं में समय काटते रहना चाहिए। अन्त में उनका मिलन तो होगा ही—

एवं तान्ता वयमिह तथाप्यद्य धैर्यावलम्बा-
दायास्याम सविधमपि ते मन्दपादप्रचारैः ।
तत् तावत्त्वं सपदि समय त्वद्विनोदैकहेतो-
रालीवृन्दैरविरतकलैश्चारुलीलाविशेषैः ॥२॥७७॥

पुनर्मिलन होने पर नायक कहता है कि हम दोनों तुमसे प्रेम के साथ अपने सौध में विरह क्लेश को भुलाकर विहार करेंगे—

प्राप्ते भूयः प्रणयिनि मयि प्रेयसि त्वत्समीपं
प्रीतायाणां द्विगुणिततरं मे प्रभाजो तदानीम्।
क्रीडिष्याव सहचरि ! यथाकाममुत्तुङ्गशृङ्गे
सौधोत्सङ्गे विगतविरहक्लेशभाजौ चिराय ॥२॥७८

संदेश के अन्त में प्रेयसी को अपने सकुशल होने का विश्वास दिलाने के लिए नायक ने कुछ अभिज्ञान घटनाएं भी वर्णित की हैं। एक घटना की याद दिलाते हुए नायक कहता है—

बाले पूर्वं खलु मणिमये नौ निशान्ते निशायाम्
प्राप्य स्वीयां तनुमपि ममोपान्तमिस्तो स्फुरन्तीम्।
दृष्ट्वा रोषाद् वलितवदनामुन्मदाश्लेत्य तूर्णं
गाढाश्लिष्टा कथमपि मया बोधितासि यथार्थम् ॥२॥८०॥

इस श्लोक में नायिका के मुग्धा और मानिनी होने की बड़ी गूढ़ व्यञ्जना की गई है। इस तरह कई अभिज्ञान घटनाएं बताकर अन्त में नायक कहता है—

आशायास्मानपि कुशलिनो यावदायाम तावत्
प्राणान् प्राणेश्वरि जिगमिषून् कण्ठनाले निरुन्धि ॥२॥१८३॥

फिर नायक चक्रवाक को अपनी शुभकामनाएं भी देता है—

इष्टान्देशान् सुजनमहितान् प्राप्य तत्र त्वकाण्ड
मोद तन्वन् चिर विहगश्रेष्ठ विश्वाधिकश्री ॥२॥१८६॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकगण अनुमान कर सकते है कि यह सन्देश काव्य विप्रलम्भश्रृंगारपूर्ण एक सरस संदेशकाव्य है। काव्य की कथा काल्पनिक ही है। मार्ग वर्णन में भी कवि ने कल्पना का सहारा लिया है। तत्तद् स्थानों का वर्णन श्रृंगार रस पूर्ण है। विभिन्न मंदिरों के देवी देवताओं की स्तुति भी साहित्यिक ढंग से की गई है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। श्लिष्ट और समस्त पद प्राय नहीं ही है। काव्य में सर्वत्र प्रवाह पाया जाता है। चक्रवाक को दूत बनाने में भी कवि ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। चूंकि चक्रवाक हर रात्रि में अपनी प्रेयसी के विरह दुःख का अनुभव करता है, इसलिए वह विरहियों के कष्ट को अच्छी तरह समझ सकता है और एक दूसरे का सन्देश भी ठीक तरह पहुँचा सकता है। चक्रवाक भी विरहिणी नायिका को अपनी ओर से संबोधन करते हुए यही बात कहता है—

मा जानीथा कुशलिनि तव प्राणनाथेन तावत्
सार्यं सायं विदितदयितावियोगव्यथोऽयम्।
ईदृग्दौत्ये समुचिततरो नूनमित्याकलय्य
प्रोच्य स्वार्थान् प्रणयसरस प्रेषित चक्रवाकम् ॥२॥१६३॥

मेघदूत के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है। विषय व्यवस्था, शैली, छन्द और भाव विन्यास सभी में मेघदूत का अनुकरण किया गया है। कहीं कहीं भावसाम्य साक्षात् स्पष्ट प्रतीत होता है। मेघदूत में हनूमान्‌जी और सीताजी का उल्लेख है ही। इस काव्य में भी कवि ने राम और हनूमान् का प्रसंग चक्रवाक को दूत बनाने के अवसर पर उपस्थित किया है—

सीताजानि स्वयमिव हनूमन्तमत्यन्तमाप्त
कोक दृष्ट्वा कमपि ललित सन्दिदेशैनमेवम् ॥१॥४॥

मेघदूत की—कान्तोदन्त सुहृदुपगत सङ्गमात् किञ्चिदून ॥२॥३६॥

यह पंक्ति किस सहृदय पाठक के हृदय में एक दम प्रस्फुरित नहीं होगी, जब वह इस काव्य की निम्न पंक्तियां पढ़ेगा—

स्त्रीणां मोदं नहि विनुतं किं वियोगातुराणाम्
दूतलोक प्रियतमवचोगुम्फमाधुर्यभूमा ॥१॥१६॥

प्रेयसी की नगरी कामारामपुरी का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

कन्दर्पेण प्रगुणधनुषा प्रेरितानां निशायाम्
सङ्केतं प्रत्यधिकनिभृतं कामिनीनां गतानाम् ।
प्रातः काले कचभरमिलत्पुष्पसौरभ्यलोभ
भ्रान्ता सम्यग्भ्रमरपटली यत्र मार्गं व्यनक्ति ॥२॥६॥

इस श्लोक में मेघदूत के—

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥२॥११॥

पद्य की छाया स्पष्ट दीख पड़ती है।

इसी तरह कोक सन्देश का यह श्लोक—

उच्चर्दीपे नवमणिरुचा रोचिते केलिगेहे
नीवीग्रन्थस्फुटनरसिके प्राणनाथे निशायाम् ।
लज्जाभाराद् विधुरमनसा यत्र मुग्धाङ्गनानाम्
काञ्चीनीलोपलरुचिरहो किञ्चिदाश्वासहेतुः ॥२॥८॥

भी मेघदूत के इसी ही प्रसंग में लिखे गए श्लोक की प्रतिध्वनि है।

मेघदूत में प्रेयसी के यहां सुवर्णमय वासयष्टि पर मयूर के बैठने तथा प्रेयसी द्वारा उसके नचाए जाने का उल्लेख है। इस काव्य में भी नायिका के इशारे पर मयूर के नृत्य करने का वर्णन किया गया है तथा मयूर के बैठने की वासयष्टि भी विद्रुम निर्मित बतलाई गई है—

पुष्पोद्यानाद् बहिरुपगृहं काञ्चनोद्भासितामा
मूले नीलोपलपटलिकाबद्धवदिप्रदेशा
हृद्याकारा लसति शिखिनो वैद्रुमी वासयष्टिः ॥२॥१०॥

दृष्ट्वाग्रस्था मम सहचरी विद्युदुल्लासिका या
नीलाम्भोदप्रतिमचिकुरा यदि वर्षावर्षपक्षम् ।
क्रीडारक्तो प्रमदपरिपूर्णान्तरङ्गः कलापं
धर्मीकुर्वन् नयनसुभग यत्र नृत्तं तनोति ॥२॥१०२॥

बिजली के समान गौरवर्णवाली तथा नीले बादलों के समान काले बाल वाली

नायिका को देख कर वर्षा ऋतु के बिना भी मयूर का नृत्य करना कितना आकर्षक हो सकता है। मेघदूत में नायिका के द्वारा नचाए जाने पर मोर नाचता है लेकिन इस काव्य में वर्षा ऋतु के बिना भी केवल नायिका को देखकर ही मोर के नाच उठने का वर्णन किया गया है।

मेघदूत में नायिका कभी कभी पञ्जरस्थ सारिका से भी अपने प्रिय के सम्बन्ध में वार्तालाप करती हुई वर्णित की गई है। इस काव्य में भी नायिका को शुकी अथवा शारिका से अपने प्रिय के सबन्ध में वार्तालाप करते हुए वर्णित किया गया है—

> आलीरङ्गेश्चिरमिव पुरा पाठितं नाम मत्कं
> भूयो भूयः स्फुटतरमभिव्याहरन्तीं शुकीं ताम्।
> शारि ! त्वं चाप्यहमिव सदा न पतिं स्नेहतः किं
> स्मरस्यत्यहेत्यधिककरुणं प्रोच्य खेदाकुला वा ॥२॥१५३॥

कहीं कहीं कवि ने जीवनोपयोगी बड़े सुन्दर २ विचार भी व्यक्त किए हैं। पाठकों के अनुशीलन के लिए कुछ सूक्तियां काव्य से उद्धृत की जाती हैं—

(१) मित्रालोको विनुदति यथा खेदमन्यत् तथा नो
नृणां सम्पद्यपि विपदि वा वस्तु किं वेत्सि नैतत् ॥१॥८॥

एको लाभो यदि खलु भवेत् कुत्रापि कार्येषु यत्र
कार्यं सर्वैरपि बहुफले तत्र किं वर्णनीयम् ॥१॥२३॥

(३) पुण्यस्थली के सम्बन्ध में कवि कहता है—

दत्ते मेना हितमिह सदा साधु पुण्यस्थलीनाम् ॥१॥३३॥

(४) परोपकारी लोगों के स्वार्थत्याग का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

> लोकानां यद् विधुरितधियां सौम्य ! सन्मार्गयायी
> मोदं कर्तुं यतति हि रतिं नेन्द्रियाणां निजानाम् ॥१॥६०॥

(५) दूरदर्शी लोग आगामी विपत्ति का पहिले से ही प्रतीकार सोचते हैं—

> लोको धीमानिह तु विपदं भाविनीं प्रेक्षमाणः
> सम्यक् पूर्वं नहि वितनुते किं प्रतीकारमस्याः ॥१॥८३॥

काव्य की इस समीक्षा से पाठकों को काव्य के साहित्यिक महत्त्व का पूर्ण ज्ञान हो गया होगा। लेखक ने काव्य के प्रारम्भ में प्रसङ्गान्तर में—

सद्भिर्दृष्टं व्रीडितमपि सदैवाखिल दोषबुद्ध्या ।
गंगासङ्गात् कृतकसरितां वारि पुण्यं न किं स्यात् ॥१॥२४॥

यह पंक्तियाँ लिखी हैं। प्रकारान्तर से लेखक ने अपने काव्य की ओर ही इंगित किया है। विद्वानों के लिए भले ही इस काव्य में यत्र-तत्र दोष दीख पड़ें, लेकिन जिस तरह गंगा से निकली हुई नहर का जल भी पवित्र माना जाता है, उसी तरह मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया यह काव्य भी उतना ही सरस और हृदयग्राही है। कहीं-कहीं मेघदूत में संक्षेप से व्यक्त कोई भाव इस काव्य में बड़े विशदरूप से वर्णित किया गया है। अतः काव्य का आकार कुछ अधिक बढ़ गया है। अस्तु, सन्देशकाव्यों की परम्परा में दक्षिण भारत का यह सन्देशकाव्य कविता की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है और मेघदूत का एक सफल अनुकरण है।

रूप गोस्वामी का उद्धव-संदेश (वि० षोडश शतक का उत्तरार्ध)

श्रीरूपगोस्वामी श्रीचैतन्यमहाप्रभु के प्रधान अनुयायियों में से थे। इनका जन्म सन् १४८९ ई० में माना जाता है। इनके पिता का नाम कुमारदेव था और माता का नाम रेवती था। यह भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। सनातनगोस्वामी इनके बड़े भाई थे और वल्लभ गोस्वामी इनके छोटे भाई थे। इनके छठे पूर्वज कोई अनिरुद्ध शक सं० १३३८ के आस-पास कर्णाट के राजा थे। इनका वंश काफी समृद्ध था। रूप और सनातन गौड़देश के राजा हुसैन शाह के प्रधान मन्त्री भी रहे। यह दोनों भाई धार्मिक प्रवृत्ति के थे तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। अन्त में इन्होंने घर छोड़कर संन्यास ले लिया। बंगाल के वैष्णव साहित्य में धर्म परायण विद्वान् और उपदेशक के रूप में इनको बड़ा महत्त्व दिया गया है। इनका धार्मिक सिद्धान्त अचिन्त्यभेदाभेद है। सनातन गोस्वामी की मृत्यु सं० १५५८ ई० में और रूपगोस्वामी की मृत्यु सं० १५६३ ई० में मानी जाती है।

कविता तथा साहित्य शास्त्र इन दोनों क्षेत्रों में ही रूपगोस्वामी का स्थान बड़ा ऊंचा है। कृष्ण के प्रेम अथवा भक्ति से समन्वित होकर इनकी कवि प्रतिभा ने विभिन्न प्रकार की साहित्यिक रचनाएं हमारे लिए दी हैं। इन सब में कथा वस्तु कृष्ण के जीवन से ही ली गई है। विदग्धमाधव और ललितमाधव यह दो नाटक सात सात अंकों के हैं। इन में भागवत का आधार लेकर कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन किया गया है। दानकेलिकौमुदी नामक एक भाण भी इनका लिखा हुआ है। इसके नायक भी कृष्ण ही हैं। पद्यावली नामक कविताओं का एक संग्रह भी इन का किया हुआ है। जिस किसी लेखक की रचना इस संग्रह में उद्धृत की गई है, उसका नामोल्लेख भी किया गया है।

उनके अन्य ग्रन्थों में उज्ज्वलचन्द्रिका (चैतन्य चन्द्र की बहिन राधा और उसकी सहेली में कृष्ण के सम्बन्ध में संवाद), यमुनास्तोत्र, गन्धर्व प्रार्थनास्तोत्र, गौरांगस्तवकल्पतरु, कुसुमस्तबक, मुकुन्दमुक्तावली, ऋतु पुष्पाञ्जलिस्तव, उत्कलिकावल्लरी, लघुभागवतामृत आनन्दमहोदधि और मथुरा महिमा इत्यादि हैं। उनका सब से अधिक[1] महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उज्ज्वलनीलमणि है। साहित्य शास्त्र का यह एक सुन्दर ग्रन्थ है और इसमें नायक तथा नायिकाओं के भेद, उनकी दशाएं तथा प्रेम की रीतियों का वर्णन किया गया है। उदाहरण स्वरूप जो भी पद्य दिए गए हैं, वे सब कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध हैं। रूप-गोस्वामी ने भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र के आधार पर नाटकचन्द्रिका नाम का एक ग्रन्थ नाट्य शास्त्र पर भी लिखा है। इस ग्रन्थ में उन्होंने विश्वनाथ और भरतमुनि के परस्पर मतभेद का भी उल्लेख किया है।

इसके अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थ जैसे श्री युगलकिशोराष्टकम्, उपदेशामृतम्, निकुञ्जरहस्यस्तोत्रम् और हरिभक्तिरसामृतसिन्धु इत्यादि भी इनके लिखे बताए जाते हैं।

श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा सपादित 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, क्लासीकल पीरियड, प्रथम भाग' में लगभग ३२ ग्रन्थ इनके लिखे हुए गिनाए गए हैं। इनमें बहुत से स्तोत्र भी शामिल हैं (दे० पृ० ६६४)।

रूपगोस्वामी के दो भाई थे। सनातन गोस्वामी इनके बड़े भाई थे और वल्लभ गोस्वामी छोटे भाई। सनातनगोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि पर टीका भी लिखी। इनके अन्य ग्रन्थों में हरिभक्तिविलास और भागवतामृत मुख्य हैं।

इन्हीं रूपगोस्वामी[1] ने उद्धवसन्देश और हंसदूत नामक दो सन्देश काव्य लिखे हैं। कवि ने स्पष्ट रूप से उद्धव सन्देश के आदि या अन्त में अपना नाम

---

१ विशेष विवरण के लिए श्री डी० सी० सेन का 'हिस्ट्री आफ बंगाली लिटरेचर' पृ० ५०२ देखिए। उज्ज्वलनीलमणि (काव्यमाला) की भूमिका भी देखिए।

लेखक के रूप में नहीं लिखा है। फिर भी कविता के स्तर से ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस काव्य का लेखक कोई उत्कृष्ट कवि रहा होगा। कुछ लोग रूप-गोस्वामी को ही इसका लेखक मानते हैं। वैष्णवतोषिणी नामक ग्रन्थ में भी श्री रूप गोस्वामी को ही इस सन्देश काव्य का लेखक बताया गया है। इण्डिया आफिस लायब्रेरी सूचीपत्र, तृतीय भाग, पृ० ७७१८ में रूप गोस्वामी को ही इस सन्देश काव्य का लेखक माना गया है। इसका कारण यह है कि काव्य के उपान्तिम श्लोक में कवि ने प्रसंगान्तर में 'रूप' और 'स्वामी' इन दोनों पदों का प्रयोग किया है।

कवि कहता है—गोष्ठक्रीडोरलसितमनसो निर्व्यलीकानुरागात्
कुर्वाणस्य प्रथितमथुरामण्डले ताण्डवानि।
भूयोरूपाश्रयपदसरोजन्मन स्वामिनोऽय
तस्योद्दाम वहतु हृदयानन्दपूर प्रबन्ध ॥१३०॥

इस श्लोक का अर्थ यह है कि निश्छल प्रेम से गोकुल में क्रीडा करने वाले, मथुरा में मल्लयुद्ध इत्यादि का ताण्डव रचने वाले तथा प्रचुर ऐश्वर्यशाली चरण-कमलों वाले भगवान श्रीकृष्ण के लिए मेरा यह काव्य अत्यन्त आनन्द पहुंचाए। प्रकारान्तर से इसका यह तात्पर्य भी निकलता है कि रूप गोस्वामी के आश्रयी-भूत चरणकमल वाले श्रीकृष्ण को यह काव्य अत्यन्त आनन्द पहुँचाए। "नामैक-देशे नामग्रहणम्' इस न्याय से रूप शब्द रूपगोस्वामी का वाचक हो ही सकता है।

कवि ने अपनी एक रचना का नाम तो हंसदूत रखा, फिर अपने दूसरे काव्य का नाम उद्धवदूत ही क्यों न रक्खा। यह प्रश्न भी कुछ विचारणीय है। इस नाम करण के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि उद्धव कृष्णजी के मित्र थे। इसलिए मित्रभाव से अथवा गोपियों के उत्कट प्रेम को साक्षात् करने के विचार से ही उन्होंने यह दूतकार्य स्वीकार किया था। मित्र को दूत बनाना कुछ अनुचित सा ही लगता है। कवि ने इसी भाव से प्रेरित होकर अपनी इस रचना का नाम उद्धव सन्देश रक्खा है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि सम्भवतः माधव कवीन्द्र के उद्धवदूत के बाद यह काव्य लिखा गया है और कवि ने जानबूझ कर अपने इस काव्य का नाम कुछ परिवर्तित कर दिया है।[1]

उद्धवसन्देश की कथा

इस काव्य की कथा श्रीमद्भागवत पर ही आश्रित है। कवि ने अपनी कल्पना से मार्गवर्णन, मार्ग में द्रष्टव्य स्थानों का महत्त्व, गोपियों के चरित्र

---

1 डा० जे० बी० चौधरी का 'हिस्ट्री आफ दि दूत काव्याज आफ बंगाल (संस्कृत कलकत्ता-पृ० ४२–४४ देखिए।

कीर्तन तथा अन्य रमणीय प्रसंग उपस्थित कर काव्य को बड़ा मधुर बना दिया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। मथुरा में रहते २ श्रीकृष्ण को अकस्मात् गोकुल की याद आ जाती है। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है तथा गोपियों की प्रणय लीलाओं का स्मरण करते २ वे बिल्कुल निस्तब्ध हो जाते हैं। अपने विरह दुःख को दूर करने के विचार से अपनी सारी कथा वे उद्धवजी को सुनाते हैं। इसी प्रसंग में गोपियों की विरहवेदना का वर्णन करने के बाद राधा की मनोव्यथा का वे विशेष रूप से उल्लेख करने लगते हैं तथा उसको सान्त्वना देने के लिए उद्धव से गोकुल जाने की प्रार्थना करते हैं। इस प्रसंग में उद्धवजी को मथुरा से गोकुल तक का मार्ग भी बतलाया गया है।

सर्वप्रथम उन्हें मथुरा नगरी में ही स्थित गोकर्ण नामक शिवजी के मन्दिर में जाने का परामर्श दिया गया है। तदनन्तर क्रमशः यमुनासरस्वती संगम, अम्बिका-कानन, अक्रूरतीर्थ, कोटिश्वरप्रदेश सट्टीकरवन, कालियह्रद मृगहरप्रदेश, बड़ हस्तग्राम, शाल्मलकक्षा, साहारग्राम, रहेला, प्रीतशालावप्रदेश, गोकुल का विघूर्णकारी नामक दक्षिण भाग, सोपाश्रिक तटी, ध्वजगवहशैल और पावन नामक सरोवर का उल्लेख किया गया है। गोकुल भूमि के वर्णन प्रसंग में वहां की गोपियों के प्रेम पूर्ण लीलालाप, कर्मठ नर्मगोष्ठी तथा कृष्णजी की यात्रा के अवसर पर उनके विलाप का भी वर्णन किया गया है।

इस प्रकार गोकुल में उद्धव के पहुंचने की सम्भावना करने के बाद सर्वप्रथम उन्हें कृष्ण की ओर से वृन्दावन के वृक्षों को आशीर्वाद देने, गायों से उनकी कुशल पूछने, वृद्ध गोपियों के चरणों में प्रणाम कहने, श्रीदामा इत्यादि प्रिय साथियों का आलिंगन करने और नन्द तथा यशोदा के चरणों में प्रणाम करने का आदेश दिया गया है।

इसके बाद गोपियों के पास पहुंच कर उन्हें अपना सन्देश सुनाने की कृष्ण ने उद्धव से प्रार्थना की है। सामूहिक रूप से गोपियों के लिए अपना कुछ संदेश देकर चन्द्रावली, विशाखा और ललिता के लिए कृष्ण ने अपना कुछ विशेष सन्देश दिया है। तदनन्तर उद्धवजी से राधा के पास जाने की प्रार्थना की गई है। सम्भव है कि वियोग में राधा मृतप्राय हो, इसलिए कृष्णजी अपनी पंचवर्ण वासन्तीमाला भी उद्धव को देते हैं ताकि उसके सौरभ से वह जीवित बनी रहे। इस प्रकार माला ले कर शनै शनै राधा के पास पहुंच जाने के बाद उद्धव से उसे अपना सन्देश सुनाने के लिए कहा गया है।

सन्देश में राधा की विरह विवशता और अपनी आतुरता के वर्णन के बाद राधा को पुनर्मिलन का आश्वासन दिया गया है।

अन्त में उद्धव से गोकुल में कुछ समय तक ठहरने की प्रार्थना की गई है तथा उन्हें व्रजभूमि की यात्रा के लिए प्रोत्साहित भी किया गया है। अन्त कृष्णजी की प्रार्थना से कवि ने काव्य का उपसंहार कर दिया है।

काव्य समीक्षा

श्रीमद्भागवत से कथावस्तु लेकर मेघदूत के अनुकरण पर यह सन्देश काव्य लिखा गया है। कवि ने अपनी कल्पना से कृष्ण की विरहावस्था, उद्धव की दूत कार्य करने के लिये स्तुति, मार्गवर्णन, गोपियों और राधा के चरित्र का चित्रण तथा सन्देश-कथन द्वारा मूल कथावस्तु को एक सर्वांगपूर्ण सन्देश काव्य का रूप दे दिया है। मेघदूत के अनुकरण पर समग्र काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा काव्य में कथावस्तु का कोई विभाजन नहीं किया गया है। जिस तरह मेघदूत में नायक की ओर से नायिका के लिए सन्देश भेजा गया है, इसी तरह इस काव्य में भी नायक की ओर से अपनी प्रेमिकाओं के लिये सन्देश भेजा गया है। काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ शृंगार ही है। कृष्ण और गोपियों की प्रणय क्रीडाओं के वर्णन से काव्य ओतप्रोत है। मार्ग वर्णन के प्रसंग में भी जिन जिन स्थानों का वर्णन किया गया है, वे भी कृष्ण की विभिन्न लीलाओं से सम्बद्ध होने के कारण से ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार मार्ग में आने वाले रहेला नामक एक स्थान का वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

> गोपेन्द्रस्य व्रजपरिसरे लब्धतुष्टिर्मनोज्ञा
> तां विख्यातां कलितमहिलाचाटहेलां रहेलाम्।
> यामासाद्य प्रहितमुरलीकाकलीहूतिकोऽहम्
> सायं गोपीकुलमकरवं सामि नेपथ्यनद्धम् ॥२६॥

साहार नामक स्थान का भी वर्णन करते हुए कहा गया है—

> अङ्घालेन क्षितिपतिपुरीं स्यन्दनेनानुविन्दन्
> यस्मात्साहार प्रियमकरवं हारि हैयङ्गवीनम् ॥२८॥

प्रीतहार नामक स्थान का भी वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

> यत्र प्रीतानहमकरवं मित्रभावेन शावान्
> हारं हारं त्रिदिवसमयो पल्लवीनां दधीनि ॥३०॥

कवि ने गोकुल का तो बड़ा ही स्वाभाविक और सत्य चित्रण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है—

सोऽयं दध्ना मथननिनदाक्रान्तदिक्चक्रवालो
घोषस्तोष तव जनयिता योजनद्वन्द्वसुम्वी।
दिव्येनाल निखिलजगतीं सर्पिषा तर्पयन्ती
मातर्भूम्ना विलसति विधेर्गोमयी यत्र सृष्टिः ॥२६॥

स्थानान्तर पर गोकुल में दौड़ते हुए गोशिशुओं का भी कवि ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है—

धावद्बालावलिकरतलप्रोच्चलद्वालधीनाम्
यष्टोत्तुङ्गस्फटिकपटलस्पर्धिदेहद्युतीनाम्।
प्राय प्राय नवतृणशिखासु चतीना वसन्ते
वत्सालीना चटुलचटुल शश्वदाटीकनानि ॥३८॥

इतना सब कुछ होते हुए भी वन, शैल और कुञ्ज इत्यादि दृश्य जगत् के वर्णन में कवि ने उतनी निपुणता नहीं दिखलाई है जितनी कि विरहिणी और कृष्णपरायण गोपियों के मानसिक भावों के चित्रण में। काव्य का अधिकांश तो गोपियों की विभिन्न भावनाओं के चित्रण से ही भरा हुआ है। सन्ध्यासमय गोकुल में कृष्ण से मिलने के लिए उत्सुक गोपियों की मानसिक भावनाएं बड़ी सरस रीति से वर्णित की गई हैं। ऐसे ही एक स्थल पर कवि ने लिखा है—

रेणुर्नाय प्रसरति गवा धूमधारा कृशानो
वेणुर्नासौ गहनकुहरे कीचको रोरवीति।
पश्योन्मत्ते रविरभियया नाधुनापि प्रतीचीं
मा चाञ्चल्य कलय कुचयो पत्रवल्लीं तनोमि ॥३६॥

सन्ध्या समय अग्नि की धूमराशि तथा कीचक बासों के रव को सुनकर किसी गोपी को गोधूलि तथा कृष्ण के बशी बजाने का भ्रम हो जाता है और वह अपने शृगार को पूर्ण किए बिना ही बाहर निकल आना चाहती है। ऐसे अवसर पर उसकी प्रसाधिका द्वारा उसकी अधीरता रोकने के लिए यह वचन कहे गए हैं। गोपी की उत्सुकता का कवि ने कितनी सुन्दर रीति से वर्णन किया है।

कृष्ण के सम्बन्ध में गोपियों में परस्पर जो प्रेमपूर्ण वार्तालाप कवि ने अपनी कल्पना से प्रस्तुत किया है, उसमें कहीं २ बड़े सुन्दर भाव चित्र दीख पड़ते हैं इसी प्रसग में एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है—

शौरिर्गोष्ठाङ्गणमनुसरन् शिञ्जितैरत्र मुग्ध
किङ्किण्यास्ते परिहर दृशोर्मार्गदृश्यं मणिताङ्घ्रि ॥
आराद्गीते कलपरिमिलन्माधुरीके कुरङ्गे
लब्धे सद्यः सखि विधयता वागुरा कस्तनोति ॥४१॥

किंकिणी के मधुर रव से मुग्ध हुए कृष्ण पर पुनः कटाक्ष द्वारा आघात करना व्यर्थ ही है। कवि ने दृष्टान्त भी बड़ा सुन्दर ही दिया है। हिरन का संगीतप्रेम तो प्रसिद्ध ही है।

स्थानान्तर पर एक गोपी राधा से कहती है—

तिष्ठन् गोष्ठाङ्गणभुवि मुहुर्लोचनाम्भ बिधत्ते
जातोत्कण्ठस्त्वय मयि हरिर्देहलीवेदिकायाम् ।
मिथ्यामानोन्नतिकलिते किं गवाक्षार्पिताक्षी
स्वान्ते हन्त ग्लपयसि वृथि प्रीणय प्राणनाथम् ॥४४॥

'गवाक्षार्पिताक्षी' विशेषण से राधा की कृष्ण से मिलने की उत्कण्ठा प्रतीत होती है। अतः उसका मान को मिथ्या ही समझा जाना चाहिये। कृष्ण को प्रसन्न करने का उसकी सखी का आदेश उचित ही है।

गोकुल में गोपियों की प्रेमोल्लास से पूर्ण नर्मगोष्ठी का कृष्ण के मुख से कवि ने बड़ा भावपूर्ण वर्णन कराया है। एक गोपी अपनी सखी से कहती है—

निर्माय त्व धितर फलकं हारि कंसारिमूर्त्या
वार वार विशसि यदि मा मानर्निर्वाहणाय।
यत् पश्यन्ती मदनमुहर स्वकर्णान्तराऽहम्
साहङ्कारा प्रियसखि सुखं यापयिष्यामि यामम् ॥४७॥

कृष्ण से मान तभी निभ सकता है जब पास में उनका चित्र हो और घर के किसी भीतरी भाग में कानों को बन्द करके बैठा जाए, ताकि वंशी का शब्द बिल्कुल ही न सुन पड़े। फिर भी यह मान केवल एक प्रहर ही टिक सकता है। गोपी के इस वचन से उसके कृष्ण प्रेम का सहृदय पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।

एक स्थान पर दो गोपियों में परस्पर निम्न वार्तालाप चलता हुआ बतलाया गया है—

वारं वारं व्रजसि सलिलच्छद्मना पद्मबन्धो
पुत्रीं शान्तस्त्व सखि! रमे पुण्डरीके दलेऽसौ।[1]
चेत काम्या भवति विशदा सारसाली न वा मे
ते न स्मेरं मुहुरभिलषाम्यच्युतं रक्तपद्मम्[2] ॥४८॥

---

१ श्वेत कमल दर्शन, कमलनयन कृष्ण।
२ लाल कमल, लक्ष्मी में अनुरक्त कृष्ण।

गोपियों की श्लेष से अनुप्राणित इन उक्ति प्रत्युक्तियों में कितना वाक्चातुर्य छिपा हुआ है।

कहीं-कहीं कवि ने अपह्नुति अलंकार की सहायता से भी कृष्ण का चरित्र काव्य में प्रस्तुत किया है। एक गोपी अपनी सखी से कहती है—

हस्तेनाद्य प्रियसखि लसत्पुष्करामेन दूरात्
कृष्णेनाहं मदकलदृशा कम्पिताङ्गी विकृष्टा।

इस पर उसकी सखी उसे सावधान करती है—

नीचैर्जल्प भ्रमति पुरतो भ्रान्तचित्ते गुरुस्ते

तदनन्तर वह गोपी फौरन ही बात पलट देती है

हृङ्कालिन्दीपुलिनविपिने दीप्रदन्तीश्वरेण ॥६१॥

यहां पर दीप्रदन्तीश्वर (गज) के लिये ऐसे ही विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं जो कृष्ण के लिये भी उपयुक्त हो सकें। वास्तव अर्थ तो सूक्ष्म दृष्टि वाले पाठक समझ ही सकते हैं।

कृष्ण की मथुरा-यात्रा के अवसर पर भावी विरह की आशंका से व्याकुल गोपियों के विलापवचन बड़े ही भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी हैं। कृष्णजी प्रभात होते ही गोकुल से मथुरा जाने वाले हैं। इस संवाद को सुनकर एक गोपी प्रार्थना करती है कि रात्रि लम्बी हो जाय। लेकिन उसकी प्रार्थना कौन सुनता है—

प्रातर्यात्रा नरपतिपुरे तथ्यमाकर्ण्य शौरे
आयामाय प्रियसखि मया यामिनी प्रार्थिताऽभूत्।
पश्य क्षिप्रं प्रथितलघिमा पापिनीयं प्रभाता
जायन्ते हि प्रचुरतमसो नानुकूला परेषु ॥६८॥

कृष्ण के विरह में प्राणों को छोड़ने के लिये तत्पर एक गोपी अपने हाथ में तलवार लिये हुये है। इसलिये उसकी सखी अक्रूर से शीघ्र ही कृष्ण को रथ से उतार देने की प्रार्थना करती है —

आरादग्रे कलय नृपतेर्दूत निधूं तलज्जा
सज्जा तन्वी किमपि नियमं साहसं कर्तुमिच्छु।
यानाद्यावद्विसृजसि पुरश्चन्द्रहासं न कृष्णम्
हस्तात्तावद्विसृजति सखी चन्द्रहासं न कृष्णम्[1] ॥७२॥

---

[1] चन्द्रहासम् = चन्द्रमा के समान हासवाला, चन्द्रहास = तलवार। कृष्ण = काला।

भारी विरह की आशंका से ही प्राणों को त्यागने के लिये गोपी का तत्पर हो जाना उसके अगाध प्रेम का परिचायक है। यमक अलंकार के आवरण में कवि ने एक गम्भीर भाव को कितनी सरलता से व्यक्त किया है।

आगे चल कर कवि ने कृष्ण के मथुरा चले आने पर विरह कातर गोपियों के भावों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। एक गोपी अपनी सखी से कहती है।

नेलब्ध शीतलयितमनालोक्य तद् वक्त्रबिम्बम्
व्यस्तालम्बा यदहमहह प्राणकीटं बिभर्मि ॥८२॥

प्रिय के दर्शन न होने पर अपने को अनाथ समझना तथा प्राणों को कीट के समान अतितुच्छ समझना प्रेम की अनन्यता व्यक्त करता है। इसी प्रसंग में एक और गोपी अपने मन का हाल बताते हुये कहती है—

आशापाशैः सखि नवनवैः कुर्वती प्राणबन्धं
आत्या भीरु कति पुनरहं वासराणि क्षयिष्ये।
एते वृन्दावनविटपिनः स्मारयन्तो विलासान्
उत्फुल्लास्ताम्मम किल बलान्मर्म निर्मूलयन्ति ॥८३॥

गोपियों का विरह विलाप इतना तीव्र और करुणोत्पादक है कि गोकुल के पास से आने वाले यात्रियों को भी रुला देता है। इसीलिये तो यात्रियों ने कानों को बन्द कर भी गोकुल की सीमा के पास से निकलना बन्द कर दिया है—

इत्युन्नद्धे पशुपरमणीमण्डलीनां विलापे
भूयोभूयः कवणकरुणैरस्य कीर्णान्तरस्य।
उद्यद्बाष्पा त्यजति परितो रुद्धकर्णा कराभ्यां
दूरात्पान्थावलिरपि सरो यस्य सीमोपकण्ठम् ॥९०॥

गोपियों की विरहावस्था के वर्णन के बाद कृष्ण ने उद्धव को अपना जो सन्देश सुनाया है, उससे गोपियों के प्रति कृष्ण के प्रेम की अगाधता तथा तीव्रता का बड़ा स्पष्ट परिचय मिलता है। कृष्णजी कहते हैं—

ध्यायं ध्यायं नवनवमहं सौहृदं च सुरङ्गत्र।
गाढोत्कण्ठाकलमपरयहं वासराणि क्षिपामि ॥१०४॥

विशाखा नाम की गोपी का मधुर और कोमल वार्तालाप तो कृष्ण को हमेशा ही याद आता रहता है—

गम्भीराणि प्रमदगुरुभिर्गूढनर्मप्रबन्धैः
माध्वीकानां मधुरिमभराणि निर्निधिध्यसनानि।
गोत्वगर्दं मे स्मरति हृदयं श्यामले! कोमलानि

प्रेमोत्तुङ्गस्मितपरिचितमन्यथ ते जल्पितानि ॥११८॥

ललिता नाम की गोपी की भी कृष्ण को कुछ कम चिन्ता नहीं है। ललिता से वे पूछते हैं—

न्यस्ताङ्गी मे सुरभिणि भुजस्तम्भयोरन्तराले
भूयोभिस्त्वं रहसि ललिते केलिभिर्लालितासि।
अन्तश्चिन्ताविधुरमधुना पांशुषु त्वं लुठन्ती
हन्त म्लाना रचयसि कथं प्राणसन्धारणानि ॥११३॥

प्रिय के वियोग में प्रेयसी का चिन्तित रहना, धूल में लोटना और मलिन रहना स्वाभाविक ही है। कभी कभी प्राणों पर भी संकट आ सकता है। इसलिये कृष्ण का उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न पूछना नितान्त प्रासंगिक ही है।

गोपियों के लिये अपना सन्देश सुना कर कृष्ण ने राधा के प्रति अपना विशेष सन्देश भी दिया है। सर्व प्रथम राधा का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में कृष्ण जी उद्धव से कहते हैं —

त्वं मच्चेतोभवनवडभीप्रौढपारावतीं ताम्
राधामन्तः कलमकलितां सम्भ्रमेणाजिहीथाः ॥११६॥

राधा के लिए पारावती (कपोतिका) की बड़ी ही सुन्दर उपमा कवि ने दी है।

राधा की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

सा पल्यंके किशलयदलैः कल्पिते तत्र सुप्ता
गुप्ता नीरस्तबकितदृशा चक्रवाले सखीनाम्।
द्रष्टव्या ते कृशिमकलिता कण्ठनालोपकण्ठ
स्पन्देनान्तर्गुरुमनुमितप्राणसङ्गा वराङ्गी ॥११७॥

मुक्तच्छाया मुहुरसुमना क्षोणिपृष्ठे लुठन्ती
वक्षापेक्षाम् विलसति गते माधवे माधवीयम् ॥११८॥

विरहिणी राधा के ताप, कृशता, अंग मालिन्य, उन्माद और जड़ता का कवि ने एक साथ कैसा भावपूर्ण चित्रण यहां प्रस्तुत किया है।

राधा की विरहावस्था के वर्णन के बाद कृष्ण ने उद्धव को राधा के लिए दिया जाने वाला अपना सन्देश बताया है। सर्व-प्रथम वे कहते हैं कि राधा के कष्ट का उन्हें (कृष्ण को) ध्यान तो है, लेकिन कोई प्रतिकार करने में वे अपने को असमर्थ पाते हैं—

नीते शोषं विरहरविणा सर्वतो हृत्तडागे
आने कण्ठस्थलविलुठितप्राणमीनाभिः तन्वि ।
दूरे सम्प्रत्यविरलसुहृन्मारुतैर्वारितोऽहम्
तृष्णाम्भोधौ विलसदमृतालटि्पत किं करिष्ये ॥१२३॥

उपर्युक्त पद्य में रूपक के द्वारा राधा की दयनीय अवस्था का कवि ने बड़ा स्पष्ट निरूपण किया है। अन्त में कृष्ण राधा को सान्त्वना देते हैं—

निन्दन् वर्षास्फुरितवदनो नेत्रयीथीमकस्मात्
अन्तर्बाधास्खलितधियो धातुभिर्धूमलोऽहम् ।
क्रीडाकुञ्जे लुठितवपुषं श्रान्तमानन्दधारा-
कल्लोलैस्ते रहसि सहसोत्फुल्लमुल्लासयिष्ये ॥१२६॥

विरहरवि से शुष्क हृदय प्राणी को आनन्द की धाराएं ही तृप्त कर सकती हैं।

इसके बाद कृष्ण राधा को अन्तिम आश्वासन देते हुए कहते हैं—

प्रेमोन्मादादहमधिवहन् बाष्पधारामकाण्डे
गण्डोत्सङ्गे स्मरपरिभवे पाण्डुरे दत्तचुम्ब ।
कुर्वन् कण्ठग्रहविलसितं नन्दयिष्यामि सत्यम्
माञ्जिष्ठेन त्वा सहचरि परिष्वङ्गगाढोत्सवेन ॥१२७॥

विरहिणी नायिका के लिए इस सन्देश से बढ़ कर सुखदायक और क्या बात हो सकती है।

सन्देश के बाद उद्धव को गोकुल में कुछ काल ठहरने का परामर्श देने के साथ साथ काव्य भी समाप्त हो जाता है।

काव्य के आद्योपान्त अनुशीलन से यह कहा जा सकता है कि कवि की वर्णन शैली बड़ी रमणीय है। विषय विस्तार होते हुए भी काव्य से श्रोताओं अथवा पाठकों को विरक्ति नहीं होती है। राधा और कृष्ण तथा गोपियों के विरह वर्णन में कवि ने बड़ी कुशलता दिखलाई है। स्थान स्थान पर कृष्ण की रास-लीला का बड़ा सरस वर्णन पाया जाता है।[1] यद्यपि इन सब बातों में श्री मद्भाग-

---

१ केयं श्यामा स्फुरति सरले ! गोपकन्या विमर्षम्
प्राप्ता सत्यं तव मृगपते निर्मितासौ वयस्या।
आलिङ्गामु मुहुरिति तथा कुर्वती मा विदित्वा
नार्यश्च द्विगुणयती मानिनी यत्र राधा ॥६४॥ इत्यादि

यत् का प्रभाव स्पष्ट है, फिर भी कोमल और नवीनतम पद विन्यास द्वारा कवि ने यह सब विषय नवीन से बना दिए हैं।[1]

जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है कि कवि ने मेघदूत के अनुकरण पर काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया है, इसलिए कहीं २ पर भाषा तथा दोनों ही में मेघदूत की छाया स्पष्ट दीख पड़ती है। यथा अक्रूरतीर्थ के वर्णन प्रसंग में इस काव्य में कहा गया है—

यज्वानस्ते यदपि भवतो विप्रिया हेलनान्मे
मन्नस्तेषां तदपि भवनद्वाररथ्या जिहीर्षा।
गायन्तीनां मदनुचरितं तत्र विप्राङ्गनानाम्
आलोकाय स्पृहयसि न चेदीक्षणैर्वञ्चितोऽसि ॥१७॥

इस पद्य में मेघदूत का अनुकरण स्पष्ट ही है।

ललिता नामक गोपी को अपने सन्देश में सान्त्वना देते हुए कृष्णजी कहते हैं—

सोढव्यं ते कथमपि बलाच्चक्षुषी मुद्रयित्वा
तीव्रोत्तापं हतमनसिजोद्दामविक्रान्तचक्रम् ॥११४॥

यहां पर—शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥मे० २ ॥४६॥

पंक्ति का प्रभाव निज पाठक स्वयं जान सकते हैं।

एक अन्य स्थल पर एक गोपी के अपनी सखी के प्रति इस कथन में—

आशापाशैः सखि भवनरैः कुर्वती प्राणबन्धम्
जात्या भीरु कति पुनरहं वासराणि क्षयिष्ये ॥८३॥

मेघदूत के-आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानाम्
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥१॥१०॥ की ही प्रतिध्वनि है।

कहीं कहीं कवि ने अपने अनुभव के आधार पर बहुत सी व्यावहारिक उपयोगी बातें भी काव्य में समाविष्ट कर दी हैं। यथा—

---

१ तत्तत्तन्वि स्मरसि विपिने फुल्लशाखे विशाखे
कर्षन्नीवीं तव मुहुरहं वीक्ष्य मुग्धां मिलन्तीम्।

कल्याणीं मे वितर कितवे हन्त खेलान्तरालं
गुञ्जा गुञ्जावलिमिति वदन् यद्विलक्षस्तदासम् ॥१०६॥

(१) न्यस्त साधीयसि सफलतामर्थभारो हि धत्ते ॥३॥

(२) सन्तस्तुष्टे सुहृदि हि निजां तुष्टिमेवामनन्ति ॥११॥

(३) मन्दाक्रान्ता न खलु पदवीं साधव शीलयन्ति ॥१४॥

(४) भर्तुर्दोषादपि हि कुशला हन्त दुष्यन्ति भृत्या ॥१००॥

कृष्णजी की अपने साथियों के साथ बाललीलायें, गोपियों के साथ प्रणय-क्रीडायें तथा दुष्ट दैत्यों के दमन की पराक्रम कथायें स्थान स्थान पर इस काव्य में वर्णित की गई हैं। अत कृष्ण भक्तों के लिये भी यह काव्य बड़ा ही आदरणीय है।

रूपगोस्वामी का हंसदूत

काव्य की कथा

इस काव्य की कथा यों तो काल्पनिक ही है, लेकिन श्रीमद्भागवत से प्रेरणा लेकर ही यह काव्य लिखा गया है। श्रीमद्भागवत में वर्णित मूल घटना में अपनी प्रतिभा से कवि ने एक और चमत्कारपूर्ण घटना का समावेश कर दिया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। भगवान् श्रीकृष्ण जब अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं, तब राधा उनके विरह में बड़ी चिन्तित रहने लगती है। किसी दिन अपने खिन्न मन को बहलाने के लिये वह अपनी सखियों के साथ यमुना तट पर जाती है, लेकिन वहां पूर्व परिचित स्थानों को देखकर कृष्ण की स्मृति के आ जाने से वह तत्काल मूर्छित हो जाती है। उसकी सखियां कमल के पत्रों से उसका उपचार करती हैं। इस तरह जब वह होश में आ जाती है, तब ललिता नाम की उसकी एक सखी यमुना के घाट पर कमलपत्रों के ऊपर उसको लिटादेती है। इसी अवसर पर ललिता को एक हंस दिखाई पड़ जाता है। वह उसे ही अपना दूत बनाकर कृष्ण की सभा में मथुरा भेजती है।

जिस मार्ग से अक्रूर कृष्ण को मथुरा ले गया था, हंस के लिये भी मथुरा जाने ही मार्ग बतलाया गया है। यमुना तट से आगे बढ़ने पर सर्व प्रथम मार्ग में कदम्ब वृक्ष बतलाया गया है। यह वही कदम्ब वृक्ष है, जिस पर कि यमुना में स्नान करती हुई गोपियों के वस्त्र अपहरण कर भगवान् कृष्ण आ बैठे थे। इस वृक्ष

के बाद गोपियों के साथ विहार करने की कृष्ण की रासस्थली, फिर वासन्ती लता से घिरा हुआ कृष्ण का चतुःशाल सदन और तदनन्तर गोवर्धन पर्वत बतलाया गया है। इसके बाद कदम्बवन-घाटी में से होते हुए तथा अरिष्ट नामक असुर के पर्वत के समान बडे और चिरशुष्क सिर को मार्ग में देखते हुए आगे बढने पर भाण्डीरवन (अजीर के पेडों का वन) और ब्रह्मा के मोहनस्थान पर हंस के पहुंचने का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर कालियह्रद के मधुर जल को पीकर तथा उसके निकट ही विराजमान वृन्दा देवी की वन्दना करके आगे बढते हुए एकादश तथा द्वादश वन को पार करने के बाद हंस के मथुरा पहुंच जाने का वर्णन किया गया है। मथुरा नगरी तथा कृष्ण के अन्तःपुर और क्रीडागृह का भी इस प्रसंग में कुछ वर्णन किया गया है। तदनन्तर कृष्ण के मधुर स्वरूप का कुछ दिग्दर्शन कराने के बाद उचित अवसर देखकर, कृष्ण को अपना सन्देश सुनाने की ललिता ने हंस से प्रार्थना की है। सन्देश में सर्व प्रथम ललिता ने कपिला गाय, वासन्ती लता, गोकुल और गोपियों की दीन दशा का वर्णन किया है। तदनन्तर राधा की कृष्णविरहजन्य विभिन्न भावनायें, चेष्टायें और अवस्थायें वर्णित की गई हैं।

अन्त में हंस से भगवान् कृष्ण की वनमाला, मकर कुण्डल, कौस्तुभमणि और पाञ्चजन्य शंख की प्रशंसा करने के लिये कहा गया है ताकि वे भी हंस के अनुकूल हो जायं। इसके बाद ललिता ने हंस से कृष्ण को दश अवतारों की कथा सुनाने का परामर्श दिया है। इस प्रसंग में कृष्णजी को मीन, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलदेव, बुद्ध और कल्कि इन अवतारों की कथा के द्वारा विविध आक्षेप दिये गये हैं तथा कहीं २ उनकी प्रार्थना भी की गई है।

इस तरह सन्देश सुनाने के बाद अन्त में हंस को मथुरा जाने के लिये प्रोत्साहित किया गया है। यहां पर ही काव्य की कथा भी समाप्त हो जाती है।

काव्य समीक्षा

श्रीमद्भागवत के आधार पर लिखे गये दूतकाव्यों में यह काव्य अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। काव्य की कथा यों तो काल्पनिक ही है, फिर भी कवि ने प्रेरणा श्रीमद्भागवत से ही प्राप्त की है। हंस को दूत बनाने का विचार भी श्रीमद्भागवत से ही लिया गया है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में ९० वें अध्याय में श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में भागवत कार ने कृष्ण के सम्बन्ध में लिखा है कि उनकी रानियां उनके प्रेम में मग्न रहतीं थीं और उनका ही चिन्तन करती रहतीं थीं। किसी समय कमलनयन श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते उन्मत्त की तरह वे कुछ प्रलाप करने लगीं। उस प्रलाप में उन्होंने कुररी (टिटिहरी), चक्रवाकी, चन्द्रमा, मलयानिल, मेघ, कोकिल, गोवर्धनपर्वत और नदियों को सम्बोधन किया तथा उनसे भी कृष्ण के सम्बन्ध में वार्तालाप किया। अन्त में उन्होंने हंस को सम्बोधन किया—

हस स्वागतमास्यना पिव पयो वूह्यङ्ग शौरे कथाम्।
दूतं त्वा नु विदाम कच्चिदजिन स्वस्त्यास्त उक्त पुरा।
किं वा नश्चलसौहृद स्मरति त कस्माद्भजामो वयम्।
सोद्रालापय कामद श्रियमृते सेवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

इस पद्य में स्पष्टत ही हंस के दूत होने का उल्लेख पाया जाता है। अत यह कहना असगत न होगा कि लेखक ने इस अवतरण के आधार पर ही हस को दूत बनाने की कल्पना की है तथा अपने काव्य का नाम भी हसदूत रख दिया है।

सन्देश काव्यों में प्राय मगलाचरण नहीं होता है, लेकिन इस कवि ने काव्य के आदि में कृष्ण की स्तुति में मगलाचरण भी किया है—

दुकूल बिभ्राणो दलितहरितालद्युतिहर
जवापुष्पश्रेणीरुचिरचिरपादाम्बुजतल ।
तमालश्यामाङ्गो दरहसितलीलाञ्चितमुख
परानन्दाभोग स्फुरतु हृदि मे कोऽपि पुरुष (कृष्ण) ॥१॥

कृष्ण काव्य में कृष्ण की प्रार्थना उचित ही है। मेघदूत से भी कवि ने इस काव्य के लिखने की प्रेरणा कुछ अशों में अवश्य ली होगी। फिर भी काव्य के बाह्य विधान में मेघदूत का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता है। काव्य में कुल १४५ श्लोक हैं। कलकत्ता के वसुमती सस्करण में केवल १०१ ही श्लोक पाए जाते हैं। समग्र काव्य में शिखरिणी छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कथा को पूर्व भाग और उत्तर भाग के रूप में न बाट कर एक साथ ही रक्खा गया है। सदेश भी नायक की ओर से नायिका को नहीं भेजा गया है, बल्कि नायिका की सखी ने नायिका की ओर से उसके प्रेमी के पास भेजा है।

यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से इस काव्य का मार्गदर्शन कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है, फिर भी जिन स्थानों का कवि ने काव्य में वर्णन किया है, वे पाठकों के हृदय को आकृष्ट किये बिना नहीं रह सकते। कुछ तो उनका प्राकृतिक सौन्दर्य ही चित्ताकर्षक है। कुछ कृष्ण की लीलास्थली होने के कारण वे भक्तों के लिये स्वय ही अतीव आनन्द दायक हैं। ऐसे ही स्थलों में सर्व प्रथम गोवर्धन गिरि आता है। गोवर्धन गिरि का वर्णन करते हुए ललिता कहती है—

सकृद्वंशीनादश्रवणमिलिताभीरवनिता—
रह क्रीडासाक्षी प्रतिपदलतासद्मसुभग ।
स धेनूना बन्धुर्मधुमथनखट्वायितशिल
करिष्यत्यानन्द सपदि तव गोवर्धनगिरि ॥२१॥

प्राकृतिक सुषमा के साथ साथ कृष्ण की प्रणयलीलाओं के केन्द्र होने के कारण अवश्य ही गोवर्धन पर्वत दर्शकों को आनन्द दे सकता है।

कालियह्रद के वर्णन में भी कवि ने गोपियों की आतुरता, उत्कण्ठा और चिन्ता का बड़ा ही सुन्दर चित्र अंकित किया है। ललिता कहती है–

उदञ्चन्नेत्राम्भ प्रसरलहरी पिच्छिलपथ—
स्खलत्पादन्यासप्रणिहितविलम्बाकुलधिय।
ह्रदो यस्मिन्मग्ने त्वरितयमुनाकूलगमन—
स्पृहाक्षिप्ता गोप्यो ययुरनुपदं कामपि दशाम् ॥२६॥

एक तरफ गोपियों को शीघ्रता भी है। दूसरी ओर नेत्र जल से मार्ग के पिच्छिल हो जाने से पैर फिसलने का डर भी है। अतः विवश हो उन्हें विलम्ब करना पड़ रहा है। ऐसे अवसर पर उनकी मानसिक अवस्था का अनुमान सहृदय पाठक ही कर सकते हैं।

मथुरा नगरी भी कम सुन्दर नहीं बतलाई गई है। ऊँचे २ मकान, फूलों से भरे हुये उद्यान तथा यमुना का तट और यादव लोग तो उसकी शोभा बढ़ाते ही हैं–

पुरी यस्मिन्नास्ते यदुकुलभुजा निर्मलयशो-
भराणां धाराभिर्धवलितधरित्रीपरिसरा ॥३२॥

निकेतैराकीर्णा गिरिशगिरिडिम्भप्रतिभटै—
र्वधूस्तम्भस्तम्भावलिविलसितैः पुष्पितवना।
निविष्टा कालिन्दीतट भुवि तथाधास्यति सखे
समन्तादानन्दं मधुरजनवृन्दा मधुपुरी ॥३३॥

लेकिन मथुरा का सौन्दर्य किसी और बात में ही है। कृष्णजी जब मथुरा गये थे, तब वहां की स्त्रियों की कृष्णदर्शन लालसा का जो सुन्दर चित्र कवि ने अंकित किया है, वह बड़ा ही भावपूर्ण है। मथुरा की एक स्त्री का वर्णन करते हुए ललिता कहती है–

असव्ये बिभ्राणा पदमधृतलाक्षारसमसौ
प्रयाताऽहं मुग्धे विरम मम वेशैः किमधुना।
अमन्दादाक्रन्दे सखि पुरपुरन्ध्रीकलकलाद्
अलिन्दाग्रे वृन्दावनकुसुमधन्वा विजयते ॥३६॥

कृष्ण के दर्शन के लिये यह स्त्री कितनी उत्सुक है। उसे अपने शृंगार की बिल्कुल चिन्ता नहीं है। वह डरती है कि कृष्ण कहीं आगे न निकल जायें और उसे फिर उनके दर्शन का अवसर ही न मिले।

इसी प्रकार एक स्त्री ने कृष्ण के दर्शन कर लिये हैं। उसकी भी विचित्र अवस्था हो गई है। उसकी सखी अनुमान लगाती है कि हो न हो, कृष्ण के दर्शनों से ही उसकी यह अवस्था हुई है—

मुहुः शून्या दृष्टिं वहसि रहसि ध्यायसि सदा
शृणोषि प्रत्यक्षं न परिजनविज्ञापनशतम्।
अतः शङ्के पङ्केरुहमुखि ययौ श्यामलरुचि
स यूनामुत्तंसस्तव नयनवीथीपथिकताम् ॥३८॥

उपर्युक्त पद्य में कृष्ण के प्रति मथुरा की किसी नारी के पूर्वराग का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। इसी प्रसंग में आगे चलकर कहा गया है कि कोई स्त्री कृष्ण के वियोग में रोने लगती है। उसकी सखी उसे सान्त्वना देती है कि उसे कृष्ण अवश्य ही फिर मिलेंगे—

विलज्ज मा रोदीरिह सखि पुनर्यास्यति हरि—
स्तवापाङ्गक्रीडानिविडपरिचर्याग्रहिलताम् ॥३९॥

कवि ने ललिता के द्वारा कृष्ण के स्वरूप की जो झाँकी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की है, वह भक्तों तथा भावुक पाठकों दोनों ही के लिए आनन्ददायक है। ललिता हंस से कहती है—

उदञ्चत्कालिन्दीसलिलसुभगम्भावुकरुचिः
कपोलान्ते भ्रंशन्मणिमकरमुद्रामधुरिमा।
वसानः कौषेयं जितकनकलक्ष्मीपरिमलं
मुकुन्दस्ते साक्षात् प्रमदसुधया सेक्ष्यति दृशौ ॥४०॥

आगे चलकर कृष्ण के अंग प्रत्यंग के सौन्दर्य का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया गया है। कृष्ण के विशाल वक्ष स्थल का वर्णन करते हुए कहा गया है—

उरो यस्य स्फारं स्फुरति वनमालावलयितम्
वितन्वानं तन्वीजनमनसि सद्यो मनसिजम्।
मरीचीभिर्यस्मिन् रविनिवहतुल्योऽपि वहते
सदा खद्योताभां भुवनमधुरः कौस्तुभमणिः ॥४१॥

कृष्ण के विशाल तथा वनमाला से शोभायमान वक्ष स्थल को देखकर कौन मुग्ध नहीं होगा ?

उनकी भुजाओं का भी सौन्दर्य कम नहीं है। ललिता कहती है—

समन्तादुन्मीलद्नवलभिदुपलस्तम्भयुगल-
प्रभाजैत्र केशिद्विजलुलितकेयूरललितम् ।
स्मरक्लाम्यद्गोपीपटलहठकण्ठग्रहपरं
भुजद्वन्द्वं यस्य स्फुटसुरभिगन्धं विजयते ॥६०॥

कृष्ण के मुखारविन्द का वर्णन करते हुए कहा गया है—

जिह्वीते साम्राज्यं जगति नवलावण्यलहरी-
परीपाकस्यान्तर्मुदितमदनावेशमधुरम् ।
मरद्भ्रूवल्लीकं स्मितनवसुधाकेलिसदनम्
स्फुरन्मुक्तापङ्क्तिप्रतिमरदनं यस्य वदनम् ॥६१॥

कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर कवि ने उनके हृदय में आनन्द की लहर उमड़ा दी है। हंस को कृष्ण के स्वरूप का कुछ परिचय देकर ललिता कहती है कि गोपियों का सन्देश कृष्ण को तब न सुनाया जाय, जब वे मथुरा की परिष्कृत रुचि वाली रमणियों के पास बैठे हों, हो सकता है तब वे गोकुल की ग्रामीण स्त्रियों की बात बिल्कुल ही न सुनें—

विलोकेथा कृष्णं मदकलमरालीरतिकला-
विदग्धव्यामुग्ध यदि पुरवधूविभ्रमभरे ।
तदा नास्मान् ग्राम्या श्रवणपदवीं तस्य गमये
सुधापूर्णे चेतः कथमपि न तक्रं मृगयते ॥६३॥

उचित अवसर देख कर ही हंस को अपना सन्देश कृष्ण के लिए सुनाना चाहिए। जब कोयल कूक रही हो और सुरभित हवाएं चल रही हों, तब कृष्ण को अवश्य ही वृन्दावन का स्मरण होगा। बस, ऐसे ही अवसर पर ललिता हंस से सन्देश सुनाने की प्रार्थना करती है—

यदा वृन्दारण्यस्मरणलहरीहेतुरमलं
पिकानां वेवेष्टि प्रतिहरितमुच्चैः कुहुरुतम् ।
वहन्ते वा वाताः स्फुरितगिरिमल्लीपरिमला-
स्तदैवास्माकीना गिरमुपहरेथा मुरभिदि ॥६४॥

इसके बाद सन्देश प्रारम्भ होता है। कृष्ण के वियोग में माधवीलता तक को रोता हुआ बतलाया गया है—

समीपे नीपानां त्रिचतुरदला हन्त गमिता
त्वया माकन्दस्य प्रियसहचरीभावनियतिम् ।

इय सा वासन्ती गलदमलमाध्वीकपटली–
मिषादश्रैर्गोपीरमण रुदती रोदयति न ॥६७॥

कृष्ण-वियोग में गोपियों के स्वय रोने का कवि ने कैसे चमत्कार पूर्ण ढग से यहा वर्णन किया है। आगे चलकर ललिता कृष्ण से वृन्दावन में आने के लिये मना ही कर देती है। वह कहती है कि वृन्दावन की लतायें आजकल विषमय हो गई हैं, तभी तो गोपियाँ उनके पुष्पों को सूघ कर एकदम मूर्छित हो जाती हैं—

त्वया नागन्तव्य कथमिह हरे गोष्ठमधुना
लताश्रेणी वृन्दावनभुवि यतोऽभूद्विषमयी।
प्रसूनाना गन्ध कथमितरथा वातनिहितम्
भजन् सद्यो मूर्छा वहति निवहो गोपसुदृशाम् ॥७०॥

कवि ने इस पद्य में गोपियों की कृष्ण विरहजन्य मूर्छा तो बतलाई ही है, साथ में वृन्दावन की लतायें भी उनके विरह में बदलती हुई दिखलाई गई हैं।

ललिता कृष्ण को उपालम्भ देने में भी नहीं हिचकती है–

कथ सङ्गोऽस्माभि सह समुचित सम्प्रति हरे
वय ग्राम्या नार्यस्त्वमसि नृपकन्यार्चितपद ।
गत कालो यस्मिन् पशुपरमणीसङ्गमकृते
भवान् व्यग्रस्तस्थौ तमसि गृहवापीविटपिन ॥७१॥

फिर वह कहती है कि कृष्ण जो हम को छोड कर चले गए हैं, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। श्याम वर्ण वालों (मलिन आत्माओं) का तो ऐसा स्वभाव ही होता है—

वय त्यक्ता स्वामिन् यदिह तव किं दूषणमिद
निसर्ग श्यामानामयमतितरा दुष्परिहर ।
कुहूकण्ठैररडावधिसहनिवासात् परिचिता
विसृज्यन्ते सद्य कलितनवपक्षैर्वलिभुज ॥७२॥

कोयल और कौओं के दृष्टान्त को देकर कवि ने कृष्ण द्वारा गोपियों के भूल जाने का बडा यथार्थ चित्रण किया है।

आगे चलकर ललिता कृष्ण से कहती है कि तुमने गोपियों को भुला दिया इसकी कोई चिन्ता नहीं, पर यह तो बताओ कि राधा को क्यों भुला दिया है—

मया प्रष्टव्योऽसि प्रथममिति वृन्दावनपते।
किमादौ राधेति स्मरसि कृपण कर्णयुगलम् ॥७३॥

राधा की विरहावस्था का वर्णन करते हुए वह कहती है—

तरङ्गैः कुर्वाणा शमनभगिनीलाघवमसौ
नदीं काञ्चिद्गोष्ठे नयनजलपूरैरजनयत्।
इतीयमस्या द्वेषादिमिमदशाप्रार्थनमयीं
मुरारे! विज्ञप्तिं निशमयति मानी न शमनः ॥७६॥

राधा के लगातार रोते रहने से जो नदी बनी है, उसके सामने यमुना भी तुच्छ जान पड़ती है। अपनी बहिन के इस तिरस्कार से यमराज भी राधा से द्वेष करने लगा है और उसकी मृत्यु प्रार्थना को बिल्कुल सुनता ही नहीं है। कवि ने कृष्ण वियोग में राधा के लगातार रोते रहने और मृत्यु के चाहने का कैसी भाव भंगिमा के साथ वर्णन किया है।

ललिता फिर कहती है कि राधा के प्राणरूपी हरिण आजकल में उसके शरीर रूपी वन से निकलने वाले ही हैं, क्योंकि उसके शरीररूपी वन में कृष्ण के विरह की आग लगी हुई है तथा कामदेवरूपी शिकारी अपने बाणों से उसे निरन्तर पीड़ा पहुंचा रहा है—

समन्तादुत्तप्तस्तव विरहदावाग्निशिखया
कृतोद्वेगः पञ्चाशुगमृगयुवेधव्यतिकरैः।
तनूभूतं सद्यस्तनुवनमिदं हास्यति हरे
हठादद्य श्वो वा मम सहचरीप्राणहरिणः ॥८६॥

रूपक के आवरण में कवि ने राधा की विरहवेदना का बड़ा मार्मिक चित्र यहां पर अंकित किया है।

राधा की दशा बताने के बाद ललिता कहती है—

विशीर्णाङ्गीमन्तर्व्रणविलुठनाकुल्कलिकया
परीतां भूयस्या सततमपरागव्यतिकराम्।
परिध्वस्तामोदां विरमितसमस्तालिकुतुकाम्
विधो! पादस्पर्शादपि सुखय राधाकुमुदिनीम् ॥६३॥

पादस्पर्श की प्रार्थना से कम और क्या प्रार्थना हो सकती है? राधा को कुमुदिनी तथा कृष्ण को चन्द्रमा का रूपक देकर कवि ने राधा और कृष्ण के अनन्य प्रेम की भी व्यंजना की है। अन्त में ललिता कृष्ण से कहती है कि तुम्हारे वियोग में राधा जो-जो विलाप करती है, वह सब ठीक-ठीक कौन बतला सकता है। उसकी मनोव्यथा का अनुमान मेरे प्रति कहे हुए निम्न वचनों से आप स्वयं लगा सकते हैं। कभी ? वह मुझसे कहती है—

मनो मे हा कष्टं ज्वलति किमहं हन्त करवै
न पारं नावारं किमपि कलयाम्यस्य जलधेः ।
इयं वन्दे मूर्ध्ना सपदि तमुपायं कथय मे
परामृश्ये यस्माद्धृतिकणिकयापि क्षणिकया ॥१०४॥

असीम विरह वेदना में अब केवल मृत्यु ही उसका एक सहारा रह गया है—

प्रयातो मां हित्वा यदि विबुधचूडामणिरसौ
प्रयातु स्वच्छन्दं मम समयधर्मे (मृत्यु) किल गतिः ॥१०५॥

कुछ किसी और के लिये नहीं, तो राधा के लिए तो कम से कम कृष्ण को वृन्दावन वापिस आना चाहिए ही। मुख्यतया सन्देश में यही बातें कही गई हैं।

यद्यपि बाह्य रूप से काव्य में मेघदूत का प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता है, फिर भी कहीं कहीं मेघदूत की झलक काव्य में विज्ञ पाठक पा ही सकते हैं। ललिता हंस को दूत बनाती है। इस अवसर पर हंस के दूत बनाए जाने का समर्थन करते हुए कवि कहता है—

न तस्या दोषोऽयं यदिह विहग प्रार्थितवती
न कस्मिन् विश्रम्भं दिशति हरिभक्तिप्रणयिता ॥८॥

कालिदास ने भी मेघ के दूत बनाए जाने पर अपनी ओर से उचित समर्थन प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त हंस से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करने के बाद उसकी स्तुति करते हुए ललिता कहती है—

पवित्रेषु प्रायो विरचयसि तोयेषु वसतिं
प्रमोदं नालीके (न ऽलीके) वहसि विशदात्मा स्वयमसि।
अतोऽहं दुःखार्ता शरणमवला त्वां गतवती
न भिक्षा सत्पक्षे व्रजति हि कदाचिद्विफलताम् ॥९॥

इस स्थल में भी मेघदूत का ही अनुकरण किया गया है।

कृष्ण के केलिनिलय का वर्णन करते हुए ललिता कहती है—

भवान् द्रष्टा हेमोल्लिखितदशमस्कन्धचरितै-
र्लसद्भित्तिप्रान्तं मुरविजयिनः केलिनिलयम् ॥८६॥

सम्भव है कि कवि ने कृष्ण के क्रीडागृह की भित्तियों के भागवत के दशम स्कन्ध की घटनाओं से चित्रित होने का विचार मेघदूत में यक्षगृह के वर्णनप्रसंग में आई हुई—द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा—पंक्ति से लिया हो।

कृष्ण के क्रीडागृह के अलिन्द में मरकतरचित यष्टि पर रात्रि में मयूर को विश्राम करता हुआ बताया गया है—

अलिन्दे यस्यास्ते मरकतमयी यष्टिरमला
शयालुर्यां रात्रौ मदकलकलापी कलयति ॥४७॥

कवि ने यह भाव अवश्य ही मेघदूत से ग्रहण किया है। वहां भी इस प्रसंग में ऐसा ही वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार राधा के विरह वर्णन प्रसंग में एक स्थल पर इस काव्य में कहा गया है कि राधा तमाल के रस से पृथ्वी पर कृष्ण का चित्र बनाती है और उसका साक्षात् कृष्ण की तरह ही आलिंगन भी करती है—

भरन्त सन्तप्ता विदलिततमालाङ्कुररसै-
र्विलिख्य भ्रूभङ्गीकृतमदनकोदण्डकदनम्।
निधास्यन्ती कण्ठे तव निजभुजावल्लरिमसौ
धरण्यामुन्मीलज्जडिमनिविडाङ्गी विलुठति ॥८८॥

इस पद्य में भी मेघदूत के 'त्वामालिख्य प्रणयकुपिताम्' इत्यादि प्रसिद्ध पद्य की छाया स्पष्ट विद्यमान है।

श्री रूप गोस्वामी ने उद्धव सन्देश और हंसदूत यह दो दूत काव्य लिखे हैं। श्रीकृष्णमाचारियर ने अपने 'क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर के इतिहास' में भी ऐसा ही माना है।[1] श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा सम्पादित 'संस्कृत साहित्य का इतिहास, क्लासिकल पीरियड, भाग प्रथम (कलकत्ता)' में श्री एस० के० ? ने भी इन दोनों दूत काव्यों को रूप गोस्वामी का ही लिखा हुआ माना है।[2] अब प्रश्न यह है कि इन दोनों सन्देशकाव्यों में कौन सा काव्य कवि की प्रथम रचना है। यदि इन दोनों दूत काव्यों को रूप गोस्वामी का ही लिखा हुआ माना जाय, तो हंसदूत को उनकी उद्धव सन्देश के बाद की रचना मानना पड़ेगा। हंसदूत में कृष्ण के अन्तःपुर का वर्णन करते हुए ४४ वें श्लोक में गोपियों द्वारा उद्धव को दिए गए शुक मिथुन के परस्पर वार्तालाप का उल्लेख किया गया है।[3] इसके अतिरिक्त ६२

१ दे० पृ० ४८८ तथा ३६६-३६७।

२ दे० पृ० ३७२ पादटिप्पणी, पृ० ३७३ पा० टि०, पृ० ७४१ भी।

३ विषाद् मा कार्षीर्द्रुतमवितथव्याहृतिरसौ
समागन्ता राधे धृतनवशिखण्डस्तव सखा।
इति ब्रूते यस्यां शुकमिथुनमिन्द्रानुजकृते
यदाभीरीवृन्दैरुपहृतमभूदुद्धवकरे ॥४४॥

वें श्लोक में[1] ललिता कृष्ण से कहती है कि उद्धव तो तुम्हारे ही मन्त्री हैं, वे राधा की ओर से तुम्हारा अनुनय क्यों करने लगे। इन सब प्रसगों से यह निश्चय होता है कि गोपियों का उद्धव से पूर्व परिचय हो चुका है। अत उद्धव सन्देश को ही कवि की प्रथम रचना मानना चाहिए। श्री डा० जे० बी० चौधरी ने (बगाल के दूत काव्यों का इतिहास— संस्कृत पृ० २६) में अपनी ओर से यही मत प्रकट किया है। लेकिन यह विषय नितान्त निर्विवाद नहीं है। कवि ने उद्धव सन्देश में कहीं भी गोपियो द्वारा उद्धव को शुकमिथुन के देने का उल्लेख नहीं किया है। श्रीमद्भागवत में भी गोपियो की ओर से उद्धव को शुकमिथुन के देने का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है।[2] सभव है कि भागवत के मूल वृत्तान्त के आधार पर तथा मेघदूत के अनुकरण पर पहिले कवि ने उद्धव सन्देश ही लिखा हो और बाद में अपनी कल्पना से स्वतन्त्र कथावस्तु का सृजन कर हसदूत लिखा हो। हसदूत का शिखरिणी छन्द भी कवि की उत्तर-कालीन स्वतन्त्र प्रतिभा का परिचायक है।

इन दोनो दूत काव्यों के परस्पर उत्कर्ष के विषय में कुछ भी निश्चय देना, दुष्कर ही नहीं, नितान्त असभव है। कथावस्तु की दृष्टि से दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। भाव, भाषा और शैली दोनों में एक सी ही है। केवल छन्दभेद से ही कुछ बाह्य भेद दोनों में पाया जाता है। इस अवसर पर दोनों काव्यों के परस्पर भाव-सादृश्य का ज्ञान कराने के लिए कतिपय उदाहरण देना अप्रासगिक न होगा। राधा अपने खेद का वर्णन करते हुए हसदूत में कहती है—

अमी कुञ्जा पूर्वं मम न दधिरे कामपि मुद
द्रुमालीय चेन सखि न कतिशो नन्दितवती।
इदानीं पश्यैते युगपदुपताप विदधते
अभी मुक्तापेक्षे भजति न हि को वा विमुखताम् ॥६६॥

उद्धवसन्देश में भी एक गोपी अपनी सखी से कहती है—

आशापाशै सखि नवनवै कुर्वती प्राणबन्ध
आली भीरु कति पुनरह वासराणि क्षयिष्ये।

---

१ गुरोरन्तेवासी स भजति यदूना सचिवता
सखी कालिन्दीयं किल भवति कालस्य भगिनी।
भवेदन्य को वा नरपतिपुरे मत्परिचितो
दशामस्या शसन् यदुतिलक यस्त्वामनुनयेत् ॥६२॥

२ दे० भागवत, दशमस्कन्ध ४६ वा उद्धवप्रतियान अध्याय।

एते वृन्दावनविटपिनः स्मारयन्तो विलासान्
उत्फुल्लास्तान् मम किल बलान्मम निर्मूलयन्ति ॥८३॥

दोनों अवतरणों का भावसाम्य स्पष्ट ही है।

दोनों काव्यों में अन्त में भगवद्दर्पण निमित्त जो श्लोक आए हैं, उनमें भी भाव साम्य तथा पदसाम्य पाया जाता है। हंसदूत में कहा गया है—

रसानामाधारैरपगिचितदोषैः सहृदयै
मृ'गरातिक्रीडानिनिडघटनारूप-सहित ।
प्रबन्धोऽयं बन्धोरखिलजगतां तस्य (कर्ण) सरसां
प्रभोरन्तर्मान्द्रां प्रमदलहरीं पल्लवयतु ॥१४७॥

उद्धवसन्देश में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए गए हैं—(दे० श्लोक सं० १३०, इसी पुस्तक के पृष्ठ ३७५ पर उल्लिखित)।

दोनों पद्यों में भावसाम्य और पदसाम्य तो है ही। 'रूप' शब्द के उल्लेख से दोनों प्रबन्धों के एक ही लेखक द्वारा लिखे जाने का भी प्रमाण मिलता है।

साहित्यिक दृष्टिकोण से दोनों काव्य बड़े ही मधुर और सरस हैं। वैदर्भी रीति तथा माधुर्य गुण दोनों में ही समान रूप से पाए जाते हैं। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही दोनों काव्यों में उचित अवसर पर प्रयोग किए गए हैं। दोनों काव्यों से कवि की गम्भीर कृष्ण भक्ति का भक्त जन सहज ही अनुमान कर सकते हैं। कवि न केवल कृष्णभक्त ही है, बल्कि गोकुल और वृन्दावन भी उसके लिए अत्यन्त प्रिय है। उद्धवसन्देश में कृष्ण के 'भूयस्या मे हृदि सुखकरी गोष्ठत' कापि नास्ति ॥८॥' इस कथन में कवि की आत्मा प्रतिध्वनित हो रही है। दोनों काव्यों में कवि ने भक्ति की जो पवित्र धारा बहाई है, उसमें मज्जन कर कौन अपने को कृतार्थ न समझेगा। अपने को सर्वथा नारी मानते हुए कवि जब गोपी मुख से कहता है—

न निर्बन्धस्तु दामोदरपदनखश्रेणिमुकुलिनख-
द्युतीनां लावण्यं भवति चतुरास्योऽपि चतुरः ।
तथापि स्त्रीप्रज्ञासुलभतरलत्वादहमसौ
प्रवृत्ता तन्मूर्तिस्तवरचितमहासाहसरसे ॥ हंसदूत ॥५३॥

तभी पाठक भक्तकवि की गम्भीर भगवद्भक्ति का अनुमान कर सकते हैं।

इस प्रकार दूत काव्यों की परम्परा में भाव तथा रस का नया दृष्टिकोण उपस्थित करने में इन दोनों काव्यों का बड़ा महत्त्व है। शृंगार रस में भक्ति का पुट देकर कवि ने अपनी रचनाओं को रसिक तथा भक्तजन दोनों के ही हृदय का हार बना दिया है। दोनों काव्य कृष्ण भक्ति के अमर सन्देश को पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं।

माधव कवीन्द्र का उद्धवदूत (वि० सप्तदश शतक)

उद्धवदूत के रचयिता श्री माधव-कवीन्द्र भट्टाचार्य के सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। काव्य के अन्तलेख से केवल इतना निश्चित होता है कि यह कवि किसी तालितनगर नामक स्थान का रहने वाला था[1]। श्री कृष्णमाचारियर ने इस कवि को ई० १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ का माना है[2] और श्री एस० के० दे इस कवि को ई० १७वीं शताब्दी का मानते हैं[3]। काव्य के भाव प्रवाह से कवि की प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति का परिचय मिलता है। कवि ने अपने प्रबन्ध को श्रीकृष्ण के लिए भेंट करते हुए लिखा है—

नानाराम प्रणयि सुमन सङ्गसौभाग्यभाजा
जाड्यापाये सुरभिसमयस्थायिना माधवेन।
राधाबन्धोरुपहृतमिति प्रेममाध्वीकमेतन्-
निर्विघ्नेन श्रवणपुटकैः पुण्यवन्त पिबन्तु ॥१४०॥

इस उद्धरण से माधव नामक किसी कवि के उद्धवदूत का लेखक होने तथा उसके उत्कट कृष्णभक्त होने का दृढ़ प्रमाण मिलता है।

मध्यकाल में बंगाल के कृष्णभक्त कवियों द्वारा लिखे गये संस्कृत के दूत काव्यों में इस दूत काव्य का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

उद्धवदूत काव्य का लेखक तालितनगरनिवासी यह माधव कवीन्द्र, पद्यावली में उल्लिखित माधव और माधवपुरी, सुभद्राहरण, श्रीगदित और प्रणयिमाधवचम्पू का लेखक माधव, दानलीलाकाव्य का लेखक तथा लक्ष्मण का पुत्र माधव और श्रीधरदास के सदुक्तिकर्णामृत में उल्लिखित माधवसेन यह सब भिन्नभिन्न व्यक्ति हैं[4]।

काव्य की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इस काव्य में उद्धव को दूत बनाया गया है। श्री कृष्ण गोपियों के लिये अपना सन्देश देकर उद्धव को मथुरा से गोकुल

---

१ दे० अन्तलेख इति तालितनगरनिवासि श्रीमाधवकवीन्द्र भट्टाचार्यविरचित-मुद्धवदूत खण्डकाव्य सम्पूर्णम्।

२ दे० हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर पृ० ३६६, पा० टि०।

३ दे० ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, क्लासिकल पीरियड, प्रथम भाग, कलकत्ता पृ० ७४२।

४ दे० कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३१७, पा० टि०।

भेजते हैं। उद्धव के गोकुल में पहुंचते ही राधा उन्हें कृष्ण का भेजा हुआ दूत समझ कर अपनी तथा अन्य गोपियों की विरहव्यथा उन्हें सुनाना प्रारम्भ कर देती है और कृष्ण को उपालम्भ भी देने लगती है। तदनन्तर उद्धव को कृष्ण के लिये अपना सन्देश सुनाती है।

सन्देश में सर्वप्रथम यशोदा, नन्द, गोपालगृहों, गायों, बैलों, कलिकदम्ब, मयूर, कदम्बवृक्ष, वृन्दावन के अन्य वृक्ष, ग्वालबाल और गोपियों की कृष्ण विरह जन्य दुरवस्था वर्णित की गई है। तदनन्तर राधा ने अपनी विरहावस्था के वर्णन के साथ साथ कृष्ण को गोपियों के भूल जाने पर विविध आक्षेप भी दिये हैं। कृष्ण के कुब्जाप्रेम की भी स्थान स्थान पर भर्त्सना की गई है, अक्रूर को भी करारी फटकार बताई गई है। विविध भाव भंगिमाओं के साथ कृष्ण को तरह तरह के आक्षेप फिर भी दिये गये हैं। राधा अपने मानसिक क्षोभ तथा आशा और निराशा का बड़ा करुण वर्णन करती है। विरहिणी गोपियों के समान में कृष्ण के कठोर चरित्र की निन्दा भी करती है। कृष्ण के द्वारा भुला दिये जाने पर अपनी असहाय अवस्था तथा अन्य गोपियों के विविध उपालम्भों का वर्णन करने के बाद राधा कृष्ण से कहती है कि वे या तो शीघ्र ही वृन्दावन आजायें या वहां ही लाखों वर्ष रहें। वह चाहे स्वर्ग जाये या नरक, मरे या जिये, उसको तो कृष्ण के अतिरिक्त और कोई प्रिय नहीं है। अन्त में वह कहती है कि यदि वियोग में उसके प्राण निकल जाते हैं, तो कृष्ण को अपने हाथों से ही उसे जलदान देना चाहिये। वह फिर कहती है कि वियोग में उसका शरीर बैठा जा रहा है, हृदय फटा जा रहा है और उसके मर जाने का पाप कृष्ण पर ही पड़ेगा। इतना कहते कहते 'हा हा हा हरि हरि हरि' पुकारती हुई मूर्च्छित होकर वह जमीन पर गिर पड़ती है।

शीघ्र ही शीतल जल तथा अपने उत्तरीय के पवन से उद्धव उसका उपचार करने लगते हैं। थोड़ी देर बाद ही राधा को कुछ होश में आता हुआ देखकर उद्धव उसके कान में अपना परिचय देते हैं। कृष्ण का नाम सुनते ही राधा उठ बैठती है। उद्धव को इस बात का पश्चात्ताप भी होता है कि उन्होंने पूर्व ही अपने आने का उद्देश्य राधा को क्यों न बताया। बाद में वे फिर राधा को कृष्ण का सन्देश सुनाते हैं।

कृष्ण के सन्देश में उनके मनस्ताप तथा राधा की सतत स्मृति इत्यादि का वर्णन किया गया है। अन्त में राधा को मिलने की आशा बंधाई गई है।

सन्देश सुनाने के बाद उद्धव क्या देखते हैं कि राधा के नेत्रों से आंसुओं की झड़ी लगी हुई है। उसके अनन्य कृष्णप्रेम को देख कर श्रद्धा और भक्ति से पुलकित होकर उद्धव उसके चरणों में प्रणाम करते हैं और श्रीकृष्ण का उत्तरीय उनके प्रेम के प्रतीकस्वरूप राधा को भेंट में देते हैं। राधा की महिमा

गाते हुए बार बार उसके चरणों में फिर भी प्रणाम करते हैं। जब वे गोकुल से जाने लगते हैं तो उनके तथा राधा दोनों के नेत्रों में आंसू आ जाते हैं, कण्ठ गद्गद हो जाता है और किसी के भी मुख से कोई बात ठीक नहीं निकलने पाती है। अन्त में गोकुल की सारी जनता से विदाई लेकर व मथुरा के लिए चल पड़ते हैं। इधर राधा भी कृष्ण के प्रेम सन्देश का ध्यान करती हुई आनन्दमग्न हो जाती है।

बस, इस प्रकार काव्य की कथा भी यहां पर ही समाप्त हो जाती है।

काव्यसमीक्षा

श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध कथानक का आधार लेकर यह काव्य लिखा गया है। गोकुल की गोपियों को सान्त्वना देने के लिए कृष्ण का मथुरा से उद्धव को अपने सन्देश के साथ गोकुल भेजना सर्व विदित ही है। कृष्ण के द्वारा भेजे हुए उद्धव को ही इस काव्य में अपना दूत बनाकर राधा कृष्ण के पास भेजती है। अतः इस काव्य में उद्धव दोनों तरफ से ही दूत का कार्य करते हैं। काव्य का नाम 'उद्धवदूत' सार्थक ही है। कवि ने मेघदूत के अनुकरण पर इस काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया है। केवल अन्त का एक श्लोक ही अनुष्टुप् छन्द में है। काव्य में कुल १४१ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कथावस्तु का विभाजन भी नहीं किया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कवि ने कृष्ण के पास से आए हुए उद्धव को ही राधा का दूत बनाकर मथुरा भेजा है, इसलिए इस काव्य में मार्गवर्णन का नितान्त अभाव है। फिर भी कवि ने राधा के सन्देश को इतना विस्तृत रूप दिया है कि यह दूत-काव्य भी अन्य सर्वांगपूर्ण दूत काव्यों की तरह ही विस्तृत और भावपूर्ण हो गया है। कवि ने स्थान स्थान पर बड़े कोमलभाव व्यक्त किए हैं और राधा तथा अन्य गोपियों की विरहवेदना का बड़ा सजीव चित्र उपस्थित किया है। गोपियों की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

सिंहव्याघ्रप्रभृतिभिरपि प्रेक्ष्यमाणा प्रवाष्पै-
राक्रन्देषु प्रखरकुररीसंसद् शिक्षयन्त्य ।
एकाकिन्यस्तरणितिमिरास्तत्पदस्पर्शपुण्ये
वृन्दारण्ये कति युवतयो यामिनीर्यापयन्ति ॥८॥

कृष्ण विरह में गोपियों को लगातार रोता हुआ देखकर हिंस्रपशु भी द्रवीभूत हो जाते हैं और कुररी (टिटिहरी) जैसा छोटा पक्षी भी डरकर और रोता रह जाता है। गोपियों के करुण क्रन्दन का इससे बढ़कर और क्या निदर्शन हो सकता है।

कृष्ण के विरह में न केवल गोपियाँ ही व्यथित हैं बल्कि गोकुल का सारा जीवन ही अस्तव्यस्त हो गया है। राधा गोपालों के घरों का वर्णन करती हुई कहती है—

दोहः प्रायो न भवति गवां दोहने येन पाकः
क्षीराणां स्यात् स भवति यदा दुर्लभं तद्दधित्वम्।
दध्नः सिद्धौ क्व खलु मथनं मन्थने क्वोपयोग-
स्तक्रादीनामिति गतिरभूद्धा गोधुग्गृहेषु ॥२७॥

किसी भी प्रिय के वियोग में लोगों की अपने काम में अरुचि हो जाना स्वाभाविक ही है।

न केवल स्त्री पुरुष ही कृष्ण के विरह में व्याकुल हैं, बल्कि गाएं भी कृष्ण की खोज करती रहती हैं और अपने हाल के ही ब्याए हुए बछड़ों तक को दूध नहीं पिलाती हैं—

वत्सालोकस्मरणसुलभप्रस्नवप्लावनीयम्
भूलीजालं नयनसलिलैरश्रुभिः प्लावयन्त्यः।
त्वामन्विष्य व्रजपुरसरित्तीरभूषु भ्रमन्त्यः
सद्योजातानपि सुरभयो नार्भकान् पाययन्ति ॥२६॥

जिन गायों की कृष्ण स्वयं परिचर्या किया करते थे, वे अब घास खाने में बिल्कुल निःस्पृह हैं और हर तरफ कृष्ण की खोज में उनकी आँखें लगी रहती हैं। जिस कदम्ब के वृक्ष के नीचे कृष्णजी बैठा करते थे, उसको ही वे सूंघती रहती हैं और अपने आंसुओं से उसको सींचती रहती हैं—

निःप्रेमाणा ललितयवसश्यामसीमन्यरण्ये
न्यस्य न्यस्य त्वदनुसृतये चक्षुषी दिक्षु दिक्षु।
आजिघ्रन्ति व्यथितमनसः किं च सिंचन्ति बाष्पै-
र्नीपानीपं तव यदुपते वत्सला वत्सतर्यः ॥३०॥

कवि ने कृष्ण प्रेम का कैसा अद्वितीय प्रभाव दिखलाया है। पशु भी उनके विरह को अनुभव करते हैं।

उन के विरह में न केवल चेतन प्राणी ही बल्कि वृन्दावन के वृक्ष भी दुःखित हैं। उनके स्वरूप से ऐसा लगता है मानों वे योगी हो गए हों। राधा कहती है—

पाण्डुच्छाया कुसुमरजसा भृङ्गमालाजटाला
सर्वाताम्रा किशलयरुचा पाटलेनाम्बरेण।

भोगाभावादपगतरुच पावनाभ्यासभाज
सर्वे वृन्दावननिटपिना योगिचर्यां चरन्ति ॥३४॥

कवि ने वृक्षों को योगियों का रूपक कितनी सुन्दर रीति से दिया है। वियोगिनी गोपियां भी एक स्थान पर योगिनों की तरह वर्णित की गई हैं—

पीतासक्ता शयनवसनस्नानपानाशनादौ
गायन्त्यम्त्वच्चरितगुणिता सन्तत गीतगाथा।
औदासीन्य किमपि सकला वन्धुवृन्दे वहन्त्यो
गोप्यो लीलाक्षितिपु भवतो योगिनीवद् भ्रमन्ति ॥३७॥

उपर्युक्त पद्य में कवि ने गोपियों की विरहकालीन स्मृति, गुणकथन, उद्वेग और चिन्ता इत्यादि दशाओं का एक साथ बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

आगे चल कर राधा कहती है—

कूलक्रोडे तपनदुहितु श्यानपङ्के निमग्न
यत्नादुत्थापितमथ कृतोपस्क्रिय कौशलेन।
न्यस्त पीठे तव चरणयोश्चक्रचिह्न पद तत्
शालग्रामोपलमिव सदा मद्विधा पूजयन्ति ॥४०॥

यमुना के तट पर सूखे हुए पंक में से कृष्ण के चरण-चिह्नों को निकाल कर तथा उन्हें सिंहासन पर रखकर शालग्राम की तरह उनकी पूजा करना गोपियों के पवित्र प्रेम का बड़ा ही प्रभाव-पूर्ण उदाहरण कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। धन्य है कवि की कल्पना।

राधा फिर कृष्ण के लिये कुछ उपालम्भ भी देती है—

भक्तिप्रीतिप्रणयसहित भानदम्भाद्यपेत
चेतोऽस्माक गुणवदगुण गोकुहा देहमेतत्।
विक्रीत ते युगपदुभय स्वीकृत च त्वयाथो
ह्यदगृह्णासि त्यजसि च वपुर्नाथ कोऽय विचार ॥४८॥

जब दो वस्तुओं का एक साथ विक्रय किया जाये और उन्हें कोई स्वीकार भी करले, तो उनमें से फिर किसी एक महत्त्वपूर्ण वस्तु का तो रखना तथा अन्य तुच्छ वस्तु का छोड़ देना कहां तक उचित हो सकता है। फिर गोपियों को एकदम छोड़ देने तथा उनकी कुछ भी सुध न लेने की बात पर राधा कृष्ण को बड़ा लज्जित भी करती है—

स त्व दोषेऽप्यसति कुरुषे किंकरीणाममद्र
यक्तु नास्ते जन इति न भो वक्तुमेवं युनक्ति ॥५०॥

कृष्ण के वंश, पिता माता और चरित्र की प्रशंसा करने के बाद राधा कृष्ण पूछती है-

एकैकन्ते जयति जगदानन्दि चित्र चरित्रम्
कस्मादेव विरहदहने देव ! दासीर्जुहोषि ॥५३॥

इस तरह विभिन्न उपालम्भ देने के बाद राधा कृष्ण को अपना सन्देश देते हुये कहती है—

तत्सन्धानं कथय शठधा प्रेषय प्रेष्यलक्षम्
चिन्तारत्नं वितर कुरु वा सानुतापप्रसङ्गान् ।
या द्रौष्यी तव नवघनश्यामलं धाम गाढम्
नाश्लिष्यामि त्रुटति न हि मे तावदेवैष तापः ॥६६॥

राधा की विरह व्यग्रता का पाठक उसके इन वचनों से सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

इसके बाद वह कहती है कि कोई तो तुम्हें लक्ष्मीकान्त कहता है, कोई चिदानन्द कहता है और कोई साधक तुम्हें सिद्धिस्वरूप बतलाता है, लेकिन मैं तो तुम्हारे उसी मुरलीधर श्यामरूप की ही दासी हूँ और सब रूप तो मेरे लिए व्यर्थ है—

यो याऽन्यो वा भव नवघनश्याम तस्यैव धाम्नो
दासीभूता वयमिति परे वन्ध्यकल्पा विकल्पा ॥७०॥

राधा फिर कृष्ण से कहती है—

नायासि त्वं न च नयसि मामात्मन पादमूलम्
नो वा दूतं निसृजसि न वा लेखलेशं ददासि ।
निःश्वासाग्निर्निपतति न ते काचिदाश्वासवार्ता
कस्मिन्नास्थामुपहितवती जीवितं धारयामि ॥७१॥

राधा की विरहभावनाओं का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण इस पद्य में प्रस्तुत किया गया है। अपनी विवशता का वर्णन करते हुए राधा कहती है-

यान्ति प्राणा नहि बहिरमी नुद्यमानाश्च गाढं
सत्यं गत्यन्तरमपि न मे किञ्चिदस्ति प्रसत्या ।
मग्नं चेतः कुलिशकठिने त्वय्यनुद्धार्यमेतत्
तेनैवाहं मयदनुगतिं सहिता किं करोमि ॥८१॥

जिस राधा को कृष्ण निमेषमात्र के लिये भी अपनी आँखों से दूर नहीं करते थे, वह राधा युग युगान्तरों से कृष्ण का वियोग सह रही है—

दत्तो यस्यै न खलु निमिषो दृष्टिविच्छोऽपि तस्यै
दूरस्थित्यै वितरसि विभो ! योगपद्याद् युगानि ॥९०॥

राधा को कृष्ण के विरह में समय कितना भारी जान पड़ता है। कुछ पक्ष या मास युग जैसे मालूम पड़ते हैं। कृष्ण के द्वारा भुला दिये जाने पर अपनी निरुपाय अवस्था का वर्णन करती हुई फिर वह कहती है—

रूक्षा लोका कटुकवचस स्त्वालये सर्व एव
क्षीणासि त्व कथमिति बहिर्ग्राम्यवाचोद्दहन्ति।
ग्रामस्यान्ते तपनतनयाकूलभुद्यानमूल
शून्य लीलाशरणमपि ते कुञ्ज तन्निर्वृणोमि ॥९६॥

वैमुख्य ते किमपि मदनो माचति क्रूरकर्मा
नर्मालापेष्वपि कुवचनै र्बाधते बन्धुवर्ग।
चेतो नाथ त्वयि विनिहित वाचमुल्लङ्घ्य यासा
।रुाभुक्ति स्मितकलुषिता कल्पते किं करोमि ॥१००॥

उपर्युक्त पद्यों में राधा की मानसिक व्यथा का बड़ा भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है।

सन्देश के अन्त में राधा कहती है—

अत्रागच्छ त्वरितमथवा तिष्ठ तत्राप्यलक्षम्
शृण्वन्त्वेते जनपदजना मुक्तकण्ठा ब्रवीमि।
यामि स्वर्ग निरयमथवा प्राणिमीह म्रिये वा
श्यामादन्यो नहि नहि नहि प्राणनाथो ममास्ते ॥१०४॥

राधा के इस सन्देश में कवि ने उसके प्रेम की कैसी गूढ व्यञ्जना की है। इस प्रकार अपना सन्देश बताते २ फिर राधा एक साथ कह उठती है—

श्याम श्याम स्मर सहचरीं मन्दकारीकृत मे
केनाकस्माद् भ्रमति भुवन मज्जति घोरवन्याम्।
कार्ह क्वाह क्व मम दयित कुत्र तस्यैव दासो
हा हा हा हा ! हरि हरि हरि ! क्षीणमध्य प्रसीद ॥१०८॥

कवि ने राधा की प्रिय वियोग जन्य उन्माद अवस्था का बड़ा भावपूर्ण वर्णन

यहा पर किया है। ज्योंही राधा अपना सन्देश समाप्त करती है, त्योंही वह मूर्छित हो जाती है—

> इत्युद्गाढुर्निमलपुलका कम्पनासन्नकण्ठी
> छिन्ना मूले पतति भुवि सा हेमवल्लीव यावत् ॥१०६॥

कवि ने राधा के जमीन पर गिरने की बड़ी ही उपयुक्त उपमा यहा पर दी है।

उद्धव जब राधा के मूर्च्छित हो जाने पर शीतोपचार के द्वारा उसे कुछ कुछ होश में आता हुआ देखते है, तब उसके कान में कृष्ण के दूत होने का अपना परिचय बड़े ज़ोर से देते हैं। इन शब्दों को सुनकर राधा एक दम उठ बैठती है। कवि ने इस दृश्य का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है-

> सातिम्नादुर्दधदुदमनी तुरयपीयूषधाणी-
> वर्णश्रेणि श्रवणपुटकेनान्तरस्या निशन्ती।
> को जानीते किमकृत पर सत्वर सापि तन्वी
> किङ्कि किङ्कि कथय कथयेत्युत्थिता कौतुकेन ॥११४॥

कृष्ण का नाम सुनते ही राधा की उत्सुकता का बढ जाना स्वाभाविक ही है। कवि ने इस पद्य में राधा के औत्सुक्य का कितने अनुरूप शब्दों में वर्णन किया है। भावों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया गया है।

राधा के होश में आते ही उद्धव उसे कृष्ण का सन्देश सुनाना प्रारम्भ कर देते हैं ताकि राधा फिर बेहोश न हो जाय। सर्व प्रथम राधा को कृष्ण के शीघ्र ही अपने मिलने का आश्वासन दिया गया है—

> साक्षाद्दीक्षा न भवतु चिर चिन्तिता तेन माम्—
> दैवाधीनो गमयति जन कोऽपि कुत्रापि कालम्।
> यन्दीभूत मयि तव मनस्त्वग्यपीद समेति
> द्वाभ्यामाभ्या मिलनमचिराद्द्वारयो साधनीयम् ॥१२१॥

इसके बाद कृष्ण गोपियों के अपूर्व प्रेम तथा साहस का वर्णन करते हुए अपने राजा होने की निन्दा भी करते हैं—

> रुद्धा वन्धुप्रणयपदवी लङ्घिता लोकलज्जा
> मूर्ध्नि न्यस्त पदमयशस शङ्कितो नापमृत्यु।
> मामाराद्धु किमिव न कृत दुष्कर त्वादृशीभि-
> स्त्यक्त्वा युष्मान् मम यदुपतेरद्य राज्य धिगस्तु ॥१२३॥

मथुरा में कृष्ण के लिए भले ही सब सुख हो, लेकिन गोपियों के साथ रहने का आनन्द कहां मिल सकता है। इसी बात को लेकर कृष्णजी कहते हैं—

रम्या हर्म्यावलिरियममी बन्धव सानुबन्धा
नित्येयं जयति नगरी गुम्फिता नागरीभि ।
एषा सम्पत् किमिह न सुख किन्तु कान्तारकुञ्जो
युष्माभिर्य समजनि स मे दुर्लभो हृद्विनोद ॥१२४॥

कृष्ण के लिए सारी सृष्टि ही राधामय जान पड़ती है—

सर्वत्रैव स्फुरति मम तु त्वन्मयी सृष्टिरेव ॥१२५॥

कवि ने इन प्रसंगों से कृष्ण का भी गोपियों के प्रति अनन्य प्रेम दर्शाया है। आगे चलकर कृष्णजी राधा से कहते हैं कि मैंने तुम्हारे प्रेम को छिपाने के लिये अपनी एक सारिका का नाम 'राधा' रख छोड़ा है लेकिन प्रसंग के बिना ही मैं उससे—हे राधे! क्या तुमने मेरी मुरली ली है—बार बार पूछ बैठता हूं। इस तरह तुम्हारा नाम छिपाने का मेरा प्रयास व्यर्थ ही चला जाता है और मेरे साथी भी मुझ पर हंसते हैं—

उद्यद्गोत्रस्खलनमनिशं गोपि! ते गोपयिष्यन्
राधानाम्नीमकरवमहं सारिकामन्तिकस्थाम् ।
नीता राधे मम मुरलिरेत्यवमाद्रीव्यकाण्डे
वक्तु सम्यस्मितजनयितुस्तन्ममासीत् वृथैव ॥१२८॥

कवि ने इस पद्य में कृष्ण के हमेशा राधा को स्मरण करते रहने का कैसी भाव भंगिमा के साथ वर्णन किया है।

अपने सन्देश के अन्त में कृष्ण राधा को पुन शीघ्र ही मिलने की आशा देते हैं—

जाने प्राणेश्वरि! मम यथा निर्विवाद तथा ते
सन्तप्ताया युगपदभियान्त्ययतन्यो रजन्य ।
यास्यन्त्येना दिनकतिपयैरङ्ग! पत्यङ्कभाजो
सत्यं सत्य निमिषनिभृता आवयो सुस्थिता स्या ॥१३०॥

जिस प्रकार राधा ने कृष्ण विरह में अपनी व्याकुलता बतलाई है, उसी प्रकार कृष्ण भी राधा के विरह में उतने ही व्याकुल हैं। कवि ने दोनों की मनोव्यथा का समान रूप से वर्णन कर राधा और कृष्ण के प्रेम को आदर्श रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

उद्धव कृष्ण के सन्देश को समाप्त करते ही हैं कि उन्हें राधा के नेत्रों से तीव्र अश्रुधारा प्रवाहित होती हुई दिखलाई देती है। राधा के तीव्र प्रेम को देखकर श्रद्धा और भक्ति से पुलकित हो वे फिर उसे सान्त्वना देते हैं तथा कृष्ण के उत्तरीय को उनकी स्मृतिस्वरूप उसे भेंट करते हैं—

इत्याचख्यौ विरमतु पर निष्फलो देवि खेद ।
एतद्वासो नयनवि ! हरे श्रीमदङ्गाधिरूढम्
चेतो मूढ न कुरु करुणासागरे सन्नताऽसि ॥१३४॥

उद्धव के उपर्युक्त वचनों में बड़ी आतुर्यता भरी हुई है। अन्त में उद्धव राधा की प्रार्थना करते हैं—

मातर्मातर्जय जय जगन्मोहनं मोहयन्त्या
कस्ते तत्त्व कलयतु न यद्वेदगर्भोऽपि वेद ।
मन्त्र्योऽसौ परिजनतया वल्लभस्येति तस्यै
वार वार तदनु दधिरे तेन दण्डप्रणामा ॥१३७॥

उद्धव की इस श्रद्धा और भक्ति का ही यह परिणाम था कि गोकुल से उनके जाते समय दोनों (राधा और उद्धव) की बड़ी ही भावपूर्ण स्थिति थी। कवि ने इस स्थिति का बड़ा ही सजीव चित्र उपस्थित किया है—

सर्वाङ्गीन पुलकमुदभूदश्रुमग्ने च दृष्टी
कण्ठो भग्नस्वर इव वच पर्यवस्थानशून्यम् ।
तस्यास्तस्याप्यजनि युगपद्यानकाले तदानीम्
मुग्धा मूर्धन्यभवदुभयोरद्भुता पुष्पवृष्टि ॥१३८॥

इस तरह सारे गोकुल को अपने मृदु भाषण तथा सद् व्यवहार से वशीभूत कर उद्धवजी कृष्ण के पास लौट आते हैं—

आमन्त्र्यैकस्तदनु सकल घोषमुत्कण्ठमान
सद्यो राधारमणचरणप्रेक्षणाय प्रतस्थे ॥१३९॥

काव्य के इस विस्तृत अनुशीलन से पाठक जान सकते हैं कि कवि की वर्णन शैली बड़ी ही रमणीय है। काव्य में दो सन्देशों का समावेश कर कवि ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। नायक तथा नायिका दोनों की विरहभावनाओं और चेष्टाओं का सर्वांगपूर्ण चित्रण इस काव्य में पाया जाता है। नायक की ओर से आये हुए दूत से उसका सन्देश सुनने से पहिले ही नायिका इस काव्य में अपना सन्देश कहना प्रारम्भ कर देती है। यद्यपि यह बात कुछ विषम सी मालूम पड़ती है, लेकिन कवि ने इस तरह गोपियों की आत्मप्रवणता का परिचय दिया है।

प्रिय के पास से आये हुए दूत को देखकर ही गोपियों के हृदय का बाँध टूट जाता है और बरबस ही उनके मुख से विरह तथा उपालम्भ के वचन निकलने लगते हैं। सम्भव है कि कवि ने जान बूझ कर अपने काव्य में यह वैषम्य उपस्थित किया हो क्योंकि कृष्ण की तरफ से कुब्जा के सम्बन्ध में निम्न पद्य में दी गई सफाई—

कुब्जामृज्वीमकरवमुरीकृत्य यन्निर्घृणत्व
तत्तात्पर्य निपुणमतयो नापयन्ति क्षतिं काम्।
हित्वा वेश कुवलयदृशा वेशमक्षिभ्रुवं वा
क्षन्तव्य मे नहि कुटिलतैवेदुन्नायकं तत् ॥१२६॥

राधा के—सङ्कोचो यस्तव गुरुजने यच्च पौराङ्गनासु
व्यक्तीभूत तदुभयमभूत् कुब्जिकोपग्रहेण ॥६२॥

इत्यादि व्यंग्य के बाद ही संगत हो सकती है। इसके अतिरिक्त—

रुद्धा बन्धुप्रणयपदवी लङ्घिता लोकलज्जा
मूर्ध्नि न्यस्त पदमयशस शङ्कितो नापमृत्यु।
मामागाद् किमिव न कृत दुष्कर त्वादृशीभि-
स्त्यक्त्वा युष्मान् मम यदुपतेरस्य राज्य धिगस्तु ॥१२३॥

इत्यादि कृष्ण के प्रेमपूर्ण वचनों को सुनकर प्रणयिनी राधा का मन स्वत ही क्षोभरहित हो जाता, तदनन्तर—

स्वच्चेदानीं मकरतरणी सार्वसर्वस्वभूत—
स्ता अप्येव तव निमितास्तुभ्यमद्य स्वदन्ते।
अस्यौत्सुक्यात्तदपि भवत सम्मुखी वा यदि स्या
किं स्यादेतन्न खलु निपुणा भावयन्त्यप्यवैमि ॥६५॥

इस प्रकार के ईर्ष्या युक्त वचन राधा के मुख से निकलते ही नहीं तथा पाठकों को अच्छे भी नहीं लगते। स्थान-स्थान पर गोपियों ने कृष्ण को जो उपालम्भ दिये हैं, वे कृष्ण के सन्देश के सुनने से पूर्व ही अच्छे लगते हैं। कृष्ण के प्रेमपूर्ण तथा आश्वासन युक्त सन्देश को सुनकर गोपियों के मन में ईर्ष्या तथा क्रोध ठहर ही कैसे सकते हैं। राधा के मूर्च्छित होने का जो दृश्य काव्य में उपस्थित किया गया है, वह कृष्ण के सन्देश को उद्धव द्वारा पहिले न सुनाये जाने के कारण से ही उपस्थित हो सका है। अत दोनों सन्देशों को कवि ने अपने पूर्व निश्चय से ही इस क्रम से रखा है।

काव्य की कथा का आधार तो श्रीमद्भागवत की कथावस्तु है ही। कवि ने प्राय भागवत के भावों को ही प्रकारान्तर से अपने काव्य में उपनिबद्ध किया है।

भागवत से कथारम्भ को लेकर फिर उसके भावों से कवि दूर ही कैसे रह सकता है। भागवत में उद्धव से कृष्ण के सन्देश को सुनने के बाद यशोदा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

> यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च
> शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा ॥१०॥४६॥२८॥

इसी प्रकार इस काव्य में भी प्रसगान्तर में यशोदा के सम्बन्ध में—

> नीते नामन्यपि च भरत (कृष्णस्य) प्रस्नुवाना स्तनाभ्याम् ॥२५॥

कहा गया है। भागवत में गोपियाँ उद्धव से कृष्ण का वृत्तान्त पूछती हुई कहती हैं—

> अपि स्मरति न साधो गोविन्द प्रस्तुते क्वचित्।
> गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥१०॥४७॥४२॥

इसी से मिलते जुलते भाव—

> हन्ताभीरीः स्मरतु स कथं सवृतो नागरीभिः ॥१६॥

इत्यादि पद्य में पाए जाते हैं।

कहीं कहीं भाषा साम्य भी स्पष्ट ही दिखलाई देता है। भागवत में गोपियों के प्रगाढ कृष्ण प्रेम को देखकर उद्धव परमप्रसन्न हो जाते हैं। उनके मुख से बरबस गोपियों की प्रशंसा में यह वचन निकल पड़ते हैं—

> क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः[1]
> कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ॥१०॥४७॥५९॥ इत्यादि

उद्धवदूत में राधा उद्धव को दूत बनाते समय कहती है—

> क्वैषा योषित् प्रकृतिचपला पामरी कातरा च
> ज्यायान् यातो यदुकुलपतेर्वल्लभत्वं क्व च त्वम् ॥५॥

यद्यपि दोनों स्थलों में प्रसंग भिन्न है, फिर भी भावसाम्य तो स्पष्ट ही है।

---

१ 'वनचरी' के स्थान में 'वनचर्य' होना चाहिए। आर्षप्रयोग होने से ठीक माना जा सकता है।

उपर्युक्त कतिपय अवतरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि ने श्रीमद्भागवत के गम्भीर अनुशीलन के बाद यह काव्य लिखा है। भागवत के अतिरिक्त मेघदूत से भी कवि ने इस दूत काव्य के लिखने की प्रेरणा अवश्य ली होगी। तभी तो इस काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग पाया जाता है। लेकिन भाव तथा भाषा दोनों में ही यह काव्य मेघदूत से बिल्कुल प्रभावित नहीं है। मार्गवर्णन को दूतकाव्य में स्थान न देकर कवि ने दूतकाव्य के परम्परागत शिल्पविधान की उपेक्षा की है। लेकिन नायक और नायिका दोनों के ही सन्देश को काव्य में प्रश्रय देकर कवि ने काव्य की साहित्यिक महत्ता और भी बढ़ा दी है। मार्गवर्णन के न होने से काव्य की सम्भावित नीरसता को कवि ने राधा और कृष्ण के विरह की विविधभावपूर्ण व्यञ्जना द्वारा बिल्कुल तिरोहित कर दिया है। प्राय दूतकाव्यों में अभिज्ञानस्वरूप कोई व्यक्तिगत घटना बताई जाती है, लेकिन इस काव्य में कृष्ण का उत्तरीय ही राधा को अभिज्ञानस्वरूप दिया गया है।[1] यह भी कवि की अपनी मौलिकता है।

रूपगोस्वामी का उद्धवसन्देश तथा यह उद्धवदूत दोनों ही यद्यपि समान-विषयक रचनाएं हैं और दोनों ही लेखक उच्चकोटि के हैं, फिर भी दोनों काव्यों में महान् भेद है। उद्धवसन्देश में कवि ने उद्धव को एकान्तरूप से कृष्ण का ही दूत बनाकर गोपियों के पास भेजा है। दूत का गोपियों के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखलाया गया है। इतना सब कुछ होते हुए भी विरही कृष्ण के मुख से ही विरहिणी गोपियों की तत्तत् अवस्थाओं का बड़ा करुण चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। सम्भव है कि गोपियां भी अपनी मनोव्यथा को ऐसे प्रभावपूर्ण ढंग से नहीं कह पातीं। इसके विपरीत उद्धवदूत में विरही नायक तथा विरहिणी नायिका दोनों के ही दूत कार्य में उद्धव को नियुक्त किया गया है। भाषा, भाव और शैली के दृष्टिकोण से दोनों ही काव्य उच्चकोटि के हैं। दोनों काव्यों में तारतम्य का निश्चय करना सहृदय पाठकों के लिए अतीव दुष्कर है। दोनों ही काव्यों में कृष्णभक्ति का पुट भी समान रूप से पाया जाता है। अतः यह दोनों दूत काव्य समान रूप से साहित्यिक तथा कृष्णभक्त पाठकों की प्रशंसा तथा श्रद्धा के पात्र हैं।

काव्य में विप्रलम्भ शृंगार का मुख्य रूप से चित्रण किया गया है। तदनुसार माधुर्यगुण और वैदर्भी रीति यह दोनों ही काव्य में भरपूर पाए जाते हैं।

बंगाल के मध्यकालीन भक्तिपरक संस्कृतसाहित्य में इस काव्य का प्रमुख स्थान है।

---

१ एतद्वासो नयति हरेः श्रीमद् क्षाधिरूढम् ॥१३४॥

रुद्र न्यायपञ्चानन का भ्रमरदूत (वि० सप्तदश शतक का उत्तरार्ध)

रुद्र न्यायपञ्चानन नवद्वीप (बंगाल) निवासी श्री रत्नाकर विद्यावाचस्पति[1] का पौत्र तथा काशीनाथ विद्यानिवास[2] का पुत्र था। ईसा की सत्रहवीं शताब्दी

---

१ रत्नाकर विद्यावाचस्पति को कहीं-कहीं भवानन्द पंडित या भवानन्द सिद्धान्तवागीश भी कहा गया है। इन्होंने कारकार्थनिर्णय नामक एक व्याकरण ग्रन्थ भी लिखा, जिस पर कि बाद में उनके पौत्र रुद्र ने अपनी टीका लिखी। जयानन्द के चैतन्य-मंगल के नदिया-खंड में (१, २, पृ० १२, नगेन्द्रनाथ वसु तथा कालिदास नाथ, कलकत्ता संस्करण, बंगीय-साहित्य परिषद् ब० स० १३१२ अर्थात् १९०५ १९०६ ई०) रत्नाकर विद्यावाचस्पति के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के अत्यन्त सताये जाने पर भी वह बंगाल में ही रहे जब कि रुद्र के प्रपितामह नरहरि विशारद वहां से भागकर बनारस चले गये और रत्नाकर के भाई वासुदेव सार्वभौम उड़ीसा चले गये थे।

२ यह काशीनाथ सुप्रतिष्ठित राढीय आवसथ्य परिवार से ही सम्बद्ध था। इसका मूल निवास-स्थान मध्यम-ग्राम (माझेरगाम) था, फिर भी नवद्वीप में इसकी चतुष्पाठी थी। कविचन्द्र नामक कायस्थ इसका लिपि कर्ता था और लक्ष्मीधर के कृत्य कल्पतरु (हस्तलिखित प्रति आजकल इण्डिया आफिस लायब्रेरी में है) के कुछ भाग की स० १५८८ ई० में उसने इसके लिये नकल की। काशीनाथ ने ही वोपदेव के मुग्धबोध को बंगाल में लोकप्रिय बनाया जैसा कि मुग्धबोध की विभिन्न टीकाओं में उनके नाम तथा कार्यों के उल्लेख से प्रतीत होता है (राम तर्कवागीश की मुग्धबोध की टीका — पारेऽप पाणिनीयज्ञा केचित् कालापकोविदा। एके विद्यानिवासा स्युरन्ये संक्षिप्तसारका)। मुग्धबोध पर काशीनाथ के भी टीका लिखने की खबर है (देखिये, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय हस्तलिखित पुस्तकें ७३ब में दुर्गादास का उद्धरण)। रामचन्द्र शर्मा ने मध्य कौमुदी पर मध्यमनोरमा नामक टीका में विद्यानिवास के सम्बन्ध में लिखा है-कण्ठे विद्यानिवासस्य स्थिता मध्य मनोरमा। सिद्धान्तकौमुदी पर प्रौढमनोरमा नामक टीका लिखने वाले और विद्यानिवास के समकालीन श्री भट्टोजी दीक्षित ने अपनी टीका में मुग्धबोध के तर्कों का खण्डन किया है। इस तरह वोपदेव के विचारों का समर्थक होने के कारण विद्यानिवास भट्टोजी का प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। भारतवर्ष के पंडितों की विभिन्न सभाओं में विद्यानिवास बड़े सम्मान के साथ बुलाया जाता था। रामकृष्ण के पौत्र तथा नारायणभट्ट के पुत्र शंकर भट्ट ने अपने गाधिवंशानुचरित में लिखा है कि दिल्ली में बुलाई गई ऐसी दो सभाओं में यह विद्यानिवास उपस्थित था। विद्यानिवास ने जगन्नाथजी की प्रतिमा को झूले में रखने की कथा लेकर दोलारोहणपद्धति (राजेन्द्र लाल मित्र का सूचीपत्र सं० ४१३ देखिये) और जगन्नाथजी की पूजाविधि पर द्वादश

इसका कार्य काल है। यह भाषा परिच्छेद, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति इत्यादि के रचयिता श्री विश्वनाथ न्यायपचानन भट्टाचार्य[1] का बड़ा भाई था। रुद्रनाथ न्यायपचानन के पितामह श्री विद्यावाचस्पति बगाल के प्रसिद्ध नैयायिक, तत्त्वचिन्तामणि व्याख्या, समासवाद और सार्वभौमनिरुक्ति के रचयिता श्री वासुदेव सार्वभौम[2] के छोटे भाई थे। रुद्र न्यायपचानन, जैसा कि उसके नाम से प्रकट होता है, एक प्रसिद्ध नैयायिक तथा महान् लेखक था। इनके लिखे हुये निम्नलिखित ग्रन्थ बताये जाते हैं —

१ अधिकरण-चन्द्रिका,	५ उदाहरण लक्षण टीका,	६ न्यायसिद्धान्त मुक्तावली टीका,
२ कारक-परिच्छेद,	६ उपाधिपूर्वपक्ष ग्रन्थ टीका,	
३ कारक चक्र,	७ केवलान्वयिटीका,	१० व्याप्त्यनुगमटीका,
४ विधिरूप निरूपण,	८ पक्षता पूर्वपक्षग्रन्थ टीका,	११ कारकादार्थ निर्णय टीका,

---

यात्रा पद्धति (श्री हरप्रसाद शास्त्री की सूची दूसरा भाग) यह दो ग्रन्थ और भी लिखे हैं। ईसा की सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक यह साहित्यिक क्षेत्र में कार्य करते रहे। ईसवी सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सुप्रसिद्ध मानसिंह (जो कि स० १६०५ ई० तक शासन करने वाले सम्राट् अकबर का समकालीन था) के पुत्र भावसिंह के कहने से इन्होंने भावविलास नामक ग्रन्थ लिखा (दे० काव्यमाला, द्वितीय गुच्छक, द्वि० सस्करण, १८९९ पृ० १११-१२८)।

१ विश्वनाथ न्याय पचानन ने स० १६३४ ई० में न्यायसूत्रवृत्ति की रचना की। सिद्धान्त मुक्तावली में अन्त में इन्होंने लिखा है — इति महामहोपाध्याय विद्यानिवास भट्टाचार्य सुत श्रीविश्वनाथपचाननभट्टाचार्यविरचितायाम् सिद्धान्तमुक्तावल्याम् (देखिये० कु जविहारिन् तर्क सिद्धान्त, गोवर्धन प्रेस, कलकत्ता सस्करण १९१३-१४ ई० पृ० २३६)। विश्वनाथ की और दूसरी रचनायें (प्राय हस्तलिखित रूप में ही उपलब्ध) इस प्रकार हैं — अहेतु-सम्प्रकरण, न्याय तत्त्वबोधिनी अथवा न्याय बोधिनी, न्यायसूत्रवृत्ति, पदार्थतत्त्वालोक (रघुनाथ के पदार्थ-खण्डन पर टीका), उपपत्ति सम्प्रकरण, कारकवाद, जातिशतकप्रकरण, तत्त्वज्ञान विवृतिप्रकरण, पिङ्गलमतप्रकाश, सुवर्थतत्त्वालोक, तर्कभाषा, नञ्वादटीका, पदार्थ निरूपण, प्राप्त्यप्राप्तिसमजातिचयप्रकरण, बाधार्थभग निराकरण, सन्त्वय-सम-प्रकरण, सत्प्रतिपक्षदेशनाभासप्रकरण और अलकार-परिष्कार।

२ ऐसी जनश्रुति है कि इनके पिता श्री महेश्वर विशारद भट्टाचार्य स्मृतियों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अपने पिता से काव्य और अलकार शास्त्र इत्यादि पढ़ने के बाद यह मिथिला गये और वहा पक्षधर मिश्र के शिष्य हो गये। मिश्रजी ने ही इन्हें सार्वभौम की पदवी दी।

१२ सव्यभिचार-सिद्धान्त टीका,
१३ भावप्रकाशिका,
१४ भावविलासकाव्य।
१५ अनुमिति टीका,
१६ कारक-वाद,
१७ तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-टीका,
१८ द्वितीयस्वलक्षण टीका,
१९ विरुद्ध-पूर्वपक्षग्रन्थ टीका,
२० तर्क ग्रन्थ टीका,
२१ पक्षता-सिद्धान्त-ग्रन्थ टीका,
२२ प्रतिज्ञा लक्षण-टीका,
२३ सत्प्रतिपक्ष-पूर्वपक्ष ग्रन्थ-टीका
२४ सामान्यनिरुक्ति-टीका
२५ परामर्श पूर्वपक्ष ग्रन्थ टीका
२६ आख्या-वाद-व्याख्या
२७ कारक-व्यूह,
२८ वाद-परिच्छेद,
२९ शब्द-परिच्छेद,
३० उपनय-लक्षण-टीका
३१ विरुद्ध-सिद्धान्त-ग्रन्थ-टीका
३२ द्वितीयचक्रवर्ति-लक्षण-टीका,
३३ कुसुमाञ्जलि-कारिका-व्याख्या
३४ प्रथमचक्रवर्ति लक्षणटीका,
३५ विशेषवाद टीका,
३६ सव्यभिचार-पूर्वपक्ष ग्रन्थ-टीका,
३७ द्रव्य-किरणावली परीक्षा,
३८ गुणप्रकाश विवृति,
३९ वृन्दावन विनोद काव्य इत्यादि।

बंगाल के एक प्रमुख नैयायिक तथा कवि के रूप में रुद्रन्यायपंचानन ने ई० सप्तदश शतक के संस्कृत साहित्य को बड़ा समृद्ध बनाया है। कवि ने भ्रमरदूत के अन्त में अपना थोड़ा सा परिचय भी दिया है—

योऽभूद् गौडक्षितिपतिशिखारत्नघृष्टाङ्घ्रिरेणु
र्विद्यावाचस्पतिरिति जगद्गीतकीर्तिप्रपञ्चः।
तस्मादासीद् भुवनविदित श्रील विद्यानिवास-
स्तत्पुत्रेण त्रिभुवन गुरो प्रीतये राघवस्य ॥१२४॥

रुद्रेणैषा समरचि मया कापि वाचा प्रतरिल-
र्वीतक्लेशा रसिकहृदयाह्लादिनी कल्पवल्लि।
शश्वत्कुर्याद् व्यसन जनिताशेषपापोपशान्ति
तस्मै कुर्यान्निजगुणकथाराधितो रामचन्द्रः ॥१२५॥

रुद्र न्यायपंचानन भट्टाचार्य का पुत्र गोविन्द भट्टाचार्य बनारस में ही रहता था। उसने सं० १६५७ ई० में एक व्यवस्थापत्र पर हस्ताक्षर किए (इन्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, २१, पृ० ३४ ३५)। सं० १६९८-९९ ई० के आस पास उसने न्यायरहस्य नामक ग्रन्थ भी लिखा। डा० जे० बी० चौधरी (कलकत्ता) द्वारा भ्रमरदूतकाव्य प्रकाशित किया जा चुका है। उन्होंने काशीनाथ विद्यानिवास के पुत्र रुद्र न्यायपंचानन को ही इस काव्य का लेखक माना है। लेकिन प्रो० डी० सी० भट्टाचार्य अपनी 'बंगेर न्यायचर्चा' में (पृ० १७४, पाद टिप्पणी) इस रुद्रन्याय

पचानन को भ्रमरदूत काव्य का लेखक नहीं मानते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि न्याय सिद्धान्त मुक्तावली की टीका इस रुद्रन्यायपचानन ने नहा लिखी है, बल्कि नवद्वीप के ही रुद्र तर्कवागीश ने लिखी है। सभव है कि दोनों विद्वानों के नामसाम्य से कहीं मतिभ्रम हो गया है।

काव्य की कथा

इस काव्य की कथा रामायण की कथा से सम्बद्ध है। कवि ने अपनी कल्पना से मूल कथा में एक और घटना बढा दी है। रावण जब सीताजी को हर कर लका ले जाता है तब सीताजी की खोज करते रामचन्द्रजी माल्यवान् पर्वत पर पहुचते हैं। वहा से सीताजी की खोज के लिए हनुमान्‌जी को लका भेजते हैं। लका से सीताजी का पूरा पता लगाकर तथा उनकी चूडामणि लेकर हनुमान्‌जी एक दिन वापिस आ जाते हैं। इधर रामचन्द्रजी सीताजी के विरह में व्याकुल तो रहते ही हैं कि निकट के एक सरोवर में एक भ्रमर मिथुन उन्हें दिखलाई पड जाता है। बस वे भ्रमर को ही दूत बनाकर लका में अशोक वाटिका में स्थित सीताजी के पास अपना प्रेम सन्देश देकर भेज देते हैं।

सर्वप्रथम उन्होंने भ्रमर को अपना परिचय, अपने दुःख का कारण तथा अपनी दयनीय दशा बतलाई है। तदनन्तर माल्यवान् पर्वत से लका तक मार्ग बतलाया गया है। माल्यवान् पर्वत से लका तक के सीधे मार्ग में चित्रकूट, नर्मदा और विन्ध्याचल इत्यादि स्थान बिल्कुल नहीं पडते हैं, फिर भी भ्रमर को इन सुन्दर और महत्वपूर्ण स्थानों की यात्रा कराने के लिए चक्करदार रास्ते से लका जाने का निर्देश किया गया है। इस प्रकार माल्यवान् पर्वत से चित्रकूट और फिर वहा से नर्मदा तथा विन्ध्याचल को पार कर कर्णाट (कर्नाटक) देश जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वहा पर केवल एक रात्रि ठहरने के बाद कावेरी नदी तथा उसके तट प्रदेश को पार कर आगे बढने पर भ्रमर के काञ्चीनगरी पहुचने का वर्णन किया गया है। पहिले शिवकाञ्ची का वर्णन किया गया है। वहा पर शिवजी के मन्दिर में शिवजी की स्तुति करने के बाद विष्णु काञ्ची जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वहा विष्णु भगवान् के दर्शन करने के बाद मार्ग में विभिन्न नद नदी और पर्वतों को पार करते हुए समुद्र तट पर स्थित किसी विन्ध्य पर्वत-श्रेणी पर भ्रमर के पहुचने का वर्णन किया गया है। इस विन्ध्य-श्रेणी से थोडी दूर पर ही समुद्र बताया गया है। समुद्र को पार करने के बाद लका नगरी तथा वहीं पर अशोक वाटिका में सीताजी के मिलने का उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार सीताजी के पास भ्रमर के पहुँच जाने की संभावना करते हुए रामचन्द्रजी ने प्रथम तो सीताजी की कष्टमय अवस्था का वर्णन किया है।

तदनन्तर भ्रमर से सीताजी के प्रति अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश कथन के बाद अन्त में भ्रमर के प्रति शुभकामनाएं व्यक्त की गई हैं।

बस, काव्य में यही कथा है।

साहित्यिक समीक्षा

बंगाल के संस्कृत दूत काव्यों में यह काव्य एक सरस तथा सुन्दर रचना है। कवि ने मेघदूत से ही प्रेरणा लेकर यह काव्य लिखा है। यद्यपि विषय, भाव तथा भाषा और शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत का अनुकरण ही है, फिर भी काव्य में अनेक स्वतन्त्र कल्पनाएं पाई जाती हैं और विप्रलम्भ शृंगार का तो बड़ा ही भावपूर्ण चित्रण किया गया है। काव्य की भाषा बड़ी मधुर तथा प्रसादपूर्ण है। समग्र काव्य में १२३ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन काव्य का नहीं किया गया है। अन्त में दो श्लोकों में कवि ने अपना परिचय भी दे दिया है। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा हुआ है।

मार्गवर्णन के प्रसंग में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों, नगरों तथा नगरनिवासियों का बड़ा भावपूर्ण और सरस चित्र प्रस्तुत किया है। नर्मदा नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

> तस्मादारात् सुभग भवता दृश्यते प्रेक्षणीया
> रेवा विन्ध्याचलपरिसरे भर्तुरङ्के प्रियेव।
> याऽसौ मन्दानिलपरिचयादुच्छलद्वीचिरेखा
> पश्यन्तीव प्रियमनिभृतभ्रूलता सम्भ्रमेण ॥१८॥

नर्मदा और विन्ध्याचल को प्रेयसी और प्रिय के रूप में बड़ी सुन्दर रीति से वर्णित किया गया है। नर्मदा में स्नान करती हुई रमणियों का भी कवि ने बड़ा सुन्दर शब्दचित्र अंकित किया है—

> तस्याः प्रत्यहनमृगदृशो दर्शितार्द्रस्तनान्ता
> तोयक्षेपक्वणितवलय पाणिमभ्युत्क्षिपन्त्य।
> लीलावत्यो रतिपतिधनुर्विभ्रमैर्भ्रू त्रिभङ्गै
> र्लोलापाङ्गै पथिकतरुणानन्तरा तापयन्ति ॥१९॥

इस प्रकार की लीलावती रमणियों को देखकर तरुणपथिकों का हृदय अवश्य ही विचलित और सन्तप्त होजाता होगा। इसी प्रकार विन्ध्यपर्वत के वर्णन में भी शृंगार रस की छटा पाई जाती है। भ्रमर को विन्ध्यपर्वत जाने का परामर्श देते हुए कहा गया है—

यायाः प्रतनैनयनसुभगान् नर्मदावीचि भिन्नान्
दानाम्भोभिः सुरभितशिलान् गन्धनागेन्द्रयूथैः ।
स्रस्तापीडैः सुरतपिशुनान् किन्नरीकेलितल्पान्
पश्यन् पश्यन् वनचरवधूवान्धवान् विन्ध्यपादान् ॥२४॥

विन्ध्य पर्वत के बाद कर्णाट देश (कर्नाटक) का वर्णन किया गया है। यहा की स्त्रियों को अत्यन्त सुन्दर, विलासमय तथा आकर्षक बताया गया है। ऐसे ही एक स्थल पर भ्रमर को सबोधन करके कहा गया है—

कुर्वाणाना किमपि कुतुकं मन्दमन्दाक्षमासाम्
सौधे सौधे मदपरिचयस्रस्त-चीनांशुकानाम्
स्निग्धस्निग्धान् प्रणयमधुरान् मन्मथोन्मादिनीना
कर्णाटीना रहसि रहसि द्रक्ष्यसि त्वं विलासान् ॥२६॥

इसके बाद कावेरी नदी तथा उसके तटवर्ती स्थानों का वर्णन किया गया है। यहा की विरहिणी स्त्रियों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

त्व कावेरीतटपरिसरे पान्थसीमन्तिनीना
मम्भोराहस्तनित जनितामोहलुप्त स्मृतीनाम् ।
उद्बाष्पापिहित नयनाभ्याकुलाप्रालकानि
प्रातश्चन्द्रप्रतिमवदनान्यम्बरादेव पश्ये ॥३६॥

मेघ के गर्जन को सुनकर प्रोषितभर्तृकाओं की स्मृति का लुप्त हो जाना, नेत्रों से निरन्तर आसुओं का बहना तथा उनके मुख का विवर्ण हो जाना स्वाभाविक ही है।

कावेरी के तटप्रदेश के बाद शिवकाची नगरी का बड़ा उदात्त और सरस वर्णन कवि ने किया है। काचीनगरी की स्त्रियों के सम्बन्ध में कवि कहता है कि वे शिव जी तक को मुग्ध करती हैं और यहा की लहराती हुई पताकाएं तो सुरपुरी तक का भी उपहास करती हुई बतलाई गई हैं—

काञ्चीं काञ्चीमणिभिरभितो यत्र लावण्यवत्यो
लीलापाङ्गैरपि पशुपतेर्मोदमुत्पादयन्ति ।
त्व वीक्षेथा प्रबलपवनोत्कम्पिताग्रा पताका
यस्याः पुष्पन्धय सुरपुरीसम्पदं तर्जयन्ति ॥४१॥

फिर मार्ग चलते चलते भ्रमर के थक जाने की सभावना कर उसके मनोविनोद का भी बड़ा सरस साधन बताया गया है—

स्थाने स्थाने नखरिलिखितैरर्धचन्द्रावतंसान्
ग्रस्तक्षौमान्मृगमदरसस्निग्धपीतस्तनान्तान् ।
मन्दस्मेरान् परिमलमुष कामिनीनां मुखेन्दून्
पश्यन् पश्यन् स्मरसि न पुरा दुर्वहानध्वखेदान् ॥६२॥

ऐसे सुन्दर दृश्यों को देखकर किस पथिक की श्रान्ति दूर नहीं होगी। वहां की स्त्रियों का वर्णन करते हुए आगे फिर कहा गया है—

काश्चित्तस्याः सरसवचनैः सारिकाः पाठयन्त्यस-
तालैरन्यास्तरलवलय नर्तयन्त्यो मयूरम् ।
काश्चित् कीरं करकिशलयैर्दाडिमी-बीजदानै-
रापुष्यन्त्यः सुभग नयने नन्दयिष्यन्ति भूयः ॥६४॥

मधुरवचनों से सारिका को पढ़ाती हुई, सुन्दर ताल के साथ मयूर को नचाती हुई तथा अपने कोमल करों से तोते को अनार के बीज खिलाती हुई स्त्रियां किसके मन को मुग्ध न करेंगी। स्त्रियों के कोमल स्वभाव तथा सहृदयता का इन क्रियाओं से बढ़कर और कौन सा उत्कृष्ट उदाहरण हो सकता है।

शिवकाञ्ची के बाद विष्णुकाञ्ची नगरी का वर्णन किया गया है। इस नगरी की अट्टालिकाएं इतनी ऊंची बतलाई गई हैं कि उनके पास से निकलते हुए बादल स्त्रियों के घु घराले केशों के समान दीख पड़ते हैं तथा अट्टालिका से कुतूहलवश गिराए हुए पुष्प को भी देखकर स्त्रियों को उल्कापात का भ्रम हो जाता है—

यत्र स्त्रीणां कुटिलकबरीभारलक्ष्मीं प्रपेदे
सौधप्रान्ते प्रतिविचरता नूननेनाम्बुदेन ।
यस्याः सौधान् कमलवदना केलिकौतूहलिन्या
क्षिप्तात् पुष्पादपि विदधते तारकापातशङ्काम् ॥६६॥

विष्णु भगवान् की प्रतिमा का माहात्म्य वर्णित करते हुए कवि कहता है—

तस्याः किञ्चित् तरुणतिमिराकारमालोकयेस्त्वं
ज्योतीरूपं परिणमति यद् योगिनां मानसेषु ।
ध्यायन्तो यत् क्वचन गहने कन्दरे भूधराणाम्
मुक्तात्मानस्तृणमिव जगन्नीरधिं निस्तरन्ति ॥७०॥

ऐसे स्थान पर बिना आराधना किए कोई आगे कैसे बढ़ सकता है। इसीलिए भ्रमर को निम्न आदेश दिया गया है—

आराध्य त्वं दनुजदयितावर्गवैधव्य दीक्षा-
तत्त्वाचार्य तमुपसि ततो वर्त्मसीमामुपेयाः ॥७६॥

विष्णु काञ्ची नगरी से आगे बढ़कर विभिन्न नद-नदी और पर्वतों को पार कर समुद्र-तट पर स्थित किसी विन्ध्यपर्वतमाला पर भ्रमर के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। इस पर्वत से आगे चल कर समुद्र पार करने के बाद लंका नगरी आती है। वहां पर अशोक वाटिका में सीताजी के मिलने की संभावना की गई है। सन्देश बताने से पहिले रामचन्द्रजी ने सीताजी का वर्णन किया है। सीताजी की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए रामचन्द्रजी भ्रमर से कहते हैं —

स्निग्धाशोकद्रुमपरिसरे तत्र रात्रिञ्चरीभि
र्व्यग्राभिर्मा प्रकृतिकृपणा मिव जाया प्रपश्ये ।
बाष्पासारस्नपितनयना पाखिलीनाननेन्दु
यूथभ्रष्टामिव मृगवधू मद्गतप्रौढरागाम् ॥८८॥

शार्दूलीनामभिमुखगता यूथहीनामिवैणीं
राहुग्रासादिव निपतितामम्बरादिन्दुलेखाम् ।
नागेनाऽऽरादिव कमलिनीमुद्धृतामुन्मदेन
त्वं द्रक्ष्यसि प्रणयनदीं प्राणभूता प्रिया मे ॥८७॥

कवि ने उपर्युक्त उपमाएं देकर सीताजी की दयनीय अवस्था का पाठकों के समक्ष चित्र सा उपस्थित कर दिया है। रामचन्द्रजी के 'प्रणयनदीं प्राणभूता प्रिया मे' इन शब्दों में कितना प्रेम छिपा हुआ है। आगे चलकर सीताजी की विभिन्न विरहावस्थाएं वर्णित की गई हैं। उनकी विरह जन्य पाण्डुता का वर्णन करते हुए कहा गया है—

यस्याश्छायामिव तुलयितु मानसाम्भोनिवासै-
र्म्लानम्लानै कनक कमलैस्तप्तमुच्चैस्तपोऽपि ।
नूनं तस्या स्मरपरिभवग्लानमङ्गं प्रियाया
काले काले जरठतपलीपाण्डिमानन्दधाति ॥८६॥

विरह में नितान्त रोते रहने का कवि ने कैसी भाव भंगिमा के साथ निम्न पद्य में वर्णन किया है—

याऽसौ पूर्वं कनककमलद्वन्द्वसौभाग्यभाजो-
र्मुक्ता आले स्तनकलशयोर्निर्ममे निर्मलश्रीम् ।
मुक्तास्थूला कुवलयदृशो भूरिशो बाष्पलेशास्
तामेवास्याः सुभग सुषमामद्य सन्सूचयन्ति ॥६०॥

सीताजी की विरहावस्थाओं के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने भ्रमर को सीताजी के प्रति दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। सन्देश में सर्वप्रथम

उन्होंने अपनी दशा वर्णित की है। वे कहते हैं—हे मैथिलि ! हरिण का शिकार करने के बाद जब मैं कुटी पर लौटा, तब दूर से ही कुटी को खाली देखकर मेरा धीरज जाता रहा और घबराहट से मुझे कांपता हुआ देख कर किसी तरह लक्ष्मण ने मुझे जब सहारा दिया तब मैं कुटी में पहुंचा—

यातस्तस्य प्रचलितधृति सम्भ्रमोत्पन्नकम्पो
दत्तालम्ब कथमपि तदा देवि त देवरेण ।
स्मार स्मार स्मरपरिमलोद्गारगर्भा गिरस्ते
पश्चेयान्ध प्रणयिनि जन प्राप दीन कुटीरम ॥९९॥

सीताजी के विरह में एकदम रामचन्द्रजी के मन तथा शरीर का निश्चेष्ट हो जाना उनके प्रेम की तीव्रता व्यक्त करता है। आगे चलकर वे फिर कहते हैं—

आर्द्रैरेव प्रणयिनि भवत्पादपाथोजचिह्नै—
र्द्वारोपान्ते पुनरधिकया चिन्तया दूयमान ।
लीलापाङ्गप्रणयमधुरैर्जल्पितैर्जीवयैन
जल्पन्नित्थ त्वमिति मविश द्रवि मुग्ध कुटीरम् ॥१०१॥

इस श्लोक में प्रेयसी के विरह में उनको प्रलाप करता हुआ भी बताया गया है। कुटी में फिर आधी गुथी हुई बकुलमाला, कान से गिरा हुआ कर्ण पुष्प तथा मौन धारण किए हुए सारिका को देखकर रामचन्द्रजी के एकदम रो पड़ने का भी उल्लेख किया गया है—

तस्मिन्नर्धप्रथितबकुल दाम धामोद पश्यन्
दृष्ट्वा कर्णच्युतमपि च ते कर्णिकारर्णिकारम् ।
निर्व्यापारा सपदि सुमग सारिका चावलोक्य
मौनेनाऽस्म प्रणयिनि तदा बाष्पपूरेण पूर्ण ॥१०२॥

सीताजी के विरह में कदम्ब के वृक्ष तक को रोता हुआ बताया गया है—

योऽसौ लीलावति चिरदिनैर्वधितो वारिसेकै
काले काले निजकरतलनैव दत्तालवाल ।
जातोन्मेष प्रथमरसितैरेव धाराधराणाम्
नीप स त्वा नवमधुलवच्छद्मना रोदितीव ॥१०४॥

इसी तरह पालित मयूर और हिरन को भी उनके विरह में व्याकुल और निश्चेष्ट वर्णित किया गया है—

सोऽयं (मयूर) नाथ प्रियसहचरि व्याधुनीते कलापम् ॥१०५॥

सोऽय (हरिण) दर्भाङ्कुरकवलने निःस्पृहो रङ्कुशाव-
स्त्वत्पादाङ्के विलुठतितरां कवल कुञ्जगर्भे ॥१०६॥

वह भ्रमर जो पहिले सीताजी के कर्ण पुष्पों का रस ग्रहण किया करता था, अब उस सौरभ की याद में डूबा हुआ मालती पुष्पों के रस को भी ग्रहण नहीं करता है—

भूय स त्वन्मुखपरिमलानायतानायताक्षि
स्मार स्मार न खलु भजते मालतीनां मधूनि ॥१०७॥

सीताजी के वियोग में बेचारी हंसिनी की भी वही दयनीय अवस्था बतलाई गई है। वह भी सीताजी को खोजकर रही है तथा कुछ खाती पीती नहीं है—

सेय मुग्धे विकलहृदया त्वामिहान्वेषयन्ती
कूले कूले चरति सरसो हन्त लीलामराली ॥१०८॥
नोपादत्ते बिसकिसलय किन्तु चञ्चूपुटेन
त्वद्विश्लेषव्यथितहृदया केवल रोदितीव ॥१०९॥

इस तरह सीताजी के वियोग में अपनी तथा अन्य आश्रम वासियों की चिन्ता और व्याकुलता का वर्णन करने के बाद रामचन्द्रजी फिर अपने सम्बन्ध में कहते हैं कि सीताजी की स्मृति में वन की एक एक कुञ्ज 'जानकी जानकी' चिल्लाते हुए उन्होंने खोज डाली है। पर्वतों की ऐसी कोई भी गुफा नहीं बची जिसको उन्होंने देखा न हो तथा हर रात्रि रोते हुए और प्रलाप करते हुए ही बीती है और ऐसा कोई भी दुःख न बचा जो उन्होंने अब तक न उठाया हो—

कुञ्जे कुञ्जे गलितगरिमा जानकी जानकीति
क्षामक्षामस्तव सहचरो दुर्भरो रोरवीति ॥११०॥

कस्मिन्न त्व गृहिणि गहने भूरिशो मार्गिताऽसि
नूनत्सन्देहान्न खलु निचिता का दरी वा गिरीणाम्।
का वा रात्रिर्न परिगमिता बाष्पगर्भ प्रलापै
किं वा तन्वि व्यसनमपि तद् यन्मया नान्वभावि ॥११३॥

आगे चलकर फिर रामचद्रजी कहते हैं —

को नारण्य विशति मृगयाकौतुकी कार्मुकश्च
को वा रङ्कोरनुसरति नो वर्त्म विस्फारितज्य।
आहर्तुं वा वत मृगयते क प्रियं न प्रियाया
को जानीते यदिह विधिना राघवो वञ्चनीय ॥११६॥

रामचन्द्रजी के इस कथन में वड़ी निराशा और ग्लानि छिपी हुई है।

सन्देश के अन्त में सीताजी को आशा बधाते हुए कहा गया है—

हत्वा मत्तअसुरपतिं त्वामुपादाय सीते
प्राप्योत्कण्ठाकुलपुरजना कोशला कौशलेन।
आधाय त्वामुरसि मुदिरामोगगाढान्धकारा (मेघ =मुदिर)
धारासारस्नपितककुभो यापनीयास्त्रियामा ॥१२२॥

सीताजी के पास सन्देश पहुचाने के कष्ट को ध्यान में रखकर भ्रमर के लिए अन्त में आशीर्वाद भी बड़ा सुन्दर ही दिया गया है—

पाय पायं मधु सुमधुर पुष्पिताना लताना
[illegible]।

॥१२३॥

भ्रमर के लिए मधुर पुष्परस का पान, कमलिनी-गर्भ में निवास तथा अपनी सहचरी का निरन्तर संसर्ग इनसे बढ़कर आनन्द-दायक और कौनसी बात हो सकती है।

समग्र काव्य के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि यह सन्देश-काव्य एक सरस और सुन्दर काव्य है। विप्रलम्भ शृंगार का इस काव्य में बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। राम और सीता के विप्रलम्भ का वर्णन तो है ही, मार्ग वर्णन के प्रसंग में भी विरहिणी स्त्रियों की विभिन्न चेष्टाएं वर्णित की गई हैं। विप्रलम्भ शृंगार के अनुकूल ही काव्य में माधुर्यगुण तथा वैदर्भी रीति पाई जाती है। उपर्युक्त अनेकों अवतरणों से पाठक गण स्वय इस बात का अनुभव कर सकते हैं।

मार्ग वर्णन, सन्देश कथन, रस, भाव, विषय तथा शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत का एक सफल अनुकरण तो है ही, कहीं २ भावसाम्य तथा शब्द-साम्य भी इतना स्पष्ट है कि इस काव्य के पढ़ते ही मेघदूत की पदावली एक दम ध्यान में आ जाती है। उदाहरणार्थ कतिपय स्थलों की तुलना अप्रासंगिक न होगी —

१ आपृच्छस्व प्रियसहचरीं त्वद्गतप्रौढरागाम् ॥१४॥ भ्रमरदूत
आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिंग्य शैलम् ॥१॥१२॥ मेघ०

२ पुञ्जीभूतानिव पशुपतेरावर्तानिट्टहासान् ॥४७॥ भ्रमर०
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥१॥५६॥ मेघ०

३ वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशाम्
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ॥ मेघ०

द्रष्टुं देशानतिशयगुरून् अत्र नेत्राभिरामान्
न त्वं भ्रातर्भ्रमर गणयेरध्वनो जिह्मभावम् ।
आसन्नत्वे क्षणमतिथयो यस्य ते ते न देशा
सृष्टा दृष्टि सुभग विधिना तस्य मन्ये मुधैव ॥१७॥ भ्रमर०

४ नीता रात्रिः क्षणमिव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥२॥२८॥ मेघ०

मेघश्यामाः स्फुरिततडितो यामिनीर्या निमेषात्
पूर्वं रामो गृहिणि गहने त्वत्सनाथो निनाय ।
ता एवाद्य प्रलेयजलदध्वानधारागभीराः
कल्पान्ते कमलवदने दीर्घयामा रजन्यः ॥११५॥ भ्रमर०

५ त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ॥१॥८॥ मेघ०

त्वामुद्यान्तं वियति विकसन्नेत्रलोलालकाग्राः
प्रेक्षिष्यन्ते विरहवनिताः कोपरक्तैरपाङ्गैः ॥३२॥ भ्रमर०

६ नूनं तस्याः स्मरपरिभवग्लानमङ्गं प्रियायाः
काले काले जरठकदलीपाण्डिमानन्दधाति ॥८६॥ भ्रमर०

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियायाः (मुखम्)
इन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥२॥२४॥ मेघ०

इस तरह दोनों काव्यों में समानान्तर भाव तथा पद अनेक स्थलों पर पाए जाते हैं।[1]

कवि ने काव्य में यथास्थान अलंकारों का भी उचित प्रयोग किया है। काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास और भाविक इत्यादि अर्थालंकार स्थान २ पर पाए जाते हैं। अवतरण देकर व्यर्थ में ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाना अनुचित ही होगा। शब्दालंकारों के एक दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

१ दे० काव्य की भूमिका, पृष्ठ २०-२१। डा० जे० बी० चौधरी ने ऐसे अन्य स्थलों का भी निर्देश किया है।

१ लीलोद्यान ललितलवलीलम्बिरोलम्बमाल
मन्दोन्मीलद्बकुलमुकुलामोदमेदस्वि पश्य ॥८०॥ (वृत्त्यनुप्रास)

२ अग्रेकृत्य प्रियसख दयावद्दिशो दक्षिणायाम् ॥१६॥ (यमक)

कहीं-कहीं कवि ने बड़ी सुन्दर सूक्तियाँ भी पाठकों के सामने रक्खी हैं। यथा-

१ प्राय प्राणाधिकयुवतयो न स्मरन्त्या युवान ॥१४॥

२ काम्य केषा न खलु युवतीपाणिसंस्पर्शहर्षे ॥५१॥ इत्यादि

इस तरह मेघदूत के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी यह काव्य स्वतन्त्र उद्भावनाओं तथा सुन्दर कल्पनाओं से परिपूर्ण है। माल्यवान् पर्वत से लङ्का तक का जो मार्ग इस काव्य में वर्णित किया गया है, भौगोलिक दृष्टि से वह असगत ही है। लेकिन जब हमें यह मालूम होता है कि कवि ने जान बूझ कर यह मार्ग अपनाया है, तब हमारा भ्रम दूर हो जाता है। सभव है कि रमणीयस्थलों के वर्णन के प्रलोभन को कवि सवरण नहीं कर सका हो। अत ऐसा चक्करदार मार्ग इस काव्य में वर्णित किया गया है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि ईसा की सत्रहवीं शताब्दी (वि० सत्रहवा शतक का उत्तरार्द्ध) में बगाल में लिखी गई सस्कृत कविता का यह काव्य एक उत्कृष्ट निदर्शन है तथा सुन्दर और ललित भाषा में लिखा गया एक सरस सन्देशकाव्य है।

रुद्रन्याय पञ्चानन का कपिदूत

यह पिकदूत एक बहुत छोटा सा दूत काव्य है। प्राच्यवाणी मन्दिर, कलकत्ता की पत्रिका प्राच्यवाणी, जिल्द २, अक ३-४, १९४५ में मूलमात्र यह काव्य प्रकाशित हुआ है। इस दूत काव्य की एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ते के प्रो० चिन्ता हरण चक्रवर्ती, एम० ए० के निजी पुस्तकालय में है। एक प्रति ढाका विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भी पाई गई है। ढाका विश्वविद्यालय की हस्त लिखित प्रति के अन्त में 'इति श्री रुद्रनाथ (? न्याय) पञ्चाननभट्टाचार्य विरचित पिकदूत नाम काव्य समाप्तम्।' ऐसा लिखा हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस लघु सन्देश काव्य का रचयिता तथा भ्रमरदूत का रचयिता दोनों एक ही व्यक्ति हैं। श्री कृष्णमाचार्य ने

अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में पृष्ठ ३६८ पर इस काव्य को किसी अनिज्ञात लेखक का बताया है। उनके लिए सम्भवत ढाका विश्वविद्यालय की हस्तलिखित पुस्तक का ज्ञान नहीं रहा होगा। भ्रमर-दूत काव्य के प्रसंग में श्री रुद्रन्यायपञ्चानन का समय तथा वंश इत्यादि विशद रूप से वर्णित किया जा चुका है। तदनुसार इस काव्य को भी विक्रम सप्तदश शतक के उत्तरार्ध में ही लिखा हुआ मानना चाहिए।

काव्यसार

इस काव्य में मथुरा में स्थित श्रीकृष्णजी के पास राधा ने वृन्दावन से पिक को अपना दूत बना कर भेजा है। कृष्ण के विरह में व्याकुल राधा वन में इधर उधर घूमती होती है कि उसे एक कोकिल दिखलाई पड़ती है। अपनी उन्मत्त अवस्था में वह कोकिल से श्रीकृष्ण के पास अपना सन्देश ले जाने की प्रार्थना करती है। अन्य सन्देशवाहकों की अपेक्षा कोकिल की उत्कृष्टता बताकर उसकी यात्रा के लिए उपयुक्त यान, अश्व और सारथि इत्यादि का भी वर्णन किया गया है। वृन्दावन से मथुरा निकट ही है, अत काव्य में मार्गदर्शन बिल्कुल ही नहीं है। मथुरा में श्रीकृष्णजी के पास कोकिल के पहुँचने की सम्भावना कर राधा ने उसे अपना सन्देश बताया है। सन्देश कथन के बाद काव्य समाप्त हो जाता है।

साहित्यिक समीक्षा

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है, यह काव्य अत्यन्त ही छोटा है। इस काव्य में केवल ३१ श्लोक हैं। मेघदूत से प्रेरणा लेकर तो यह काव्य लिखा ही गया होगा, लेकिन इसमें और मेघदूत में विप्रलम्भ शृंगार की समानता के अतिरिक्त और कोई समानता नहीं है। मेघदूत में नायक अपनी नायिका के पास दूत भेजता है, इसमें नायिका ने नायक के पास दूत भेजा है। काव्य में छन्द भी भिन्न ही है। शार्दूल विक्रीडित छन्द में यह काव्य लिखा गया है। काव्य में मार्गवर्णन बिल्कुल ही नहीं है तथा पूर्व भाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य का नहीं किया गया है।

अत्यन्त छोटा होते हुए भी यह काव्य सरस और सुन्दर है। कवि ने बड़ी सुन्दर उद्भावनाएं काव्य में प्रस्तुत की हैं। कोकिल को दूत बनाने का कारण बताते हुए राधा कहती है—

> सर्वास्वेव सभासु कोकिल भवान् वक्ता यतस्त्वद्वच
> श्रुत्वा सर्वजना मनोऽपि रमते त्वं चापि लोकप्रिय ॥४॥

अन्य द्विरेफ इत्यादिकों के दूत न बनाने का भी कारण सुनिए—

तिष्ठन्त्येव हि दौत्यकर्मणि रता अन्ये द्विरेफादयः
किन्त्वस्माभिरिमे हरेर्निकटतो न प्रेषणीया क्वचित् ।
ते यस्मान्मधुलोभिनो मधुरिपोः प्राप्याङ्घ्रिपद्मं ततो
नो चेत्तन्मधुलोभतो मधुपुरादायासुरस्मिन् पुनः ॥५॥

अपने मन को दूत बनाने के प्रश्न का राधा ने कितना सुन्दर उत्तर निम्न श्लोक में दिया है—

चेतस्त्वं समीरित यदुपतेरासाद्य पादाम्बुजम्
तस्मिन्नेव विराजत पिक मुदा तस्मात् पुनर्नागतम् ॥६॥

इसलिए किसी और को दूत न बनाकर पिक को ही राधा ने अपना दूत बनाया है और उस के सम्बन्ध में कहा भी है—

युक्तं सर्वगुणान्वितस्य विदुषो दूतस्य सम्प्रेरणम् ॥७॥

तत् क चन्दिम हि गच्छ गच्छ मधुरामन्यं सुहृत्त्वां विना
को वाऽस्ति प्रज्ञयोचिता ममसिज्ञा शङ्का समापूरयेत् ॥६॥

इस प्रकार पिक को दूत-कार्य में नियुक्त कर मार्ग में उसके कष्ट का ध्यान रखते हुए यान इत्यादि की भी बड़ी सुन्दर व्यवस्था की गई है—

चित्त मत्तमतङ्गमाशु पिक मे आरुह्य नाथान्तिकम्
हे कृष्णेति वचोऽङ्कुशेन गमयन् गच्छाभिसार्यं (?) मुदा ।
एतेनापि तवाटनेन जनितं दुःखं न भूयात् सखे
तावत् कृष्णपदं तथापि च पुनर्सोपाहना प्रश्यतु ॥१३॥

चित्त को मत्तमतंग तथा 'हे कृष्ण' इस वचन को अंकुश का कितना सुन्दर रूपक दिया गया है। इसके अतिरिक्त एक और यान बताते हुए फिर राधा कहती है—

अस्माकं च मनोरथोपरचितं यानं समारुह्य वा
तस्मिन् सत्वरगं नियोज्य महसा तावन्मनोवाजिनम् ।
यन्तारं परिकल्प्य कृष्णविरहं प्रत्राणनाथान्तिकम्
गच्छानेन तदैव ते न भविता कष्टं महन्मार्गजम् ॥१४॥

इस श्लोक में मनोरथ को रथ का, मन को अश्व का तथा कृष्णविरह को सारथि का रूपक देकर कवि ने अपनी प्रौढ़ कल्पना शक्ति का परिचय दिया है।

आगे चल कर फिर कोकिल से कहा गया है कि यदि उसे धूप लगे, तो वृक्षों की छाया में उसे विश्राम कर लेना चाहिए, प्यास लगे, तो श्री कृष्ण के नामा-

मृत को पी लेना चाहिए और यदि भूख लगे, तो श्रीकृष्ण के दर्शन करने का फल तो उसके लिए मिल ही जायगा—

> मन्तव्योऽसि यदातपैर्विटपिनो मूलं समासाद्य वा
> विश्राम रचयन् मुहुर्मधुपुरीं गन्ताऽसि मारप्रिय।
> तृष्णा त्वा यदि बाधते मधुरिपोर्नामामृतं संपिबन्
> भुक्त्वा दर्शनपुण्यज फलमहो त्वं चेत् क्षुधापीडित ॥१५॥

इस प्रकार यात्रा पूर्ण करने के बाद कोकिल को राधा ने कृष्णजी के लिए दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। राधा कोकिल को कृष्णजी के प्रति अपना सन्देश बताते हुए सर्वप्रथम कहती है—

> राधा माधव ते वियोगफणिना सदंशिता तद्विषे-
> णाच्छन्ना तव सन्निधौ विधुमुखी मा प्रेरयन्ती क्षणात्।
> मुग्धाऽभूदधुना किमस्ति नहि वा तन्नैव जाने सखे
> गत्वा तत्र समुच्यतामिति मुहुर्मामीशनारायसे ॥१८॥

आगे चलकर वह फिर कोकिल से कहती है कि तू कृष्ण से इस प्रकार कहना—

> यावत् त्वत्पदसन्निधे पुनरहं यास्यामि वृन्दावनं
> सा तावन्न जहाति माधव तनु ते दर्शनाकाङ्क्षिणी।
> मत्तस्त्वद्वचन निशम्य च शुभं किं वाशुभं तत्क्षणात्
> कर्ता यद्धि हित तदेव सुतरामित्युच्यतां कोकिल ॥१६॥

इन पद्यों में कृष्णविरह में राधा की अचेतनावस्था और कृष्णदर्शन की उत्सुकता का कवि ने बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है।

राधा ने फिर कोकिल से कहा है कि तू जरा कृष्ण से यह तो पूछना कि जिसने अपना पति, मान, गुरुओं के वचन, धर्म, कर्म और कुल की लाज को छोड़ कर तुम्हारे लिए अपना जीवन अर्पित किया तथा जो तुम्हारी वंशी के स्वर को सुनकर पागल की तरह अपने पति के घर से निकल पड़ती थी, उसे किसके हाथ सौंप कर तुम यहां मथुरा में रहने लगे हो। अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए राधा फिर कहती है—

> गौरी कोकिल मे परा तनुरियं कृष्णेन कृष्णीकृता
> सुस्थं शुद्धमुदारमेव परमं चित्तञ्च मत्तं कृतम्।
> किञ्चास्यामपवादिनी परिहृता गोपालपुर्यामहम्
> नो तद्दुर्वद्मि तथापि यन्मम मनस्तं चैव संचिन्तयेत् ॥२८॥

कृष्ण के प्रेम में राधा के शरीर का कृष्णमय हो जाना तथा उसके चित्त का

मत्त हो जाना उसके प्रेम की अनन्यता का परिचायक है। अपनी मनोव्यथा को पुन प्रकट करते हुए राधा कहती है—

> मह्य यानि समर्पितानि हरिणा दु खान्यसह्यानि वै
> सह्यन्ते खलु तानि कोकिल हरे र्नाम स्मरन्त्या मया।
> किन्त्वस्मिन् व्रजमण्डले भवति यो लोकापवादो महान्।
> हित्वा मामिति माधवो मधुपुरे यात स नो सह्यते ॥२६॥

किसी के प्रेम में कोई कितना भी दु ख उठा सकता है, लेकिन अपने प्रेम की अवहेलना बड़ी कठिनाई से सही जाती है। इसी प्रकार राधा फिर कहती है कि कृष्ण के मधुरा चले जाने पर वृन्दावन में रहने वाली किस स्त्री ने कृष्ण के गुणों का स्मरण नहीं किया, कौन उनके विरह में दु खित नहीं हुई तथा 'कृष्ण कहा गए' ऐसा निलज्ज २ कर कौन नहीं रोई, लेकिन फिर भी लोग न जाने मुझे ही क्यों कृष्ण विरहिणी कहते हैं। अन्त में वह कहती है कि श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल मेरे प्राण ठहरना भी नहीं चाहते हैं और उनके आने की आशा से निकलना भी नहीं चाहते हैं। हे पिक! तू ही बता मैं कैसे मरू और कैसे जिऊ। तुझे मैं अपना दु ख क्या बताऊं—

> तिष्ठासन्ति न मेऽसवो मधुरिपोर्विच्छेददुःखार्दिता
> नाथस्यागमनाशया पुनरमी नो वा यियासन्ति वै।
> तस्मान्मे मृतिजीवने पिक कथ स्याता तदेवोच्यताम्
> किन्ते दु खमनन्तमच्युतकृत सवच्मि चेतोऽधिकम् ॥३१॥

इस प्रकार श्री कृष्णजी के लिए सन्देश्य बातें बताकर कुछ ऐसी बातें भी कोकिल से कही गई हैं जिनको कि कृष्णजी से कहने के लिए स्पष्ट रूप से कोकिल को मना कर दिया गया है। इस प्रसग में राधा कोकिल से कहती है—

> नाद्ये गच्छति षट्पदा सुमधुर नाद न कुर्वन्त्यहो
> नो नृत्यन्ति घनागमेऽपि शिखिनो नो वान्ति वाता शुभाः।
> नो पुष्यन्ति कदम्ब-चम्पक जपा-सप्तच्छदादीनि च
> प्रोच्य नैव जनार्दनान्तिक इद रे चक्रपाणिप्रिय ॥२४॥

संभव है कि इन बातों को सुनकर कृष्णजी का हृदय और अधिक दु खी हो जाये और वे यहां आने का विचार ही छोड़ दें। इसी प्रसग में राधा ने फिर कहा है—

> श्री वृन्दावन इन्दुरत्र नलिनीनाथायते यामिनी
> तावत् कालनिशायतेऽपि च मरुदुबह्नीयते स्रजा।
> तथा वैतरणीयते पिक सदा मालाऽपि सर्पायते
> वक्तव्य न कदापि नाथ इदमप्यस्मन्मनोऽभीप्सके ॥२५॥

इस पद्य में प्रकारान्तर से राधा की विरहावस्था ही वर्णित की गई है। प्रिय संसर्ग में जो वस्तुयें रमणीय और सुखकर होती हैं, प्रियविरह में वे ही दुःखद प्रतीत होने लगती हैं। लेकिन इन सब बातों को राधा अपने कृष्ण से छिपाना चाहती है ताकि उसकी विरहव्यथा से उन्हें कोई कष्ट न हो।

इस प्रकार इस सन्देश काव्य में राधा का विरह-वर्णन तथा कृष्ण के लिये उसका प्रेमसन्देश पाया जाता है। यद्यपि सन्देश भेजने के समय का उल्लेख नहीं किया गया है, फिर भी कोकिल के साहचर्य से वसन्त ऋतु का अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि अन्य ऋतु में कोकिल पाई ही नहीं जाती है। यदि मिल भी जाये, तो उसका कण्ठ बन्द रहता है। इसके अतिरिक्त कवि ने प्रथम श्लोक में स्वयं ही लिखा है—

शुभ्रांशुवेन्दुमुखी वनप्रियरव राधा कुरङ्गेक्षणा ॥१॥

अतः सन्देश भेजने का समय वसन्त ऋतु ही है।

भ्रमर-दूत और पिक दूत यह दोनों ही काव्य श्री रुद्र न्याय-पञ्चानन के लिखे हुये हैं। इन दोनों में कौन पहिले लिखा गया है और कौन बाद में—यह निर्णय करना कुछ कठिन ही है। पिकदूत की कविता उतनी सरस तथा प्रवाह-पूर्ण नहीं है जितनी कि भ्रमरदूत की। कहीं-कहीं पिकदूत में कुछ क्लिष्ट कल्पना भी पाई जाती है। दूसरे इस काव्य में मार्गवर्णन तो है ही नहीं और सन्देश के अन्त में कोकिल को आशीर्वाद इत्यादि भी नहीं दिया गया है। इस दृष्टि से यह काव्य कुछ अपूर्ण सा ही लगता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रथम यही सन्देशकाव्य कवि ने लिखा होगा। यदि भ्रमर-दूत के बाद इस काव्य की रचना हुई होती, तो यह काव्य आकार तथा प्रकार दोनों में ही भ्रमरदूत से उत्कृष्ट होता।

कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि कवि ने इस काव्य में (श्लोक सं० ४, इसी ग्रन्थ के पृष्ठ४ २५ पर उल्लिखित) भ्रमर को दूत बनाने में अपनी उदासीनता प्रकट की है। ऐसा तभी हो सकता है जब कि भ्रमरदूत को लिखने के बाद यह काव्य लिखा गया हो। कृष्ण के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में भी भ्रमर को दूत बनाया गया है, अतः इस काव्य में भ्रमर के दूत बनाये जाने का प्रश्न स्वभावतः ही उठता था, उसी का कवि ने उचित अवसर पाकर समाधान कर दिया है। इसलिये यह पिकदूत भ्रमर-दूत के बाद की ही रचना है।

लेकिन यह विचार भी नितान्त सत्य नहीं है। इस काव्य में भ्रमर के प्रति जो उदासीनता व्यक्त की गई है, वह कवि की स्वाभाविक उदासीनता नहीं है, बल्कि कार्यवश ही भ्रमर को दूत नहीं बनाया गया है। अतः भ्रमर दूत को कवि की उत्तरकालीन रचना मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

काव्य में अप्रत्यक्ष रूप से दया और सत्य इत्यादि गुणों की प्रशंसा भी कवि ने की है। कोकिल से दूत कार्य करने की प्रार्थना करते हुये राधा कहती है—

सन्तो यद्वितरन्ति कोकिल कृपा दीनातिदीने जने
नो तत् कारणत सतामिदमहो शील च तेषां पुन ।
किं कुर्यान्नलिन रवेरपि विधो किं वा सखे कैरव
सूर्ये पद्ममपीन्दुरुत्पलमल सफुल्लयेदेव यत् ॥१६॥

इसी तरह सज्जनों के सत्यभाषण की भी प्रशंसा निम्न पंक्ति में पाई जाती है—

प्राणान्तेऽपि वदन्ति सत्यवचन सन्त पुनर्नानृतम् ॥६७॥

यह काव्य एक लघुतम सन्देशकाव्य होते हुए भी राधा और कृष्ण के अनन्य प्रेम की अनुपम झाकी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। सन्देश काव्यों की शिल्प योजना में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग कर कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। मेघदूत के अनुकरण का इस काव्य में कहीं भी कोई प्रभाव नहीं पाया जाता है। विरह-वर्णन में तीव्रता होते हुये भी शृगारिकता सयत रूप में ही काव्य में पाई जाती है। अपनी विरहव्यथा का वर्णन करते हुए राधा ने कोकिल के समक्ष बडे गम्भीर विचार व्यक्त किये हैं। यथा –

दैत्यारेर्विरहानल परतरो दावानलो वाऽभवत्
गोपीना नयनाश्रुपल्लिरधुना नो वृष्टिरेवाभवत् ।
कालोऽयं मम दुर्विपाकवशत कल्पान्तकालोऽभवन्
मन्ये सहरणाय कोकिल हरिर्ना रुद्ररूपोऽभवत् ॥७॥

इस पद्य से विरह की उग्रता तथा राधा की व्यग्रता का पाठक स्वय अनुमान लगा सकते हैं। भाव तथा रस के अनुकूल काव्य में माधुर्य गुण और वैदर्भी रीति सर्वत्र पाई जाती है। राधा और कृष्ण के भक्तों के लिये यह काव्य सर्वथा उपादेय है।

शतावधानकवि श्रीकृष्णदेव का भृंगदूत (वि० अष्टादश शतक)

— यह गपुर विश्वविद्यालय पत्रिका' सं० ३ दिसम्बर, १९५७ में प्रकाशित हुआ है। मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) के पं० सूरजमल चतुर्वेदी से इस काव्य की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। 'काव्य के अन्त में 'इति श्रीशतावधान कवि

कलित भ्रमरसन्देश समाप्तम्' ऐसा लेख है। इससे ज्ञात होता है कि इस काव्य का नाम 'भ्रमरसन्देश' है और उसके लेखक का नाम शतावधान कवि। लेकिन 'शतावधान कवि' यह नाम वास्तविक नामसा नहीं लगता। सम्भव है कि एक साथ सौ विषयों पर ध्यान देने की शक्ति रखने के कारण कवि की यह उपाधि पड़ गई हो। काव्य का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

श्रीकृष्णदेवस्मरणाभिधानं शतावधानं परमाभिधानम्।
श्रीभृङ्गदूतं श्रुतिसारभूतं व्यधादतिप्रेमकथानुभूतम्॥

इस श्लोक से ऐसा ज्ञात होता है कि कवि का नाम कृष्णदेव है। 'श्री' शब्द केवल आदर-सूचक है। यद्यपि इस नाम के मानने में समास की कठिनाई ही रहती है, क्योंकि 'श्रीकृष्णदेवस्मरणाभिधान' में श्रीकृष्णदेव इति स्मरणं योग्यम् अभिधानम् यस्य सः—इस प्रकार मध्यमपदलोपिसमास अथवा 'श्रीकृष्णदेवस्य स्मरणे अभिधानं यस्य सः—इस प्रकार व्यधिकरण बहुव्रीहि समास ही बनता है, फिर भी यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि कवि का नाम शतावधान श्रीकृष्णदेव है। यद्यपि इस काव्य के अन्त में 'भ्रमर सन्देश' यह नाम दिया हुआ है, लेकिन काव्य के अंतिम श्लोक में 'भृङ्गदूत' शब्द के आने से इस रचना का नाम 'भृङ्गदूत' ही समझना चाहिये। लिपिकार के इस कथन—

अलेखि रामकृष्णेन सूकरक्षेत्रवासिना
पुस्तकं भृङ्गदूतस्य धर्मकामार्थसिद्धये॥

में 'भृङ्गदूत' शब्द के उल्लेख से भी इस रचना का नाम भृङ्गदूत ही उचित प्रतीत होता है।

शतावधान कवि श्रीकृष्णदेव के समय के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। केवल इतना निश्चित है कि वह सं० १७४० वि० (सं० १६६६ ई०) से पूर्व के हैं, क्योंकि लिपिकार ने अपनी लिपि का समय 'सं० १७४० वर्षे फाल्गुण वदि अष्टम्या रविवासरे' ऐसा दिया है। पूर्णिमान्त मास की पद्धति से यह तिथि १६ फरवरी सं० १६६६ ई० रविवार निकलती है। प्रो० वि० वि० मिराशि (नागपुर) इस गणना की पुष्टि भी कर चुके हैं[1]। अतः वि० अष्टादश शतक का प्रथम भाग ही कवि का समय निश्चित होता है।

यह पुस्तक सूकरक्षेत्र (सोरों, उत्तरप्रदेश) में लिखी गई है तथा व्रजभूमि के अनेक विवरण इस काव्य में पाये जाते हैं और हस्तलिखित प्रति का स्वामी अपने को लेखक (कवि) का वंशधर बतलाता है। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि इस काव्य का रचयिता सोरों या मैनपुरी का निवासी है। इसके अतिरिक्त इस कवि के सम्बन्ध में और कुछ ज्ञात नहीं है।

(१) १. दे० भृङ्गदूत पृष्ठ, ३६, पादटिप्पणी।

काव्य की कथा

पूर्णानन्द, परमपुरुष, कमलनयन श्रीकृष्ण भगवान् के विरह में एक गोपी अत्यन्त व्याकुल रहती है। चांदनी रात भी कल्प के समान उसे प्रतीत होती है। एक दिन सूर्योदय होने पर मधुर मधुर गुंजता हुआ एक भौंरा उसे दिखलाई पड़ जाता है। बस, कृष्ण के पास अपना सन्देश भेजने के लिए वह उसे ही दूत बनाती है और उससे वृन्दावन जाने की प्रार्थना करती है। इस प्रसंग में वृन्दावन, नन्द-गृह, नन्द के उद्यान, यशोदा के पुत्रप्रेम और वृन्दावन की राजवीथियों में होने वाली गोपियों की विलासमय चेष्टायें बड़े सरस ढंग से वर्णित की गई हैं। स्थान-स्थान पर नृत्य और गीत का प्रदर्शन करती हुई गोपिकाओं के देखने का भी भ्रमर को परामर्श दिया गया है। यमुना के मार्ग में आने वाले सरस्वती और शिवजी के मंदिर का भी वर्णन पाया जाता है। मार्ग स्थित कदम्ब वृक्ष पर गोपिकाओं के वस्त्रों को छीन कर बैठे हुये कृष्ण की लीलाओं के भी बड़े सरस चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। यमुना के बाद फिर वृन्दावन जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वृन्दावन के द्वार और अन्तर्वीथियों इत्यादि के वर्णन के बाद गोवर्धन पर्वत का वर्णन किया गया है। इस पर्वत की ही किसी ऊँची चोटी पर चढ़ कर कृष्णजी की क्रीडाभूमि देखने का भ्रमर को आदेश दिया गया है। क्रीडाभूमि में गोपिकाओं और गोपालों के बीच में ही कहीं पर कृष्णजी के मिल जाने पर उन्हें प्रसन्नचित्त तथा उपयुक्त अवसर देखकर अपना सन्देश सुनाने के लिये गोपिका ने भृंग से अनुरोध किया है। सर्व प्रथम भृंग से कृष्ण की स्तुति करने के लिये कहा गया है। तदनन्तर भृंग से कृष्ण को निम्नलिखित सन्देश सुनाने की प्रार्थना की गई है।

'हे करुणासागर, अनन्तशक्ते, गोपीरमण, वासुदेव भगवन्! एक गोपी इस समय आपके विरह में बड़ी व्याकुल है। अपनी विरहव्यथा आपको सुनाने के लिए उसने मुझे दूत रूप से आपके पास भेजा है। हे देव! आपके विरह में चन्द्रिका उसके लिये अग्नि के समान है, पत्रों की शय्या अंगार तुल्य है, पुष्पों का हार भार सा लगता है, कमल के पत्ते बाणों की तरह चुभते हैं, मदिरा विष के समान है और वंशी का स्वर तो उसे मूर्च्छित सा करता है। हे देव! तुम्हारे ध्यान में उसका एक २ दिन कल्प के समान बीतता है। हे माधव! हाथ जोड़कर उसने तुम्हारे लिये यह सन्देश भेजा है कि तुम सर्वदा चित्त में रहते हो। अनेक भावों से बाह्य जगत् में तुम्हारा प्रकाश हो रहा है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें तुम्हारा विलास न हो। सारे प्राणी तुम्हारी माया के वश में हैं। मैंने लज्जा, कुल, शील और मान मर्यादा छोड़ दी है। मुझे किसी का डर नहीं है। धर्मबन्धन को मैंने दूर कर दिया है। जो जो प्रिय था, वह सब मैंने छोड़ दिया है। अब निर्वाण हेतु केवल तुम ही मेरे रक्षक हो। मेरी केवल यही प्रार्थना है कि तुम्हारे चरणकमलों को अपने हृदय में सर्वदा धारण किये रहूँ तथा मेरी वाणी, मन और काया अन्य विषयों से

विरत होकर तुम्हारे ही ध्यान में लगी रहे। हे कृपावास! मुझ पर कृपा करो। यदि मेरा कोई अपराध हो, तो उसे क्षमा करो।'

भृंग को इतना सन्देश बताने के बाद गोपी उसे वृन्दावन में ही पुष्पसमूह में विहार करने तथा कृष्ण भगवान् की वैजयन्ती माला में निवास प्राप्त करने का आशीर्वाद देती है।

सन्देश के समाप्त होते होते ही दीनों के रक्षक, विश्वात्मा, आनन्द मूर्ति कृष्ण भगवान् साक्षात् प्रकट हो जाते हैं और उस गोपी को अपने धाम ले जाते हैं।

बस, यही काव्य की कथा है।

साहित्यिक समीक्षा

यह काव्य पूर्णतया मेघदूत की शैली पर ही लिखा गया है। मन्दाक्रान्ता छन्द का ही काव्य में प्रयोग हुआ है। काव्य में कुल १२६ श्लोक हैं। पूर्व भाग और उत्तर-भाग जैसा काव्य में कोई विभाजन नहीं किया गया है। प्राय विचार-तारतम्य मेघदूत जैसा ही है। कहीं-कहीं पर तो मेघदूत की पदावली का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है–

(१) कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्त (मे० दू० १)

(१) एना प्रीत्या निशमय निशासकुचत्पंकजान्तस्
तास्यत्कान्ताविरहगुरुताभिन्न विज्ञापना मे। (भृ० दू० ६)

(२) सतप्ताना त्वमसि शरण तत् पयोद प्रियाया। (मे० दू० ७)

(२) सतप्ताया मयि करुणया याहि तूर्णं तथापि। (भृ० दू० २२)

मेघदूत में सन्देशकथन के बाद यक्ष मेघ को आशीर्वाद देता है। इसी प्रकार गोपी भी भृंग को अन्त में आशीर्वाद देती है–

एतत्कृत्वा मधुकर भवानीप्सितं मे दयावान्
वृन्दे वृन्दावनसुमनसा नित्यमानन्दमेतु।
अप्यामोदप्रसरसुभगामच्युतस्यानुवेलं
यत्नाद्भृङ्गीरणितमुखरा वैजयन्तीमुपास्ताम् ॥१२५॥

अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये यक्ष अपनी प्रेयसी के प्रति कहता है–

श्यामास्वगं चकितहरिणीप्रेक्षिते दृष्टिपातम्
वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषु केशान्। इत्यादि

भृंग-दूत में भी गोपिका अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये कृष्ण से कहती है—

शोणाम्भाना ततिषु चरणाकारमिन्दीवरेषु
छायामाशीमधरसुषमा जम्बुजीवावलीषु ।
नेत्रालोकश्रियमपि च ते पुण्डरीकेषु बाला
निध्यायन्ती कथमपि बलाज्जीवितं सा बिभर्ति ॥११३॥

काव्य की भाषा भी प्रसाद गुणयुक्त है। केवल व्रजभूमि के ही वर्णन होने से भौगोलिक ज्ञान की बातें इस काव्य में बहुत कम पाई जाती हैं। मेघदूत में प्रधान रस विप्रलम्भ शृंगार है। लेकिन इस काव्य में प्रेम अपने दिव्य स्वरूप में प्रतिष्ठित है। गोपिका के प्रेम का आलम्बन स्वयं श्रीकृष्ण भगवान हैं और वे हैं परमपुरुष तथा विश्वात्मा के रूप में ही माना गया है। वैष्णवों के भक्ति साहित्य में भी इस काव्य का विशिष्ट स्थान है।

यद्यपि मेघदूत के अनुकरण पर ही इसकी रचना हुई है, फिर भी इस काव्य में मौलिकता की कमी नहीं है। मेघदूत में एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के पास सन्देश भेजता है। इस काव्य में एक भक्त स्त्री ने अपने भगवान् के पास सन्देश भेजा है। सरलभाषा में सरस वर्णनों की भी काव्य में कमी नहीं है। वृन्दावन की राजवीथी में चलती हुई स्त्रियों का बड़ा ही सरस वर्णन कवि ने किया है।

हैमान्कुम्भानुरसिजभरैर्दर्पणालिं कपोलैः
भृंगान्पुष्पप्रकरमुखरान्पादभूषानिनादैः ।
रम्भीनादान्मृदुभिरधिवैः कुंकुमान्यङ्गकान्त्या
कर्पूरं च स्मितरचनया यत्र नार्यो हसन्ति ॥१६॥

यमुना के वर्णन में भी कवि ने बड़ी उपयुक्त उपमाएं प्रयुक्त की हैं—

आनन्देन द्रुत इव हरेरङ्गलावण्यपूरः
कृष्णस्पर्शान्निव इव भुवो रोमराजीविलासः ।
दानस्यन्दोदय इव कलिन्दाद्रिदन्तावलस्य
स्रोतोभारः सुभगसलिलं शोभते साधु यस्याः ॥४०॥

यमुना की चढ़ती हुई लहरों को लेकर भी कवि ने बड़ी सरस कल्पना की है—

आगामन्तः पुलककलिकाशालिनीमूरुसीमां
मारोदन्तस्थितवलिपदवीं नाभिमास्फालयन्तः ।
आलिंगन्तः कुचकलशकानंगनानां विहारे
यत्कल्लोला विटमुरसितं कुर्वते दौर्विलासान् ॥४२॥

इसके बाद गोवर्धन पर्वत का कवि ने बड़ा सजीव चित्र अंकित किया है—

शब्दायन्ते समदगतय शाकरा (=वृषभा) यत्र धीरं
वत्सा स्तन्यस्तवकितमुखा स्वैरमुत्पुच्छयन्ते ।
आहूयन्ते मुहुरनुगिरं धेनवो नामधेयै
श्रूयन्ते च श्रुतिसुखकरा क्षीरधारानिनादा ॥८६॥

गोवर्धन पर्वत पर किन्नरियां गान करती रहती हैं और हिरनियां बड़े अचल-भाव से उसे सुनती हैं—

उद्यद्दुर्शष्पैर्गलितकवलैरन्युपैरूर्ध्वकर्ण-
रैणीयूथैरचलतनुभि श्रूयमाण समन्तात् ।
कुञ्जे कुञ्जे कृतवसतिभि कोमल किन्नरीभि-
स्तन्त्रीतालध्वनिसहचर तायते यत्र गानम् ॥८२॥

कृष्णजी के स्वरूप का भी कवि ने बड़ा ही वास्तविक चित्र अंकित किया है—

यस्तन्मध्ये निवसति युवा गोकुलाम्भोधिरत्नम्
निस्तीर्णोर स्थलकृतरुचिं वैजयन्तीं दधान ।
पिच्छापीड पृथुभुजयुग पीतकौशेयवासा,
कम्बुग्रीव कमलनयन कान्तिसीमान्तरेखा ॥६३॥

कृष्णजी के गोपालन प्रेम का निम्न श्लोक मे कवि ने बड़ा ही स्पष्ट परिचय दिया है—

काले तस्मिन्स तव भविता नूनमालोकमार्गे
माहेयीना मुदितमनसा दोहन कारयित्वा ।
वत्साना वा कुलमनुकुल वल्गुता वल्गु पश्यन्
कुर्वन्नुदग्र गुरुतर ककुत्कूट कण्डूयन वा ॥६५॥

कृष्ण के विरह में गोपिका की दशा का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया गया है—

ज्योत्स्ना वह्नि किशलयमय तल्पमगार-कूटम्
हारो भार कुवलयदलश्रेणय क्रूरबाणा।
हाला हालाहलविषरसो मूर्च्छन वल्लकीना
मूर्च्छामन्त्रस्तव हि विरहे साम्प्रत देव तस्या ॥११२॥

गोपिका के प्रेम की तीव्रता, सरलता और सात्विकता का भी कवि ने बड़ा ही उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। गोपिका कहती है—

लज्जा लूना कुलमगणितं लंघिता मानमुद्रा
भग्नं शीलं भयमपहृतं धिक्कृतो धर्मसेतु ।
यद्यद् दृष्टं प्रियमिति मया तत्तदत्याजि सर्वं
त्वामेकं शरणमधुना यामि निर्वाणहेतुम् ॥१२०॥

विरह विह्वल गोपी भगवान् से प्रार्थना करती है—

कामं कल्पद्रुम इव भवानाश्रितानां जनानां
कामा नेकं फलतु ममतु प्रार्थनेयं निसर्गात् ।
अश्रान्तं ते चरणमरुणाम्भोजसौभाग्यचोरं
नित्यासंगे हृदि पुलकिते निर्भरं धारयेयम् ॥१२१॥

एतावन्मे कुतुकमतसीसूनभासि त्वदंगे
कुर्यां नित्यं विषयविरता वाङ्मनः कायवृत्ती ॥१२२॥

इस प्रकार इस काव्य में अनेक भावपूर्ण स्थल देखने में आते हैं। कहीं कहीं पर अनुप्रास की भी छटा दर्शनीय है—

१ मार्गस्थाने मलयमरुता मन्दमान्दोलितासु
माकन्दानां मधुप विहरन्मञ्जरीषु प्रकामम् ॥३६॥

२ कुञ्जे कुञ्जे फलितकुसुमे कल्पयन्नंगरागम् ॥३७॥

कवि ने कहीं कहीं पर बड़ी मार्मिक उक्तियां भी काव्य में दी हैं-

१ अत्युत्कण्ठाकलितमतयः कर्तुमर्थं परेषा-
मुद्यच्छन्ति स्वकसुखमनादृत्य नित्यं महान्तः ॥२६॥
२ अल्पोऽत्सुक्यादभिनवरसास्वादनानां विशेषा-
नन्तः श्लाघो न तु भवति यस्त्वेकभोगः स एव ॥३८॥

३ संसारेऽस्मिन् विकसति सुखं यत्सजातीयसंगा—
त्तस्यापभ्रंशं न खलु सदृशं जन्यते कैश्चिदन्यैः ॥४८॥

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह काव्य किसी सहृदय भक्त कवि की बड़ी ही सरस रचना है। भावों की कोमलता के साथ साथ भाषा भी बड़ी कोमल और मधुर है। स्थान २ पर कोकिल, शुक और भौंरों के मधुर रव तथा संगीत की मधुर धारा का प्रवाह सा काव्य में छूटा हुआ देख पड़ता है। साथ ही भक्ति भाव की प्रधानता होने के कारण काव्य में पूत-भावनाओं की सरिता सी उमड़ती आन पड़ती है। साहित्य प्रेमियों तथा कृष्ण-भक्तों दोनों के लिये ही समान रूप से यह सन्देश काव्य उपादेय है।

कृष्णसार्वभौम का पदाङ्कदूत (वि० स० १७८०)

वगाल के सस्कृत दूत-काव्यों में पदाङ्कदूत एक छोटा सा महत्त्वपूर्ण दूत काव्य है। यह महामहोपाध्याय श्रीकृष्णसार्वभौम का लिखा हुआ है। ग्रन्थकार ने काव्य के अन्त में लिखा है—

> शाके सायक-वेद पोडशमिते श्रीकृष्णशर्मार्पयन्
> आनन्दप्रदनन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविन्द हृदि।
> चक्रे कृष्णपदाङ्क-दूतमखिल प्रीतिप्रद शृण्वता
> धीरश्रीरघुरामरायनृपतेराज्ञा गृहीत्वादरात् ॥४६॥

इस पद्य से इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि ग्रन्थकार ने १६४५ शक सवत्सर में इस काव्य की रचना की। शक सवत् १६४५ वि० स० १७८० से मिलता है। अत ग्रन्थनिर्माण का समय तो बिल्कुल निश्चित ही है।

यह श्रीकृष्णसार्वभौम वगाल के शान्तिपुर नामक किसी स्थान के निवासी थे। बाद में इन्होंने नवद्वीप में अपनी एक पाठशाला स्थापित कर ली थी और वहीं रहने लगे थे। नवद्वीप के राजा श्री रघुरामराय के कहने से इनका यह दूत-काव्य लिखना स्वाभाविक ही था। क्षितीशवशावली नामक ग्रन्थ के अध्ययन से पता चलता है कि यह रघुरामराय नामक राजा शक सवत् १६३७ से शक सवत् १६५० तक राज्य करता रहा था। अत रघुरामराय नृपति के शासन काल में यह ग्रन्थ लिखा गया-इसमें ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भी असगति नहीं है।

लेकिन कहीं कहीं कुछ ऐसा पाठभेद पाया जाता है जिससे समय के सम्बन्ध में सन्देह न होते हुये भी कवि के आश्रयदाता राजा के सम्बन्ध में मतभेद अवश्य उत्पन्न हो जाता है। किसी किसी पुस्तक में पूर्वोक्त श्लोक का उत्तरार्ध इस तरह है—

> चक्रे कृष्णपदाङ्कदूतरचन विद्वन्मनोरञ्जनम्
> श्रील श्रीयुत रामजीवन महाराजाधिराजाज्ञत ॥

यह रामजीवन नामक राजा रघुरामराय का पिता था। शक सं० १६३७ में इसका स्वर्गवास हो गया था। श्रीकृष्ण सार्वभौम के राजा रामजीवन के आदरपात्र होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता। इसलिये इन दोनों पाठों में वस्तुत कोई विरोध नहीं है।

प्रश्न यह है कि यह पाठभेद हो कैसे गया? इसका उत्तर यही समझमें आता है कि यह कवि पहिले से ही राजसभा में प्रतिष्ठित रहा होगा और वृद्ध राजा के स्वर्गवास के बाद उसके पुत्र के आदेश से उसने यह काव्य लिखा होगा। अपने आश्रयदाता जीवित नृपति रघुरामराय के आदेश की तरह अपने पूर्वनृपति रामजीवन

के प्रेम का भी सम्मान करते हुए कवि ने स्वयं ही पाठभेदयुक्त यह पद्य लिखा है। पिता का नामोल्लेख करना रघुरामराय के लिये भी प्रसन्नता का कारण हो सकता है।

अथवा ऐसी भी सम्भावना हो सकती है कि पहिले कवि ने 'धीर श्री रघुराम रायनृपतेराज्ञा गृहीत्वादरात्' ऐसा ही केवल एक पाठ रक्खा हो। तदनन्तर रघुरामराय ने काव्य की विशेष उपादेयता देखकर और स्थिरता समझ कर पिता के नाम को भी चिरस्थिर बनाने की इच्छा से कवि के द्वारा स्वयं पाठान्तर करा दिया हो।

इसके अतिरिक्त यह बात भी यहां विशेष रूप से विचारणीय है कि शक संवत् १६४५ में बंगाल के 'राजसाहि' मण्डल के अन्तर्गत 'नाटोर' नामक स्थान में भी रामजीवन नामक कोई राजा राज्य करता था। वहां पर ऐसी किम्वदन्ती है कि इस नाटोर के राजा रामजीवन के आदेश से ही कवि ने इस काव्य की रचना की। नाटोर में उपलब्ध पुस्तक में 'रामजीवन' नाम से युक्त एक ही पाठ पाया जाता है न कि दो।

नाटोर निवासी ऐसा भी कहते हैं कि नाटोरपति ही राजाधिराज था न कि नवद्वीपपति भी। लेकिन यह जनश्रुति निराधार ही मालूम पड़ती है। किसी भी मूल पुस्तक में 'श्रीलश्रीयुतरामजीवन महाराजाधिराजाज्ञया' ऐसा लिखा हुआ नहीं मिलता है। लेकिन इस जनश्रुति के निर्मूल होने पर भी यह बात असंभव नहीं हो सकती कि नवद्वीप के राजा की सभा का पण्डित होते हुए भी यह कवि नाटोर के राजा का भी सम्मान का पात्र रहा हो और नाटोरनृपति को प्रसन्न करने के लिये कवि ने अन्तिम श्लोक कुछ पाठान्तर के साथ उसकी सभा में पढ दिया हो (इस विषय पर विस्तृत विचार के लिये डा० जे० बी० चौधरी का बङ्गीय दूत काव्येतिहास (संस्कृत) पृ० ४६-५० देखिये)।

काव्य के अनुशीलन से कवि के कृष्ण भक्त होने का तो परिचय मिलता ही है, उसके नव्यन्याय सम्बन्धी गम्भीर ज्ञान का भी हमें पूर्ण विश्वास करना पड़ता है। स्थान स्थान पर कवि ने नव्यन्याय के सिद्धान्तों का काव्य में उल्लेख किया है। यथा—

(१) प्रायः सत्यं भवमिदमहो कारणं कार्यमेव ॥७॥

(२) अप्रामाण्यं जनयति सदा नन्दसूनोर्वियोगो
व्याप्यज्ञानात् व्रजकुलभुवां व्यापकस्यापि सिद्धौ ॥२१॥

(३) सामग्री चेन्न फलविरहो व्याप्तिरेवेति तत्त्वम् ॥३१॥

(४) नाप्रत्यक्षम् प्रमितिकरणं वाक्यमेतन्न युक्तम् ॥४३॥ इत्यादि।

इस प्रकार यह दूत काव्य एक परमनैयायिक तथा कृष्ण भक्त कवि की बड़ी सुन्दर रचना है।

काव्य की कथा

कृष्ण के विरह में व्याकुल तथा उन्मत्त हो घूमती हुई कोई गोपी अपने घर से यमुना के तट पर स्थित किसी कुंज में जाती है। वहां कृष्ण को न पाकर उसे मूर्छा आ जाती है। मूर्छा के चले जाने पर कुंज के निकट ही कुलिश, कमल, और रथ इत्यादि के चिह्न से युक्त श्रीकृष्ण के चरण का चिह्न उसे दिखल ई पड़ जाता है। उसी समय मेघों के घोर गर्जन को सुनकर विरह वेदना से वह उन्मत्त हो जाती है और श्रीकृष्ण के चरणचिह्न से दूत के रूप में कृष्ण के पास मथुरा जाने की प्रार्थना करती है।

इस प्रसंग में कृष्ण के चरणचिह्न की विविध प्रकार से प्रशंसा की गई है ताकि वह गोपी का सन्देश कृष्ण के पास लेजाने के लिये उद्यत हो जाये। यमुना के तट से मथुरा तक के मार्ग की रमणीयता, स्थान-स्थान पर जनता द्वारा चरण चिह्न का स्वागत करना, सुगन्धित और शीतल वायु द्वारा मार्ग में उसकी सेवा करना, उसकी निर्भीकता तथा सामर्थ्य का विविध भावभंगिमाओं के साथ गोपी द्वारा वर्णन किया गया है। कोस भर चलने के बाद यमुना में चरणों को धोकर किसी वृक्ष के नीचे विश्राम करने का भी चरणचिह्न को परामर्श दिया गया है। यदि पैदल जाने में कोई-कष्ट हो, तो अपना मनरूपी अश्व भी देने के लिये गोपी प्रस्तुत हो जाती है।

इस प्रकार विविध प्रलोभनों से चरणचिह्न को मथुरा जाने के लिये प्रोत्साहित कर गोपी उससे अपनी विरहव्यथा का बड़ा भावपूर्ण निवेदन करती है। अन्त में कृष्ण के पास उसके पहुंचने की सम्भावना करते हुए उसे अपना सन्देश सुनाती है।

सन्देश में कृष्ण को केवल वृन्दावन की स्मृति ही दिलाई गई है तथा कुब्जा प्रेम पर उन्हें उपालम्भ भी दिया गया है। अन्त में कृष्ण विरह से उत्पन्न अपनी मनोव्यथा का निवेदन कर गोपी सन्तुष्ट हो जाती है।

बस, काव्य की कथावस्तु केवल इतनी सी ही है।

काव्य-समीक्षा

जैसा कि काव्य की कथा से स्पष्ट है, इस में कृष्ण के पदाङ्क को गोपियों द्वारा दूत बनाया गया है। अतः काव्य का पदाङ्कदूत नाम उपयुक्त ही है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के तीसवें अध्याय के २४,२५ और २६ वें श्लोक के आधार पर इस

दूतकाव्य की रचना की गई है। रासक्रीडा के प्रसग में भगवान् कृष्ण के प्रेम को पाकर गोपियों को कुछ अभिमान होने लगता है। उनके अभिमान को दूर करने की भावना से कृष्णजी यमुना के तट पर ही कहीं अन्तर्धान हो जाते हैं। यकायक अपने मध्य में कृष्ण को न पाकर गोपिया बड़ी दुःखी होती हैं और उन्मत्त की तरह अश्वत्थ प्लक्ष, न्यग्रोध, तुलसी, मल्लिका, यूथिका और आम्र इत्यादि वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती फिरती हैं। इसी प्रसग को लेकर तीसवा अध्याय प्रारम्भ होता है। इस अध्याय के निम्न श्लोकों में—

> एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून्।
> व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥
>
> पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः।
> लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥२५॥
>
> तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबला
> वध्वा पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥२६॥

कृष्ण तथा किसी गोपी के पदचिह्नों का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रसग से कवि ने कृष्ण के पदाङ्क को गोपी का दूत बनाकर पदाङ्कदूत लिखने की प्रेरणा प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त मेघदूत से भी कवि को इस काव्य के लिखने में प्रेरणा प्राप्त हुई है। काव्य में कुल ४६ श्लोक हैं। जिनमें अन्त का एक श्लोक ही शार्दूलविक्रीडित छन्द में है। अवशिष्ट सब मन्दाक्रान्ता छन्द में ही हैं। छन्द तथा शैली में ही मेघदूत का प्रभाव दीखता है। अन्य अशों में तो कवि ने अपनी स्वतन्त्र कल्पना शक्ति से ही काम लिया है। मार्गवर्णन तो काव्य में है ही नहीं तथा कथा वस्तु भी बड़ी अल्प ही है। पूर्व-भाग और उत्तरभाग जैसा विभाजन भी काव्य में नहीं किया गया है। मार्गवर्णन के न होने से प्राकृतिक दृश्यों का मनोमुग्धकारी वर्णन यद्यपि काव्य में नहीं है, फिर भी यह काव्य बड़ा सरस और मोहनीय है। कवि ने अपने कल्पना-चातुर्य से गोपियों की भक्तिभावना का बड़ा प्रभावपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। मन या आकाङ्क्षा को ही दूत बनाकर क्यों नहीं भेजा जाए, इस बात का उत्तर गोपी कितनी प्रबल युक्ति के साथ देती है—

> चेतः प्रस्थापितमणुतया दौत्यकर्मोपयुक्तम्
> तत्रैवास्ते मुरहरपदस्पर्शमासाद्य मुग्धम्।
> आकाङ्क्षेयं तनुगुरुतया नैव गन्तुं समर्था
> कोऽन्यो गच्छेदिह मधुपुरीं गोपिकानां हिताय ॥६॥

मन को कृष्ण के पास पहिले से ही गया हुआ तथा आकाङ्क्षा को अत्यन्त भारी बताकर कवि ने गोपियों के गम्भीर कृष्ण प्रेम का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। कृष्ण के पदाङ्क की विशिष्टता का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—

यस्यासङ्गादलभत तनु मानुषीं गोतमस्त्री
ध्यानेनैव मथितमहिमा श्रीपते नारदादि ।
तस्माज्जाते त्वयि मधुरिपोरङ्घ्रिपद्माद्विचित्र
किं दीनानामुपरि करुणालिंगितो दृष्टिपात ॥१६॥

जब पिता दयालु हो, तो पुत्र का दयालु होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। गोपी के इन शब्दों में कवि की भक्ति-भावना भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्फुटित हो रही है। इसी प्रसंग में आगे कहा गया है—

एक चिह्न हरिपदभवं यन्नगस्योत्तमाङ्गे
तादृक्शोभामपि खगपतेर्निर्भयत्व चकार ।
पिण्डेनान्यस्तरणिरभवद् घोरसंसारसिन्धौ
ध्यात तादृक् स्वमपि महता जन्म निश्चोपहत्यै ॥१७॥

इसी प्रकार कृष्ण के पदाक की निर्भीकता का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—

उक्रमाय तरणितनयानागयोस्तत्कथायाम्
आस्ते को वा जगति भवता भीतिहेतु कमाद्‌ ।
किं च स्वान्ते क्षणमपि भवत्सगमे याति दूरम्
भीतिर्मृत्योरपि किमशनि लोकरीत्या दधासि ॥२२॥

उत्पन्नस्य प्रियतमपदा तेन भीतिस्तवास्ते
को वा ब्रूयादिति हि सदृश कारणेनैव कार्यम् ॥२३॥

इस प्रकार के वचनों से न केवल गोपियों की ही भक्ति प्रवणता वरिक कवि के भी परम कृष्णभक्त होने का परिचय मिलता है।

कृष्ण के पदाक को मथुरा आने के लिए प्रोत्साहित करने के बाद गोपी अपनी विरहव्यथा का निवेदन प्रारम्भ करते हुए कहती है—

स्त्रीभि प्रेम प्रियतमकृत नैव शक्य विहातुम्
याचेऽतस्त्वा किल मधुपुरीं चङ्क्रमाय क्रमाक ।
दग्धेनापि व्यथितहृदया पञ्चबाणेन बाणै
क्रूरैरुच्चैर्मदनरमणी तत्कृते रोदिति स्म ॥२४॥

उपर्युक्त पद्य में 'स्त्रीभि प्रेम प्रियतमकृतं नैवशक्य विहातुम्' इस कथन द्वारा गोपी के प्रेम की सरलता और पवित्रता व्यक्त की गई है। आगे चल कर व्रज वधुओं के विरह-सन्ताप का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—

आस्ते चित्ते किल कलयितुं वासना शम्बरारे-
रेकैकेन व्रज कुलवधूप्राणमेकैकमस्त्र ।
बाणेनात सततमतनुर्जातकोपाद्धितुर्यै
क्रूरैस्मान् दहति कुसुमै शायकै पञ्चसङ्ख्यै ॥३५॥

कामदेव के पाच बाण तो प्रसिद्ध हैं ही[1] । शरीर में प्राण भी पाच बतलाये गये हैं[2] । अपने एक एक बाण से गोपियों के एक एक प्राण को नष्ट करने की कामदेव की इच्छा है । इसलिये कामदेव भी कुपित सर्प की तरह पाचों बाण एक साथ ही गोपियों पर चलाता है । सम्मोहन इत्यादि पाच बाणों में से प्रत्येक का एक एक प्राण पर आघात करना कवि की निजी कल्पना का ही चमत्कार है ।

अन्त में अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये गोपी कहती है—

उत्तापोऽय मदनजनितो वर्धते नित्यमुच्चै-
र्वृन्दारण्ये वसतिरधुना केवल दुःखहेतु
किञ्चास्माक नयनसलिलैर्वर्धते चेन्नदीव
वेग स्थेय द्रुतगतिजलैराचिते कुब्जमध्ये ॥३८॥

गोपिका के इस विरह वर्णन में उसकी मनोव्यथा साकार हो उठी है । वृन्दावन की लतायें और कुञ्जों को देखकर कृष्ण की स्मृति आ ही जाती है । अत विरहिणी गोपियों के लिये वृन्दावन दुःख का ही कारण बन गया है ।

अपनी विरहव्यथा के वर्णन के बाद गोपी ने पदाङ्क को अपना सन्देश सुनाया है । काव्य के आकार के अनुसार सन्देश वार्ता बहुत ही कम है । लेकिन सन्देश-रूप से जो कुछ भी कहा गया है, वह हृदय के अन्तरतम की पुकार है । अपने सन्देश को प्रारम्भ करते हुये गोपी कहती है—

वक्तव्य च स्फुटमिति यदा निर्जनस्थो मुकुन्द
पद्माया कैरतिसुललितैरङ्कित तत् पदाब्जे ।
वृन्दारण्य स्मरसि न कथ श्रीपते ! मञ्जुकुञ्जम्
घ्रात घ्रात यदिह न परीरम्भण कुब्जिकाया ॥४१॥

---

१ अरविन्दमशोकं च सहकार नवमल्लिके ।
रक्तोत्पल च पञ्चैत पुष्पबाणस्य सायका ॥
सम्मोहनो मादनो च शोषणस्तापनस्तथा ।
स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्च बाणा प्रकीर्तिता ॥

२ प्राणोऽपान समानश्चोदानव्यानौ च वायव ।

वृन्दावन के नाम से गोपी ने कृष्ण को अपनी ही याद दिलाई है। अन्त में कृष्ण पर व्यङ्ग्य करना भी वह नहीं भूली है।

गोपी पदाङ्क को कृष्ण के लिये अपना सन्देश इस तरह सुनाने का परामर्श देती है कि सन्देश के सुनने के बाद कृष्णजी अवश्य ही मथुरा से वृन्दावन चले आवें—

आकाङ्क्षा या ग्लपयति मनो मादृशां वासना सा
शाब्दे धर्मे सति न भविता हानिरेव क्रमात् क।
साकाङ्क्षोक्त्या मुरहरपदे सर्वमेतन्निवेद्यम्
नोचेत्तस्य प्रमितिजनने केन हेतुस्तवोक्ति ॥४१॥

गोपी का कहना है कि उसकी कृष्ण से मिलने की आकाङ्क्षा मानसिक है, कोरी शाब्दी नहीं है। यदि केवल शाब्दिक होती, तो उसे कोई कष्ट न होता, क्योंकि शाब्दी आकाङ्क्षा तो केवल कृष्ण शब्द से भी पूर्ण हो सकती है। अतः पदाङ्क को चाहिये कि शाब्दिक और मानसिक दोनों आकाङ्क्षाओं को ध्यान में रखकर कृष्ण को सन्देश सुनाये ताकि सन्देश को सुनने के बाद कृष्णजी अवश्य आ जायें—

आगन्तव्यं सरसिजदृशा बोधितेन त्वदुक्त्या ॥४३॥

गोपी की भावनाओं को कवि ने दार्शनिकता के आवरण में बड़ी सुन्दर रीति से अभिव्यक्त किया है।

अपने सन्देश का उपसंहार करते हुए गोपी कहती है—

मूर्खा एव क्षणिकमखिलं विश्वमाहुर्न धीरा
तापोऽस्माकं हरिविरहजः सर्वदैवास्ति चित्ते।
नाऽनित्यः शब्दो वचनमपि यत्तादृशं तस्य किन्तु
प्रेमैवास्मत्प्रियतमकृतं तच्च गोपाङ्गनासु ॥४२॥

संसार को क्षणिक बताने वाले लोग वास्तव में मूर्ख ही हैं। कोई धीर पुरुष कभी भी संसार को क्षणिक नहीं बतलायेगा, क्योंकि कृष्णविरह का दुःख तो हमेशा ही हमारे चित्त में बना रहता है। शब्द को भी नाशवान् बताना मिथ्या ही है, क्योंकि कृष्ण के वचन अब भी हमारे मन में बसे हुए हैं। यदि संसार में कोई वस्तु क्षणिक है, तो कृष्ण का प्रेम ही क्षणिक समझो और वह भी उनका गोपिकाओं के प्रति किया गया न कि कुब्जा और रुक्मिणी के प्रति। गोपिका ने इस पद्य में अपने दुःख की गम्भीरता तथा हमेशा कृष्ण को याद करते रहने का बड़े भावपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। अन्त में वह कृष्ण को उपालम्भ देना भी नहीं भूलती है। कवि ने इस पद्य में भी दार्शनिकता का सहारा लिया है। बौद्धों के क्षणिकवाद तथा शब्द की

नश्वरता के सिद्धान्त का कितने कोमल और अकाट्य तर्क से खण्डन किया गया है।

यद्यपि यह काव्य बहुत छोटा सा है, फिर भी कवि की कल्पना कहीं कहीं बड़ी मुखर हो उठी है। गोपिका पदाङ्क को सम्बोधन करते हुए कहती है—

कर्पूराद्रे सलिलमभवद्वैतरण्यग्न्युतुल्यम्
वाग्यागस्य नदति कठिनं कोकिल षट्पदोऽपि ।
वृन्दारण्ये किरति गरलं तु सह शीतरश्मि—
र्नैतद्वाच्यं सकृदपि सखे ! सन्निधौ केशवस्य ॥२०॥

कृष्ण को वृन्दावन की बदली हुई स्थिति इसीलिये नहीं बताई जा रही है कि कहीं वे इस स्थान को क्लेश जनक समझ कर यहां फिर आवें ही नहीं। वास्तव में देखा जाये, तो वृन्दावन नहीं बदला है, बल्कि कृष्णविरह में गोपिका के लिये पहिले सुख देने वाली वस्तुयें ही अब दुःखदायक प्रतीत हो रही हैं। कवि ने भावभगिमा के साथ गोपिका के विरह जन्य ताप तथा उद्वेग का ही यहाँ पर वर्णन किया है।

कृष्ण के पदका अङ्क कृष्ण का पुत्र ही हुआ। सम्भव है कि पुत्र को देख कर पिता का मन आनन्द मग्न हो जाये और फिर सन्देशवार्ता की ओर ध्यान ही न रहे, इसलिये गोपी कहती है—

वक्तव्यं यन्मदनजनितं दुःखमस्माकमेतद्
भूयोभूयः प्रियतमपदे गोपयित्वा स्वदेहम् ।
दृष्टे तेन त्वयि नयनयोर्निस्तुलप्रीतिहेतौ
धास्यत्येव क्षणमपि मनस्तत्कथायां न तस्य ॥४०॥

पदाङ्क को अपनी देह के छिपाने का परामर्श उचित ही दिया गया है।

मेघदूत का यद्यपि काव्य में पूर्णतया अनुकरण नहीं किया गया है, फिर भी भाव और शैली में कहीं कहीं पर्याप्त सादृश्य दृष्टिगोचर होता ही है। उदाहरणार्थ दोनों काव्यों से कुछ स्थल उद्धृत किये जा रहे हैं—

१ कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१।१॥ मेघ०

गोपीभर्तुर्विरहविधुरा काचिदिन्दीवराक्षी
उन्मत्तेव स्खलितकबरी निःश्वसन्ती विशालम् ।
अत्रैवास्ते मुररिपुरिति भ्रान्तिदूतीसहाया
त्यक्त्वा गेहं झटिति यमुनामञ्जुकुञ्जं जगाम ॥१॥ पदाङ्क०

२ धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥५॥ मेघ०

तस्मिन्नुद्यन्नवजलधरध्वानमाकर्ण्य भूयः
कन्दर्पेण व्यथितहृदयोन्मत्ततुल्या ययाचे ।
प्रज्ञाहीनं वचनरहितं निश्चलं श्रोत्रहीनम्
दौत्यं कर्तुं मुरहरपदो लक्ष्मणं पक्ष्मलाक्षी ॥३॥ पद्मांक०

३ I सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥१॥१०॥ मेघ०
II संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥१॥११॥ मेघ०

उत्फुल्लानामतिसुरभयः सौरभैरम्बुजानाम्
अम्भोलेशैर्मनसिजरिपुहिताः शीतलैः शीतलाश्च ।
अध्वायस्य सततगतयः स्वैरमाधूतबर्हा
यास्यन्ते भवदभिमतप्रीतये लाञ्छनाग्र ॥१८॥ पद्मांक०

४ I प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥१॥२३ मेघ०
II मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥१॥४१॥ मेघ०

सम्पर्कात्ते तरणितनयातीरसोपानवृन्दम्
राज्ञः पन्थास्तलमपि तरोगचितं पद्मरागैः ।
शोभा यास्यत्यचिरमतुलां स्वीयकार्यानुरोधात्
उक्तैरेतैर्मुहुरपि सखे तत्र न स्थेयमेव ॥१४॥ पद्मांक०

कहीं कहीं कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के विचारों का अपनी नवीन कल्पना से खण्डन भी किया है। श्रीरूपगोस्वामी ने अपने हंसदूत में लिखा है—

शीर्णा गोकुलमण्डली पशुकुलं शष्पाय न स्पन्दते
मूका कोकिलपंक्तयः शिखिकुलं न व्याकुलं नृत्यति।
सर्वे त्वद्विरहानलेन विकला गोविन्द दैन्यं गता
किन्त्वेका यमुना कुरङ्गनयनानेत्राम्बुभिर्वर्धते ॥

कृष्ण के विरह में गोकुल के नरनारी और पशुपक्षी सब दीन दशा में बताये गये हैं। लेकिन यमुना गोपियों के नेत्रवारि से बढ़ी हुई बतलाई गई है। इस कथन का खण्डन करते हुए पद्मांकदूत में कहा गया है—

अद्भिस्ताभिस्तरणितनया पीनता नैव लब्धा
गोपीभर्तुर्विरहदहनैः प्रत्युत क्षीणता च ॥२६॥

श्रीणैरास्ते तरणितनया वस्तुतस्त्वद्वियोगे
का वा पीना भवति वचनं कस्यचिन्नेति युक्तम् ।
गोपस्त्रीणां नयनसलिलैर्वर्धते सा विशीर्णा
अन्ये नन्दव्रजपुरजना नूनमत्यर्थकं यत् ॥३०॥

जिस तरह गोकुल के अन्य नरनारी और पशुपक्षी दीन हैं, उसी तरह यमुना भी दीन और क्षीण होनी चाहिये, क्योंकि यमुना के लिये भी तो कृष्ण उतने ही प्रिय हैं जितने कि औरों के लिये।

काव्य के इस अनुशीलन से मर्मज्ञ पाठक स्वयं जान सकते हैं कि सरस कल्पना, सुमधुर भावप्रवाह, ललित भाषा और कृष्णभक्ति से युक्त यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि कृष्ण के पदाङ्क का श्रीमद्भागवत में कुछ वर्णन आता है, लेकिन इस को दूत बनाने का विचार कवि की अपनी मौलिक कल्पना है। काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ शृंगार है। माधुर्यगुण और वैदर्भी रीति का काव्य में व्यवहार पाया जाता है काव्य की नायिका तो विरहोत्कण्ठिता कोई गोपी है ही। कवि ने अपनी भक्तिभावना को भी गोपी द्वारा स्थान-स्थान पर काव्य में व्यक्त किया है। कृष्ण और उनके पदाङ्क के सम्बन्ध में कवि के—

(I) (कृष्णस्य) यस्य ध्यानं जनयति सुखं यादृशं तादृशं न
स्वर्लोकादावपि किमपरं ब्रह्मसाक्षात्कृतौ च ॥२६॥

(II) (पदाङ्कस्य) संसाराब्धिं तरति सहसा यत् क्षणं चिन्तयित्वा।
तस्यासाध्यं भवति किमहो पारयानं तटिन्या' (यमुनाया) ॥१७॥

इत्यादि विचार उसकी अनन्य कृष्ण भक्ति का परिचय देते हैं। स्थान स्थान पर दार्शनिक प्रसंगों की सहायता से कवि ने गोपियों के कथन को और भी प्रभावपूर्ण बना दिया है। इस प्रकार साहित्य, भक्ति और दर्शन इन तीनों धाराओं का काव्य में अपूर्व संगम हो रहा है। बौद्ध दर्शन का खण्डन भी कवि ने खूब ही किया है (दे० श्लोक सं० ७४-५)। कवि ने अन्तिम श्लोक में अपने काव्य को 'विद्वन्मनो रञ्जनम्' बतलाया है। उसकी यह उक्ति कोई गर्वोक्ति नहीं है। वस्तुत भक्त और विद्वान् दोनों ही प्रकार के पाठकों के लिये यह काव्य आदर की वस्तु है।

तैलंग व्रजनाथ का मनोदूत (वि० सं० १८१४)

इस काव्य का लेखक तैलंग वंश के श्री भूधर भट्ट का पौत्र तथा श्री रामकृष्ण का पुत्र है और पंचनद का रहने वाला है। वृन्दावन में यमुना के तट पर निवास करते हुये वि० सं० १८१४ (सं० १७५८ ई०) में कवि ने यह काव्य लिखा है।

लेखक ने अपने गुरु का नाम श्री हरिदत्त बताया है। पाठकों के परिज्ञान के लिये काव्य के अन्त से निम्न उद्धरण दिये जाते हैं—

स्थिताद् वृन्दारण्ये तरणितनयातीरलहरी-
परीरम्भादम्भः पृषतयुजि वंशीवटतले।
सकान्तात्कौमारकान्ताद्धिगतरती सगमनघा
मतिर्मे प्रासूत ध्रुवमिह मनोदूततनयम् ॥२०४॥

वेदेन्दुवसुशीतांशु (१८१४) मितेऽब्दे मार्गशीर्षके।
सिताष्टम्यामिदं काव्यमर्पितं हरिपादयोः ॥
नराणां धौरेयः सकलविदुषां शेखरमणि-
र्वदान्यानामग्रेसर इह महाभाग्यसुभगः।
कलानां सर्वासां सदनमतिसौजन्यललितो
गुणानामागारो जयति हरिदत्त प्रभुरसौ ॥

तदीयाया निष्कारण शुभदयाया परिणमत्
प्ररूढोदर्काया जगति विदितं पात्रमिह यः।
ततो योगक्षेमावधिगतवतस्तस्य च कवे
कृतिर्विद्वद्वृन्दुयान् सुखयतु दयानून मयि जडे।

इति श्रीमत्तैलगान्वय श्री भूधर भट्टात्मज श्रीरामकृष्णतनय वत्सवंशान्वय व्रजनाथविरचित मनोदूताभिध सहृदयहृदयाह्लादनापरनामधेय काव्य स्वकृतमंजुभाषिण्या टीकया समेत समाप्तम्।

सकाव्य का दूसरा नाम 'सहृदय हृदया ह्लादन' है और कवि ने स्वयं इस काव्य पर अपनी टीका भी लिखी है। निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से काव्य माला के त्रयोदश गुच्छक में यह काव्य प्रकाशित हुआ है।

कथा-सार

इस काव्य की कथा महाभारत की द्रौपदीचीरहरण घटना पर आश्रित है। दिग्विजय के बाद पाण्डव राजसूय यज्ञ करते हैं। इस यज्ञ में पाण्डवों की अतुल सम्पत्ति तथा यज्ञसभा की अलौकिक शोभा देखकर दुर्योधन को बड़ी ईर्ष्या होती है। मणियों की कान्ति से भ्रमवश द्वार को वह भित्ति समझ बैठता है तथा अन्यत्र रत्नों की ज्योति से भित्ति को वह द्वार समझ बैठता है। इसी प्रकार गरुडमणियों से निर्मित स्थल को भ्रमवश जल समझकर वह अपने वस्त्रों को समेटने लगता है तथा कमल इत्यादि से युक्त जल-सहित सरोवर को स्फटिक शिलाओं से निर्मित स्थल समझ कर वह वहीं पानी में गिर पड़ता है। वहीं स्फटिक निर्मित प्रदेश में

भ्रम वश द्वार समझ कर उसे खोलने की चेष्टा करता हुआ वह गिर पड़ता है। दुर्योधन की इन भ्रान्तिपूर्ण चेष्टाओं को देखकर भीम उसका उपहास करने लगता है तथा द्रौपदी उसे 'अन्धपुत्र' कहती है। इस प्रकार यज्ञसभा से तिरस्कृत हो और मन में ईर्ष्या का भाव लिये दुर्योधन अपने घर लौटता है तथा शकुनि को यज्ञ का सारा वृत्तान्त और अपने तिरस्कार की घटना सुनाता है। शकुनि दुर्योधन को भी एक महान् यज्ञ द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का परामर्श देता है। दुर्योधन द्वारा पाण्डवों की पराजय के किसी सरल उपाय के पूछे जाने पर शकुनि कहता है कि यदि धर्मराज युधिष्ठिर किसी प्रकार द्यूतक्रीडा के लिये तैयार हो जायें तो वह उनका राज्य, कोश, गज और अश्वादि सब अपहरण कर सकता है। शकुनि के इस प्रस्ताव को सुन कर दुर्योधन अपने पिता धृतराष्ट्र के पास आता है और उन्हें पाण्डवों के राजसूय यज्ञ तथा अपने तिरस्कार और उपहास का सारा वृत्तान्त सुनाता है। धृतराष्ट्र सुख दुख तथा आदर निरादर को दैव तथा कर्मों का फल बता कर दुर्योधन को शान्त करने की चेष्टा करता है और उसे भी एक विशाल यज्ञ करने का परामर्श देता है। दुर्योधन के विशेष आग्रह से धृतराष्ट्र द्यूतसभा के आयोजित करने तथा उसमें पाण्डवों के निमन्त्रित करने की भी अनुमति दे देता है।

दुर्योधन के आदेश से विदुर पाण्डवों के पास द्यूतक्रीडा का निमन्त्रण लेकर जाते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर बड़े विचार विमर्श के बाद निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं और सपरिवार हस्तिनापुर आ जाते हैं। उचित स्वागत सत्कार के बाद दूसरे दिन द्यूतक्रीडा प्रारम्भ होती है। उसमें युधिष्ठिर धीरे २ अपनी सब सम्पत्ति हार जाते हैं। फिर अपने भाइयों और अपने को भी हार जाते हैं। अन्त में शकुनि के कहने से वे द्रौपदी को दाव पर लगाते हैं और उसे भी हार जाते हैं। इस पर दुर्योधन अपनी दासी बनाने के विचार से द्रौपदी को सभा में लाये जाने की आज्ञा देता है। महाराज विदुर दुर्योधन को बहुत फटकारते हैं, लेकिन फिर भी कर्ण इत्यादि के अनुरोध से दुर्योधन अपने दूत को द्रौपदी के पास भेजता ही है। दूत द्रौपदी को सारा वृत्तान्त सुनाता है। 'स्वयं जुए में हार जाने पर धर्मराज का मुझ पर कुछ भी स्वत्व नहीं रहता है, अतः मैं नहीं आ सकती'- ऐसा कहकर द्रौपदी दूत को वापिस कर देती है। दूत के लौट आने पर दुर्योधन दुःशासन को भेजता है। वह केश पकड़ कर द्रौपदी को बलपूर्वक अन्तःपुर से राजसभा में खींच लाता है। वहां कर्ण उसका बड़ा तिरस्कार करता है और दुःशासन को उसके वस्त्र उतारने का आदेश देता है।

इस असहाय अवस्था में द्रौपदी भगवान् कृष्ण को याद करती है तथा किसी और को अपने समीप न पाकर अपने मन को ही दूत बनाकर कृष्णजी के पास द्वारिका भेजती है। जिस प्रकार अन्य सन्देश काव्यों में किसी को सन्देशवाहक नियुक्त करते समय उसकी शक्ति और महत्ता का वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार इस काव्य में भी मन की बड़ी प्रशंसा की गई है। तदनन्तर द्वारिका नगरी का वर्णन किया गया है। द्वारिका पहुंच कर वहां भगवान् कृष्ण के चरणों में प्रणाम

कर और अपने प्रेम की भेंट देकर फिर अपना सन्देश सुनाने के लिये द्रौपदी ने मन से कहा है। मन को अपना सन्देश बताते हुए द्रौपदी कृष्ण के प्रति कहती है— दया के सागर, समग्र संसार के रक्षक, दैत्यों और राक्षसों के संहारक, हे कृष्ण, मैं इन दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन जैसे दुष्टों के द्वारा सताई जा रही हूँ। मैं अगाध दुःखसागर में पड़ी हुई हूँ। हे दुष्टदलन, क्या तुम मेरा उद्धार नहीं कर सकते? हे दयालो, तुम्हें छोड़कर मैं किसकी शरण में जाऊँ? तुम सर्वज्ञ हो। मुझ पर महान् संकट आया हुआ है। मुझ पर दया करो। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई मेरा रक्षक नहीं है।

द्रौपदी के इस सन्देश को लेकर मन ज्यों ही द्वारिका की ओर चलने को उद्यत होता है, त्यों ही उधर द्वारिका में कृष्णजी भी चिन्तित होने लगते हैं और द्रौपदी के संकट का ध्यान आते ही शीघ्र ही गरुड़ पर आरूढ़ हो हस्तिनापुर आते हैं। इधर दुःशासन द्रौपदी के वस्त्र उतारना प्रारम्भ करता ही है कि भगवान् कृष्ण वा पहुँच जाते हैं और अपनी अनन्त शक्ति के द्वारा नाना वर्ण तथा नाना प्रकार के वस्त्रों से द्रौपदी को ढकते जाते हैं। अन्त में दुःशासन वस्त्र खींचते २ हार जाता है और घबड़ा कर वहीं सभा में गिर पड़ता है। इस तरह भगवान् कृष्ण द्रौपदी के शील की रक्षा करते हैं। पाण्डवों पर भी कृष्णजी की अनन्त शक्ति का प्रभाव पड़ता है।

बस, काव्य की मुख्य कथा यह ही है।

समीक्षा

यों तो मेघदूत के अनुकरण पर ही यह सन्देश काव्य लिखा गया है, फिर भी कवि की यह मौलिक रचना है। सम्पूर्ण काव्य में कुल १०३ शिखरिणी छन्द हैं। सन्देश काव्यों की परम्परा में छन्द की दृष्टि से यह सर्वथा नवीन प्रयोग है। साथ ही काव्य का विषय भी नवीन है। काव्य में समस्त पद प्रायः नहीं ही हैं। रचना प्रसादगुणयुक्त है। भाषा में सर्वत्र प्रवाह पाया जाता है। सन्देशकाव्यों में प्रायः मंगलाचरण नहीं होता है, लेकिन इस काव्य में मंगलाचरण में ही कई श्लोक लिखे गये हैं। कृष्णभक्ति का पवित्र स्रोत इस काव्य में सर्वत्र उमड़ रहा है। कवि ने मनोदूत नाम के अतिरिक्त इस काव्य का 'सहृदय हृदयाह्लादन' नाम भी रक्खा है। वस्तुतः यह रचना बड़ी ही सुन्दर और सरस है। साहित्य प्रेमियों तथा कृष्ण भक्त दोनों ही के लिये यह काव्य समान रूप से उपादेय है।

द्यूत सभा में लाई हुई तथा दुष्टों से घिरी हुई द्रौपदी का कवि ने बड़ा ही करुण चित्र अंकित किया है—

> अथासौ दुर्वार्ता द्रुपदतनया वीक्ष्य दयिता-
> न्परित्रातुं योग्यानपि समयबद्धान् विधिवशात्।

समायामानीना शरणरहिता जालपतिता
कुरङ्गीव त्रासाद्भृशतरमसौ कम्पमभजत् ॥१६९॥

द्रौपदी के लिए 'जाल में फंसी हुई हिरनी' की उपमा बड़ी ही उपयुक्त है। द्रौपदी भगवान् कृष्ण से अपने दुःख का निवेदन करते हुए फिर कहती है—

उदासीना दीना मृदुहसितहीना नतमुखी
निलीना स्वेऽपाङ्गेऽप्यहह सुखहीना यदुपते।
निहीना कीनाशाधिकभयकरैरन्धतनयै
सभायामासीना द्रुपदतनया पीडयत इह ॥१७०॥

कवि ने अनुप्रासयुक्त पदावली के साथ बड़े ही भावपूर्ण ढंग से द्रौपदी की दशा इस पद्य में चित्रित की है। इसी प्रकार कृष्णजी द्वारा रुक्मिणी को जब द्रौपदी की दुरवस्था बताई जाती है, तब—

समानीता भीता दशवदनवर्नीना परवशा
यथा सीता तद्वत्परिभवमसुर साऽद्य गमिता ॥१८१॥

इन पंक्तियों में दुर्योधन द्वारा सताई हुई द्रौपदी के लिये रावण द्वारा सताई हुई सीताजी की बड़ी ही सार्थक उपमा दी गई है।

दुःशासन द्वारा चीरहरण किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने विविध प्रकार के वस्त्रों द्वारा जो द्रौपदी की रक्षा की, उसका वर्णन करते हुए भी कवि ने द्रौपदी के लिये बड़ी ही सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है—

समाच्छन्नानन्तैरपि विविधवासोविरचिता
तदा पाञ्चालीव ध्रुवमजनि पाञ्चालतनया ॥१८८॥

यहाँ कवि ने यमक और अनुप्रास का बड़ा चमत्कार दिखाया है। द्रौपदी भगवान् कृष्ण से प्रार्थना करते हुये कहती है—

अगाधापद्गाधाकुलहृदमसाधारणरुवा-
पराधा गान्धारीप्रभवहितबाधासुतवशाम्।
सुदन्तां मे धाराधर तुलित कान्त द्रव धरा-
धराद्ध्राधार प्लवधरण राधारमण माम् ॥१९९॥

यहाँ अलङ्कार के अभाव में भी लययुक्त मधुर शब्द विन्यास द्वारा कवि ने सुन्दर पद्यों की सृष्टि की है। यथा—

विना दीनोद्धारं भवजलधितार व्रजवधू-
हृदो हार रूपद्रविणजितमार नरवरम्।

कृपापारावारं क इह दयिता रक्षितुमल
पृथापुत्रैरेव मनसि नियत तर्कितममूत् ॥१६१॥

द्रौपदी ने मन के द्वारा कृष्ण के पास अपना जो सन्देश भेजा है, उसमें आर्त भक्त की करुण पुकार साकार हो उठी है। इस प्रकार द्रौपदी के इन वचनों को–

अगाधे दु:खाब्धौ यत निरवलम्बाऽस्मि पतिता
भवाम्भोधेरुद्धारक कथमुदासोऽसि भगवन्।
निलस्य नाकार्षीरघहर गजाजामिलकृते
मदुद्धारे शक्त किमसि न विभो दुष्टदलन ॥१७३॥

दयालो त्वां हित्वा कतममुपयामीह शरणम् ॥१७७॥

अये सर्वज्ञस्त्वं व्यसनमिदमत्पेतरमहो
विदित्वाऽपि स्वामिन्मयि कथमुदासोऽसि भगवन्।
भृशार्ताऽहं रोदिम्यतिशयितदु:खाब्धिपतिता-
ऽपिता श्रीमन्नान्यस्त्वमिह मृदुभावं भज मयि ॥१७८॥

हम किसी भी आर्त भक्त की विनम्र प्रार्थना कह सकते हैं। इस काव्य में द्रौपदी ने ही कृष्ण के पास सन्देश भेजा हो, केवल यह बात नहीं है, प्रत्युत कवि ने यह भी उपदेश दिया है कि हर एक को अपना मन कृष्ण के पास भेजना चाहिये। इसी भाव को लेकर कवि ने लिखा है–

इति स्मारं स्मारं तव गुणगणान्यादवपते
मनोदूतं योऽन्यस्त्वयि निजहृत्ते प्रेषयति चेत्।
न मुञ्चस्येनं तत्प्रणयरशनाबद्धललितह-
द्विभो भक्ताधीन श्रुतिशिखरमृग्योऽपि भगवन् ॥१९५॥

करुण रस के साथ-साथ इस काव्य में कृष्णभक्ति की भावना सर्वत्र ओत प्रोत है। मंगलाचरण में तो कृष्णजी की स्तुति की ही गई है। काव्य के अन्त में भी कृष्ण भक्ति की महिमा प्रतिपादित की गई है। कृष्णभक्ति की महिमा बताते हुये कवि कहता है–

अविद्येयं विद्या भवति भगवद्भक्तिरहिता
न चेद्विष्णो प्रेमप्रसृमरमहानन्दमहिता।
॥ तावच्चाञ्चल्यं त्यजति च मनोवृत्तिविहगी
न यावच्छ्रीकृष्णस्मरणरससिन्धौ निपतति ॥१६४॥
स कोऽपि श्रीगोपीजनहृदयहारी प्रतिदिनं
सदा ध्येयो मान्य प्लव इह भवाम्भोधितरणे।

यद्दीय नामेद् जगदघभिदाद्दीक्षितमहो
स्मरन्भक्त प्रेमामृतरसनिमग्नो विजयते ॥१०६॥

इस प्रकार विभिन्न रूप से कवि ने कृष्ण भक्ति का सन्देश अपने पाठकों को दिया है। पाण्डवों की राजसभा में उपस्थित तत्तद् विषय के विद्वानों का वर्णन करते हुये कवि ने वेद, व्याकरण, मीमांसा, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, स्मृति, सांख्य, योग, नवीन और वेदान्त इन सब विषयों का उल्लेख कर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।

सन्देशकाव्यों की परम्परा में यह सन्देश काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। विषय, भाव, भाषा और छन्द इन सब की दृष्टि से यह काव्य एक नवीन रचना है। क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक में भवभूति के शिखरिणी वृत्त की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति॥

यही उक्ति इस काव्य के शिखरिणी छन्द के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भवभूति की रचनाओं के समान शिखरिणी छन्द के साथ २ इस काव्य में भी करुण रस प्रधान है। जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इस काव्य में मन को दूत बनाया गया है और मन के लिये हस्तिनापुर से द्वारिका कुछ भी दूर नहीं है, अतः इस काव्य में मार्ग-वर्णन बिल्कुल नहीं है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि एक भक्त कवि का करुण रसपूर्ण कृष्ण-भक्तिपरक यह सरस सन्देशकाव्य है। इसका 'सहृदय हृदयाह्लादन' अपर नाम सार्थक ही है। कृष्णभक्ति साहित्य में भी यह काव्य विशिष्ट स्थान पाने का अधिकारी है।

श्री कृष्णनाथ न्याय-पञ्चानन का वातदूत (वि० सं० १९७२)

महामहोपाध्याय श्री कृष्णनाथ न्यायपञ्चानन भट्टाचार्य का आधुनिक काल के बंगाली संस्कृत विद्वानों में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य, नाटक, धर्मशास्त्र, वेदान्त, व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय इत्यादि सभी शास्त्रों में आप पारंगत थे।

अभिज्ञानशाकुन्तल तथा रत्नावली, मलमासतत्त्व और दायभाग, वेदान्त परिभाषा, मुग्धबोध व्याकरण, अर्थसंग्रह, तथा न्यायप्रकाश इत्यादि विभिन्न विषयों के ग्रन्थों पर इन्होंने टीकायें लिखी हैं। कर्पूरादि-स्तोत्र, श्यामास्तोत्र और श्यामापूजाकाल निर्णय यह इनकी धार्मिक रचनायें हैं। वातदूत नामक सन्देश काव्य इनकी मूलकृति है। इस पर इन्होंने अपनी टीका भी लिख दी है। टीका के अन्त में इन्होंने लिखा है—

सप्ताष्टसप्तशुभ्रांशुप्रमाणे शाकहायने।
आषाढशुक्लसप्तम्यां टीकेयं पूर्णतां गता॥
नवद्वीपासन्नभूमौ श्रीमद्भागीरथीतटे।
ग्रामं पूर्वस्थलीं नाम विद्धि वासस्थलीं मम॥

इससे ज्ञात होता है कि सप्ताष्ट सप्त शुभ्रांशु प्रमाणे=१७८७ शकसंवत् की आषाढ शुक्ल सप्तमी को यह टीका पूर्ण हुई। शकसंवत् १७८७ वि० सं० १९२२ से मिलता है। अतः वि० सं० १९२२ या इससे कुछ पूर्व का समय ग्रन्थ का रचना काल हो सकता है। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर मुद्रणकाल शकाब्दा १८९२ लिखा हुआ है। संभव है ग्रन्थकार ने बहुत दिनों के बाद अपनी रचना प्रकाशित कराई हो।

काव्य की भूमिका में कवि ने महारानी विक्टोरिया के विद्याप्रेम, प्रजापालन, अनन्त शक्ति तथा शासनकुशलता इत्यादि गुणों की प्रशंसा की है तथा उनके शासन में संस्कृत विद्या की उन्नति होने का भी उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित ही है कि महारानी विक्टोरिया के हिन्दुस्तान का शासन संभालने के बाद यह काव्य लिखा गया है। अतः शक संवत् १७८७=वि० सं० १९२२=ई० सं० १८६५ ही काव्य का रचनाकाल है।

बंगाल में भागीरथी के तट पर नवद्वीप के पास पूर्वस्थली नामक किसी ग्राम में कवि का निवास स्थान था। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने स्वयं यह बात लिखी है।

कथा सार

इस काव्य की कथा रामायण से सम्बद्ध है। दण्डकारण्य में पञ्चवटी से सीताजी को हर कर जब रावण लंका ले जाता है, तब वह उन्हें वहां अशोक वाटिका में ठहरा देता है। पतिवियोग में सीताजी का हृदय व्याकुल तो रहता ही है, उधर राक्षसों का भय भी उन्हें चिन्तित किये रहता है। इसी परिस्थिति में धीरे धीरे वसन्त ऋतु आ जाती है और दक्षिण से उत्तर की ओर वायु चलने लगती है। शीतल वायु के सुखद स्पर्श से कुछ शान्ति का अनुभव करते हुए सीताजी उस वायु को ही दूत बनाकर उसके साथ श्री रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी के पास अपना विरह सन्देश भेजती है।

इस प्रसग में अशोक वाटिका से पञ्चवटी तक के मार्ग का वर्णन किया गया है। अशोक वाटिका से समुद्र के तट पर स्थित सुवेल (त्रिकूट) पर्वत और वहा से फिर उत्तर की ओर समुद्र पार करने के बाद जगलों में से होते हुए तथा आस पास के पर्वतों पर भिल्ल और उनकी स्त्रियों को देखते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर वायु के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। ऋष्यमूक पर्वत से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर पम्पा सरोवर तदनन्तर दण्डकारण्य और वहा से पूर्व की ओर थोड़ी दूर चलने पर जनस्थान में पास ही कुछ दूर पर पञ्चवटी और फिर गोदावरी नदी के तट पर ही सीताजी ने अपना आश्रम बतलाया है।

इस तरह अपने आश्रम तक के मार्ग का वर्णन करने के बाद आश्रम में ही रामचन्द्रजी के मिल जाने की सभावना की गई है। सर्व प्रथम उनके प्रकृतस्वरूप का वर्णन किया गया है। तदनन्तर उनकी सम्भावित विरहावस्थायें वर्णित की गई हैं।

सभव है कि विरह में व्याकुल होने के कारण वे आश्रम में न मिलें तथा इधर उधर घूम रहे हों। इसलिये वायु को और भी कई स्थानों में उनकी खोज करने का परामर्श दिया गया है। इसके बाद उसी प्रदेश में स्थित वन देवता से भी वार्तालाप करने तथा उसे सीताजी का समाचार देने के बाद खोज करते करते जीमूत पर्वत के आस पास कहीं पर अपने छोटे भाई के साथ घूमते हुए रामचन्द्रजी के मिल जाने की सभावना की गई है। तदनन्तर अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद सीताजी ने वायु से रामचन्द्रजी के लिये अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। कुछ सन्देश केवल लक्ष्मणजी के लिये ही दिया गया है तथा रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी दोनों के लिये सर्वसाधारण रूप से दिया जाने वाला भी कुछ सन्देश है। इसके अतिरिक्त दोनों भाइयों द्वारा अपनी बहिनों के लिये भी उन्होंने कुछ सन्देश कहलाया है।

अन्त में कुछ प्रत्यभिज्ञान देकर मगलकामना के साथ वायु को विदा कर दिया गया है।

काव्य समीक्षा

मेघदूत से प्रेरणा लेकर ही यह सन्देश काव्य लिखा गया है। समग्र काव्य में केवल १०० श्लोक हैं और सभी मन्दाक्रान्ता छन्द में हैं। काव्य में पूर्वभाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन नहीं किया गया है, लेकिन ५७ व श्लोक पर ग्रन्थकार ने ही टीका में 'इतिपूर्वगतटीका समाप्ता' ऐसा लिखा है। इससे यह प्रतीत होता है कि कवि ने अपने मन में काव्य को विषय की दृष्टि से दो भागों में अवश्य विभक्त कर रखा होगा। छन्द, मार्गवर्णन तथा नायक और नायिका की विरहावस्थाओं का चित्रण इत्यादि बातों में समानता होते हुए भी काव्य में मेघदूत का किसी और बात में अनुकरण नहीं पाया जाता है। मेघदूत और इस काव्य में एक प्रमुख भेद

यह तो है ही कि इसमें प्रेयसी की ओर से प्रिय के लिए प्रेम-सन्देश भेजा गया है। इसके अतिरिक्त इस काव्य के पात्र भी (नायिका और नायक) बड़े धीर और उदात्त हैं।

यदि पवनपुत्र हनूमान् रामचन्द्रजी का सन्देश लेकर सीताजी के पास लंका जा सकते हैं, तो सीताजी का सन्देश लेकर वायु का रामचन्द्रजी के पास आना और भी स्वाभाविक है। जिस कार्य को पुत्र कर सके, उसको पिता तो अवश्य ही कर सकता है। रामायण में भी हनूमानजी का वर्णन करते हुए कहा गया है–'मारुतस्यौरस पुत्रो गमने चापि तत्सम'। अतः हम यह कह सकते हैं कि वायु को दूत बनाने में कवि ने वाल्मीकि रामायण से ही प्रेरणा प्राप्त की है। दूतकार्य में वायु की उपयुक्तता का वर्णन करते हुये सीताजी कहती हैं–

चन्द्रार्काद्या नियतगतयो नेतराशा ब्रजन्ते
निश्चरवारा अपि जलधरा नुद्यमानास्त्वयैव
इत्युज्झित्वा निरलसगते तानहं त्वा प्रपन्ना ॥६॥

चन्द्र, सूर्य और मेघ इत्यादि की अपेक्षा वायु के सब दिशाओं में जा सकने के कारण वायु को दूत बनाना उचित ही है।

अशोक वाटिका से पञ्चवटी तक के मार्ग वर्णन में किसी नगरी अथवा ग्राम इत्यादि का कोई प्रसंग नहीं आया है। अतः मार्ग वर्णन में सरस स्थल कम ही हैं। फिर भी कवि ने स्थान-स्थान पर सरस कल्पना द्वारा मार्ग वर्णन नीरस नहीं होने दिया है। सर्वप्रथम वायु को यात्रा के लिये उत्साहित करते हुए कहा गया है–

त्वत्सम्पर्काच्चलति रुचिरे वारिजाना कदम्बे
गुञ्जन्मत्तभ्रमरमुखरे दीर्घिका वीक्षमाणा ।
मोदिष्यन्ते रसिकपुरुषा नृत्यगीताभिरामै-
र्मत्वा नूनं नटशिशुकुले सङ्कुला रङ्गभूमिम् ॥१०॥

कवि ने यहां पर बड़ी चमत्कारपूर्ण कल्पना प्रस्तुत की है। फिर पम्पा सरोवर का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

पम्पा नाम प्रथितसरसीं नातिदूरेऽथ याया
स्वच्छं साधोर्मन इव पयो बिभ्रतीं निश्चलञ्च ॥२०॥

सत्पुरुष के प्रसन्न और निश्चल मन की उपमा द्वारा सरोवर के जल की स्वच्छता और शान्तता का कवि ने बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। कवि ने अनध्यान वन को धर्मारण्य कहा है, क्योंकि यहां वृक्षों पर बैठे हुये शुक भी निरन्तर सुनते रहने से वेदों के स्वरों के ऐसे विशेषज्ञ हो गये हैं कि वृक्षों के नीचे वेदपाठ करने वाले ब्रह्मचारियों को भी वे उनकी अशुद्धियां बतलाते रहते हैं–

यत्राभ्यासाकुलबटुकृता सस्वरेऽप्यसंकरणा
स कीराणामुपरि वसना व्यक्तवत्स्तदोक्ति ।
यस्मिन् शास्ति स्खलितमसकृद्बोधयन्ती स्वगणा
कुठान् वृद्धप्रचलितगुणा गायनान् वल्कलीर ॥२७॥

कभी कहीं कवि ने बड़ी सुन्दर उद्भावनायें पाठकों के समक्ष रक्खी हैं। सीताजी अपने आश्रम के रक्ताशोक वृक्षों को लेकर कहती हैं—

स्कन्धालम्बैर्धनुरिषुधिभी रक्षितिमिलग्धसार्ये
रक्ताशोकैर्दशशतकर प्राणनाद्वारयद्भि ।
यन्नावारि द्विदशकरभुजेऽद्य नार्हन्ति गर्हाम्
पादाघातान्मम विटपिनस्ते हि सञ्जातरागा ॥३६॥

रक्ताशोक वृक्ष आश्रम में प्रहरी का कार्य करते थे। सहस्र-कर वाला सूर्य भी उनके कारण से आश्रम के प्रांगण में प्रवेश नहीं कर पाता था। फिर बीस भुजाओं वाले रावण को उन्होंने क्यों नहीं रोका। इस पर सीताजी कहती हैं कि मेरे पाद प्रहार करते रहने से उन्हें मुझ से द्वेष हो गया होगा।

रामचन्द्रजी के स्वरूप का वर्णन तो कवि ने ऐसा किया है कि पाठकों के हृदय में उनका चित्र सा खिंच जाता है। जटाधारी और तपस्वी राम का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वे जटायें इस तरह प्रसन्नता से धारण किये हुये हैं मानों पिता की वनवास की आज्ञा को शिरोधार्य कर रहे हों—

तस्मिन्नहं मरकत मणिच्छायमाच्छादयद्भिः
सम्बद्ध तत् तरणिकुल तेजसा द्योतयन्तम् ।
वन्या वृत्ति सपदि ददतो दित्सिते राज्यभारे
शीर्षेणाज्ञा पितुरिव जटा मुकुटेद् वहन्तम् ॥३७॥

इसी तरह उनके वक्ष स्थल तथा मध्यभाग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि उनका मध्यभाग बड़ा क्षीण तथा वक्ष स्थल बड़ा विस्तीर्ण है। सम्भव है कि ब्रह्मा ने उनके शरीर को मध्यभाग से पकड़ कर उनके अंग प्रत्यंग के सौन्दर्य को सम्भाला हो। ऐसे सुन्दर और सुडौल शरीर पर वल्कल वस्त्र धारण किये हुये व बड़े सुन्दर लगते होंगे—

प्रत्यङ्गाना विरचनविधौ वेधसा यामगुप्तौ
मध्यन्तेष दृढघृततयेवासस्तक्षीणभावे ।
विस्तीर्णादूर्ध्वाधिवयवदनाद्यान्तनाद्यनम्मारे
वन्याकर्पोचितनिवसनं वल्कल सश्रयन्तम् ॥४०॥

आगे चलकर कवि ने रामचन्द्रजी की विरहावस्थाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है। सीताजी कहती हैं कि मेरे वियोग में रामचन्द्रजी को निद्रा नहीं आती होगी, उनके नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा बहती होगी तथा मेरी अनुपस्थिति में भी वे मुझ से पूछते होंगे कि कहां चली गई हो—

तीव्रोत्तापद्रुततरमनोद्गारवद्दर्शयन्तम्
दृग्युग्मं वा निमिषविमुखं सान्द्रबाष्पायमाणम् ।
मा मुक्त्वास्मि क्षणमिव धी प्रस्थिता क्वासि बाल
लोलीकर्तुं धितमतितरामित्यलं वा वदन्तम् ॥८३॥

इस श्लोक में चिन्ता, उन्माद और प्रलाप अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। इसके बाद सीताजी के वियोग में रामचन्द्रजी के मूर्च्छित हो जाने तथा इस दृश्य को देखकर विरह की अन्तिम दशा समझ कर लक्ष्मणजी के रोने का वर्णन किया गया है—

हा धिक् पुत्रेष्वनपगत शोकजिन्हुस्त्रमेतत्
ज्येष्ठस्नेहात् किमिह गुरुणा शिक्षितो राम वद ।
इत्यन्योऽधैरुपरि रुदता शान्तमोहीकृत वा
शेषावस्थाभ्रमगुरुशुचा लक्ष्मणेनानुजेन ॥८५॥

विरह से व्याकुल होने के कारण, सम्भव है, रामचन्द्रजी आश्रम में स्थिर रूप से न बैठते हों, अतः सीताजी प्रस्रवण गिरि (सुरुचिरगिरि) की विस्तृत अधित्यका में उनकी खोज करने के लिये कहती हैं —

तत्रालब्ध कथमपि भवन् ! सानुजो राघवेन्द्र
सोऽन्वेष्टव्य सुरुचिरगिरेरायताधित्यकायाम् ।
गोदावर्या प्रबलपयसा शीकरध्वानरम्या
या सायाह्नप्रचरणविधौ भूमिरासीत् प्रिया न ॥८७॥

विरहावस्था में प्रेमीजन प्रेयसियों द्वारा सेवित स्थानों में घूमते फिरते ही हैं। इससे उनके मन की व्यथा कुछ शान्त हो जाती है।

रामचन्द्रजी की खोज के प्रसंग में वन देवता से भी वायु के मिलने का उल्लेख किया गया है। वनदेवता के वर्णन में कवि ने उसकी सहृदयता और भावुकता का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है। ऐसे ही एक स्थल पर कहा गया है—

य सीमन्तीतदरगणितस्वागमभगम्पयोभि
स्नेहाद्वृधस्नाजित इति मया प्रांगणे वर्द्धितोऽस्ति ।

सा पश्यन्ती गतरसतया शुष्कपुष्पाणि नूनं
बाष्पोत्सेकैश्चरति मदनुध्येयकमव तस्मिन् ॥५२॥

सीताजी ने अपने आश्रम के प्रांगण में सेमन्ती (सेंउती) का वृक्ष लगा रक्खा था और अपने कष्ट की परवाह न करके स्वय अपने हाथों से ही उसे सींचती थीं। वे कहती हैं कि उनकी अनुपस्थिति में जल न मिलने से उस वृक्ष के सूखे हुए फूलों को देखकर वनदेवता अवश्य ही अपने आंसुओं से उसको सींचती होगी। मित्रता का कैसा सुन्दर आदर्श कवि ने यहां पर उपस्थित किया है।

आगे चल कर सीताजी कहती हैं कि मेरी अनुपस्थिति में कातर होते हुए तथा वीणा के स्वर को सुनकर एक दम पास आये हुए मेरे पालतू हिरण पर वन देवता वीणा छोड़कर हाथ फिराती हुई तुम्हें (वायु को) दिखाई पड़ेगी—

वीणातन्त्रीमधुररणिताहूतशारंग यूथा-
द्यान्त वा नवपत्रसभासङ्गभिर्वेददीनम्।
मुक्त्वा वीणामशिथिलगुणामभ्यसोपेत्य गात्रे
सस्नेह मत्कृतकतनय पाणिना स्यामृशन्तीम् ॥५३॥

वीणा बजाती हुई वनदेवता का सीताजी के पाले हुये हिरन के पास आने पर तारों को ढीला किये बिना ही वीणा का रख देना तथा हिरन पर अपना हाथ फेरना उसके भावुक हृदय का सजीव निदर्शन है। सखी के कृतक पुत्र को अपने पुत्रवत् समझना उसका स्नेहातिरेक प्रकट करता है।

वायु के द्वारा वनदेवता के लिये जो सन्देश कहलाया गया है उसमें सीताजी के हृदय के सच्चे भाव छिपे हुए हैं। वायु वनदेवता से सीताजी के सन्देश को सुनाते हुये कहता है—

भर्तुं प्राणैरनणु भजता सन्धिमात्मासमाणाम्
स्वप्राणाना बलवदगिणार्पणमर्त पीडाम्।
सम्भाव्यैषा वदति रुदती त्वा परिष्वगपूर्वम्
तत्कार्यं ते लघु लघु यथा राक्षसान् सोऽभियाति ॥५६॥

रावण के द्वारा सीताजी के प्राणों को कष्ट दिये जाने पर रामचन्द्रजी के भी प्राणों के कष्ट की सम्भावना कर सीताजी का रोना नितान्त स्वाभाविक है। भारतीय दाम्पत्यसम्बन्ध में पति-पत्नी की अनन्यता तो बतलाई ही गई है। इसके अतिरिक्त इस सन्देश में वे ही बातें कही गई हैं, जिन्हें सीताजी रामचन्द्रजी से कहना तो चाहतीं, लेकिन सकोचवश शायद कह नहीं पातीं।

आगे चल कर वन और पर्वतों में कहीं ही रामचन्द्रजी के मिल जाने पर उन्हें

सन्देश सुनाने की वायु से प्रार्थना की गई है। सन्देश में सर्वप्रथम सीताजी की दशा का वर्णन किया गया है–

लङ्काम्भोनिधिपरिगता राक्षसेशेन नीता
जीवत्येषा तव सहचरी विप्रयोगाज्ज्वलन्ती।
पातिव्रत्यं वहति च दशाशेषतान्त्यस्य नूनं
स्पर्शाद्‌ध्यन्यद्दह पयस्मिन्नुष्णार्द्दीपिकेव ॥७३॥

रावण के स्पर्श से ही सीताजी के निधन की सम्भावना में उनके दृढ़ पातिव्रत्य की गूढ़ व्यञ्जना की गई है। 'जीवत्येषा तव सहचरी विप्रयोगाज्ज्वलन्ती' इस पंक्ति में सीताजी के प्रेम तथा वियोग-दुःख को एक साथ बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया गया है। उनकी विरहावस्थाओं का वर्णन करते हुए आगे फिर कहा गया है—

सा सिञ्चन्ती नयनसलिलैर्गाहुमूलं कदाचित्
त्वां पश्यन्ती नखरलिखितं कर्हिचिद्‌भूमिपृष्ठे।
जातु व्यस्तं ललसद् इयाहृष्टदोप लपन्ती
दुःस्था कालं नयति रजसि व्यालुठन्ती क्वचिच्च ॥७५॥

इस पद्य में प्रिय विरह में सीताजी के रोने, प्रिय का चित्र बनाने, असम्बद्ध प्रलाप करने तथा धूल में लोटने इत्यादि विरह-चेष्टाओं का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

इसके बाद सीताजी का मुख्य सन्देश प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम सीताजी ने रामचन्द्रजी के पाद-पद्म को प्रणाम किया है–

तस्मै नाथाद्भुतविलसितं पादपद्मं नमामि ॥७८॥

पतिव्रता स्त्री का अपने पति के चरणों को नमस्कार करना उचित ही है। फिर सीताजी ने अपनी प्रार्थना बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से रामचन्द्रजी के सामने रक्खी है। वे कहती हैं—

रज्जुः कूपाद्‌घटमिव भुव दुर्गतेर्दुर्गतीनाम्
स्वर्गद्वारं मनुजमिव च स्वीयसत्कर्मधर्मः।
उद्‌धृत्य त्वां नयतु झटिति स्नेहभारोऽतिवृद्ध
दुःखाम्भोधेर्जनम्निमित प्रार्थनेषा हताया ॥८१॥

प्रार्थना को सरल बनाने के लिये कवि ने कैसी उपयुक्त उपमायें दी हैं। आगे चलकर अपने चित्त की दशा का वर्णन करते हुये सीताजी कहती हैं–

विन्यद्विम्यत् क्वचिदिव भृतं गूढमास्ते कदाचित्
यानि स्थैर्यं न स्मरणकाद्विस्लथञ्चन पतत्।

तीर्त्वाम्भोधिं कश्चिदपि निजोऽन्त्यमावेदयिष्यत्
त्वत्पादान्तं द्रुतमहह मे याति किंकार्यमूढम् ॥८५॥

प्रिय के वियोग में चित्त का डरते रहना, व्याकुल होना, अस्थिर रहना तथा बार बार प्रिय के चरणों में पहुंचने की इच्छा करना स्वाभाविक ही है।

स्वप्नावस्था में कभी कभी प्रिय के दर्शन हो जाते हैं, इसलिये सीताजी सोने की बहुत चेष्टा करती हैं, लेकिन राक्षसों के भय से उन्हें नींद नहीं आती है—

निद्रामप्याप्यपि गुरुतरोद्भ्रमयत्येव भीतिः
स्वप्नोपाये कथमपि भवत्सङ्गमापादयित्रीम् ॥८६॥

रामचन्द्रजी से सन्देश सुनाने के बाद लक्ष्मणजी के लिये भी कुछ सन्देश दिया गया है। इस सन्देश में लक्ष्मणजी को बड़ी भावपूर्ण प्रार्थना और प्रशंसा की गई है। सीताजी लक्ष्मणजी से कहती हैं—

हा कारुण्यामृतजलनिधे हा महारण्यबन्धो
हा रक्षिन् हा सुविनयरसामृष्टगात्रान्तरात्मन्।
हा मत्कर्माविगणिततनूपात हा पक्षपातिन्-
क्वेदानीं ते मदुपरि दयास्नेहदाक्षिण्ययत्नः ॥८८॥

अपने हृदय के भावों को सीताजी ने इस पद्य में बड़ी भावप्रवणता के साथ व्यक्त किया है।

सीताजी लक्ष्मणजी से फिर कहती हैं कि तुम पहिले तो मुझ पर बड़ी दया रखते थे, लेकिन आश्चर्य है आजकल तुम्हारा मन न जाने क्यों व्याकुल नहीं होता है—

सन्तप्तायां मयि पथि भृशं मन्थरत्वं तथासीद्
बाष्पोद्रेकस्तव मयि घने पांशुधूमाकुलायाम्।
स्थैर्यं चेतोऽलभत रजनौ मत्सुषुप्तौ तवैत-
च्चित्रमन्यस्या विपदि मम यत्त्वन्मनो नाकुलं स्यात् ॥८६॥

अन्त में सीताजी लक्ष्मणजी से कहती हैं—

मामुद्धर्तुं कुरु परिकरं वैमुखीं मा स्म यासीः ॥९१॥

फिर दोनों भाइयों को सम्बोधन करके कहा गया है—

सम्प्रत्याशापुनरुपगमे जीवितं धारयन्त्याम्
एकान्ते मयि तव युवां निःस्पृहौ तन्न योग्यम्।

चेलं लग्नानलमिव समुत्सृज्य सद्योऽनिपह्याम्
सज्ञानापद्व्यतिकरमिदं जीवितं निर्वृता स्याम् ॥६३॥

इस कथन में सीताजी के विषाद और नैराश्य की पराकाष्ठा छिपी हुई है। अग्रिम श्लोक में सीताजी फिर कहती हैं कि इस जन्म में यदि तुम न मिले तो अगले जन्म में ही तुम्हारा साथ हो जाये। बस, मेरी यही प्रार्थना है—

एष तावत् खलु हितकरीमाशिषं सम्प्रशासे
लभ्येऽन्यस्मिन् जनुषि च भवद्बन्धुभावौ लभेय।
देहं लब्ध्वा पुनरपि यथा पद्मिनी शैशिरान्ते
तत् सौहार्दं दिनमिहिरयो पौर्वमेकान्तमेति ॥६४॥

जिस तरह पद्मिनी शिशिर ऋतु के बाद सूर्य और दिन के अपने पूर्व प्रेम को पुनः पा जाती है, इसी तरह सीताजी को भी यह आशा है कि इस जन्म के बाद अवश्य ही इन्हें राम और लक्ष्मण का पूर्व प्रेम प्राप्त हो जाये। सीताजी की इस आशा में भारतीय नारी के चिरन्तन और शाश्वत पति-प्रेम का आदर्श छिपा हुआ है।

रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी के सीताजी को छोड़ कर अयोध्या चले जाने की सम्भावना करके अपनी बहिनों के प्रति भी सीताजी ने निम्नलिखित सन्देश उनके द्वारा दिया है—

आकौमारं जनकभवने यौवने भर्तृगेहे
व्यस्तक्रोधप्रसरविधिना लम्भितैकावरोधा।
सर्वा यत्र क्षणमपि वयं नान्वभूमाक्षिदुःखम्
जानैर्वाद्यप्रभृति खलु वः स्वप्नमात्रावलोक्या ॥६६॥

अपनी बहिनों के लिये दिये गये इस सन्देश में सीताजी के भगिनी प्रेम की कैसी अटूट स्मृति छिपी हुई है।

सन्देश सुनाने के बाद संशयनिवारण के लिये सीताजी ने वायु को एक प्रत्यभिज्ञान भी दिया है—

केशान्यस्तातिसुरभिरजोगन्धमीशाभिनन्द्यम्
गन्धोद्वाहिन्! धर च परमंप्रत्यभिज्ञानमेहि ॥६७॥

गन्धोद्वाही वायु के लिये प्रत्यभिज्ञानस्वरूप सुगन्ध का ले जाना कोई दुष्कर कार्य नहीं है। अन्त में वायु के प्रति—

पन्थानोऽ मौ प्रतिगति शिवाः सन्त्वितो गच्छतस्ते
मूर्तावस्था त्वयि कृतसदासन्निधानोऽप्यमूर्ति।

अध्वश्रान्ति तत्र परिहरेत्—इत्यादि ॥१००॥

मंगल-कामना से काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य के पर्यालोचनपर्यन्त अनुशीलन से प्रत्यक्ष है कि यह काव्य एक सुन्दर सन्देश काव्य है। विप्रलम्भ शृंगार होते हुये भी काव्य में संयमसे काम लिया गया है। सीता और राम जैसे धीर और उत्तम नायकों के प्रसंग में होना भी यही चाहिये था। मेघदूत के अनुकरण पर लिखे होने पर भी मेघदूत की पदावली अथवा भावों का प्रभाव काव्य में प्राय नहीं ही है। केवल प्रक्रिया का साम्य ही दृष्टिगोचर होता है। भाषा की दृष्टि से काव्य कुछ दुरूह ही है। माधुर्य तथा प्रसाद गुण की काव्य में न्यूनता है और गौडी रीति का ही काव्य में अनुसरण किया गया है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोक पर्याप्त होगा—

चञ्चच्चञ्चुक्षतशतगलद्रक्तधाराकुलाङ्ग
पक्षक्षेपप्रखरनखराकर्षणैर्लुंठितस्तम्।
मद्भ्रात्यानान्मृतमपि स (रावण) प्रासधी शौर्यचण्ड
खड्गै विद्धो दलितगगन तत्र तं संजिगाय ॥२६॥

रावण और जटायु के युद्ध का इस श्लोक में वर्णन किया गया है।

कवि ने कहीं कहीं काव्य में नैतिकता तथा सच्चाई से भरे हुए सुन्दर वाक्यों का भी समावेश कर दिया है। यथा-

(१) स्वार्थैर्जन्य कजति खलु य प्राकृतो ह्येष लोक ॥१४॥

(२) नोपकृष्ट हयनूनमृषिभिर्नागसा क्षीरमूलम् ॥१७॥

(३) प्रायो धर्मात् स्खलति हि जन सर्वसम्पद्व्यपाये ॥२४॥

(४) नानिर्णीते झटिति हि जनो याति वैमुख्यमर्थे
नापरपात प्रथमपति वा साहसे पौरुषाढ्य ॥६६॥

कहीं-कहीं बड़ी सुन्दर और प्रभावपूर्ण उपमायें भी कवि ने दी हैं। ऐसे ही एक स्थल पर राक्षसों से घिरी हुई सीताजी के लिए-श्येनाक्रान्तामिव कलरवीम् ॥२०॥ कहा गया है। वनदेवता के वर्णन में दी गई उपमायें भी दर्शनीय हैं—

तस्योद्देशे वसति नियतं देवता तद्वनाना
भूमेरन्तुद्गत इव मणिर्देहिनीवानुकम्पा।
यद्वायुष्मन् स्थितिमविदिता तत्वतो ज्ञातुकाम-
स्तां मीमांसा बुध इव तयोर्द्वयो संशयेथा ॥४०॥

इस प्रकार काव्य के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि यह काव्य संस्कृत के सन्देश काव्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। रामायण की कथावस्तु को अपनी कल्पना से कवि ने और भी अधिक उत्कृष्ट बना दिया है। प्रसंगान्तर में आई हुई काव्य की यह पंक्तिया—

नोपेक्षेथा कुरु परिचयं गंगया सङ्गमात् किम्
नो माहात्म्यं समधिकतरं पावनोऽप्यविरेति ॥३३॥

यदि काव्य के सम्बन्ध में मान ली जाये तो अनुचित न होगा। रामायण रूपी समुद्र में यह काव्य गंगा की तरह ही मिल रहा है। साहित्यिक अभिरुचि के पाठकों के साथ-साथ भक्ति प्रवण पाठकों के लिये भी यह काव्य सर्वथा उपादेय है।

भोलानाथ का पान्थदूत (आधुनिक काल)

इस सन्देश काव्य की केवल एक ही हस्तलिखित प्रति (सं० ३८८०) इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित है। उसी के आधार पर डा० जे० बी० चौधरी, कलकत्ता ने यह काव्य अंग्रेजी में संक्षिप्त भूमिका के साथ मूल मात्र प्रकाशित किया है। प्रस्तुत संस्करण में कहीं कहीं बड़ी अशुद्धियां हैं और बहुत सी पंक्तियों का तो अर्थ ही कुछ समझ में नहीं आता है। काव्य के अन्त में कवि ने लिखा है—

श्री सीतापतिसेवयेन टिफरीवासेन काव्यं मुदा
भोलानाथधरामरेण रचितं यत् पान्थदूताह्वयम्।
राधाकृष्णपदारविन्दविगलन्मध्वाशया सादरं
सन्तस्तत् परिशीलयन्तु सततं सन्तोषसंप्राप्तये ॥१०५॥

इससे यह प्रतीत होता है कि बंगाल में गंगा के तट पर स्थित टिफरी ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न भोलानाथ नामक किसी आधुनिक कवि ने यह काव्य लिखा है। इस कवि का एक अन्य दूत काव्य-पदाङ्कदूत भी इण्डिया आफिस लायब्रेरी लन्दन (सूची सं० ७, १४६७) में सुरक्षित है। भोलानाथ (टिपुरी) ने मुग्ध-बोध पर सन्दर्भामृत तोषिणी नामक टीका भी लिखी है। इसकी भी हस्त लिखित प्रति (सं० ८७१) इण्डिया आफिस, लायब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित है।

काव्य-सार

इस काव्य की कथावस्तु श्रीमद्भागवत से सम्बद्ध है। कृष्ण और गोपियों के प्रेम को ही लेकर यह काव्य लिखा गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। यमुना के किनारे कोई गोपी कृष्ण को याद करते करते मूर्छित हो कर गिर पड़ती है। उसकी सेविकायें जल इत्यादि से उसे होश में ले आती हैं। इसी अवसर पर मथुरा की ओर जाता हुआ एक पथिक दिखलाई पड़ जाता है। बस, गोपिया उसी को अपना दूत बना कर कृष्ण के पास अपना प्रेम सन्देश भेजती हैं। सर्व प्रथम पथिक का वर्णन किया गया है। कण्ठ में तुलसी की माला धारण किये हुये, शिष्ट, सदाचारी और दक्ष इत्यादि प्रकार से पथिक का परिचय दिया गया है। चूंकि वृन्दावन से मथुरा निकट ही है, अतः काव्य में मार्ग वर्णन बिलकुल नहीं है। सर्वप्रथम एक गोपी अपना सन्देश पथिक को सुनाती है। अपना सन्देश कहते कहते जब वह मूर्छित होकर गिर पड़ती है, तब दूसरी गोपी अपना सन्देश प्रारम्भ कर देती है। इस दूसरी गोपी के सन्देश की समाप्ति के साथ साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

समीक्षा

इस काव्य में गोपियों के सन्देश में प्रेम और विरह का वर्णन तो थोड़ा ही है, स्थान स्थान पर कृष्ण को तरह तरह के उपालम्भ दिये गये हैं। पहिली गोपी कृष्ण की इसी बात पर निन्दा करती है कि वह मथुरा जाकर ब्रज की सारी गोपियों को भूल गये हैं। मथुरा की सुन्दर रमणियों का सम्पर्क कितना ही आनन्ददायक क्यों न हो, ब्रज की गोपियों को धोखा देना कृष्ण के लिये ज़रा भी शोभायमान नहीं है। कृष्ण के वियोग में ब्रज की गोपियों ने जो कुछ भी दुःख उठाये हैं, उनमें साक्षी रूप से कात्यायनी अथवा दुर्गा का प्रमाण दिया गया है। गोपी कहती है—

> राम त्वद्विनिर्गमा विरहमास्वास्तापशेषा मृता
> प्रेमाय मरणाय नो यदि पुरा ज्ञातं कथं स्वीकृतं ।
> यच्छिन्नं कुलशीलं स्वलमलं यद्दुपहतं न कृतम्
> तस्मिन् कर्मणि मर्मकर्तनि पुनः कात्यायनी साक्षिणी ॥१८॥

आगे चलकर गोपी कहती है कि कृष्ण को प्रेम करना आता ही नहीं है। इस विषय में उन्हें अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—

> ता योषा वयमाश्रिताम न परं सीमन्तिनीगोरथम्
> न त्वं वेत्सि तथास्ति चेद्धिविदिता तं चार्धनारीश्वरम् ।
> गंगाधारिणमेत्य विद्धि नगरीनारीमनोज्ञ त्वया
> मुग्धा धूर्त वयं पर परिचिता नातञ्चिता वञ्चिता ॥२२॥

कृष्णजी की वंशी के स्वर को सुनकर ही तो गोपियां अपने घरों से लोक

लज्जा इत्यादि का भय छोड़कर कृष्णजी के पास आ जाया करती थीं। इसी बात का, सम्भवतः उन्हें यह फल मिला है कि कृष्णजी ने उन्हें इस तरह भुला दिया है—

पूर्वं यद्भवता वनेऽपि रजनिवासीः स्वरशीरस्तन—
श्वक्रे चकपते तदा निजपते पीडा स्वपिशीरत्नपा।
त्वासा लोककलङ्किता नृपभय तच्छापदाच्चापद्-
स्तुच्छीकृत्य सकाशमेम भवता दत्त पुनस्तत्फलम् ॥२५॥

इसी प्रकार कृष्ण की वंशी तथा उसके गीत को भी उपालम्भ दिया गया है। गोपी कहती है—

क मन्त्र श्रवणे निधाय हृदय याऽचूचुरल्लीलया
पश्चादेयममूमुहत् कुलवतीरस्मानकस्मात् सती।
रन्त्सग विपिनेऽप्यचीकरदिह नाजिज्ञपत् सैव ता
वंशीगीतिरपाकृती कृतवती दूतीव ते दुष्कृते ॥२६॥

आगे चलकर यह गोपी कहती है कि कृष्ण तो प्रेम की अपनी सब पुरानी बातें भूल गये हैं—

स्यात् प्रेमेदमकृत्रिम तदुभयो सान्निध्यमास्ता सदा
यावज्जीवमिदं वदन्तु वचनं प्रत्यर्थिनो मे मुदा।
अद्य स्यात् समय परस्परप्रेमार्द्रयोरावयो-
स्त्वं मेऽहं तव चेति निश्चितमिद यत्तत्त्वया विस्मृतम् ॥२९॥

अन्त में अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये यह गोपी कहती है—

ता सर्वा स्मर शर्वरी क्षणनिभा नीतास्त्वया त्वां विना
दण्डार्धं कतिकोटिकोटि युगवज्जात पर वा सागसा।
नाम्भार्क हृदि तापशान्तिलवकृत्पाटीरपाथोरय
सन्तप्तायसपिण्डकोपरि यत कीलालशोपम ॥३०॥

इस प्रकार अपनी विरहव्यथा बताते बताते यह गोपी मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। तदनन्तर दूसरी गोपी इसी कथासूत्र को लेकर आगे बढ़ती है और मथुरा में कुब्जा के साथ कृष्ण के सम्पर्क को लेकर उनकी निन्दा करने लगती है। यह कहती है—

सा कुब्जा परमा तवैव सविधे ख्याता त्रिवक्राभिधा
विख्यातस्त्वमपि त्रियक इति ससक्तोऽसि यस्या सदा।
इत्थ योग्यसमागमो विधिकृत स्यादेव किन्तूसमा
राधायास्तुलनाविधौ जलनिधे कन्या न धन्यापते ॥३१॥

मथुरा में जाकर कृष्ण को भले ही कुब्जा के साथ अच्छा लगे, लेकिन राधा और कुब्जा की तुलना ही क्या। राधा के समग्र शरीर की कान्ति का तो कहना ही क्या, उसके पैर की एक अगुली की भी उपमा संसार में नहीं मिल सकती—

आस्तां सर्वशरीरकान्तितुलना यत्पादपद्माङ्गुली—
लेशस्यापि जगत्त्रयेऽस्ति न तुलति स्याद्वर्त किन्तु यत ॥३५॥

तदनन्तर यह गोपी कहती है कि जिस राधा के वचनों को कृष्ण अमृत के समान समझते थे, जिसके मार्ग में किसी न किसी बहाने खड़े हो जाते थे तथा जिसके नेत्रों के सामने संसार की भी उन्हें सुध न रहती थी, हाय, उस राधिका को उन्होंने एकदम भुला दिया है—

कामापह्नुति यद्वच श्रुतिपुटे पीयूषवन्निर्घृतम्
यद् गत्यागतिपद्धतौ चिरतर केनाऽपि छद्मलेन स्थितम् ।
यन्नेत्रान्तनिरीक्षणार्पितपरानन्देन तस्मिन् क्षणे
विश्व विस्मृतमद्य सापि भवता कानन [illegible] विस्मृता ॥३७॥

आगे चलकर यह गोपी कहती है कि कृष्ण केवल गोपालक ही हैं। समस्त विश्व का पालक गोपालक कैसे हो सकता है। कृष्ण तो केवल चोर हैं। उनकी माता यशोदा ने उन्हें देवता बना दिया है—

नादत्ते स्वयमीश्वर किमपि तद् गृह्णाति भाग्योदया-
द्भक्तया यत् प्रतिपादितं त्रिजगता पालो न गोपालक ।
भक्ताभीष्टमपि प्रभु प्रकुरुते न कदापि चौर्यादिकम्
चौर्य्यात्र यशोदया तत्र पुनर्देवत्वमाख्यापितम् ॥४०॥

तदनन्तर यह कहती है कि कंस को मार कर दुर्बल और वृद्ध उग्रसेन को कृष्ण ने मथुरा का राजा बना दिया है, ताकि यह मथुरा की सुन्दर रमणियों के साथ विहार करते रहें—

कंस ध्वसयत भवत नतमयो राज्ये च राजा भव-
न्नाशाकारिणमातुर प्रवयस नाम्नोग्रसेन नृपम् ।
दुर्भङ्गाकु शक्यन्य समनि सुधी ध्यायन्नपुण्यानि ? ता
नारीरियमरीरमोऽत्यगतं दण्ड्योऽसि कैर्दण्ड्यसे ॥४३॥

राधा की विरहावस्था और व्यग्रता का वर्णन करते हुये यह गोपी कहती है कि दुरात्मा कृष्ण ने उसके वियोग में तड़पती हुई राधा को बिल्कुल ही भुला दिया है—

प्रात प्रातरियं पुरीपथमनु त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी
प्रेयानेति न वेति पश्यत भ्रलज्याप्त मदक्षियम् ।
दृष्ट्वा न समभवत्रीदिति ततो नीनाऽनुसार्यं व्रज
याऽसून् मुञ्चति ते कृते कितय सा दृष्टा न दुष्टात्मना ॥४४॥

राधा की मूर्च्छावस्था को देखकर लोगों के निरन्तर आसू बहने लगते हैं और वे लोग हा हा करते करते जमीन पर लोट जाते हैं। कृष्ण को इस बात के सुनाने का पथिक के लिये परामर्श देते हुए गोपी कहती है —

अथान्तस्त्वदश्रो यत गतप्राणेयमित्याकुला
जम्बाले किल सकुल क्षितितल कुर्वन्ति के नानिशम् ।
श्रीराधापदधूलिशालिवपुषो दुर्वारहाहारवा
के वा नेह लुठन्ति चेति सदय त्व त शठ श्रावये ॥४५॥

कृष्ण और गोपियों की आत्मीयता का इसी से पाठक गण अनुमान लगा सकते हैं कि कृष्ण को शठ कहने में भी गोपी जरा नहीं हिचकती है। इस प्रकार कृष्ण को विविध उपालम्भ देने के बाद पथिक से कहा गया है—

दृष्टो घोरतरस्त्वदीयविरहोत्तापस्तथैकक्षमो
गगासागरसगमे मम पुन कायव्यय कामद ।
स स्यादिष्टनम मुदाय सुतरा तत्रात्मना मादृशा
नो तापाय कदापि पान्थ मथुरानाथस्त्वया कथ्यताम् ॥६४॥

विरह ताप से व्याकुल गोपी का गगासागर के सगम में अपने शरीर को छोड देने का विचार करना उसकी निराशा और अधृति को व्यक्त करता है। अन्त में गोपी यह प्रार्थना करती है कि कृष्ण चाहे कृपा करे, चाहे द्वेष करें, उसकी तो यही प्रार्थना है कि जन्म जन्मान्तर में वह गोपाल कृष्ण ही उसके प्राणेश्वर रहें—

धात सकातरमिद प्रणिपत्य याचे
द्वेष करोतु करुणामथवा तनोतु ।
गोपाल एव पशुपालकपालबाल
प्राणेश्वरो भवभवेऽपि ममैव भूयात् ॥१०२॥

इस सन्देश में इस प्रकार उपालम्भ और निन्दा की अधिकता के होते हुये भी कहीं २ कवि ने बडी सुन्दर कल्पनायें की हैं और भावयोजना बडी सरस तथा हृदयग्राहिणी है। पान्थ को देखकर गोपियों के हृदय में जो आनन्द होता है, उसका निम्नश्लोकों से पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। गोपिया कहती हैं—

सूर्यस्येव निरस्तदुःखतमसः प्राप्तोदयस्याद्य ते
राग प्रापितया गवा मधुरया सद्य परामर्षणात् ।
पद्मानीव मुखानि नस्त्वदधिक पान्थ स्फुटानि स्फुट
पश्यामादपि सन्निधावुपकृतिर्मा सा हि विस्मर्यते ॥८॥

पथिक के रूप, मन, शील, प्रीति, यश और वाणी का बड़ा सुन्दर वर्णन निम्नश्लोक में पाया जाता है–

रूप चन्द्रति मानस द्रुवति ते शील सुविश्वस्तति
प्रीति पर्वतति प्रतीतमहिमा स्रोतस्वतीपालति ।
त्रैलोक्यैकयशस्यति यश पीयूषति व्याहृतम्
यो योऽय स गुण सुद्देमगुणवत्कार्येऽथ वर्द्धिष्यते ॥६॥

कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से रूप और मन इत्यादि के कैसे सुन्दर उपमान यहां पर दिये हैं।

सन्देश देते समय प्रथम गोपी कहती है कि विरह ताप के उपचार-स्वरूप काम में आने वाले शैवाल, नलिनी दल, चन्दन और केतकी इत्यादि पदार्थ व्रज में दुर्लभ से हो गये हैं। अत कृष्ण से कहना कि शीघ्र ही इनको मेरे लिये भेज दें–

शैवाल नलिनीदल मलयज अम्रालक शीतलम्
नूत्न पल्लवमत्र नो जनपदे शैलेष्वमेतानि यत् ।
अद्यास्मानि पुरातनप्रणयत सप्रार्थयामो वयम्
शीघ्र प्रेषयिता मदर्थमिति त साधो बुध बोधय ॥१४॥

विरहताप की उग्रता के साथ-साथ कृष्ण व गोपियों को भूल जाने की भी इस पद्य में बड़े गूढ ढग से व्यजना की गई है।

दूसरी गोपी अपने सन्देश में कहती है कि कृष्ण के साथ होने पर जो जो बातें रुचिकर लगती थीं, वे सब उनका वियोग हो जाने पर बड़ी दु खदायी प्रतीत हो रही हैं —

शिशो दुष्ट इवाटवीव सदन वाटीव मु आटवी
हारो भार इव प्रसूनरचिता मालापि ज्वालोपमा ।
व्याघ्राघ्रा परियास्यत् परिजना व्याघ्रादिहिंस्रोपमा-
स्त्वत्सगे विहिते पुरा मम न किं किं वैपरीत्य गतम् ॥२३॥

आगे चल कर यह गोपी कहती है कि कृष्ण के विरह में उसकी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों दोनों ने ही अपना कार्य छोड़ दिया है—

माल्यो नायमसम्भवो यदधुना नान्यो दशा दृश्यते
नीलालोकभिया पर कटुतया घ्राणेन कर्णेन वा।
शीतो वायुरपि त्वचा रसनया नैव सुधा गृह्यते
शैथिल्य चलिता क्रिया स्वविरहात् कर्मेन्द्रियाणामपि ॥४६॥

इस पद्य में गोपी की विरह-कालीन जड़ता का वर्णन किया गया है। इसी प्रसग में अपनी मन स्थिति का वर्णन करते हुये गोपी फिर कहती है–

चित्त सुस्थयितु त्वदर्थरचितारामे यदा स्थीयते
हा हा हन्त तदा मदीयनयनद्रोणीस्रवद्वारिभि ।
यद्यापूरितमालवालपटल निष्कर्मणाञ्चाद्य न–
स्तत् किं साहित किं न सेचनमिद कर्म स्वय सिद्ध्यति ॥४६॥

अपने चित्त को प्रसन्न करने के लिये गोपी किसी वाटिका में जाती है। वहा भी कृष्ण की स्मृति उसे आ घेरती है और उसके नेत्रों से लगातार आसू बहने लगते हैं। इस तरह वृक्ष के सींचने का काम अपने आप ही हो जाता है। प्रिय की स्मृति में प्रेमिका के रोने को कौन रोक सकता है।

कृष्ण के विरह रूपी सागर में भारी मिलन की नौका लेकर किसी तरह अपने प्राणों की रक्षा करती हुई गोपिया कृष्ण ने केवल अपना वृत्तान्त भेजकर नौका सहित डुबा दी हैं। इस भाव को कवि ने बड़ी अच्छी तरह निम्न पद्य में व्यक्त किया है। गोपी कहती है–

नाथ त्वद्विरहाम्बुधौ निरवधौ त्वद्भावनासेत्रधौ
पूर्णेऽस्मिन्नहह निर्भरजलैःशश्वत्पगासगमे ।
भाविन्द्रमिलनप्लवा अपि धृतप्राणा कथञ्चिद्वयं
वार्त्ताप्रेषण तत्परेण भवता किं सप्लवा प्लाविता ॥६१॥

अनुप्रास की छटा के साथ साथ रूपक का भी चमत्कार इस पद्य में दर्शनीय है। साथ ही भाव योजना भी बड़ी सरस तथा हृदय द्रावक है।

गोपियों की विभिन्न विरह चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है–

का निन्दन्ति रुदन्ति का हिमजलै सिञ्चन्ति पाथोजिनी–
पत्रै का मृदु वीजयन्त्यपि परा कुर्वन्ति यातागतम् ।
काश्चित् कापि वदन्ति गोकुलवधूवृन्द मृत काश्च नो
नासान्यस्तकराश्च सशयपरा निघ्नन्ति दाशारथम् ॥८४॥

इस पद्य में गोपियों के रोने, विरहताप, उद्वेग और चिन्ता इत्यादि का कवि ने एक साथ ही चित्र उपस्थित कर दिया है।

कृष्ण के विरह में डूबी हुई गोपी कहती है कि उसका मन अत्यन्त खिन्न रहता है और थोड़ा सा समय भी कल्प के समान बड़ी कठिनाई से कटता है—

> न द्रक्ष्यामि पुनर्हरे तव मुखं कार्ये न गन्धार्पणम्
> कण्ठे माल्यसमर्पणं न च करिष्यामीति खिन्नम् मनः ।
> पौनःपुन्यमथो मया कठिनया ससान्त्व्यमानं च तत्
> स्वल्पोऽय समयोऽपि कल्पसम इत्येव सदा मन्यते ॥६८॥

इस प्रकार गोपियों की विरह-कालीन विभिन्न अनुभूतियां तथा चेष्टायें कवि ने बड़ी सुन्दर शैली के साथ काव्य में वर्णित की हैं।

मेघदूत से प्रेरणा लेकर भी इस काव्य में मेघदूत का अनुकरण नहीं किया गया है। इस काव्य में कुल १०५ श्लोक हैं। जिनमें केवल श्लोक सं० १०७ और १०३ वसन्त तिलका छन्द में हैं। अन्य सब शार्दूलविक्रीडित छन्द में हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा काव्य का विभाग भी नहीं किया गया है और न काव्य में मार्गवर्णन ही दिया गया है। आम तौर से सन्देशकाव्यों में विरही नायक या नायिका का वर्णन प्रारम्भ में दिया जाता है। तदनन्तर किसी के दूत कार्य करने का उल्लेख किया जाता है और मंगलाचरण प्राय नहीं ही होता है, पर इस काव्य में सर्वप्रथम दो पद्यों में मंगलाचरण किया गया है और प्रसंगानुसार कृष्ण की स्तुति की गई है। इसी प्रकार काव्य के अन्त में भी सन्देश-वाहक को आशीर्वाद या शुभकामनायें नहीं दी गई हैं। काव्य में मुख्यतया विप्रलम्भ शृंगार ही है। गोपियों के विरह वर्णन के साथ-साथ कृष्ण की निन्दा तथा उनके लिये अनेक उपालम्भ भी काव्य में दिये गये हैं। विभिन्न उपालम्भों से गोपियों के कृष्णप्रेम की अनन्यता तथा प्रगाढ़ता का ही परिचय मिलता है, क्योंकि उपालम्भ उसी को दिया जा सकता है जिस पर अपना कुछ अधिकार हो। भावों के अनुकूल कवि ने भाषा भी सरल और सरस ही प्रयुक्त की है। माधुर्यगुण के साथ साथ वैदर्भी रीति का काव्य में प्रभाव स्पष्ट ही दिखलाई पड़ता है, लेकिन फिर भी काव्य में प्रसाद गुण की कमी है। निम्नांकित श्लोक से पाठक गण काव्य की कुछ कमियों का स्वयं अनुमान लगा सकते हैं—

> यो भूपोपरि योभवीति भुजगानुल्लालसीत्यद्वय—
> स्तत्साधूकमसाधु किं परिमृषन् वाचंधि तस्मै तथा।
> नो रोरोति न आसमीति स यथा योबोद्धि ध्योध्रोत्यघो
> नानन्दीति दरीधरीति च वचश्चर्कर्ति वेत्थप्रियम् ॥१०॥

पथिक को दूत बनाते समय यह श्लोक आया है। इसका अर्थ जो कुछ हो सकता है, वह पाठक गण स्वयं समझ सकते हैं। इसी तरह के दुरूह भाव-वाले कई पद्य काव्य में यत्र तत्र देखने में आते हैं।

विप्रलम्भ श्रृंगार के साथ साथ काव्य में राधाकृष्ण के प्रति अपने प्रेम और भक्ति का भी कवि ने परिचय दिया है। समस्त काव्य कवि की धार्मिक भावना से ओतप्रोत है। राधा और कृष्ण को केवल प्रेमी और प्रेयसी के रूप में ही कवि नहीं जानता है, बल्कि उन्हें अवतार स्वरूप मान कर ही वह काव्य लिखता है। मंगलाचरण में आया हुआ यह श्लोक कवि की कृष्णभक्ति को स्पष्ट रूप से बता रहा है–

भक्तोद्धारणकारणादवतरिष्यन्भूत्वा स्वशापच्छलात्
स्वच्छन्द सखयस्यया सकृपया गोलोकतो गोकुले।
ह्लादिन्या परकीययेव सहितो ह्यग्रोऽवतारीह य
श्री कृष्णोऽवततार च स रसिक स्वान्त समुल्लासयेत् ॥१॥

इसी प्रकार काव्य के अन्त में भी कवि कहता है—
मालाकृतेव कुसुमोत्थमिवात्तमेण
प्रेम्णा गुणेन च मया ग्रथित हि हारम्।
राधोत्थितप्रमदसारपर पवित्रम्
कुर्वन्ति के सहृदया हृदये न मोदात् ॥१०३॥

जिस तरह कोई माली पुष्पों का हार बनाता है, उसी तरह इस कवि ने भी प्रेम रूपी सूत्र के आधार पर राधा की प्रसन्नता के लिये यह पवित्र काव्य लिखा है। इस प्रकार इस काव्य में कवि की धार्मिक भावना भी अन्तर्निहित है।

सन्देश काव्यों में जितने भी सन्देश वाहक कवियों ने अपनी प्रतिभा से कल्पित किये हैं, वे या तो पशु पक्षी हैं या कोई निर्जीव पदार्थ हैं। लेकिन इस काव्य में वृन्दावन से मथुरा जाते हुये एक पथिक को गोपियों का दूत कल्पित करके कवि ने काव्य में कुछ वास्तविकता ला दी है और कथावस्तु कल्पित होते हुये भी बड़ी चतुरता के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की गई है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि विषय, शैली और छन्द की दृष्टि से यह काव्य एक अभिनव रचना है। सन्देश-वाहक का चुनाव करने में कवि ने वास्तविकता से काम लिया है और काव्य को नितान्त मौलिक बना दिया है।

नित्यानन्द शास्त्री का हनुमद्दूत (वि० सं० १९८५)

आधुनिक सन्देशकाव्यों में इस सन्देश-काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। इस काव्य में मेघदूत के प्रत्येक पद की चतुर्थ पंक्ति को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। जोधपुरनिवासी, दाधीचकासल्यगोत्रीय, कविराज तथा आशुकवि श्री नित्यानन्द शास्त्री द्वारा यह काव्य लिखा गया है। लेखक ने काव्य की प्रस्तावना में आषाढ शुक्ल एकादशी वि० सं० १९८५ (ता० २८-६-२८) ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है। काव्य के अन्त में ग्रन्थकार ने अपना परिचय देते हुये लिखा है—

> जात धीरधुरन्धरात्कविमहेन्द्रान्माधवाद् भ्रातृजाद्
> राधाकृष्ण समाह्वय यमकृत श्री वैद्यनाथ सुतम्।
> सोऽयं योधपुरेन्द्रमाश्रित इम दाधीच-कासल्यको
> नित्यानन्दकवि र्व्यधत्त हनुमद्दूत द्विभापात्मकम् ॥२॥५८॥

> इति श्री जोधपुर महाराजाश्रितेन माधवकवीन्द्रतनुजनुपा द्यासश्री-
> वैद्यनाथनन्दनेन कविराजाशुकविना दाधीचकासल्योपाख्येन
> श्रीनित्यानन्दशास्त्रिणा रचितं श्री हनुमद्दूतोत्तरार्धं समाप्तम्।

लेखक को जोधपुर का एक विशिष्ट साहित्यिक माना जाता है। चौपासनी हाई स्कूल जोधपुर में अध्यापन कार्य करने के बाद जोधपुर स्टेट लाइब्रेरी के अध्यक्ष के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। हिन्दी और संस्कृत में समस्यापूर्ति के साथ बहुत सी फुटकर कवितायें भी इन्होंने लिखी हैं। संस्कृत में गणपदी और लक्ष्मीषट्पदी इत्यादि मुक्तक कवितायें इनकी लिखी हुई हैं। जैन आत्मानन्द सभा भावनगर से प्रकाशित चेतोदूत और मेघदूत समस्यालेख इत्यादि समस्यापूर्तिपरक कतिपय सन्देश काव्यों का इन्होंने संशोधन तथा संपादन किया है। संभव है कि इस संशोधन तथा संपादन कार्य से ही इन्हें भी मेघदूत की समस्यापूर्ति के आधार पर इस सन्देशकाव्य के लिखने की प्रेरणा मिली हो। अपने काव्य की प्रस्तावना में इन्होंने लिखा है—

> प्रणीतवानस्मि शतानि मुक्तकान्यहं समस्यापरिपूर्तिमाश्रयन्।
> कवीन्द्रवंशस्थकविर्भवन्नपि परं निबन्धं कृतवान्न तादृशम् ॥३॥

> इत्याकलय्य किल चेतसि कालिदासजीमूतदूत-वरपद्य चतुर्थपादान्
> निष्पन्य तुर्यचरणस्थलसंश्रयेषु काव्यं नवं व्यधिषि राघवदूतदूतम् ॥७॥

इन पद्यों में कवि ने मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ पाद को लेकर समस्यापूर्ति परक किसी नवीन सन्देशकाव्य के लिखने की अपनी उत्कट इच्छा व्यक्त की है। उसी के परिणामस्वरूप यह सन्देशकाव्य लिखा गया है।

काव्य की कथा

इस काव्य की कथा वाल्मीकि रामायण से सम्बद्ध है। रामचन्द्रजी के द्वारा हनूमानजी को सीताजी की खोज में लंका भेजने की घटना के आधार पर इस सन्देश काव्य की रचना की गई है। काव्य की कथा इस प्रकार है। प्रस्रवण गिरि पर सुग्रीव इत्यादि के सहित रामचन्द्रजी ठहरे हुए हैं। सीताजी की खोज के लिये विभिन्न दिशाओं में वानरों का दल भेजा जा रहा है। लंका की ओर भेजे जाते हुए हनुमानजी को विशेष बलशाली तथा कुशल देखकर रामचन्द्रजी उनका विशेष स्वागत करते हैं तथा अभिज्ञान स्वरूप अपनी अंगूठी देकर उन्हें सीताजी के प्रति दिया जाने वाला अपना सन्देश भी सुनाते हैं। सन्देश सुनाने से पूर्व लंका तक का मार्ग वर्णित किया गया है। सर्वप्रथम प्रस्रवणगिरि से विन्ध्यपर्वत, वहां से फिर नर्मदा और गोदावरी नदी, तदनन्तर मेखल, उत्कल और दशार्ण देशों में से होते हुये वेत्रवती नदी को पार कर आम्रवन्ती (आग्यवन्ती) नगरी और फिर अवन्ति-नगरी पहुंचने का हनुमान्जी को परामर्श दिया गया है। वहां से फिर विदर्भ देश और कुण्डिनपुर तथा ऋषिक (ऋषिक), माहिष, मत्स्य और कलिंग देशों को देखते हुये कौशिक देश जाने का हनुमान्जी को आदेश दिया गया है। तदनन्तर दण्डकारण्य और गोदावरी नदी को पार कर आन्ध्र, पुण्ड्, चोल, पाण्ड्य, केरल इत्यादि देशों में से होते हुये मलयपर्वत (अयोमुख), कावेरी नदी और ताम्रपर्णी नदी पर हनुमान्जी के पहुंचने का उल्लेख किया गया है। ताम्रपर्णी नदी के बाद महेन्द्र-पर्वत तथा उसके किसी उच्च शिखर पर चढ़कर वहीं से समुद्र को लांघ कर लम्ब नामक पर्वत पर उतरने और वहां से फिर हनुमान्जी के लंका पहुंचने का वर्णन किया गया है।

इस प्रसंग में लंका नगरी का कुछ वर्णन भी दिया गया है। तदनन्तर नगरी के बाहर ही उद्यान में विशेषतया अशोक या मन्दार वृक्ष के निकट सीताजी की खोज करने का हनुमान्जी को परामर्श दिया गया है। उद्यान में एक ओर तड़ाग, क्रीडा गिरि, अशोक और वकुल वृक्ष बताये गये हैं तथा मध्य में शिंशपा वृक्ष बतलाया गया है। इस शिंशपा वृक्ष के नीचे अथवा नगरी में कहीं पर सीताजी के मिलने की संभावना करते हुये उनकी विभिन्न विरह चेष्टाओं और अवस्थाओं के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने हनुमान्जी को सीताजी के लिये दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। सन्देश सुनने के बाद हनूमानजी निर्दिष्ट मार्ग से लंका पहुंच कर सीताजी को रामचन्द्रजी का सन्देश सुनाते हैं तथा अभिज्ञान स्वरूप रामचन्द्रजी की अंगूठी भेंट करते हैं। इसके बाद लौटते समय सीताजी का सन्देश और चूडा-मणि लाकर रामचन्द्रजी की सेवा में उपस्थित होते हैं। तदनन्तर रामचन्द्रजी वानर सेना लेकर लंका पहुंचते हैं और रावण को मार कर सीताजी के साथ अयोध्या वापिस लौट आते हैं।

बस, यहा पर ही काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य समीक्षा

यह काव्य वाल्मीकि रामायण और मेघदूत से प्रेरणा लेकर लिखा गया है। कालिदास ने मेघदूत में हनुमान्जी और सीताजी का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसी उद्धरण के आधार पर कवि ने हनुमद्दूत लिखने की प्रेरणा पाई है। इसके अतिरिक्त इस काव्य में मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ चरण को लेकर समस्यापूर्ति भी की गई है। अत मौलिक सन्देश काव्य होने के साथ-साथ मेघदूत की समस्यापूर्ति होने के कारण आधुनिक सन्देश काव्यों में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। समस्यापूर्ति के कारण, मेघदूतका मन्दाक्रान्ता छन्द ही काव्य में प्रयुक्त हुआ है। काव्य दो भागों में बटा हुआ है। पूर्वभाग में ६८ तथा उत्तरभाग में ५८ श्लोक हैं। पूर्व भाग में मार्गवर्णन तथा दूसरे भाग में लका नगरी का वर्णन, सीताजी की विरह चेष्टायें और विरहावस्थायें तथा अन्त में सन्देश कथन है। काव्य में विप्रलम्भ शृगार ही प्रधान है। विषय, भाव तथा शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत जैसा ही है। इसमें भी एक प्रेमी का अपनी प्रेयसी के लिये प्रणयसन्देश पाया जाता है। मार्गवर्णन इत्यादि सब कुछ मेघदूत जैसा ही है। जिस तरह मेघदूत में प्रत्येक स्थान का शृगार रसयुक्त वर्णन पाया जाता है, उसी तरह इस काव्य में भी तत्तत् स्थानों के वर्णन में शृगार रस का पुट स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। कुण्डिनपुर का वर्णन करते हुये कवि कहता है–

यत्र प्रोल्वैरतिघनरसाभ्यन्तर पुष्करिण्या
भीमक्रीडासरसिजवनीमारुतो मारुतोऽत्र ।
स्त्रणा' खेद हरति सुदृशा द्राग् यथा इयुरुजविन्या
सिप्रावात' प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥३३॥

इसी प्रकार अवन्तिनगरी में क्रीडाशैल पर हनुमान्जी की विभिन्न क्रीडायें देखकर यहा की स्त्रियों की चेष्टाओं का कवि ने बड़ा मधुर वर्णन किया है–

कापेयेभ्य कपि कुलपते ! कौतुकात्कल्पितेभ्य -
स्तेभ्यस्त्रस्ता रहसि हसितास्याम्बुजा मानवत्य ।
यूनां चित्त स्तनविरचितैर्वा कटाक्षैर्हरेयु
स्त्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥१॥३०॥

जिस प्रकार मेघदूत में अलका नगरी को शृगार रस का केन्द्र सा वर्णित किया गया है, उसी प्रकार लका नगरी भी शृगार रस के दृष्टिकोण से ही वर्णित की गई है। लका के वर्णन प्रसंग में कवि लिखता है–

सिप्रक्षिप्ताभिर्धुतिवसन श्रोणित ग्रन्थदिभ्र'
काञ्चीखण्डै स्तनविदलितै रत्नमालीयरत्नै ।

धम्मिल्लाच्च प्रपतिततरैयंत्र सन्तानपुष्पै—
नशो मार्गे सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥२॥११॥

कैलासाद्रावपि सुखकरं रावणापूर्वभक्ति—
वश्योऽत्रश्य बहिरुपवने यत्र तिष्ठत्युमेशः ।
तद्भीत्या मा धरतु मदनो धन्व, यत् सत्कटाक्षै—
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥२॥१२॥

इन पद्यों में मेघदूत का अनुकरण स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है। मेघदूत में यक्ष के घर में वापी का वर्णन किया ही गया है। इसी प्रकार इस काव्य में भी लंका नगरी के बाहर उपवन में एक तटाक का उल्लेख किया गया है—

तत्रैकोऽस्ति स्फटिकरचिताखण्डसोपानपंक्ति
सफुल्लाम्भोरुहसुरभितस्वच्छनीरस्तटाकः ।
यद्वास्तव्या इदमपि सखे! मानसं मानसौको
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥२॥१५॥

समस्यापूर्ति के साथ-साथ कवि ने मूल श्लोक के भाव को भी बड़ी सुन्दर रीति से सुरक्षित रक्खा है।

सीताजी की विरह चेष्टाओं के वर्णन में कवि ने अपनी भावुकता और संवेदनशीलता का अच्छा परिचय दिया है। रामचन्द्रजी सीताजी का वर्णन करते हुये कहते हैं—

तां मे प्राणान् परिचिनु बहिश्चारिणो मारुतौन—
ध्यानैकाग्रां कमपि न परं प्रेक्षमाणां मृगाक्षीन् ।
मद्विश्लेषामयनिपुरिता प्राणनीमाशयैव
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२॥२२॥

सीताजी को रामचन्द्रजी के 'बहिश्चारिण प्राणान्' बताकर कवि ने इन दोनों के प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त कर दी है। सीताजी की चिन्ता और उत्कण्ठा का कवि ने एक साथ ही इस श्लोक में बड़ा ही संश्लिष्ट वर्णन किया है। प्रिय विरह में सीताजी किस प्रकार अपने दिन काटती हैं। तनिक इसका भी वर्णन देखिये—

संख्याती-याऽङ्गुलिभिरखिलान् वीतविश्लेषमासा—
नाकारं मे घटजपयसा याऽलिखन्त्यग्रजाग्रे ।
ध्यायन्ती वर्त्मभिक्षहितं श्वोऽथ वा दूत पश्चाद्
प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः ॥२॥२६॥

घट के दूध से कमल के पत्र पर चित्र बनाने का विचार बड़ा ही सुन्दर है। आगे चल कर सीताजी की विरहावस्था का वर्णन आता है। इस प्रसंग में रामचन्द्रजी कहते हैं—

क्षाम कायं खलु तत इतः स्थण्डिले लोटयन्ती
दीना हंसीमिव सितजले पङ्कशेषे तडागे।
प्रेमालापैरजनि रजनिः प्राक् समाप्ता मयाया
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥२॥२८॥

सीताजी को 'दीना हंसीमिव' उपमा देकर कवि ने उनकी सुकुमारता और कृशता की बड़ी सूक्ष्म व्यंजना की है। एक अन्य स्थल पर सीताजी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

सा तन्वङ्गी कुसुममृदुलं स्वर्णगौरं शरीरं
भूषाहीनं धरणिशयनाद् धूसितं धारयन्ती।
त्वामद्य प्राक् सदयहृदय ! स्मारयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥२॥३२॥

कुसुम-समान कोमल तथा स्वर्ण समान गौर शरीर को धूलि धूसरित देखकर किस सहृदय के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित न होगी।

सीताजी की विरहावस्था के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने हनुमान्जी को अपना सन्देश सुनाया है। यक्ष की तरह रामचन्द्रजी भी सीताजी के अंगों की छटा विभिन्न सुन्दर वस्तुओं में देखने की चेष्टा करते हैं, लेकिन खेद है कि कहीं भी उन्हें सीता जैसा सौन्दर्य नहीं दिखलाई देता। वे कहते हैं—

स्वर्णाभिन्या सहचरि ! वपुर्वक्त्रलक्ष्मीं हिमांशौ
भ्रूसौन्दर्यं धनुषि चमरीकेशभारेषु केशान्।
उत्प्रेक्षेऽहं करटिगमने किञ्च गत्या विलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

मेघदूत से प्रेरणा लेने पर भी कवि ने यहां पर कुछ नवीन भावों का समावेश किया है।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न में रामचन्द्रजी सीताजी को देखते ही हैं कि मुर्गों के उच्च स्वर से उनकी निद्रा भंग हो जाती है और उनकी आँखें खुल जाती हैं। इस तरह स्वप्न में भी वे सीताजी के दर्शन नहीं कर पाते—

यावद् यामे रमणि ! रजनेरन्तिमे मां कथंचिन्
निद्रायां स्वन्निमिलितसुखदः स्वप्न आयाति तावत्।

उच्चैरुन्मीलति सपदि हक् कुक्कुटानां विरावैः
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥२॥४४॥

इस श्लोक में प्रिय की विवशता और असहायावस्था कितने सुन्दर ढंग से चित्रित की गई है। प्रायः रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही स्वप्न दिखाई देते हैं और मुर्गा भी तब ही बोलता है। इस तरह मुर्गे के शब्द से स्वप्न का भंग हो जाना स्वाभाविक ही है।

सीताजी के विरह में रामचन्द्रजी कहते हैं कि उनका चित्त बिलकुल निराश्रय हो गया है। किसी भी बात में उसकी रुचि नहीं रह गई है—

स्प्रष्टुं नो त्वग्, न निशमयितुं श्रोत्रकं, नेक्षितुं दृग्
घ्रातुं नासा नहि, रसयितुं नेच्छतीष्टं च जिह्वा।
यस्मै चित्तं सुमुखि भवभिन्नान्तरात्मस्तथैव
नाद्योप्यस्मि कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥२॥४७॥

विरह में मनुष्य तत्तद् विषयों से विरक्त हो ही जाता है। इस प्रकार सन्देश में अपनी मनोव्यथा बतलाकर अन्त में सीताजी को आश्वासन भी दिया गया है—

नित्यो ह्येव प्रकृतिनियमोऽनित्यता नैति नित्यं
दुःखस्यान्ते सुखमिति सुनिर्धार्य धैर्यं धरेऽहम्।
तस्मात्मा भूस्त्वमपि नितरां कातरा कातराक्षि
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥२॥४८॥

आगे चल कर फिर कहा गया है—

सीतार्थं किल कृतवता रक्षसोऽद्य विरोध-
बीजे नामक्षयमपगते मत्पतङ्गातिघृष्ट्या।
कामं कामान्पुनरपि शचीन्द्रावियावो मृगाक्षि!
निर्वेक्ष्याव परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥५१॥

इस तरह सीताजी को पुनर्मिलन का आश्वासन देकर सन्देश समाप्त कर दिया गया है।

समग्र काव्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काव्य भी एक सुन्दर सन्देश काव्य है। मेघदूत की समस्यापूर्ति होते हुये भी काव्य में दुरूहता बहुत ही कम है। इसका मुख्य कारण यही है कि इसमें मेघदूत की पंक्ति के मूल भाव को तोड़ मरोड़ा बहुत कम गया है। दूसरे भावों तथा रस की समानता ने भी काव्य को दुरूह नहीं बनने दिया है। समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुये भी

कवि ने अपनी प्रतिभा का स्थान-स्थान पर पूर्ण चमत्कार दिखाया है। मेघदूत में निर्विन्ध्या नदी के सम्बन्ध में मेघ से कहा गया है—

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥१॥३०॥ इत्यादि

मेघदूत के इस पद्य की चतुर्थपंक्ति को लेकर कवि ने क्या ही सुन्दर समस्या पूर्ति की है। रामचन्द्रजी मार्गवर्णन करते हुये हनुमान्‌जी से कहते हैं—

भूयोऽप्यन्या क्षणमिति पुनान्तर्मनैवैभयैस्त्वं
कल्पातिथ्य कथमपि पुरो द्राक् प्रयातु यतेथाः।
यस्मात् सीता चिरविरहजं प्रत्यहं धैर्यधाम।
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥१॥३१॥

नदी के सबन्ध में कहे गये वचन को कवि ने कितनी कुशलता से सीताजी के सबन्ध में जमा दिया है।

अलका नगरी का वर्णन करते हुये मेघदूत में मेघ से कहा गया है—

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥[illegible]॥ इत्यादि

इस पद्य के चतुर्थ चरण को लेकर समस्यापूर्ति के साथ साथ इस काव्य में भी हनुमान्‌जी और लंका में परस्पर तुलना की गई है—

हैमाकाराः कनकवपुष साधुकापेयशोभाः
सत्कापेय विमलममलाः सौर्मिकं सोर्मिकाश्च[1]।
सत्कौपीनांशुकपरिचिताश्चारुकौपीनवस्त्रं
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥[illegible]॥

उपर्युक्त पद्य में लंका के प्रासादों और हनुमान्‌जी की परस्पर जो तुलना की गई है, वह मेघदूत के अनुकरण का ही परिणाम है। समस्यापूर्ति के साथ साथ कवि ने अपनी कल्पना से एक सुन्दर चित्र यहां उपस्थित कर दिया है।

---

[1] साधुका रमणीया अतएव आपेया शोभा येषां ते इति प्रासादपक्षे।
सद् विद्यमानं कापेयं कपिकर्म यस्येति हनुमत्पक्षे। सौर्मिका समांशाद्या इतिप्रासादपक्षे।
सौर्मिकं साभिज्ञानाऽङ्गुलीयकम् इति हनुमत्पक्षे। सत्सु प्रशस्तायां कौ
भूमौ पीना विपुला ये अंशुका किरणा ते परिचिता इति प्रासादपक्षे।

मेघदूत में यक्ष ने अपने घर की पहिचान बताने के बाद कहा है—

> क्षामच्छाय भवनमधुना मद्वियोगेन नूनम्
> सूर्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥२॥१६॥

इस पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुये कवि ने निम्न पद्य लिखा है—

> तस्या नीचैर्युवतिषु समाशास्महे भाग्यशालिन्
> सीता चिन्तामणिमिव मणिव्याप्नुयास्ता सचिन्ताम् ।
> यस्या धत्ते वदनमधुना म्लानता मद्वियोगे
> सूर्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥२॥१६॥

समस्यापूर्ति तो इस पद्य में की ही गई है, बल्कि मूल पंक्ति को और भी सुन्दर प्रसंग में जमा दिया गया है। मुख और कमल का सादृश्य तो सर्वविदित ही है, अत यह दृष्टान्तालकार और भी चमत्कार उत्पन्न करता है।

मेघदूत में यक्ष हिमालय से आती हुई हवाओं का आलिंगन करता है। इसी के अनुकरण पर इस काव्य में भी रामचन्द्रजी के सबध में लिखा गया है—

> कृत्वा पूर्वं कमलमुखि ! ये ताम्रपर्ण्यम्बिसग—
> तीर्थस्नान विदधति चिर चन्दनारण्यधाम्राम् ।
> आलिंग्यन्ते सुरभितघनास्तेऽनिला दाक्षिणात्या
> पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥२॥४६॥

उत्तर दिशा में स्थित रामचन्द्रजी का दक्षिण में स्थित सीताजी की ओर से आने वाली दक्षिण हवाओं का आलिंगन करना उचित ही है। समस्या-पूर्ति के साथ साथ कवि ने हवाओं में भी परिवर्तन कर दिया है।

इस तरह समस्यापूर्ति के दृष्टिकोण से भी यह काव्य बड़ा ही सफल और भावपूर्ण है। कहीं २ मेघदूत के भाव में ही समस्यापूर्ति की गई है और कहीं-कहीं कवि ने अपनी प्रतिभा से भावान्तर का भी समावेश कर दिया है।

समस्यापूर्ति के साथ-साथ कवि ने कहीं कहीं बड़ी सुन्दर कल्पनायें भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। अयन्तिनगरी में क्रीडाशैल पर क्रीडा करते हुये हनुमानजी को देखकर वहा की स्त्रियों के मन में क्या भाव उठते हैं। जरा इसका भी ध्यान कीजिये—

> स्पर्दन्तीन्द्र' किमयमथवा जंगम पर्वतो वा
> पुच्छातुच्छोच्छलितलसितोऽलौकिकोऽयं कपीन्द्र' ।

पश्यन्तीनामतिचकितमिन्यूहनैरङ्गनानां
लीलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥१॥२६॥

मेघदूत में मार्ग वर्णन करते समय कहा गया है कि मेघ के गर्जन को सुनकर मानसरोवर की ओर जाने वाले राजहंस उसके सहायक हो जायेंगे। इसी प्रकार इस काव्य में भी राजहंसों का हनुमान्‌जी का सहायक होना बताया गया है। लेकिन यहां वे मानसरोवर की ओर नहीं जा रहे हैं, बल्कि शरद् ऋतु के आजाने के कारण उल्टे मानसरोवर से दक्षिण की ओर आ रहे हैं–

कीशाधीश द्रुतगतिरिसायूर्मिकाहीरकांशु-
माला चञ्चा बिसकिसलयभ्रान्तित संलिहन्त ।
प्रत्यायान्त शरदुपगमे मानसाद्दक्षिणस्यां
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसा सहायाः ॥१॥११॥

अंगूठी से निकलती हुई किरणमाला को कमलनाल समझकर अपनी चोंचों से चाटते हुये हंसों का हनुमान्‌जी के साथ साथ चलते आना लेश मात्र भी अरुचिकर नहीं हो सकता। कवि की कल्पना यहां देखते ही बनती है।

जैसा कि पहिले कहा गया है कि यह काव्य वाल्मीकि रामायण से भी प्रेरणा लेकर लिखा गया है, तदनुसार इस काव्य में मार्गवर्णन वाल्मीकि रामायण से बिलकुल मिलता जुलता है (दे० वा० रा० किष्किन्धा काण्ड ४१ वां सर्ग)। काव्य का कथानक तो रामायण की कथा पर आश्रित है ही। इसके अतिरिक्त कवि ने हनुमान्‌जी द्वारा सीताजी को अपना परिचय देने के बाद सीताजी की उत्सुकता का वर्णन करते हुये कहा है–

इत्युक्ते सा भगिति दमयन्तीव विप्र पुरोक्ता
सा मान्य त्वां मुदितमनसा वाचिकं श्रोतुकामा ॥२॥३६॥

इस पद्य में दमयन्ती और ब्राह्मण के उल्लेख से यह भी प्रतीत होता है कि इस काव्य को लिखते समय कवि के ध्यान में नलदमयन्ती की कथा भी जागरूक थी।

उपर्युक्त विवेचन से पाठक गण को इस काव्य की विशिष्टताओं का परिचय मिल गया होगा। हनुमद्दूत लिखकर कवि ने संदेशकाव्यों की आदिस्रोत रामायण की कथा के प्रति संदेशकाव्यों के रचयिताओं के ऋण को चुका दिया है। संदेशकाव्य के शिल्पविधान के दृष्टिकोण से भी यह काव्य ठीक ही है। हनुमान्‌जी को देखना, उन्हें दूतकार्य में नियुक्त करना, मार्ग बताना, लंका नगरी तथा आवश्यक स्थानों का परिचय देना, सीताजी का वर्णन और सन्देश-कथन सब यथा स्थान इस काव्य में पाया जाता है। विप्रलम्भ शृंगार इस काव्य का मुख्य रस है। राम जैसे

धीरोदात्त नायक तथा सीता जैसी उत्तम नायिका और हनुमान् जैसे कुशलदूत-इन सब ने काव्य को और भी मनोहर बना दिया है। मेघदूत की समस्या पूर्ति यों तो और भी सदेशकाव्यों में पाई जाती है, लेकिन वे प्राय जैनपरम्परा में आते हैं। अत उनका विषय विप्रलम्भ शृगार के क्षेत्र से बाहर है। इसीलिये उनकी समस्यापूर्ति बडी जटिल हो गई है। विप्रलम्भ शृगार के प्रसग में आये हुये वाक्य को यथाकथचित तोड मरोड कर उन्होंने शान्त रस में बैठालने की चेष्टा की है। लेकिन इस सदेश काव्य में समस्यापूर्ति करते समय ऐसी कोई क्लिष्टकल्पना नहीं की गई है। भाव तथा रस दोनों काव्यों में समानान्तर ही हैं। अत सन्देश काव्य तथा समस्यापूर्ति इन दोनों के दृष्टिकोण से यह काव्य एक सफल रचना है और पाठकों के हृदय पर कवि की सहृदयता और विद्वत्ता का प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। कवि ने अपनी भूमिका में लिखा है—

कृतिरमरनदीव कालिदासी परमहिमालयसमगाऽमला क्व।
मम तु भणितिरद्युतेर कुल्या क्व घनरसातिशयेन हन्त हीना ॥५॥
भवतु सुरसरित्तथापि कुल्या सुरसरिता सह सगता कथचित्।
इति मम कविताऽपि कालिदास सुकवितया मिलिता पवित्रिता स्यात् ॥६॥

कवि के इन वचनों को हम उसकी नम्रोक्ति ही कहेंगे। मेघदूत की स पूर्ति होने के कारण जैनेतर सदेशकाव्यों में इस काव्य का एक विशिष्ट सन्देशकाव्यों के ऐतिहासिक विवेचन में इस काव्य के महत्त्व को क्र किया जा सकता।

मल चौधरी द्वारा
सपादित तथा ...।

वक्रवर्ती
आर, क

—: इति शम् :—

परिशिष्ट १

प्रस्तुत ग्रन्थ के आधारभूत सन्देश काव्य

१ इन्दु दूतम् —ले० श्री विनय विजय गणि। मुनि श्री धुरन्धर विजय द्वारा प्रणीत प्रकाश व्याख्या सहित श्री जैन साहित्य-वर्धक-सभा, शिरपुर (पश्चिम खान देश) से स० १६४६ ई० में प्रकाशित।

२ उद्धव-दूतम्—ले० श्री माधव कवीन्द्र भट्टाचार्य। श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य संग्रह प्रथम भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ५३१—५६५ पर स० १८८८ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित। डा० जोन हेबर्लिन द्वारा अपने काव्यसग्रह में कलकत्ते से स० १८४७ ई० में प्रकाशित।

३ उद्धव संदेश —ले० श्री रूपगोस्वामिन्। श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य समग्रह, तृतीय भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ २१५-२७५ पर स०१८८८ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित।

४ कोक सन्देश—ले० विष्णु त्रात। त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से ग्रन्थांक १२५ के रूप में स० १६३७ ई० में प्रकाशित।

५ कोकिल-संदेश —ले० उद्दण्ड कवि। श्री पी० एस० अनन्त नारायण शास्त्री की टिप्पणी सहित मगलोदयम् प्रेस, त्रिचूर से स० १६३६ ई० में द्वितीय संस्करण प्रकाशित।

६ घट कर्पर यमक काव्यम्—ले० घट कर्पर कवि। सर्वत्र प्रकाशित।

७ चेतो दूतम् —ले० (अज्ञात)। जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से वि० सं० १६७० में प्रकाशित।

८ जैन मेघदूतम् —ले० आचार्य मेरुतुग। श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से वि० स० १६८० में प्रकाशित।

६ नेमि-दूतम् —ले० विक्रम कवि। जैन प्रेस, कोटा से प्रकाशित।

१० पवन-दूतम् —ले० धोयि कवि। श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती द्वारा संपादित तथा संस्कृत-साहित्य-परिषद्, श्याम बाजार, कलकत्ता द्वारा स० १६२६ ई० में प्रकाशित।

११ पवन-दूतम् —ले० वादि चन्द्रसूरि। हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई से स० १६१४ ई० में प्रकाशित।

१२ पदाङ्क-दूतम् —ले० कृष्णनाथ सार्वभौम। श्री जीवानन्द विद्यासागर के काव्य-संग्रह, प्रथम भाग, तृतीय संस्करण में पृष्ठ ५०७–५३० पर कलकत्ता से स० १८८८ ई० में प्रकाशित।

१३ पान्थ दूतम् —ले० टिकुरी (बंगाल) निवासि श्री भोलानाथ कवि। प्राच्यवाणी पत्रिका, कलकत्ता, भाग ६ जनवरी-दिसम्बर, १९४९ में मूलमात्र प्रकाशित।

१४ पार्श्वाभ्युदय काव्यम् —ले० श्री आचार्य जिनसेन। श्री के० बी० पाठक द्वारा पूना तथा श्री योगिराट् पण्डिताचार्य, श्रवण-बेल गोल-निवासी की टीका के साथ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से स० १९०९ ई० में प्रकाशित।

१५ पिक दूतम् —ले० रुद्र न्यायपञ्चानन। श्री अनन्तलाल ठाकुर द्वारा प्राच्यवाणी पत्रिका, कलकत्ता, भाग ? स० १९४५ में प्रकाशित।

१६ भृंग-दूतम् —ले० शतावधान कवि श्री कृष्ण देव। नागपुर विश्व विद्यालय पत्रिका, स० ३ दिसम्बर स० १९३७ ई० में प्रकाशित।

१७ भृंग सन्देश —ले० वासुदेव कवि। त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से स० १२८ के रूप में स० १९३७ ई० में प्रकाशित।

१८ भ्रमर दूतम् —ले० रुद्रन्याय पञ्चानन। डा० जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा स० १९४० ई० में कलकत्ते से प्रथम बार संपादित तथा प्रकाशित।

१९ मनो-दूतम् —ले० विष्णुदास। श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती द्वारा संपादित तथा संस्कृत-साहित्य परिषद्, श्याम बाजार, कलकत्ता से स० १९३७ ई० में प्रकाशित।

२० मनो-दूतम् —ले० तैलंग व्रजनाथ। निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से काव्य माला त्रयोदश गुच्छक में प्रकाशित।

२१ मयूर-संदेश —ले० उदय कवि। डा० सी० कुन्हन राजा द्वारा संपादित तथा ओ० बी० ए० पूना से स० १९४८ ई० में प्रकाशित।

२२ मेघ-दूतम् —ले० कालिदास। विभिन्न स्थानों से प्रकाशित।

२३ मेघ प्रतिसंदेश —ले० मन्दिकल राम शास्त्री कविरत्न। गवर्नमेंट प्रेस, मैसूर से स० १९२३ ई० में प्रकाशित।

२४ मेघदूत-समस्यालेख — ले० आचार्य मेघविजय। श्री जैन आत्मानन्द-सभा, भाव नगर से वि० सं० १६७० में प्रकाशित।

२५ यक्ष मिलनकाव्यम् — ले० महामहोपाध्याय श्री परमेश्वर झा। रामेश्वर प्रेस, दरभंगा से शाके १८१७ में प्रकाशित।

२६ वात-दूतम् — ले० कृष्णनाथ न्यायपंचानन। इलिसियम प्रेस, नं० ६ काशी घोष मार्ग कलकत्ता से स० १८८६ ई० में प्रकाशित।

२७ शील दूतम्— ले० श्री चारित्रसुन्दरगणि। यशोविजय ग्रन्थमाला, बनारस से प्रकाशित।

२८ शुक सन्देश — ले० लक्ष्मीदास। श्री पी० एस० अनन्त नारायण शास्त्री द्वारा प्रणीत टिप्पणी सहित मंगलोदयम् प्रेस, त्रिचूर से प्रकाशित।

२९ हंस दूतम् — ले० श्री वामन भट्ट बाण। डा० जे० बी० चौधरी द्वारा कलकत्ते से स० १६४१ ई० में प्रकाशित।

३० हंस दूतम् — ले० श्री रूप गोस्वामिन्। श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य संग्रह, प्रथम भाग, तृतीयसंस्करण, पृ० ५४१–५६७ पर कलकत्ते से स० १८८८ ई० में प्रकाशित।

३१ हंस सन्देश — ले० श्री वेदान्तदेशिक। वी० रामस्वामी शास्त्रुलु एण्ड सन्स मद्रास से स० १६३७ ई० में प्रकाशित। गवर्नमेंट प्रेस, मैसूर से स० १६१३ ई० में प्रकाशित।

३२ हंस-सन्देश — श्री पूर्ण सारस्वत। त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से स० १२९ के रूप में स० १६३७ ई० में प्रकाशित।

३३ हंस-सन्देश — ले० अज्ञात। त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से स० १०३ के रूप में स० १६३० ई० में प्रकाशित।

३४ हनुमद् दूतम् — ले० श्री नित्यानन्द शास्त्री, जोधपुर। खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा बम्बई से वि० स० १६८५ में प्रकाशित।

परिशिष्ट ५

अन्य उपलब्ध सन्देश काव्य

१ अनिल-दूतम् —ले० रामदयालु तर्करत्न। हस्तलिखित प्रति के कुछ अंश ही उपलब्ध। संस्कृत दूत काव्य माला, १४७ (१), प्राच्यवाणी-मन्दिर कलकत्ता का हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह देखना चाहिये।

२ अमर-सन्देश —श्री गुस्टव आपर्ट (Gustav Oppert) द्वारा संकलित दक्षिण-भारत के निजी पुस्तकालयों के संस्कृत-हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग ४ सं० ७८०४ मद्रास देखना चाहिये।

३ इन्दु-दूतम् (चन्द्रदूतम्) — ले० श्री जम्बू कवि। डा० जे० बी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा प्रथम बार सं० १९४१ ई० में सम्पादित तथा प्रकाशित।

४ काक-दूतम् —(क) सहृदयम्, संस्कृत मासिक पत्र, मद्रास, भाग २३, पृष्ठ १७३
(क)
(ख)
देखिये तथा (ख) पञ्चयूपी, कलकत्ते के श्री गंगाधर ठाकुर के वंशज और दीनबन्धु मुखोपाध्याय के पुत्र गौरगोपाल शिरोमणि का भी एक काकदूत उपलब्ध है। संदर्भ के लिये 'वंगीयदूत-काव्येतिहास' पृष्ठ ६७ देखिये।

५ कीर दूतम् —(क) ले० राम गोपाल। लेखक संभवतः नदिया के राजा रामचन्द्र
(क)
(ख)
का सभा कवि था। श्री हर प्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की सूची भाग १ पृ० ३१ सं० ६७ देखनी चाहिये। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। (ख) एक अन्य कीरदूतम् श्री वेदान्त देशिक के पुत्र श्री वरदाचार्य का भी लिखा हुआ है। मैसूर की गुरु परम्परा में ऐसा उल्लेख पाया जाता है।

६ कृष्ण-दूतम् —ले० नृसिंह कवि। अड्यार पुस्तकालय का हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग २, सं० ४ देखिये।

७ कोकिल संदेश –(क) ले० आचार्य वेदान्त देशिक के पुत्र श्री वरदाचार्य। डब्लू०एफ०
(क)
(ख)
(ग)
(घ)
गुणवर्धन, न्यूयार्क द्वारा सम्पादित। इस काव्य का मैसूर की गुरु परम्परा में उल्लेख पाया जाता है। (ख) शतक्रतु तातार्य के पुत्र वेंकटाचार्य द्वारा प्रणीत। श्री पी० पी० एस० शास्त्री द्वारा संकलित तंजौर पैलेस लाइब्रेरी की हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग ७, सं० २८६३ देखिये। (ग) गुणवर्धन द्वारा

प्रणीत। सीलोन ऐन्टिक्वेरी, भाग ४, १११ पृष्ठ देखिये। (घ) नरसिंह कवि द्वारा प्रणीत। अदुयार पुस्तकालय का हस्त लिखित पुस्तकों का सूचीपत्र भाग २, सं० ४ देखिये।

८ कोकिल-दूतम् —ले० हरिदास। कालिदास सेन द्वारा प्रणीत मणिमाला व्याख्या सहित सुधामय प्रामाणिक द्वारा कलकत्ते से वग सं० १३११ में प्रकाशित।

९ गरुड सन्देश (क) (ख) —(क) ले० येल्लकोंड रामराय। श्री कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३३३ देखिये (ख) एक अन्य गरुड सन्देश श्री कोच नरसिंहाचार्य, तिरुपति का भी लिखा हुआ है।

१० घनवृत्त —ले० कोरद् रामचन्द्र। इस काव्य में मेघदूत की उत्तर कथा कल्पित की गई है। श्री के० डी० नागेश्वर द्वारा मसुलीपट्टम् से सं० १९०८ ई० में प्रकाशित। श्री एम० अच्युत राम शास्त्री, एलोर द्वारा सं० १९१७ ई० में प्रकाशित। यह दोनों संस्करण तेलुगु लिपि में मुद्रित हैं।

११ चकोर-सन्देश (क) (ख) (ग) —(क) ले० श्री पेरुसूरि। लेखक द्वारा प्रणीत वसुमंगल-नाटक (ओरियन्टल मैनस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास का हस्तलिखित पुस्तकों का वर्णनात्मक सूचीपत्र, २१, सं० ८४६७ तथा तंजौर पैलेस लाइब्रेरी का हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग ७, सं० २८६६) की प्रस्तावना में इस काव्य का उल्लेख मिलता है। लेखक की 'नवीन पतंजलि' यह उपाधि भी थी। (ख) ले० वासुदेव कवि। शिवोदय इत्यादि काव्य भी इसने लिखे हैं। (ग) ले० श्री वेंकट कवि। ओरियन्टल मैनस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मैसूर का संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र सं० २४६ देखिये।

१२ चातक-सन्देश —ले० (अज्ञात)। जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक-सोसायटी (१८८१ पृष्ठ ४५१ देखिये। इस काव्य में कवि ने मालाबार के राजा रामवर्मन् के संरक्षण के लिये प्रार्थना की है।

१३ चन्द्र-दूतम् (क) (ख) (ग) —(क) ले० कृष्ण तर्कालंकार। केवल हस्तलिखित प्रति उपलब्ध। श्री हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग २, पृ० ५०, ग्रन्थ संख्या, ६१ देखिये। इस काव्य में राम द्वारा सीता के पास चन्द्रमा को दूत बना कर भेजा गया है। ग्रन्थ का रचना काल अज्ञात है।

(ख) ले० विनयप्रभ। बम्बई देश में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की पीटर्सन द्वारा की गई खोज का विवरण, भाग ३, स० २१२ देखिये। अन्त्य यमक के साथ मालिनी छन्द में यह काव्य लिखा गया है। श्री आर० जी० भाण्डारकर द्वारा बम्बई प्रदेश में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के विवरण (१९०७) में ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १३४२ दिया हुआ है।

(ग) ले० श्री विमल कीर्ति गणि। यह एक जैन सन्देशकाव्य है मेघदूत की समस्यापूर्ति भी इसमें की गई है। श्री जिनदत्त सूरि-ज्ञान भण्डार सूरत से वि० सं० २००६ में प्रकाशित।

१४ तुलसी दूतम् —(क) ले० त्रिलोचन शर्मन्। (ख) वैद्यनाथ द्विज। संस्कृत साहित्य (क) परिषत् लाइब्रेरी, कलकत्ता में इन काव्यों की हस्तलिखित (ख) प्रतियां उपलब्ध हैं। प्राच्यवाणी मन्दिर, कलकत्ता का ग्रन्थ संग्रह सं० १३७ देखिये।

१५ दात्यूह-सन्देश —ले० श्री नारायण कवि। त्रावनकोर का संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, ग्रन्थ सं० १६५ देखिये।

१६ पद्म-दूतम् —ले० श्री सिद्धनाथ विद्यावागीश। कूच विहार के अन्तर्गत बाणपती के निवासी। सं० १६७५ में कलकत्ते से प्रकाशित। इण्डिया आफिस लाइब्रेरी कैटालाग पृ० १८२६ (१८९८) देखिए

१७ पदाङ्क दूतम् —ले० भोलानाथ। इण्डिया आफिस लाइब्रेरी कैटालाग, भाग ७, ग्रन्थ संख्या १४९७ देखिए।

१८ पवन-दूतम् —(क) ले० श्री जी० वी० पद्मनाभ। श्री कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास, पैरा २००, पृ० २७५ देखिये।

१९ पादप-दूतम् —ले० गोपेन्द्र नाथ गोस्वामिन्। नवद्वीप कान्ति प्रेस, नवद्वीप से प्रकाशित। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम गौर विष्णुप्रियासंवाद है। (सं० १९३४-३५ में प्रकाशित)।

२० पिक-दूतम् — (क) ले० (अज्ञात)। श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती, कलकत्ता के निजी (क) पुस्तकालय में इस काव्य की पाण्डुलिपि सुरक्षित है। (ख) ले० (ख) अम्बिका चरण देवशर्मन्। प्राच्यवाणी मन्दिर, कलकत्ता में ग्रन्थ के कुछ अंश उपलब्ध हैं।

२१ विक-सन्देश —(क) ले० रगनाथाचार्य। श्रीरगम् से प्रकाशित। (ख) ले० कोच
(क) नरसिंहाचार्य। लेखक तिरुपति निवासी श्री निगासाचार्य का
(ख) पुत्र है। ग्रन्थ तिरुपति से प्रकाशित हुआ है।

२२ बुद्धि-सन्देश —ले० श्री सुब्रह्मण्य सूरि। यह एक आधुनिक अप्रकाशित रचना है। विशेष विवरण के लिए श्री कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास, पैरा ३५२, पृष्ठ ३८० देखिए।

२३ भक्ति दूत — ले० श्री कालिप्रसाद शर्मन्। श्री आर० एल० मित्र के संस्कृत के हस्त लिखित ग्रन्थों के नोटिस, भाग ३, पृ० २७, स १०५१ देखिए।

२४ भृंगदूत — ले० श्री गगानन्द। यह कवि बीकानेर के महाराजा कर्णसिंह का समाकवि था। ग्रन्थ अप्रकाशित है। रचनाकाल स० १५-०६--१५२७ ई० के मध्य में होना चाहिए। औफ्रेट के कैटालोगस कैटालोगोरम भाग ३, स० ३० पर इसका उल्लेख पाया जाता है।

२५ भृंग सन्देश — ले० श्री पेरम्बुदूर के प्रतिवादि भयङ्कर वेंकटाचार्य की धर्मपत्नी श्री त्रिवेणी। रचना काल स० १८४० से १८८३ ई० का मध्य। ग्रन्थ अप्रकाशित।

२६ भ्रमर-सन्देश —ले० श्री महालिंग शास्त्री एम० ए०, बी० एल, वकील, मद्रास। साहित्य चन्द्रशाला, तिरुवालगडु (तंजौर) से स० १६५४ में प्रकाशित। इस काव्य में इन्द्र द्वारा भ्रमर को दूत बनाकर इन्द्राणी के पास भेजा गया है।

२७ मधुकर दूतम्—ले० कैंतडि पट्टि (दक्षिण भारत) के चक्रवर्ति श्री राजगोपाल। लेखक सेन्ट्रल कालेज, बगलौर में स० १६२७ से १६३४ तक संस्कृत विभाग का अध्यक्ष रहा। लेखक ने संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। वे प्राय अप्रकाशित ही हैं।

२८ मधुरोष्ठ-सन्देश—विशेष ज्ञान के लिए ओरियण्टल लाइब्रेरी, मैसूर का संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, ग्रन्थ संख्या २५१ देखना चाहिए।

२९ मनोदूतम् — (क) ले० श्री रामराम शर्मन्। यह काव्य शिखरिणी छन्द में
(क) है। बंगीय साहित्य परिषत्, कलकत्ता के पुस्तकालय में ग्रन्थ
(ख) संख्या १२८२ के रूप में इसकी पाण्डुलिपि सुरक्षित है। माध्य

(ग) वाणी मन्दिर, कलकत्ता के सग्रहालय में भी ग्रन्थ संख्या ११ के
(घ) रूप में इस की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है। (ख) जैन ग्रन्था वलि सं ३३२ देखिए। (ग) काश्मीर क हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, स १७० और २८७ देखिए। (घ) श्री इन्दिरेश भट्ट। यह काव्य श्री हरिहर भट्ट के हृदयदूत के साथ प्रकाशित हो चुका है। चुन्नीलाल बुक सेलर, बड़ा मदिर, भूलेश्वर, बम्बई से उपलब्ध है।

३० मयूर-सन्देश —(क) ले० (अज्ञात)। ओरियण्टल लाइब्रेरी मद्रास का सस्कृत के
(क) हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरणीय सूचीपत्र, भाग ४, ग्रन्थ
(ख) सख्या ४२०८ देखिए। (ख) ले० श्री रंगाचार्य। अड्यार लाइ-
(ग) ब्रेरी का हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, भाग २, ग्रन्थ सख्या ८ देखिए। (ग) ले० श्री निवासाचार्य। यह काव्य मद्रास से मुद्रित हुआ है।

३१ मयूर दूतम् — ले० मुनि श्री धुरन्धर विजय। वि० स० २००० में अहमदाबाद से प्रकाशित। यह एक जैन सन्देश काव्य है।

३२ मानस-सन्देश —(क) ले० श्री विद्वसूरि वीरराघवाचार्य। ओरियण्टल मैनस्क्रि-
(क) प्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास का ग्रन्थसख्या २६६४ देखिए। लेखक
(ख) का कार्यकाल स० १८४५ से १६७० तक है। यह काव्य आधु-निक कृति है। (ख) ले० श्री लक्ष्मण सूरि। लेखक पचयप्पा कालेज, मद्रास में संस्कृत प्रोफेसर रहा। महामहोपाध्याय की उपाधि भी इन्हें प्राप्त हुई थी। स० १८५६ से १९१६ तक इनका जीवन काल रहा। मानससन्देश के अतिरिक्त और भी अनेक रचनाएं इनकी प्राप्त होती हैं। इनके कुछ ग्रन्थ मद्रास से मुद्रित भी हो चुके हैं।

३३ मारुत सन्देश — ले० (अज्ञात)। मद्रास से मुद्रित।

३४ रथांगदूतम् — अड्यार लाइब्रेरी का हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, भाग २ ग्रन्थ सख्या १६ देखिए। मैसूर से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

३५ वकदूतम् — ले० महामहोपाध्याय अजितनाथ न्यायरत्न। यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है। प्राच्य वाणी मन्दिर, कलकत्ते में हस्त लिखित ग्रन्थ संग्रह, स० १४३ देखिए। मूलप्रति लेखक के सुपुत्र श्री शैलेन्द्र नाथ भट्टाचार्य के पास सुरक्षित है।

३६ वाङ्मराडन गुण-दूतम्—ले० श्री वीरेश्वर । डा० जे०|बी० चौधरी द्वारा प्रथम बार कलकत्ते से स० १६४१ में प्रकाशित। इस काव्य में कवि ने अपने सूक गुण को दूत बनाकर एक राजा के पास उसका आश्रय पाने के लिए भेजा है।

३७ विट-दूतम् — इस ग्रन्थ की एक प्रति आर्य लाइब्रेरी विजगापट्टम् में उपलब्ध है।

३८ विप्र सन्देश '—(क) ले० कोचुन्नि तंबिरन कँगनोर निवासी। इस काव्य के
(क) अतिरिक्त गोष्ठी चरित, बाणयुधचम्पू यह दो काव्य ग्रन्थ तथा
(ख) अनग विजय और विटराजविजय यह दो भाग्य ग्रन्थ भी इनके लिखे हुए हैं। दे० कृष्णमाचारियर का सस्कृत साहित्य का इतिहास पैरा १८० पृष्ठ २४८। जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक (१६००) ७६३ भी देखिए। (ख) महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मणसूरि मद्रास। लेखक का जीवनकाल १८५६-१६१६ है। इसमें रुक्मिणी ने कैसे एक वृद्ध विप्र को अपना दूत बनाकर कृष्ण जी के पास भेजा, इसका वर्णन किया गया है। पूर्णचन्द्रोदय प्रेस तंजौर से स० १६०६ में प्रकाशित

३६ शिवदूतम् — ले० तंजौर मण्डलान्तर्गत नदुकावेरी निवासी श्री नारायण शास्त्री। इस कवि ने ६२ नाटक विभिन्न पौराणिक तथा काल्पनिक विषयों पर लिखे हैं। विभिन्न काव्य तथा गद्यात्मक जीवन चरित भी लिखे हैं। इस दूतकाव्य के अतिरिक्त एक श्येन दूत भी इन्होंने लिखा है। (दे० श्री० कृष्णमाचारियर का सस्कृत साहित्य का इतिहास पैरा ७२७, पृ० ६६८-६)।

४० शुक-सन्देश —(क) ले० आचार्य वेदान्त देशिक का सुपुत्र वरदाचार्य। गुरु-
(क) परम्परा प्रभाव, मैसूर (१६६) देखिए। (ख) करिक्कूमपल्लि
(ख) नम्बूद्रि। (श्री गुस्टव आपर्ट द्वारा सकलित दक्षिण भारत के
(ग) निजी पुस्तकालयों के सस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, मद्रास, ग्रन्थसख्या २७२१, ६२४१ देखिए)। (ग) श्री रंगाचार्य। (दे० श्री लेविस राइस द्वारा सकलित मैसूर और कुर्ग के सस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, बंगलौर, ग्रन्थ सख्या २२४०)। (ग) श्री प्रतिवादि भयंकर वेंकटाचार्य की पत्नी त्रिवेणी देवी। अप्रकाशित।

४१ श्येनदूतम् — ले० नारायण शास्त्री। दे० उपरिनिर्दिष्ट शिवदूत सं० ३६।

४२ सिद्धदूत —ले० अवधूत राम। इसमें मेघदूत की समस्यापूर्ति की गई है। पाटन से सं० १६१७ में प्रकाशित।

४३ सुभग सदेश —ले० नारायण कवि। १३० श्लोकों में यह काव्य पूर्ण है। दे० जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १८८४ पृ० ४४६। जयसिंहनाद के राजा राम वर्मा (१५४१–१५४७ ई०) के दरबार में यह कवि था।

४४ सुरभि-सन्देश —ले० श्री वीरवल्लि विजयराघवाचार्य, तिरुपति। आधुनिक संस्कृत कवि और लेखक। इस काव्य में आधुनिक नगरों का वर्णन है।

४५ हनुमत्सदेश —ले० पश्चिम गोदावरी जिले के तानुकु तालुके में दोन्तावरम् के निवासी श्री विभूति वीरराघवा चार्य (१८५५–१९७० ई०)। यह संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इस काव्य के अतिरिक्त रामानुजश्लोकत्रयी, मानससन्देश, पावक नरसिंहस्तोत्र, रघुवीर गद्य-व्याख्या और चतु श्लोकी व्याख्या भी इनके लिखे हुए ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

४६ कपिदूतम् (हनुमद्दूतम्)—ढाका यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, हस्तलिखित ग्रन्थ सं० ६७५ थी (खण्डित)।

४७ हरिण-सन्देश —ले० आचार्य वेदान्तदेशिक के सुपुत्र श्री वरदाचार्य। मैसूर की गुरुपरम्परा में इसका उल्लेख मिलता है।

४८ हंस-दूतम् —(क) ले० श्री रघुनाथदास। यह काव्य मूलरूप में उपलब्ध
(क) नहीं है। सत्रहवीं शताब्दी के नरसिंहदास के बंगला पद्यानुवाद
(ख) में यह पाया जाता है। रूपगोस्वामी के हंसदूत जैसा ही काव्य
(ग) का कथानक इत्यादि है। विशेष विवरण के लिये डी० सी० सेन का बंग साहित्यपरिचय, पृ० ८५० देखिये। (ख) ले० विद्या विधान कवीन्द्राचार्य सरस्वती। श्री ए० सी० बर्नेल, लन्दन द्वारा संकलित तंजोर राजमहल के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, पृ० १६३ में इसका उल्लेख है। लेकिन यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। (ग) औफ्रेट का कैटालोगस कैटालोगोरम्, भाग १, सं० ७५३ पर इसका उल्लेख है और किसी वेंकटेश का लिखा हुआ है।

४९ हंस सन्देश —(अज्ञात)। गवर्नमेन्ट ओरियण्टल मैनस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास में इसकी एक प्रति उपलब्ध है। इसमें एक हंस को एक

वियुक्त प्रेमी द्वारा दूत बनाकर अपनी प्रेमिका के पास भेजा गया है।

५० हृदय-दूतम् —ले० श्री भट्ट हरिहर। वसन्त तिलका छन्द में यह काव्य लिखा गया है (बेग़र, १, स० ५४१)। चुन्नीलाल बुकसेलर, धर्म मन्दिर, भूलेश्वर, बम्बई से प्रकाशित। इस काव्य के साथ में श्री इन्दिरेश भट्ट का मनोदूत भी प्रकाशित हुआ है।

नोट—इस प्रकार प्रकाशित तथा अप्रकाशित ७४ अन्य सन्देश काव्य भी देश के विभिन्न भागों में उपलब्ध हैं।

परिशिष्ट ३

विशिष्ट सन्दर्भ ग्रन्थ

१ ऋग्वेद
२ यास्क का निरुक्त तथा वैदिक निघण्टु
३ अमर कोष
४ श्री वाल्मीकि रामायण
५ महाभारत
६ श्रीमद्भागवत
७ बौद्ध जातक
८ भामह का काव्यालङ्कार
९ दण्डिन् का काव्यादर्श
१० अग्नि पुराण
११ रुद्रट का काव्यालङ्कार
१२ वक्रोक्ति जीवित
१३ मम्मट का काव्य प्रकाश
१४ हेमचन्द्र का काव्यानुशासन
१५ प्रताप रुद्र यशोभूषण
१६ वाग्भट का काव्यालङ्कार सूत्र
१७ राजशेखर की काव्य मीमांसा
१८ पंडितराज जगन्नाथ का रस गंगाधर
१९ विश्वनाथ का साहित्यदर्पण

२० मनुस्मृति
२१ मालतीमाधव
२२ विक्रमोर्वशीयम्
२३ रघुवंशम्
२४ कुमार सम्भवम्
२५ गीतगोविन्दम्
२६ भास का स्वप्नवासवदत्तम्
२७ कथा सरित्सागर
२८ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का 'मेघदूत एक अध्ययन'
२९ बृहत्कथा
३० अभिज्ञान शाकुन्तलम्
३१ श्री सुधीर कुमार गुप्त का 'मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उसका सांस्कृतिक सन्देश'
३२ सौन्दरनन्द काव्य
३३ मोनियर विलियम्स का इण्डियन विज्डम।
३४ श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा संपादित 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' क्लासिकल पीरियड, भाग १।
३५ श्री कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास
३६ श्री ए० बी० कीथ का संस्कृत ड्रामा और संस्कृत साहित्य का इतिहास
३७ श्री आर० एन० आप्टे का 'डेट आफ कालिदास'
३८ जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग, २, किरण २, तथा भाग ३, किरण ? आरा।
३९ डा० जे० बी० चौधरी का बंगीयदूतकाव्येतिहास।
४० सिद्ध भारती भाग १ और २ होशियारपुर।
४१ जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च मद्रास, भाग १० सं० ३, पृष्ठ २६९-७४ (१९३६) पर श्री० ई० पी० राधाकृष्णन का दूत काव्य संबन्धी लेख।
४२ इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग ३, सं० २, पृष्ठ २७३-९७, १९२७ में श्री सी० चक्रवर्ती का दूत काव्य संबन्धी लेख।